पंचरात्रं वा सप्तरात्रमथापि वा ॥ १०८ ॥ लंघनञ्च समुद्दिष्टं ज्ञात्वा दोषबलाबलम्॥कफं विशोषितं ज्ञात्वा ततो वातनिवारणम्॥१०९॥ पित्तसंशमनं कार्य्यं ज्ञात्वा पित्तस्य कोपनम्॥ शोषणीयौ वातकफौ न तु पित्तं विनाशयेत् ॥ ११० ॥

प्राणोंके हरनेवाला और घोररूप ऐसे त्रिदोषजज्वरको देखकर प्रथम कफको शोषनेकी उपाय कहा है ॥ १०६ ॥ जो वैद्य अपने यशकी इच्छा चाहे तो त्रिदोषजज्वरमें पित्तको शांत नहीं करै, क्योंकि कफ और वातकी अधिकतावाले त्रिदोषजज्वररोगीको ज्वर मारदेता है ॥१०७॥ त्रिदोषजज्वरमें लंघन, वमन,ष्ठीवन ये हित हैं और इस रोगमें तीनरात्रि,पांचरात्रि, सातरात्रितक ॥ १७८ ॥ दोषके बल और अबलको जान लंघन करना चाहिये,जब कफके शोषको जानले तब वातको निवारण करे ॥ १०९ ॥ पित्तके कोपको जानकर पित्तकी भी शांति करनी और वात तथा कफको जरूर शोषे और पित्तको कभी भी नहीं नष्ट करे ॥ ११० ॥

अथ सन्निपात ज्वरका लक्षण और चिकित्सा।

सत्तृष्णा शूलशोषः श्वसनमथ निशाजागरो वासरस्तु तन्द्रा मोहश्च शोषो भवति च वदने घ्राणजिह्वाधराणाम् ॥ पाकं निष्ठीवते यः कृशतनुश्च भवेन्मण्डलानाञ्च देहे सम्भूतिः श्यावनेत्राधरवदनमदस्वेद आध्मानशोषः॥ १११ ॥ क्षुन्नाशो वा भ्रमार्तिर्भवति शिरसो लोडनं वा शिरोऽर्त्तिः स्रोतोरोधो वमिर्वा गलकघुरघुराशूलकैर्वा वृतस्तु ॥ एतैर्लिङ्गैर्युतानां प्रभवति च नृणां सन्निपातेतिसंज्ञा रोगाणामाशुकारी ज्वर अतिदुखदो वाजिनां वा द्विपानाम् ॥ ११२ ॥

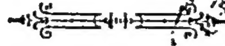
अच्छी तृषा, शूल, शोष, श्वास, रात्रिका जागना,दिनमें तंद्रा,मोह,मुखमें शोष ये उपजें और नासिका, जीभ, ओष्ठ इनका पाक होवे और वारंवार थूके और कृशशरीर होजावे और शरीरमें मंडलोंकी उत्पत्ति हो और कालेनेत्र हो जावें होंठ काले हो जावें, मद और पसीना उपजे, अफारा और शोष भी हो ॥ १११ ॥ भूख जाती रहे, शिर भ्रमे अथवा शिरको हिलावे और शिरमें पीड़ा हो, स्रोत रुक जावे अथवा छर्दि हो और गलेमें घुर्घुरशब्द और शूल उपजे ये सब लक्षण होवें तब मनुष्यके सन्निपातज्वर जानना, यह रोगोंको शीघ्र करता है, घोड़ोंको तथा हाथियोंको भी अतिदुःख देता है ॥ ११२ ॥

अथ सन्निपातज्वरकी चिकित्सा।

सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्य्याद्वातकफापहम्॥पश्चाच्छ्लेष्मणि संक्षीणे

श्रीः ।

हारीतसंहिता ।



श्रीमदात्रेयमहर्षिहारीतमुनिसंवादरूपा ।

(वैद्यकग्रन्थः)

वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनु-
वादितया भाषाव्याख्यया समन्विता ।

उन्नाव-मण्डलान्तर्गत-टेढ़ाचिलौली-ग्रामनिवासिनायुर्वेदाचार्य-
कविरत्नकालीप्रसादत्रिपाठिना संशोधिता च ।



सैव

क्षेमराज-श्रीकृष्णदास इत्यनेन

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालये
मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

शके १८४९, संवत् १९८४.

अथ तालीसचूर्ण।

तालीसचूर्णमिह पित्तकफस्य कासे पेयं न किं वृषभपत्ररसेन युक्तम् ॥ हन्ति भ्रमं श्वसनकासनमाशु यो वै भङ्गस्वरे त्वरितमेव सुखं ददाति ॥ २७ ॥

पित्त और कफके कासमें अडूसाके पत्तेके रससे युक्त तालीस चूर्ण क्या न पीना चाहिये जो भ्रम, श्वास और कासको शीघ्र हटाता है और भङ्गस्वरमें शीघ्र ही सुख देता है ॥ २७ ॥

अथ अडूसाका क्काथ और कल्क।

आटरूषकमृद्वीकापथ्याक्काथः सशर्करः॥क्षौद्राढ्यः कसनश्वासरक्तपित्तनिवारणः ॥२८॥ छागं पयो वा सुरभीपयो वा चतुर्गुणश्चापि जलेन कल्कः ॥ सशर्करं पानमिदं प्रशस्तं सरक्तपित्तं विनिहन्ति चाशु ॥ २९ ॥

वांसा, मुनका, दाख इनके क्काथमें खांड मिला और शहद मिला देनेसे श्वास, खांसी, रक्तपित्त इनका निवारण होता है ॥ २८ ॥ बकरीका दूध अथवा गौका दूध और चौगुना जल इनमें वांसाका कल्क मिला सिद्ध कर फिर खांड़के संग इसका पीना श्रेष्ठ है यह रक्तपित्तको नाशता है ॥ २९ ॥

बलाश्वदंष्ट्रामलकीफलानि द्राक्षा मधूकं मधुयष्टिकानाम् ॥ सिद्धं पयःपानमिदं हितं स्यात्पित्ते सरक्ते मनुजस्य शान्त्यै ॥ ॥३०॥ खदिरस्य प्रियंगूनां कोविदारस्य शाल्मलेः ॥ पुष्पचूर्णं तु मधुना लिह्यादारोग्यमस्तुते ॥ ३१ ॥ आटरूषकरसेन सप्तधा भाविता च पुनरेव शोषिता ॥ पिप्पलीमधुसमन्विताऽभया रक्तपित्तमतिदुर्जयं जयेत्॥३२॥एलाफलानि च सपद्मकनागकेशरं द्राक्षा घना मधुकपिप्पलिका समांशा ॥ एषां समांशसितशर्करयुक्तलेहः खर्जूरिका समभिहन्ति च रक्तपित्तम् ॥ ॥ ३३ ॥ दाहं ज्वरार्तिश्वसनं च विमोहतृष्णां मूर्च्छां निहन्ति रुधिरं वमिजित्तथैव ॥ ३४ ॥

खैरहटी, गोखरू, आंवला, दाख, महुआवृक्षकी छाल, मुलहटी, इनके दूधमें मिला



यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाड़ी ७ वीं गली खम्बाटा लेन निज "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित की।



और पित्तसे उपजे मूत्ररोधमें नमक, कांजीका पीना हित कहा है और पाडलवृक्ष, टेंटूवृक्ष, नींव, गोखरू ॥ १६ ॥ इलायची, दालचीनी, तेजपात, त्रिफलाका काथ बना गुड़के संग मिला पीनेसे मूत्ररोध दूर होता है ॥ १७ ॥ अनारदानाकी कांजी पीना मूत्ररोगवाले पुरुषोंको हित है और त्रिफला, ईख, मिश्रीका काथ बना गुड़, सेंधा-नमकके संग पीनेसे ॥ १८ ॥ या हरड़ें गुड़ इनके खानेसे मूत्ररोधका निवारण होता है अथवा इंद्रियोंको मलना अथवा स्त्रीके संग मूत्र आनेके समय विषय करना श्रेष्ट है ॥ १९ ॥ और स्त्रीके मूत्र बंध होवे तो उसकी योनि मर्दन करे तो शीघ्र ही सुख उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने मूत्ररोधचिकित्सा नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः ३१.

अथ अश्मरी अर्थात् पथरी रोगकी चिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ पितृमातृकदोषेण अथवा मूत्ररोधनात् ॥ अपथ्यसेवनाचारैर्जायते चाश्मरीगदः ॥ १ ॥ मूत्राविष्टौ च पितरौ सुरतं कुरुतो यदि ॥ मूत्रेण सहितं शुक्रं च्यवते गर्भसम्भवम् ॥ ॥ २ ॥ पश्च यस्य सदेहस्य स च तत्र प्रजायते ॥ मूत्रं मूत्रस्य संस्थाने करोति बन्धनं त्रिषु ॥ ३ ॥ सोऽप्यसाध्यो मूत्रगदश्चाल्पाद्भवति मानुषे ॥ तारुण्ये चापि साध्यश्च जायते मूत्रशर्करा ॥ ४ ॥ विपरीतेन चोत्ताने स्त्रिया च पुरुषेण वा ॥ शुक्रश्च प्रबलेत्तस्य स्त्री शुक्रं विचिनोति च ॥ ५ ॥ पुनश्च मेहने वासो वातेन शोणितं च तत् ॥ द्वयं दत्तं प्रपद्येत मूत्रद्वारं प्ररुध्यति ॥ ६ ॥ तेन मूत्रप्ररोधश्च जायते तीव्रवेदना ॥ अण्डसन्धिस्थिता याति शर्करा शस्त्रसाध्यका ॥ ७ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—माता पिताके दोषसे अथवा मूत्रके रोकनेसे पथ्य वस्तुओंके सेवन नहीं करनेसे पथरीरोग होजाता है ॥ १ ॥ मूत्रके वेगसे युक्त हुए माता पिता जब मैथुन करते हैं तब गर्भको उत्पन्न करनेवाला वीर्य मूत्र सहित झिरता है ॥ २ ॥ फिर उस गर्भके शरीरमें वह मूत्र उसीस्थानमें प्राप्त होजाता है वह मूत्र मूत्रके स्थानमें बंधाकर देताहै ॥ ३ ॥ यह पथरी-

श्रीधन्वन्तरिस्तवः ।



आविर्बभूव जगतः परिपालनाय
कृत्वा करे कलशमम्बुनिधेः सुधायाः ।
यश्चामरत्वकरणाय दिवि स्थितानां
धन्वन्तरिं तमहमाद्यविदं समीडये ॥ १ ॥

ये नाम केचिदिह ते प्रथयन्त्यवज्ञां
विद्यानवद्यगदने विमुखाग्रगास्ते ।
वाचां भटाः स्वभवने विभवो भवन्तु
प्राप्स्यन्ति किं सुपदवीं तव शिष्यकाणाम् ॥ २ ॥

दृष्टेदमस्ति किमपिप्रथितुं प्रभूताः
सन्तीह तस्य करणे किल तेऽभिभूताः ।
त्वन्नाथ किन्तु रचनाचतुराढ्यचक्र-
चूडामणिप्रखरकान्तिरसीति सत्यम् ॥ ३ ॥

अद्यापि यद्यपि विदो विचरन्ति वैद्याः
सन्तस्त्वनन्तमहतामपि ते भवन्तः ।
सन्तीह किन्तु बहवः किल वैद्यकल्पा
धन्वन्तरेऽघगतसत्त्वहरा हि दुःखम् ॥ ४ ॥

वाचामगोचरचरित्र न चित्रमत्र
यन्नास्तिका ननु भवन्ति चिकित्सकाज्ञाः ।
अम्भोमलापनयनप्रभविष्णुकोऽपि
पङ्कं प्रसादयति किं कतकः कदाचित् ॥ ५ ॥

अष्टाङ्गभरारहितान्विहिताभिमाना-
न्मूढान्दरिद्रहृदयांश्च दयाविहीनान् ।
वैद्यान्नियम्य वितरिष्यति यः सुभावं
धन्वन्तरिः स भगवानवतु त्रिलोकीम् ॥ ६ ॥

कालीप्रसादकविना विहितः स्तवोऽयं
धन्वन्तरेर्भगवतः करुणामयस्य ।
श्रेयस्तनोतु भवतां भवतां बुधानां
धुन्वन्सुधामरझरीवचनस्तुतानाम् ॥ ७ ॥

कालीप्रसाद शास्त्री त्रिपाठी ।

रोग असाध्य होता है बालक अवस्थामेंही यह पथरी रोग होता है । यह तीन प्रकारसे होता है ॥ ४ ॥ और जवान अवस्थामें मूत्रशर्करा रोग होता है वह साध्य होता है स्त्री और पुरुषके विपरीत तथा मोघेहोके मैथुन करनेसे जो वीर्य झिरता है और स्त्रीका वीर्य इकट्ठा होता है ॥५॥ वह वीर्य तो मूत्रके संग वासमें युक्त होता है और स्त्रीका रुधिर वातके संग युक्त होजाता है फिर इन दोनोंके गर्भमें संयुक्त होनेसे मूत्रद्वारा रुक जाता है ॥ ६ ॥ यह जो बालक उत्पन्न होवे उसके मूत्ररोध रोग होवे,तीव्र पीड़ा हो यह अंडसंधिमें शर्करासंज्ञक रोग हो जाता है यह शस्त्रसाध्य होता है ॥ ७ ॥

अथ अश्मरीरोगपर चिकित्सा ।

अतो वक्ष्यामि भैषज्यं शृणु पुत्र महामते ॥ शुण्ठी गोक्षुरकं चैव वरुणस्य त्वचस्तथा॥८॥ क्काथो गुडयवक्षारयुक्तश्चाश्मरिनाशनः ॥ कुशकाशनलं वेणु अग्निमन्थाक्षनृत्तकम् ॥९॥ श्वदंष्ट्रा मोरटा वापि तथा पाषाणभेदकम् ॥ पलाशस्त्रिफलाक्काथो गुडेन परिमिश्रितः ॥ १० ॥ पाने मूत्राश्मरीं हन्ति शूलबस्तौ व्यपोहति ॥ ११ ॥

हे पुत्र, हे महामते ! अब इन्होंकी औषध कहते हैं सुनो सोंठ, गोखरू, वरणाकी छाल ॥ ८ ॥ गुड, जवाखार इनका क्काथ बना पीनेसे पथरीका नाश होता है ॥ ९ ॥ कुशा, कास, उशीर, बांस, अरणी, बहेड़ा, बेत, गोखरू, मोरवेल, पाषाणभेद ॥ १० ॥ टेशू, त्रिफला, इनका क्वाथ बना गुडमें मिला खानेसे पथरीका नाश होता है और बस्तिशूल दूर होता है ॥ ११ ॥

अथ एलादि क्काथ ।

एलाकणावृषत्रिकण्टकरेणुकाचपाषाणभेदमधुकं च फलत्रिकञ्च ॥ एरण्डतैलकशिलाजतुशर्कराद्यं क्काथोऽश्मरीघ्नइति सोष्णजलस्य पानम् ॥ १२ ॥

इलायची, पीपल, बांसा, दोनों कटेहली, गोखरू, रेणुका, पाषाणभेद, त्रिफला, अरंडीका तेल, शिलाजीत, खांड इनका क्काथ बना गरम २ पीनेसे पथरी रोग दूर होता है ॥ १२ ॥

अथ गोक्षुरकादि चूर्ण ।

गोक्षुरकस्य बीजानां धातुमाक्षिकसंयुतम् ॥
अश्मरीपातनं चूर्णं महिषीदुग्धभक्षितम् ॥ १३ ॥

वक्तव्य ।

हारीतसंहिता सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी चर्चा या इसके प्रणेताकी चर्चा वैद्यके सैकडों ग्रन्थोंमें की गयी है । इस संस्करणमें अनेकों विशेष विषय बताये हैं । जिन्हें आप पढ़नेसे और गत संस्करणके देखनेसे ही समझ सकेंगे । अबकी सभी त्रुटियां यथासम्भव निकाल दी गयी हैं । इस कारण इसका संशोधन प्रयागीय मासिकपत्र "आलोक"के सम्पादक, आयुर्वेदाचार्य कविरत्न पं० कालीप्रसाद शास्त्रीजीने किया है । आशा है इससे विद्वन्मनोरञ्जन अवश्य होगा । संस्कृत और हिन्दी अल्प ही परिवर्तनसे बड़ी उत्तम हो गयी है । गूढ़ और गम्भीर उलझनोंको सुलझानेके लिये विशद गवेषणापूर्ण सरल संस्कृत और हिन्दीमें टिप्पणियां लगा दी गयी हैं । साथ ही मनोहर धन्वतन्तारिस्तव भी प्रथम पाठार्थ लगा दिया है, जिससे ग्रन्थकी उपयोगिता और भी बढ गयी है। हमें आशा है कि, हमारा यह ग्रन्थ वैद्यकप्रेमियोंमें विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा ।

प्रकाशक-

२० । ३ ।१९२७ खेमराज श्रीकृष्णदास.

अपनी बात ।

प्रिय पाठको !

आपके हाथमें यह ग्रन्थ रखते हुए मुझे हर्ष होता है । हमारा दृढ़ विश्वास है कि इस नूतन संस्करणको देखकर आप अवश्य सानन्द होंगे । यथासम्भव और यथाविवेक हमने इसके प्रत्येक भागपर दृष्टि डाली है । जो कुछ इसके उत्तम बनानेमें कर सकते थे किया । यह बात आप गतसंस्करणको देखकर समझ लेंगे । हमारा विशेष ध्यान मूलभागपर रहा है । उसीको शुद्ध और सुपाठ्य बनानेमें भरसक प्रयत्न हमने किया है । टीकामें सुबोधता और यथार्थताका ध्यान रखते हुए उचित परिवर्तन यथास्थानपर किया गया है । हिन्दी पुरानी है वह वर्तमानपद्धतिके अनुकूल कहांतक बन सकती है ? तब भी ऐसी नहीं जो सुश्राव्य और समझने योग्य न हो, वैद्यक संसारमें हारीतसंहिताकी प्रतिष्ठा कम नहीं किन्तु आर्ष और वृत्तभङ्गके गम्भीरगर्तमें पड़कर इसका जो भाग दुर्बोध और अदृश्य हो गया था वह पुनरुद्धृत हुआ है । हम अपने अनुभवसे कह सकते हैं कि इसका कालज्ञान, वस्तुविवेक, गुणदोषदर्शन सरल, सर्वमान्य, उपादेय और अनुभूत नुस्खांका समूह अन्यत्र दुर्लभसा है । विश्वास है कि, अवशिष्ट त्रुटियोंकी ओर वैद्यकके विशिष्ट विद्वान् हमारा ध्यान दिलाएँगे, जिससे हम पुनरागत संस्करणमें उनका संशोधन कर सकेंगे । उचित ग्रन्थोंका सर्वमान्य बनाना समीका काम होना चाहिये जिससे वे अपनी विशुद्ध प्राचीन प्रभा पुनः पा सकें । किमधिकं महत्सु ।

सजीवन औषधालय मु० चिलौली पो० टेढ़ा, जि० उन्नाव चैत्रकृष्ण द्वितीया सं० १९८३

निवेदक—कालीप्रसाद त्रिपाठी (श्रीकार) सम्पादक आलोक आयुर्वेदाचार्य, कविरत्न.

और गोखरूके बीज, सोनामाखी इन्होंके चूर्णको मेंढके दूधके संग पीनेसे पथरी गिरती है ॥ १३ ॥

अथ अन्य उपाय।

शस्त्रविधिरुत्तरीय सूत्रस्थाने प्रोक्तं घृताध्याये च स्मृतम्॥१४ पुराणषष्टिका शालिरक्ततण्डुलकास्तथा ॥ श्यामाकः कोद्रवो दालो मर्कटी तृणधान्यकम् ॥१५॥ यवगोधूमकुलत्थास्तथा चैवाढकी भिषक्॥वातहराः प्रयोक्तव्या भोजने वातरोगिणाम् ॥१६॥ क्रौञ्चाद्यानि च मांसानि पथ्यान्यश्मरीनाशने ॥१७॥

इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अश्मरीचिकित्सानामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

उत्तर सूत्रस्थानमें शस्त्रविधि कहदी है, तैलाध्यायमें तेल कह दिया है और घृताध्यायमें घृत कह दिया है ॥ १४ ॥ पुराने सांठी चावल, शालिसंज्ञक चावल, लाल चावल, शामक, कोदूधान्य, दाल, क्रौंच, तृणधान्य आदि अन्न ॥ १५ ॥ जव, गेहूं, कुलथी, आढकी धान्य, इन भोजनोंको देवे और वातरोगवाले पुरुषोंको वातनाशक भोजनोंको देवे ॥ १६ ॥ पथरी रोगके नाशके वास्ते कूंजि आदि पक्षियोंका मांस देना चाहिये ॥ १७ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने अश्मरीचिकित्सानामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः ३२.



अथ वृषणचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ अत ऊर्ध्वमण्डवृद्धिर्दृश्यते भिषजां वर ॥ बाल्ये मातुः पितुर्दोषाज्जायते वृषणानुगा॥१॥दुष्टादाराविहाराच्च वातो बस्तिगतो भृशम् ॥ अण्डस्थानं च संप्राप्य तस्य वृद्धिं करोति वै॥२॥एकैकसन्निपातश्च चतुर्थः सन्निपातिकः ॥ पित्तदोषात्सन्निपातात्तथाऽसाध्या इमे स्मृताः ॥ ३ ॥

आत्रेय कहते हैं—हे उत्तमवैद्य ! हारीत ! इसके उपरांत अंडवृद्धि रोग होता है

हारीतसंहिताविषयानुक्रमणिका ।



सो बालकके मातापिताके दोषसे वृषणोंका रोग होता है ॥ १ ॥ दूषित स्त्रीके संग मैथुन करनेसे वस्तिस्थानमें प्राप्त हुआ बहुतसा वायु अंडस्थानमें प्राप्त होके अंडवृद्धि करदेता है॥२॥ एक एक दोषसे तीन प्रकारका और चौथा सन्निपातसे होता है और पित्तके दोषसे उपजे हुए और सन्निपातसे उपजे हुए अंडवृद्धिरोग असाध्य कहे हैं ॥ ३ ॥

दोषान् वक्ष्याम्यौषधानि शृणु तानि भिषग्वर॥स्वेदनान्यभ्यञ्जनानि क्वाथ्यपानं विधीयते ॥ ४ ॥ शिरःस्रावो भिषक्श्रेष्ठ तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ कंपश्च मृदुवातेन पित्तेन दाहकज्वरः ॥ ५ ॥ कफाद्धनश्च शोषश्च कठिनो वृषणो भवेत् ॥ रसालशल्लकीक्वाथस्तर्कारी कटुतुम्बिका ॥ ६ ॥ क्वाथसंसेवनार्थो च मुष्कवृद्धिः सवातिके ॥ शीततोयावगाहो वा शीतसंसेवनं तथा॥शीतशीतैश्च लेपश्च पित्तमुष्के प्रशस्यते७॥

हे उत्तमवैद्य ! अब दोषोंको और औषधोंको कहते हैं सुनो । पसीना दिलाना, मालिस करनी और काथ पान, नसोंका स्राव ये विधि करनी चाहिये ॥ ४ ॥ अब इनके लक्षणोंको कहैंगे, वातदोषसे उपजे अंडवृद्धिरोगमें कंपनाहो कोमलहो और पित्तसे दाहहो, ज्वरहो ॥ ५ ॥ कफसे कडाहो, शोषहो, कठिन अंड हो, वातसे उपजे अंडवृद्धिरोगमें आंब, शल्लकी वृक्ष, अरणी, कडुई तुंबी, इनका क्वाथ बना सेवन करना चाहिये ॥ ६ ॥ और पित्तसे उपजे अंडवृद्धिरोगमें शीतल जलमें गोता मारना, शीतल वस्तुसे वना और चंदन, कपूर चीता इनका लेप करना श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

वृषणवृद्धिपर चिकित्सा ।

वचालवणतोयेन कदम्बार्जुनसर्षपैः॥कषायसेवनैः प्रोक्तं कफमुष्केऽहितापहम् ॥ ८ ॥ अरुणवरुणकोलं च शालिपर्णी शतावरी॥क्वाथः पित्तसन्निपातमुष्कवृद्धौ विदां वर ॥ ९ ॥ वरुणवृक्षादनी चैव दशमूली शतावरी॥क्वाथपानं वातिके च मुष्कवृद्धौ हितावहम् ॥१०॥ एतेन भवते सौख्यं तदा कर्मावकारयेत्॥कर्णकोषस्य मध्ये तु रक्तान्निर्हारयेच्छिराम् ॥ ११ ॥ वामकोष्ठस्य वृद्ध्या तु दक्षिणां हारयेच्छिराम्॥उभाभ्यां द्वे शिरे वेध्ये तेन वा तत्सुखं भवेत् ॥१२॥ इति चाण्डक्रिया प्रोक्ता

सा चैवोन्नीतरोगिणे॥१३॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने वृषणवृद्धिचिकित्सा नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

कफसे उपजे अण्डवृद्धिमें वच,नमक,कदंबवृक्ष,सरसों, इनका क्वाथ बना सेवन करना हित है ॥८॥ लाल ऊंगा, वायवरणा, कंकोल, शालपर्णी, शतावरी, इनका क्वाथ पित्त और सन्निपातसे उपजे अंडवृद्धिरोगमें हित है ॥ ९ ॥ अमरवेल, वायवरणा, दशमूल, शतावरी, इनका क्वाथ वातके अंडवृद्धिरोगमें पीना हित है ॥१०॥इस करके सुख हो जाता है पीछे अन्यकर्म करे।कानके मध्यमें रहनेवाली रक्तको धारण करनेवाली नाड़ीको विंधावे ॥ ११ ॥ वाईतर्फ अंडवृद्धि होवे तो दाहिने कानकी नस विंधावे और दोनोंतर्फ अंडवृद्धि होवे तो दोनों कानोंकी नसोंको विंधावे ऐसे करनेसे सुख उत्पन्न होता है ॥ १२ ॥ यह दारुण क्रिया कही है जिसके ज्यादे अंडवृद्धि हो रही हो उस रोगीके करनी चाहिये ॥ १३ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने वृषणवृद्धिचिकित्सानाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३.

अथ विसर्परोगकी चिकित्सा ।

आत्रेय उवाच॥लवणाम्लक्षारकटुकैरुष्णस्वेदातिदोषतः॥रक्तपित्तं प्रकुप्येत स विसर्पी भिषग्वर ॥१॥ स सप्तधा परिज्ञेयः पृथग्दोषैश्च द्वन्दजैः॥केवलो रक्तजस्त्वन्यः सन्निपातेन सप्तमः ॥ २ ॥ तथापरे प्रवक्ष्यन्ते नामानि च पृथक्पृथक्॥ आग्नेयो ग्रन्थिको घोरः कर्दमश्च तथापरः ॥३॥ आग्नेयो वातपित्तेन ग्रन्थिकः पित्तश्लेष्मणा॥कर्दमो वातश्लेष्मोत्थो घोरः स्यात्सान्निपातिकः॥४॥रक्तंलसीकात्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः॥ विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्तधातवः ॥५॥ न्यग्रोधबिल्वखदिरकषायो धावने हितः॥ काञ्जिकाम्लैः पिच्छिलया सौवीरकरसेन वा ॥६॥ मातुलुङ्गरसेनापि धावनं वातसर्पिषु॥ क्षीरेण शीततोयेन धावनं पित्तसर्पिणि॥ ७ ॥ श्लेष्मविसर्पिणे

अथ रक्तस्थ कुष्ठ।

रूक्षं तथा सकण्डु त्वक्स्थितञ्च मृदु शीतलम्॥
आस्रावदाहरक्ताभं रक्तस्थं रक्तगं विदुः॥ १५॥

जो रूखाहो, खाजहो, कोमलहो, शीतलहो वह त्वचामें स्थित कुष्ठ जानना और जिसमें झिरनाहो, रक्तसरीखी कांतिहो वह रक्तमें स्थित हुआ कुष्ठ जानना॥ १५॥

अथ मांसस्थ मेदःस्थ तथा अस्थिस्थ कुष्ठ।

सुस्निग्धं तोदगम्भीरं मांसगञ्च विनिर्दिशेत्॥मेदःस्थं तोदवेष्टत्वं सुस्निग्धं रक्तलोचनम्॥अस्थिसंस्थञ्च गम्भीरं विसर्पं नासिकामुखे॥ १६॥

स्निग्धहो गम्भीर व्यथावाला वह मांसमें प्राप्त हुआ कुष्ठ जानना जो मेदमें स्थितहो उसमें पीडाहो और ऐंठन चिकनाहो, रक्तनेत्रहों और जो अस्थिमें स्थितहो वह गंभीर होता है मुखमें तथा नासिकामें विसर्परोग दीखता है॥ १६॥

अथ मज्जास्थ तथा शुक्रस्थ कुष्ठ।

मज्जसंस्थश्च विकलो मज्जास्रावश्च जायते॥विशीर्य्यते च सर्वाङ्गं तथैव शुक्रगं विदुः॥ १७॥ अतो वक्ष्ये समासेन प्रतिकर्म भिषग्वर॥ १८॥

मज्जामें स्थितहोनेसे विकल होजावे, और मज्जास्राव होता है और जिसमें सब अंग शिथिल होजावें वह वीर्यमें प्राप्त हुआ कुष्ठ जानना॥ १७॥ हे उत्तम वैद्य! अब संक्षेप मात्रसे इनकी चिकित्साको कहैंगे॥ १८॥

अथ कुष्ठचिकित्सा।

त्वक्स्थे स्वेदस्तथालेपो रक्तस्रावश्च रक्तगे॥विरेकं मांसगे प्रोक्तं मेदोगे क्वाथपाचनम्॥१९॥ अथ तानि च त्रीण्येव अस्थिमज्जागतानि च॥वातिके स्वेदनं पथ्यं पित्त शीतोपचारणम्॥२०॥ कष्टसाध्यमिदं प्रोक्तमसाध्यं सान्निपातिकम्॥ रोगकारणमालोच्य तदा कर्म समारभेत्॥ २१॥

त्वचामें स्थितहुए कुष्ठमें पसीना दिलावे, लेप करे, रक्तमें प्राप्तहुएमें स्राव करावे, मांसमें प्राप्तहुए कुष्ठमें जुलाब देवे और मेदमें प्राप्तहुएमें क्वाथ पाचन देवे॥ १९॥ और यही उपचार अस्थि, मज्जा, इनमें प्राप्तहुएमें भी करना चाहिये, वातसे उपजे कुष्ठमें पसीना दिवाना

खैर, सफेद खैर, मूर्वा, नेत्रवाला, बडा अमलतास, कुडाकी छाल, नींब, अमलतासको पीस इन्हींके समान घृत मिला क्वाथ बना पीनेसे संपूर्ण कुष्ठरोग विसर्पदोष इनका नाश होता है॥ ४२॥

अथ भल्लातक तैल।

भल्लातकत्र्यूषणमक्षचूर्णं कुष्ठञ्च गुञ्जालवणानि पञ्च ॥ फलत्रिकं तैलविपाचितानि चाभ्यञ्जनं हन्ति च दद्रुकुष्ठम् ॥४३ ॥

भिलावा, त्र्यूषण अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपल, बहेडा, कूठ, घोंघचिल, पांचों नमक, त्रिफला इनको समान भाग ले चूर्ण बना तेलमें पकावे पीछे इस तेलकी मालिस करनेसे दद्रुकुष्ठका नाश होता है ॥ ४३ ॥

अथ तिलतैल।

अश्वघ्नमूलं मलिनं समङ्गा निशाद्वयं सर्षपचित्रकञ्च ॥ सभृङ्गराजं कटुतुम्बिका च कुष्ठं विडङ्गं मगधा च चूर्णम् ॥४४॥ स्नुह्यर्कदुग्धेन विपाचितं तु तैलं तिलानां परिपक्वमेतत् ॥ अभ्यञ्जनं चैव नरस्य नूनं दद्रूणि कण्डूनि विनाशयेच्च ॥ ४५ ॥

कनेरकी जड, अगर, मंजीठ, दोनों हलदी, सरसों, चीता, भंगरा, कुटकी, तुंबी, कूठ, वायविडंग, पीपली ॥ ४४ ॥ इनको थोहरके और आकके दूधमें पका पीछे इसमें तिलोंके तेलको पकावे इसकी मालिस करनेसे मनुष्यके दद्रुकुष्ठोंका नाश शीघ्र ही होता है ॥ ४५ ॥

अथ हरिद्रादि तैल।

हरिद्रा समङ्गा सुराह्वं सचित्राविडङ्गानि कृष्णा विशालाम्बु कुष्ठम् ॥ तथा लाङ्गली चक्रमर्दं च गुञ्जा विशाला तथारिष्टपत्राणि चैतत् ॥४६॥ सुचूर्णीकृतं भावितं वै तथैतद्गुडेनैव सर्वं हि घर्मे विपाच्यम् ॥ हितं लेपने कुष्ठपामाविचर्चीर्नरस्याति शीघ्रं निहन्तीति शल्यम् ॥ ४७ ॥

हलदी, मंजीठ, देवदार, चीता, वायविडंग, पीपली, इंद्रायण, नेत्रवाला, कूठ, कलहारी, चकौंडी, घोंघचिल, इंद्रायण, नींबके पत्ते ॥ ४६ ॥ इनको समान भाग ले चूर्ण बना गुडके रसमें भावना दे। घाममें धरके पका लेप करना हित है। कुष्ठ, पामा, विचर्चिका इन रोगोंका शीघ्र ही नाश होता है ॥ ४७ ॥

अथ निंबादिघृत।

निम्बं पटोलं च किरातकञ्च जाती विशाला सपुनर्नवा च ॥

अथ बालकोंकी वाणीको करनेवाले औषध।

त्रिकटु त्रिफला धान्या यवानी सालमूलिका॥वचा ब्राह्मी तथा भार्ङ्गी चूर्णश्च मधुना हितम् ॥ वाक्पटुत्वञ्च बालानां नादो वीणासमस्वरः॥ २५ ॥

सूंठ, मिरच, पीपली, धनियां, अजवायन, सालवृक्षकी जड़, वच, ब्राह्मी, भारंगी, इनका चूर्ण बना शहदके संग चाटनेसे बालककी जुवान अति चपल होती है और वीनके समान शब्दका स्वर होता है ॥ २५ ॥

अथ बालकोंके अपस्माररोगकी चिकित्सा।

यस्य श्वासो विचैतन्यं तन्द्रा चातीव वेपथुः॥शिरोर्तिःसंज्वरश्चैव सचासाध्यो भिषग्वर ॥२६॥ लालाकृतिर्विचैतन्यं तृतविभ्रान्तलोचनम्॥स्तब्धाङ्गविकृतिर्यस्य चापस्मारी च उच्यते ॥ २७॥ अपस्मारे तु बालस्य शीतलानि प्रयोजयेत्॥ वचासैन्धवपिप्पल्यो नस्यं हि गुडनागरः ॥ २८ ॥रसं चागस्तिपत्रस्य मरिचैः प्रतियोजितम् ॥ एतेन प्रतिसौख्यं स्यात्तदा चान्दोलनं हितम् ॥ २९ ॥ मस्तकान्ते ललाटे च दहेल्लोहशलाकया ॥ ३० ॥

जिसके अत्यन्त श्वास हो,चेत नहीं रहे, तंद्राहो, अत्यंत कंपनाहो, शिरमें पीडाहो, ज्वरहो हे वैद्य ! वह असाध्य रोग होता है ॥ २६ ॥ लाल आकृतिहो, चेत नहीं हो, और फटे हुए भ्रमते हुए नेत्रहों, अंग जकडबंध बुरावर्णवाला होजावे वह अपस्मार अर्थात् मृगीरोग जानना ॥ २७ ॥ अपस्मार रोगमें बालकको शीतल वस्तु देनी चाहिये और वच, सेंधानमक, पीपली, सोंठ, इनको मिला नस्य देवे ॥ २८ ॥ अथवा अगस्तिवृक्षके पत्तोंके रसमें मिरच मिला नस्य देवे, इसप्रकार करनेसे सुख होजावे तब आंदोलन अर्थात् हिलाने चलानेका कर्म करे ॥ २९ ॥ मस्तकके अंतमें शिरके ऊपरकी नसको शलाईसे दाध करना हित है ॥ ३० ॥

अथ बालकोंके पूतनाका दोष।

शून्यागारे देवकुले श्मशाने देवमध्यगे ॥ चत्वरे सङ्गमे नद्योर्भयक्षुभितबालके ॥३१॥ संक्रामन्ति भिषक्छ्रेष्ठबालकस्यापि पूतनाः ॥३२॥ लोहिता रेवती ध्वांक्षी कुमारी शाकुनी शिवा॥

युक्त हुआ जीव सोवता है ॥ ५५ ॥ और तमोगुणके योगसे जो वायु होता है वह स्वप्नअवस्था कहाती है और सत्त्वगुण, तमोगुण, वायु ये तीनों स्वप्नअवस्थामें एक योगसे वर्त्तते हैं ॥ ५६ ॥ आहार, निद्रा, क्षुधा, तृषा, भय, मत्सरपना, मद, मोह, क्रोध, अभिलाप, सुखकी तृप्ति, शांति ये सब देहधारियोंके होते हैं ऐसे तुम सुनो ॥ ५७ ॥ देहमें विचरताहुआ अग्नि भोजनकी इच्छा कर देता है ॥ ५८ ॥ जठराग्नि जब २ मलोंको शोपती है तब उसकी तृप्ति रहती है और जब उसकी तृप्ति नहीं होती है तब इसे वांछाको उपजा देती है ॥ ५९ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां शारीरस्थाने षष्ठे शारीराध्यायो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १॥

अथ परिशिष्टाध्यायः ।

इति प्रोक्तः शरीरार्थस्तद्व्यासेनोपदिश्यते ॥ श्रुत्वा चैनं महातेजा हारीतो मुनिसत्तमः॥१॥प्रणिपत्य गुरुश्रेष्ठं हृष्टान्तःकरणस्ततः॥ जगाम स्वर्णदीतीरं स्नानध्यानरतस्तथा ॥२॥ य एतत् पठति शास्त्रं महर्षेर्वचनाच्छ्रुतम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो नीरुजः सुखमश्नुते ॥ ३ ॥ आदौ यद् ब्रह्मणा प्रोक्तमत्रिणा तदनन्तरम्॥ धन्वन्तरिणा प्रोक्तश्च अश्विना च महात्मना ॥ ४ ॥ एवं वेदसमं ज्ञेयं नावज्ञाकारणं मतम् ॥ अन्यैश्च बहुधा प्रोक्तं नानाशास्त्रविशारदैः॥ ५ ॥ अमीषां च मतं ग्राह्यं तस्मात् सर्वे समं विदुः॥ चरकः सुश्रुतश्चैव वाग्भटश्च तथापरः ॥ ६॥ मुख्याश्च संहिता वाच्यास्तिस्र एव युगे युगे ॥ ७ ॥ अत्रिः कृतयुगे वैद्यो द्वापरे सुश्रुतो मतः॥ कलौ वाग्भटनामा च गरिमात्र प्रदृश्यते ॥ ८॥ वैष्णवी चाश्विनी गार्गी तत्र माध्याह्निकापरा ॥ मार्कण्डेया च कथिता योगराजेन धीमता ॥ ९॥ संहिता ऋषिभिः प्रोक्ता मन्त्रैर्नानाविधैर्विभो ॥ १० ॥ अग्निवेशश्च भेडश्च जातूकर्ण्यःपराशरः ॥ हारीतः क्षीरपाणिश्च षडेते ऋषयस्तु ते॥११॥ यथा सिंहो मृगेन्द्राणां यथाऽनन्तो भुजङ्गमे ॥ देवानाञ्च यथा

इति तृतीयस्थानं समाप्तम् ।

अथ चतुर्थस्थानम् ।

इति हारीतसंहिताविषयानुक्रमणिका समाप्ता ।



श्रीगणेशाय नमः ।

अथ हारीतसंहिता ।

भाषाटीकासमेता ।



प्रथमोऽध्यायः १.

मंगलाचरण ।

नत्वा शिवं परमतत्त्वकलाविरूढं ज्ञानामृतैकचटुलं परमात्मरूपम् ॥ रागादिरोगशमनं दमनं स्मरस्य शश्वत्क्षपाधिपधरं त्रिगुणात्मरूपम् * ॥ १ ॥

श्रीमद्देवीपदद्वंद्वं प्रत्यूहव्यूहनाशनम् ।
तन्नमामि नतिर्य्यस्य वितरत्युत्तमां मतिम् ॥ १ ॥
शिवसहायपुत्रेण रविदत्तेन धीमता ।
हारीतसंहिताभाषाटीका रम्या विरच्यते ॥ २ ॥

परमतत्त्व रूप कलाको उत्पन्न करनेवाले, ज्ञानरूपी अमृतसे सुन्दर परमात्मरूप राग आदि रोगोंको शांत, कामदेवको दग्ध, निरंतर चन्द्रमाको मस्तकमें धारण करनेवाले, त्रिगुणात्मस्वरूप महादेवजीको प्रणाम करके (यह हारीतसंहितानामक ग्रन्थ करता हूं) ॥ १ ॥ २ ॥

आत्रेयहारीतसंवाद ।

हिमवदुत्तरे कूले सिद्धगन्धर्वसेविते॥शान्ते मृगगणाकीर्णे नानापादपशोभिते॥२॥ तत्रस्थं तपसा युक्तं तरुणादित्यतेजसम् ॥ शुद्धस्फटिकवच्छुभ्रं भूतिभूषितविग्रहम् ॥ ३ ॥ जटाजूटाटवीमूले उषितं शुभ्रकुण्डलम्॥ आत्रेयं बहुशिष्यैस्तु राजितं तपसान्वितम् ॥४॥ पप्रच्छ शिष्यो हारीतः सर्वज्ञानमिदं महत्॥५॥

---

१ 'विरूढोऽङ्कुरिते जाते' इति मेदिनी। २ 'चटुलः सुन्दरेऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। * संहितां करोमीति शेषेणान्वयः ।

सिद्ध और गन्धर्वोंसे सेवित, बाधाओंसे रहित, मृगोंके समूहसे व्याप्त और अनेक प्रकारके वृक्षोंसे शोभित हिमालयपर्वतके उत्तर कूल पर बैठे ॥ २ ॥ तरुण सूर्यके समान तेजवाले, तपसे युक्त शुद्ध हुए बिल्लौरी पत्थरके समान श्वेत और भूतिसे भूषित शरीर ॥ ३॥ जटाजूटरूपी वनके मूलमें वसनेवाले श्वेतकुंडलोंको धारण किये और बहुतसे शिष्योंसे शोभित, तपस्वी आत्रेयजी महाराजसे ॥ ४ ॥ हारीत नामके शिष्यने इस सम्पूर्ण महाज्ञानको पूछा ॥ ५ ॥

हारीत उवाच ॥ भवन् गुणगणाधार आयुर्वेदविदां वर ॥ विनयादविनीतोऽहं पृच्छामि मुनिपुङ्गव ॥ ६॥ कथं रोगसमुत्पत्तिरुत्पन्नो ज्ञायते कथम् ॥ उपचारः प्रचारश्च कथं वा सिद्धिमिच्छति ॥ ७ ॥ एतत्सम्यक्परिज्ञानं कथयस्व महामुने ॥ एवं पृष्टो महाचार्य्यो हारीतेन महात्मना ॥ प्रत्युवाच ऋषिः पुत्रं प्रहस्योत्फुल्ललोचनः ॥ ८ ॥

हारीत बोले-हे पूज्य ! हे गुणोंके समूहके आधार ! हे आयुर्वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! हे मुनियोंमें उत्तम ! अशिक्षित मैं विनयसे पूछता हूं ॥ ६ ॥ कैसे रोगकी उत्पत्ति होती है ? उत्पन्न हुआ रोग कैसे जाना जाता है ? रोगकी चिकित्सा और पथ्य कैसे होता है ? और वही रोग कैसे सिद्धिको प्राप्त होता है ? ॥ ७ ॥ हे महामुने ! इस परिज्ञानको अच्छी तरह कहो । इस प्रकार महात्मा हारीतसे पूछे गये खिले हुए नेत्रवाले महा आचार्य आत्रेयजी हँसकर शिष्य हारीतसे बोले ॥ ८ ॥

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ चिकित्साशास्त्रकुशल वैद्यविद्याविचक्षण ॥ ९ ॥ आयुर्वेदमपारन्तु श्लोकानां लक्षसंख्यया ॥ कथं तस्य परिज्ञानं कालेनाल्पेन पुत्रक ॥ १० ॥

आत्रेयजी कहते हैं-हे पुत्र ! हे महाप्राज्ञ ! हे सर्वशास्त्रोंमें कुशल ! हे चिकित्साशास्त्रमें कुशल ! हे वैद्योंकी विद्याके जाननेवाले ! ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! श्लोकोंकी लक्ष संख्यासे युक्त आयुर्वेद अपार है । उसका परिज्ञान थोडे समयमें कैसे हो सकता है ? ॥ १० ॥

अल्पायुषोऽल्पवक्तारः स्वल्पशास्त्रविशारदाः ॥ अल्पावधारणे शक्ताः कलौ जाता इमे नराः ॥ ११ ॥ अल्पः कलियुगश्चायं नरोपद्रवकारणम् ॥ कथं पुत्र प्रवक्ष्यामि विस्तरेण तवागमम् ॥ १२ ॥

अल्प आयुवाले और अल्प बोलनेवाले और स्वल्प अर्थात् थोड़े शास्त्रको जाननेवाले और थोड़ा धारण करनेवाले अर्थात् अल्पबुद्धि ये मनुष्य कलियुगमें उत्पन्न होते हैं ॥ ११ ॥ यह कलियुग भी अल्परूप है परंतु मनुष्योंके उपद्रवोंका कारण है इसलिये हे पुत्र ! विस्तारसे तुमसे वैद्यक शास्त्र कैसे कहूँ ॥ १२ ॥

यस्य श्रवणकालो यो याति चान्तश्च पुत्रक! ॥ तस्माच्चाल्पतरेणाऽपि वक्ष्यामि शृणु साम्प्रतम् ॥ १३ ॥ चतुर्विंशसहस्रैस्तु मयोक्ता चाद्यसंहिता ॥ तथा द्वादशसाहस्री द्वितीया संहिता मता ॥ १४ ॥ तृतीया षट्सहस्रैस्तु चतुर्थी त्रिभिरेव च ॥१५॥ पञ्चमी द्विकपञ्चशतैः प्रोक्ताः पञ्चात्र संहिताः ॥ तस्माच्चाल्पतरेणापि वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ॥ १६ ॥

जिस वैद्यकके सुननेका जो समय है वह तत्काल ही समाप्त हो जाता है अर्थात् दिन जाते देर नहीं लगता इसलिये इस समय में तुमसे संक्षेप ही में कहूँगा, सुनो ॥ १३ ॥ मैंने चौवीस हजार श्लोकोंसे युक्त प्रथम संहिता कही है और तैसे ही बारह हजार श्लोकोंसे संयुक्त दूसरी संहिता कही है ॥ १४ ॥ और तैसे ही छः हजार श्लोकोंसे युक्त तीसरी संहिता कही है और तीन हजार श्लोकोंसे संयुक्त चौथी संहिता कही है ॥ १५ ॥ और डेढ़ हजार अर्थात् पंद्रहसौ श्लोकोंसे संयुक्त पाँचवीं संहिता कही है। ऐसे पांच संहिता मैंने कही हैं इसलिये हे पुत्र ! में संक्षेपसे कहूँगा तुम सुनो ? ॥ १६ ॥

येन विज्ञानमात्रेण गदवेदविदो भवेत् ॥ किमत्र बहुनोक्तेन चाल्पसारे विशारद ॥ १७ ॥ येन धर्मार्थसौख्यं च तद्धि कर्म समाचरेत् ॥ येन संजायते श्रेयो येन कीर्तिर्महत्सुखम् ॥१८॥ तत्कर्म नितरां साध्यं जनानन्दविधायकम् ॥ १९ ॥

जिसके जानने मात्रसे आयुर्वेदको जाननेवाला मनुष्य हो जाता है. हे विशारद ! अल्प, आयु, बुद्धि और बलवाले इस कलिमें अधिक कहनेसे लाभ ही क्या ? ॥१७॥ जिस कर्मसे धर्म, अर्थ और सुख प्राप्त हो, जिससे कल्याण हो और जिससे कीर्ति तथा महा आनन्द प्राप्त हो वही कर्म करे ॥ १८ ॥ वह कर्म अवश्य करे जो मनुष्योंको आनन्द देनेवाला है ॥ १९ ॥

---

१ इस संहितामें १०३ अध्याय और ३९१७ श्लोक हैं। मेरी समझमें यह३ हजार श्लोकवाली संहिता है। १५ वें इसी श्लोकके अनुकूल इस संहितामें सैकड़ों श्लोक एक या दो चरणके ही श्लोक पूर्ण माने गये हैं। वही सब मिलकर ९१७ हो गये हैं। इनमें भी बहुत कुछ सुधारने योग्य सुधारे गये हैं।

एकं शास्त्रं वैद्यमध्यात्मकं वा सौख्यं चैकं यत्सुखं व तपो वा ॥ वन्द्यश्चैको भूपतिर्वा यतिर्वा एकं कर्म श्रेयसं वा यशो वा ॥२०॥ बहुतरमुपचारात् सारसाधारलोके जननमतिसुखानां वर्द्धनं श्रेयसां वा ॥ विगतकलुषभावा चोज्वला कीर्तिमूर्तिर्न खलु कुटिलतास्याः श्रूयते लोकवृन्दैः ॥ २१ ॥

एक ही शास्त्र ठीक है, वैद्यक अथवा वेदांत और सुख भी एक ही ठीक है, भोग अथवा तप, वंदनाके योग्य भी एक ही ठीक है, राजा अथवा संन्यासी, कर्म भी एक ही ठीक है, कल्याण अथवा यश ॥ २० ॥ इस संसारमें चिकित्सा करनेसे अपने और दूसरोंके सुखोंको देनेवाला, कल्याणके बढ़ानेवाला बहुत सा लाभ होता है। कलुषतासे हीन, उज्ज्वल कीर्ति प्राप्त होती है। इसकी कुटिलता मनुष्योंके द्वारा कहीं नहीं सुनी जाती॥ २१ ॥

आयुर्वेदमिदं सम्यङ् न देयं यस्य कस्यचित् ॥ २२ ॥ नाभक्तायाप्यशान्ताय न मूर्खाय न चाधमे ॥ शान्ते देयं न देयं स्यात् सर्वथा नाधमेऽधने ॥ २३ ॥

अच्छी तरहसे यह आयुर्वेद हर एक मनुष्यको नहीं देना चाहिये ॥२२॥ अभक्त, शान्त, मूर्ख और नीचको कभी न दे। शान्त पुरुषको दे। नीचप्रकृति और कंगालको न देना चाहिये॥२३॥

धर्मिष्ठः कुहनाविवर्जितमनाः शान्तः शुचिः शुद्धधीर्धीरोऽभीरुर्विवेकसारहृदयो विद्याविलासोज्ज्वलः॥प्राज्ञो रोगगणप्रचारनिपुणोऽलुब्धः सदा तोषधृगित्थं सर्वगुणाकरो नृपजनैः पूज्यः सदा रोगवित् ॥ २४ ॥

धर्ममें स्थित, कपटसे वर्जित मन, शांत, पवित्र, शुद्ध बुद्धि, धीर, निर्भय, विवेकके सारसे संयुक्त हृदय, विद्याके आनंदसे प्रकाशित, पंडित, रोगोंके समूहके प्रचारमें, निपुण, निर्लोभी, सब कालमें संतोषको धारनेवाला और सब गुणोंका खजाना वैद्य राजालोगोंका पूज्य होता है ॥२४॥

दृष्ट्वा यथा मृगपतिं गजयूथनाथः संशुष्कमानमदबिन्दुकपोलधारस्त्यक्त्वा वनं व्रजति चाकुलमानसेन दृष्ट्वा तथा गदगजो

---

१ 'नष्टाग्निः कुहना लोभान्मिथ्येर्यापथकल्पना' इत्यमरः। लोभात् परधनाद्यभिलाषात् या मिथ्येर्यापथकल्पना दंभेन ध्यानमौनादिसंपादनं सा कुहनेत्यमरविवेके महेश्वरः।

भिषजं प्रयाति ॥२५॥ यद्वत्तमोवृतमिदं भुवनं मयूखैः प्राकाश्यमाशु कुरुते सकलं रविस्तु ॥ तद्वत्सुवैद्य उपलभ्य रुजोऽतिनाशं शीघ्रं करोति गदिनं गदमुक्तभारम् ॥ २६ ॥

जैसे सिंहको देखके हस्तियोंके समूहके स्वामीकी मदबिंदुओंकी धारा गंडस्थलमें ही सूख जाती है और वह हाथी उस वनको त्याग व्याकुल मन करके भागता है तैसे वैद्यको देख कर रोगरूपी गजराज गमन करता है ॥ २५॥ जैसे अन्धकारसे आच्छादित इस समस्त संसारको सूर्य अपनी किरणोंसे प्रकाशित कर देता है तैसे ही सुवैद्य रोगको नाशकर रोगीको रोगके भारसे छुड़ा देता है ॥ २६ ॥

लुब्धः क्रूर[1]ः शठजठरको मद्यपश्चालसश्चाधीरो भीरुर्विकलहृदयो हीनकर्मार्थमन्दः॥ शास्त्रज्ञाताऽप्यविदितगदज्ञानपाखण्डखण्डो वर्ज्यो वैद्यः प्रबलमतिभिर्भूमिपैर्वा सुदूरात् ॥ २७ ॥

लोभी, हिंसक, शठ, कठोर, मदिरा पीनेवाला, आलसी, अधीर, डरनेवाला, विकल हृदय, हीनकर्मवाला, कंगाल, वैद्यक न जाननेवाला, पाखंडी ऐसा वैद्य यदि अन्यशास्त्रोंके जाननेवाला भी हो तो भी उसको अच्छी बुद्धिवाले राजाओंको दूर रखना चाहिये ॥ २७ ॥

वैद्यशास्त्रपठनविधि।

अद्भुतं चाप्यशङ्कश्च नात्युच्चं नीचमेव च ॥ यः पठेच्छास्त्रमित्थञ्च शास्त्राप्तिस्तस्य दृश्यते ॥ २८ ॥ चर्वणं गिलनं चापि कम्पितं श्वसितं तथा॥नीचोच्चं चैव गम्भीरं वर्जयेत्पाठकेनतु२९

जो विचार विचार कर वे खौफ न अति उच्चस्वरमें न अति नीचस्वरमें पढ़ता है, उसे शास्त्रकी प्राप्ति होती है ॥ २८ ॥ चाबना, निगलना, काँपना, अतिश्वास लेना, नीचापना, ऊँचापना और गंभीरपना विद्यार्थीको छोड़ देना चाहिये ॥ २९ ॥

अनध्याये न शास्त्रस्य नोत्सवे यज्ञकर्मसु ॥ जातके सूतके चाथ पठनं न विधीयते ॥३०॥चतुर्दश्यष्टमीदर्शप्रतिपत्पूर्णिमास्तथा॥ वर्ज्याः पञ्च इमाः पाठे मुनिभिः परिकीर्तिताः ॥ ३१ ॥ अकाले दुर्दिने गर्जे दिग्दाहे भूमिकम्पने॥ शास्त्रपाठस्तथा वर्ज्यो ग्रहणे

---

१ 'नृशंसो घातुकः क्रूरः' इत्यमरः ।

चन्द्रसूर्य्ययोः॥३२॥अनध्याया द्वादशैते प्रोक्ताः शृणु तु पुत्रक। गुरुपीडासमुत्पन्ने नृपे संपीडितेऽथवा ॥ ३३ ॥ आहवे जीवसम्पाते प्रदोषे वाऽथवा पुनः ॥ राष्ट्रपीडासमुत्पन्ने न कुर्याच्छास्त्रपाठनम् ॥३४॥ एतैस्तु पठितं शास्त्रं न स्वार्थे सिद्धिसाधकम् ॥ न श्रेयसे न माङ्गल्ये नोपकारे सुखावहम् ॥ ३५ ॥

अनध्याय, उत्सव, यज्ञकर्म, जन्मका सूतक और मृतसूतकमें शास्त्रको नहीं पढ़ना चाहिये ॥ ३० ॥ चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, प्रतिपदा, पूर्णिमा ये पाचों तिथियां मुनिजनोंने पढ़नेसें वर्जी हैं ॥३१॥ अकाल, दुर्दिन, गर्ज्जना, दिग्दाह, भूमिकंप अर्थात् भूचाल, चंद्रमाका ग्रहण और सूर्यके ग्रहणमें शास्त्रका पढ़ना वर्ज्जित है ॥ ३२ ॥ हे पुत्र ! बारह अनध्याय कहे हैं, तुम सुनो । गुरुके पीडा उत्पन्न होनेपर, राजाके पीडित होनेपर ॥३३॥ युद्ध, जीवोंके मरनेपर, प्रदोष, देशके दुःखित होनेपर ॥ ३४ ॥ इन अनध्यायोंमें पठित किया शास्त्र अपने प्रयोजनमें सिद्धिको नहीं देता और कल्याणको नहीं करता और मंगलको नहीं देता और उपकारमें सुखको नहीं देता ॥ ३५ ॥

एवं ज्ञात्वा पठति निपुणो वैद्यविद्यानिधानं श्रेयस्तस्य प्रतिदिनमसौ वाञ्छितार्थं प्रपद्येत् ॥ कीर्तिः सौख्यं भवति नितरां तस्य लोकप्रशंसा पूज्यो राज्ञां सततमपि वै जायते स्वार्थसिद्धिः॥३६॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे वैद्यगुणदोषशास्त्रपठनविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ऐसे जानके जो कुशल वैद्य शास्त्रका पठन करता है उसको कल्याण मिलता है और नित्यप्रति मनोवांछित प्रयोजन प्राप्त होता है और उस वैद्यको नित्यप्रति सुख होता है, संसारमें कीर्ति और प्रशंसा प्राप्त होती है और अपने प्रयोजनकी सिद्धि होती है और ऐसे पठन करनेवाला पंडित राजा लोगों करके निरंतर पूजनेके योग्य है ॥ ३६ ॥ इति बेरीनिवासि-बुधशिवसहायतनयवैद्यरविदत्तशास्त्रि-अनुवादित-हारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने वैद्यगुणदोषशास्त्रपठनविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

चिकित्सासंग्रह।

आत्रेय उवाच ॥ अथातः संग्रवक्ष्यामि शास्त्रस्यास्य समुच्चयम् ॥
आयुर्वेदसमुत्पत्तिं सर्वशास्त्रार्थसंग्रहम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-इस पहले अध्यायको कहकर अब दूसरे अध्यायमें इस शास्त्रके समुच्चय आयुर्वेदकी समुत्पत्ति और सब शास्त्रोंके अर्थके संग्रहको कहूंगा ॥ १ ॥

अष्टौ चात्र चिकित्साश्च तिष्ठन्ति भिषजां वर ॥
ता वक्ष्यामि समासेन चिकित्साश्च पृथक्पृथक् ॥ २ ॥

हे वैद्योंमें श्रेष्ट ! इस ग्रन्थमें आठ प्रकारकी चिकित्सायें स्थित हैं, सम्पूर्णतासे उन्हें और भांति भांतिकी चिकित्सायें कहूँगा ॥ २ ॥

संग्रहस्य प्रवक्ष्यामि प्रथमं चान्नपानकम् ॥ अरिष्टं च द्वितीयं स्यात्तृतीयं च चिकित्सितम् ॥३॥ कल्पं चतुर्थकं प्रोक्तं सूत्रस्थानन्तु पञ्चमम् ॥ षष्ठं चात्र शरीरं स्यादित्यायुर्वेदकारकाः ॥४॥ शल्यशालाक्यकायाश्च तथा बालचिकित्सितम् ॥ अगदं विषतन्त्रञ्च भूतविद्या रसायनम् ॥ वाजीकरणमेवेति चिकित्सा चाष्टधा स्मृता ॥५॥ वैद्यागमेषु सर्वेषु प्रोक्तं श्रेष्ठमिदं महत् ॥ तथा चाष्टौ चिकित्सायां वदन्ति वेदविज्जनाः ॥ ६ ॥

संग्रहके अन्नपाननामक प्रथमस्थान, अरिष्ट नामवाले दूसरे स्थान और चिकित्सित नामवाले तीसरे स्थानको कहूंगा ॥ ३॥ कल्प नामवाला चौथा स्थान है, सूत्रस्थान पाँचवाँ है, शारीरस्थान छठा है ऐसा आयुर्वेदको करनेवाले कहते हैं ॥ ४ ॥ शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, बालचिकित्सित, अगद, विषतंत्र, भूतविद्या, रसायन,वाजीकरण इसतरह चिकित्सा आठ प्रकारसे कही है॥५॥ वैद्योंके सब ग्रन्थोंमें यह उत्तम और बड़ा ग्रन्थ माना है तथा आयुर्वेदज्ञोंने चिकित्सामें यह आठ प्रकारकी चिकित्सा श्रेष्ठ कही है ॥ ६ ॥

यन्त्रशस्त्राग्निक्षाराणामौषधं पथ्यमेव च ॥
स्वेदनं मर्दनं चैव कथितान्युपकारिणाम् ॥ ७ ॥

यंत्रकर्म, शस्त्रकर्म, अग्निकर्म, क्षारकर्म, औषध, पथ्य, स्वेदन और मर्दन यह आठ श्रेष्ठ चिकित्सायें उपकार करनेवाली चिकित्साओंमें श्रेष्ठ कही गयी है ॥ ७ ॥

एतैर्वैद्यकशास्त्रस्य सारो भवति सर्वतः ॥ ८ ॥

इन्हीं आठोंसे वैद्यक शास्त्रका सब ओरसे काम निकल आता है ॥ ८ ॥

अथ शल्यतन्त्र ।

यन्त्रशस्त्रार्थबन्धैस्तु येन चोद्ध्रियते भिषक् ॥ तच्च शल्योद्धरणकं प्रोच्यते वैद्यकागमे ॥ नाराचवालवल्लीभिर्भल्लैः कुन्तैश्च तोमरैः ॥ ९ ॥ शिलाग्निभिन्नगात्रस्य तत्र साय्यादिशल्यकम् ॥ १० ॥ तत्प्रतीकारकरणं तच्च शल्यचिकित्सितम् ॥ तथा बाणसमुद्दिष्टतृणपांशुकृमीकचम् ॥ रक्तवस्तु तथा पेशी पूयं शेषान्तरेऽपि यत् ॥ ११ ॥ तच्छल्यमिति जानीयाल्लोष्ठकाष्ठविभिन्नकम् ॥ १२ ॥

वैद्य यंत्र, शस्त्रार्थबन्धनोंसे तथा जिस शल्यसे रोगको दूर करता है, वैद्यक शास्त्रमें उसे शल्योद्धरण कहा जाता है। बाण, केश, वल्ली, भल्ली, कुन्त और तोमरोंसे शिला और अग्निसे भिन्न गात्रवाले पुरुषके शरीरमें प्राप्त शल्यके निकालनेका उपाय करना शल्यचिकित्सा कहलाता है ॥ ९ ॥ १० ॥ और बाण अर्थात् तीरका उद्देश लेके कहा हुआ तृण, फांस, कीड़ा, बाल, आदि लाल चीज, मांसकी पेशी, राद और शेष अन्तरमें जो कुछ हो और लोहा, लकड़ी आदि जो है इन सबोंको शल्य जानना वह शल्यतंत्र है ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ शालाक्य ।

शिरोरोगा नेत्ररोगा कर्णरोगा विशेषतः ॥ भ्रूकण्ठशंखमन्यासु ये रोगाः सम्भवन्ति हि ॥ १३ ॥ तेषां प्रतीकारकर्म नासावर्त्म्यञ्जनानि च ॥ अभ्यङ्गं मुखगण्डूषक्रियाशालाक्यनामिका ॥ १४ ॥ इति शालाक्यं नाम ॥

अथ शालाक्य तंत्रका लक्षण-शिरके रोग, नेत्रोंके रोग, कानके रोग और विशेष करके भ्रुकुटी, कनपटी और कंधामें उत्पन्न जो रोग ॥ १३ ॥ उनके दूर करनेके लिये जो नस्यकर्म, अंजन, अभ्यंग अर्थात् मालिस, गंडूष अर्थात् कुल्ले करना आदि क्रिया ये सब शालाक्य कहलाते हैं ॥ १४ ॥

अथ कायचिकित्सा ।

कषायचूर्णगुटिकाः पञ्चानां शोधनानि च ॥
कोष्ठामयानां शमनी क्रिया कायचिकित्सितम् ॥ १५ ॥

१—(श्लो० १३) मन्याग्रीवायाः पश्चाद्देशस्थाशिरा (मु०ध०)

अथ कायचिकित्साका लक्षण–काढ़ा, चूरन और गोली स्वेदन, स्नेहन, वमन, विरेचन और वस्तिकर्म ये सब और कोष्ठके रोगोंको शांत करनेवाली क्रिया कायचिकित्सित कहाती है ॥ १५ ॥

अथ अगदोंके नाम।

गुदामयं वस्तिरुजं शमनं वस्तिरूहकम् ॥
आस्थापनानुवासन्तु अगदं नाम एव च ॥ १६ ॥

अथ अगदतन्त्रलक्षण–गुदाके रोग और मूत्राशयके रोगको शांत करना, निरूहवस्ति, आस्थापन वस्ति, अनुवासन वस्ति ये सब अगदतन्त्रनामसे विख्यात हैं ॥ १६ ॥

अथ बालचिकित्सा।

गर्भोपक्रमविज्ञानं सूतिकोपक्रमस्तथा[1] ॥
बालानां रोगशमनी क्रिया बालचिकित्सितम् ॥ १७ ॥

अथ बालचिकित्सितका लक्षण–गर्भके भलीभांति आरम्भका सूतिकाकी चिकित्साका विज्ञान और बालकोंके रोगको शमन करनेवाली क्रिया बालचिकित्सा कहलाती है॥ १७॥

अथ विषतन्त्रके नाम।

सर्पवृश्चिकलूतानां विषोपशमनी तु या ॥
सा क्रिया विषतन्त्रञ्च नाम प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ १८ ॥

अथ विषतन्त्रका लक्षण–सांप, बीछू और मकड़ीके विषको शांत करनेवाली क्रिया बुद्धिमानोंसे विषतन्त्र नामकी कही जाती है ॥ १८ ॥

अथ भूतविद्याकानाम।

ग्रहभूतपिशाचाश्च शाकिनीडाकिनीग्रहाः[2] ॥
एतेषां निग्रहः सम्यग्भूतविद्या निगद्यते ॥ १९ ॥

अथ भूतविद्याका लक्षण–ग्रह, भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी, ग्रह इनको अच्छी तरह निग्रह करना भूतविद्या कहाती है ॥ १९ ॥

अथ वाजीकरण।

क्षीणानां चाल्पवीर्य्याणां बृंहणं बलवर्द्धनम् ॥
तर्पणं समधातूनां वाजीकरणमुच्यते ॥ २० ॥

---

१ 'ज्ञात्वारम्भ उपक्रमः, प्रक्रमः स्यादुपक्रमः, उपायपूर्व आरम्भ उपधा चाप्युपक्रमः' इत्यमरः।
२ ग्रहशब्दस्य पुनरुक्त्या बालग्रहाणां सूर्यादीनां च ग्रहणम्।

अथ वाजीकरणका लक्षण-क्षीण हुए और अल्प वीर्यवाले मनुष्योंको पुष्ट करना और वलको वढ़ाना और समान धातुवालोंको तृप्त करना यह वाजीकरण कहाता है ॥ २० ॥

अथ रसायन तन्त्र।

देहस्येन्द्रियदन्तानां दृढीकरणमेव च ॥ वलीपलितखालित्यवर्जनेऽपि च या क्रिया ॥ २१ ॥ पूर्ववैद्यप्रणीतं हि तद्रसायनमुच्यते ॥ २२ ॥

अथ रसायनका लक्षण-शरीर, इंद्रिय और दतोंको दृढ करना और शरीरकी वली, वालोंकी सफेदी और चँदुआपनको हटानेवाली जो क्रिया ॥ २१ ॥ और पूर्ववैद्य धन्वन्तरि आदिका बनाया वह रसायनके नामसे कहा जाता है ॥ २२ ॥

अथ उपांगचिकित्सा।

छिन्नं भिन्नं तथा भग्नं क्षत पिच्चितमेव च ॥
तेषां दग्धप्रतीकारः प्रोक्तश्चोपाङ्गसंज्ञकः ॥ २३ ॥

अथ उपांगचिकित्साका लक्षण-छिन्न अर्थात् छेदित हुआ, भिन्न अर्थात् विदारित हुआ, भग्न अर्थात् टूटा हुआ, क्षत अर्थात् घाव आदि, पिच्चित अर्थात् पिचलित हुआ, दग्ध अर्थात् जला हुआ इनकी चिकित्साको उपांगसंज्ञक कहते हैं ॥ २३ ॥

इति वैद्यकसर्वस्वं चिकित्सागमभूषणम् ॥
पठित्वा तु सुधीः सम्यक्प्राप्स्यते सिद्धिसङ्गमम् ॥ २४ ॥
इति वैद्यकसर्वस्वे चिकित्सासंग्रहो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

ऐसे चिकित्सारूपी शास्त्रसे भूषित हुआ वैद्यकसर्वस्व वैद्य अच्छी तरह पढ़के सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रि-अनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने चिकित्सासंग्रहो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

वैद्यशिक्षाविधान।

अथ वक्ष्यामि रोगाणामुपचारक्रमं तथा ॥
जानाति यो बुधः सम्यक् पूज्यते नृपसत्तमैः ॥ १ ॥

अथ रोगोंके चिकित्साक्रमके लक्षण-इसके अनंतर रोगोंकी चिकित्साके क्रमको कहूंगा जो पंडित इसको अच्छी तरह जानता है वह राजालोगोंसे पूजित होता है ॥ १ ॥

उपचारकरनेकी योग्यता।

ज्ञात्वा रोगसमुत्पत्तिं रोगाणामप्युपक्रमम् ॥
ज्ञात्वा प्रतिक्रियां वैद्यः प्रतिकुर्य्याद्यथोचिताम् ॥ २ ॥

कुशल वैद्य रोगकी उत्पत्ति, रोगोंके पथ्य आदि और चिकित्साको जानके पश्चात् यथोचित प्रतिकार करे ॥ २ ॥

देश-काल आदिका ज्ञान।

देशं कालं वयो वह्निं सात्म्यप्रकृतिभेषजम् ॥
देहं सत्त्वं बलं व्याधेर्ज्ञात्वा कर्म समाचरेत् ॥ ३ ॥

देश,समय,अवस्था, जठराग्नि, सानुकूलता, प्रकृति, औषध,देह, सत्त्व,और रोगका बल देखके पीछे चिकित्साका आरंभ करे ॥ ३ ॥

उपचारकरनेका फल।

धर्मार्थकामलाभः स्यात् सम्यगातुरसेवनात् ॥
यदा नाचरतस्तस्य विनाशश्चात्मनस्तदा ॥ ४ ॥

रोगीकी अच्छी तरह चिकित्सा करनेसे धर्म, अर्थ, और कामकी प्राप्ति होती है। जो वैद्य रोगीकी चिकित्सा नहीं करता उस वैद्यके शरीरका नाश हो जाता है ॥ ४ ॥

वैद्यका वैद्यत्व।

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ॥
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ ५ ॥

रोगके तत्त्वको जानना,पीड़ाका नाश करना,वैद्यका यही वैद्यपना है और आयुका मालिक वैद्य नहीं हैं ॥ ५ ॥

दो प्रकारका उपचार-उपक्रम।

द्विविधोपक्रमश्चैव शमनः कोपनो रुजाम् ॥
तथैव ज्ञात्वा विबुधः क्रियां कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ ६ ॥

चिकित्सा २ प्रकारकी है,एक शमन दूसरी कोपन। सो रोगको जानके कुशल वैद्य क्रियाको करे ॥ ६ ॥

दो प्रकारके वैद्य।

वैद्योऽपि द्विविधो ज्ञेयो विकारेङ्गितरोगयोः ॥ उपचारापचारज्ञो द्विविधः प्रोच्यते भिषक् ॥ ७ ॥ उपचारेण शमनमपचारेण कोपनम् ॥ एवं विज्ञाय सद्वैद्यः कुर्य्यात् संशमनक्रियाम् ॥८॥

वैद्य भी २ प्रकारका है, रोगके उपचार अर्थात् चिकित्साको जाननेवाला और रोगके अपचार अर्थात् दुष्परिणामको जाननेवाला ऐसे दो प्रकारका वैद्य कहा है॥७॥ उपचारसे रोगकी शांति होती है, अपचारसे रोगका कोप होता है, कुशलवैद्य ऐसा समझकर संशमन अर्थात् रोगको शांत करनेवाली क्रिया करें ॥ ८ ॥

व्याधिके साध्य और असाध्यका विचार।

साध्योऽसाध्यश्च याप्यश्च कृच्छ्रसाध्यस्तथैव च ॥ व्याधिश्चतुर्विधः प्रोक्तः सद्वैद्यैः शास्त्रकोविदैः ॥ ९॥ उपचारेण साध्या ये रोगा गच्छन्ति याप्यताम्॥याप्यास्त्वसाध्यतां यान्ति साध्यः कष्टेन पुत्रक ॥१०॥ सम्भवन्ति महरोगाः कष्टसाध्या म्रियन्ति[1] वै ॥एवं चतुर्विधो व्याधिर्ज्ञात्वा कर्म समाचरेत् ॥११॥

साध्य,असाध्य, याप्य, कष्टसाध्य इन भेदोंसे रोग भी ४ प्रकारके कुशल वैद्योंने कहे हैं॥९॥ हे पुत्र ! चिकित्साके नहीं करनेसे साध्यरोग याप्यपनेको प्राप्त होते हैं और याप्य रोग असाध्यपनेको प्राप्त होते हैं साध्य कष्ट करके ॥ १० ॥ महारोग होते हैं और कष्टसाध्य रोगवाले मर जाते हैं इस तरह व्याधि चार प्रकारकी जानकर कर्मका आचरण करें ॥ ११ ॥

उपचारका फल ।

उपचारकृता दोषाः कृच्छ्रास्त यान्ति याप्यताम् ॥ याप्याः साध्यत्वमायान्ति कष्टसाध्यं भवेद्ध्रुवम् ॥ १२ ॥ सुखसाध्यः सुखी शीघ्रं स्यात् सुधीभिरुपक्रमैः ॥ साध्यासाध्यपरिज्ञाने ज्ञात्वोपक्रमणं तथा ॥ १३ ॥

चिकित्साके करनेसे कष्टसाध्य रोग याप्यपनेको प्राप्त होते हैं और याप्य रोग साध्यपनेको प्राप्त होते हैं ऐसे कष्टसाध्यकी व्यवस्था है॥ १२ ॥ सुवैद्योंकी चिकित्सासे सुखसाध्य रोगी शीघ्र सुखी होजाता है । इसलिये साध्य और असाध्यके परिज्ञानको जानकर पीछे चिकित्सा करें१३॥

दोषके शेष रहजानेसे हानि ।

साध्य गतो यदा रोगो दोषशेषं न धारयेत् ॥ दोषशेषेऽपि कष्टं स्यात्तस्माद्यत्नान्निकृन्तयेत्॥१४॥यथा हि कालो दुष्टः स्यात् सूक्ष्मोऽग्निश्च यथा कणः॥स्वल्पस्तद्वत् क्रियाप्राप्तो गदो घोर-

---

१ म्रियन्ति इत्यार्षः ।

तरो भवेत्॥१५॥तथा दोषस्य शेषे तु शमनं याति चाल्पशः॥
दैवाद्यदुष्टतां याति यथाग्निः कुपितो भृशम् ॥ १६ ॥

जब साध्य रोग हो तब वात आदि दोषके शेषको नहीं धारण करना क्योंकि दोषके बाकी रहनेमें कष्ट हो जाता है इसलिये दोषका नाश कर दे ॥ १४॥ जैसे काल दुष्ट होता है जैसे अग्निका सूक्ष्म किनका बढ़ जाता है तैसे क्रियाको नहीं प्राप्त हुआ स्वल्प भी रोग अतिघोर हो जाता है ॥ १५ ॥ दोषके शेषमें अतिअल्परोग शांत हो जाता है परंतु दैवयोगसे यदि फिर दूषित होजाता है तो दवे अग्नि ही के समान कुपित होता है ॥ १६ ॥

अपथ्यसे हानि ।

यथा काष्ठचय दूरात् प्राप्य घोरतरोऽग्निकः ॥ तथा पथ्यस्य संयोगाद्भवेद्धोरतरो गदः ॥ १७ ॥ कषायैश्च फलैश्चूर्णैः पिण्डलेहानुवासनैः ॥ सर्वाः क्रिया भृशं व्यर्था न शमं याति चामयः ॥ १८ ॥

जैसे काष्ठके समूहमें दूरसे प्राप्त हुआ अग्नि भयंकर होजाता है तैसे अपथ्यके संयोगसे रोग भी अतिघोर हो जाता है ॥ १७ ॥ काढा, फल, चूरन, गोली, चटनी, अनुवासन बस्तिकर्म इनकी सब क्रियायें व्यर्थ होजाती और रोग शांत नहीं होता है ॥ १८ ॥

एवं ज्ञात्वा सदा वैद्यै रोगशान्तिककारणम् ॥
कर्त्तव्यमतियोगेन येन रोगः प्रशाम्यति ॥ १९ ॥

ऐसा जानकर सब कालमें वैद्योंको रोगशांति करनेवाली क्रिया अतियोगसे अर्थात् पूर्वोक्त क्रिया विशेष करके करनी चाहिये जिससे रोग शांत हो जावे १९ ॥

लंघनकी योग्यता ।

ज्ञात्वा दोषबलं धीमल्लँघनानि समाचरेत् ॥
दोषे सति न दोषाय लंघनानि बहून्यपि ॥ २० ॥

वैद्य दोषके बलको समझकर लंघन कराये। क्योंकि दोष रहनेपर बहुत भी लंघन कोई उपद्रव नहीं करते ॥ २० ॥

जठराग्निका कर्म ।

पचेत्प्रथममाहारं दोषानाहारसंक्षये ॥
दोषक्षयेऽनलो धातून्प्राणान्धातुक्षये सति ॥ २१ ॥

जठराग्नि प्रथम भोजनको पकाता है और भोजनके नाश होनेमें वात आदि दोषोंको पकाता है और दोषोंके क्षय होनेमें धातुओंको पकाता है और धातुओंके क्षय होनेमें प्राणोंको पकाता है अर्थात् नाश करता है ॥ २१ ॥

सामनिराम-व्याधिकाउपक्रम ।

ज्ञात्वा बलाबलं व्याधेः सामं निराममेव च ॥
तदा सामे पाचनं स्यान्निरामे पथ्यसंक्रमः ॥ २२ ॥

रोगके बल और अबल, साम तथा निरामरूप रोगको जानकर पीछे साम अर्थात् आमसे संयुक्त हुए रोगमें लंघन करावे और निराम अर्थात् आमसे रहित हुए रोगमें पथ्य दिलावे ॥ २२ ॥

वैद्यकी योग्यता ।

सामं निराममथ संसुखसाध्यमेवं सम्यग्रुजश्च परिलक्ष्य रुजो विनाशम् ॥ एतद्भवेत्सकलवैद्यकशास्त्रसारो नैवायुषश्च बलदानकरो हि वैद्यः ॥ २३ ॥

दोषयुक्त, निर्दोष, इसके अनन्तर सुखसाध्य इस तरह रोग और रोगकी नाशिनी चिकित्साको देखकर कर्म करे, यही समस्त वैद्यकशास्त्रका तत्त्व है । आयुके बलको देनेवाला वैद्य नहीं ॥ २३ ॥

नो वैद्यो मनुजस्य सौख्यमथवा दुःखञ्च दातुं क्षमो जन्तोः कर्मविपाक एव भुवने सौख्याय दुःखाय च ॥ तस्मान्मानवदुःखकारणरुजां नाशस्य चात्र क्षमो वैद्यो बुद्धिनिधानधाम चतुरो नाम्नैव वैद्योऽपरः ॥ २४ ॥ सम्यग्रुजां परिज्ञानं ज्ञात्वा दोषविनिग्रहम् ॥ प्रत्याख्येयं च यः साध्यं जानाति स भवेद्भिषक् ॥ २५ ॥

मनुष्यको सुख अथवा दुःख देनेको वैद्य समर्थ नहीं है किंतु संसारमें सुख और दुःखको देनेवाला जीवोंके कर्मोंका विपाक है इस कारण मनुष्यको दुःख करनेवाले रोगोंके नाशनेके लिये वैद्य समर्थ है और वैद्य बुद्धिभांडारका घर है, चतुर है और इससे विपरीत जो दूसरा वैद्य हो वह नामसे ही वैद्य है ॥ २४ ॥ जो रोगोंको अच्छी तरह जानकर और दोषोंके निग्रहको समझ कर साध्य और असाध्य रोगीको जानता है उसे वैद्य कहते हैं ॥ २५ ॥

पुण्यार्थउपचार करनेयोग्य मनुष्य ।

तपस्वी च ब्राह्मणश्च स्त्रियो वा बालकस्तथा ॥ दीनो वा दुर्बलो वापि प्राज्ञो वा पण्डितस्तथा ॥ २६ ॥ महात्मा श्रोत्रियः साधु-

स्नाथो वन्धुवर्जितः ॥ एतान्व्याधिविनिग्रस्तान्प्रतिकुर्य्याद्वि-
शेषतः ॥ २७ ॥

तपस्वी, ब्राह्मण, स्त्री, बालक, दीन, दुर्बल, बुद्धिमान्, पंडित ॥ २६ ॥ महात्मा, वेदपाठी, साधु, अनाथ और बंधुओंसे रहित इतने रोगियोंकी दवा विशेष करके करे ॥ २७ ॥

उपचारसे धन लेने योग्य मनुष्य ।

राजा च सुधनी चैव मण्डलीको बलाधिपः ॥
उपचार्य्योऽर्थसिद्धिः स्याद्वित्तं ग्राह्यं भयं न च ॥ २८ ॥

राजा, धनवाला, साहूकार, छोटा राजा, ठाकुर, सेनाका स्वामी इन्होंकी चिकित्सा करे, जब ये अच्छे होजावें तब उनसे निर्भय होकर धन लेना चाहिये ॥ २८ ॥

यश मिलने योग्य मनुष्य ।

मध्यमा वणिजां पत्तिः पुरोधा ब्राह्मणादयः ॥ भट्टो वा गणका-
ग्रण्यश्चिकित्स्यास्तु विशेषतः ॥ रोगग्रस्तेषु चैतेषु चिकित्सा
कीर्तिकारिणी ॥ २९ ॥

इनसे नीचे बनियोंका व्यापार करनेवाले, पुरोहित, ब्राह्मणादिक, वेदज्ञ वा भाट, ज्योतिषी इनकी चिकित्सा ध्यानसे करें क्योंकि इन रोगियोंकी दवा करनेसे कीर्ति प्राप्त होती है॥२९॥

चिकित्सा करनेके अयोग्य मनुष्य ।

व्याधश्चोरस्तथा म्लेच्छो वह्निदो मत्स्यबन्धकः ॥ ३० ॥
बहुद्वेषो ग्रामकूटो बन्धकी[1] मांसविक्रयी ॥ एतेषां व्याधिग्रस्तानां
नैव कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ ३१ ॥ एतेभ्यः स्वार्थसिद्धिर्नोप-
कारो हितमङ्गलम् ॥ तेषां जीवातसंजातो वैद्यो भवति
दोषभाक् ॥ ३२ ॥

और कसाई, चोर, म्लेच्छ अग्नि लगानेवाला, मछलियोंको बींधनेवाला ॥ ३० ॥ बहुतोंका वैरी, ग्राममें चुगली करनेवाला, व्यभिचारिणी, मांसको बेचनेवाला इनके यदि रोग उत्पन्न हो तो वैद्य चिकित्सा नहीं करे ॥ ३१ ॥ क्योंकि इनसे स्वार्थकी सिद्धि नहीं है, न उपकार है और कल्याण भी नहीं है और मंगल भी नहीं है, इन्हें जीवदान देनेसे वैद्य दोषका भागी हो जाता है ॥ ३२ ॥

एवं ज्ञात्वा तु सद्वैद्यः कुर्य्यादथ प्रतिक्रियाम् ॥
धर्मार्थकामसम्पत्तिः कीर्तिर्लोके प्रवर्त्तते ॥ ३३ ॥

---

१ 'बन्धक्यसती कुलटेत्वरी' इत्यमरः ।

ऐसे जानके पीछे कुशल वैद्य चिकित्साको करे, चिकित्सासे धर्म, अर्थ, और कामकी प्राप्ति और लोकमें कीर्ति प्रवृत्त होती है ॥ ३३ ॥

वैद्य-कर्तव्यका उपसंहार।

इति बहुविधियुक्तो वैद्यविद्याविचारः क्षणमपि हृदये यो धारणं संकरोति ॥ स भवति गदसंघस्याथ विध्वंसशक्तो विमलविदितकीर्तिः पूज्यमानो नरेंद्रैः ॥ ३४ ॥ इति आत्रेयभाषित हारीतोत्तरे वैद्यशिक्षाविधानं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ऐसे बहुतसी विधिसे युक्त और वैद्यकविद्याको विचारनेवाला जो वैद्य एक क्षणभर भी अपने हृदयमें यह धारणा करता है, वह वैद्य रोगके समूहको नाशनेमें समर्थ, स्वच्छ तथा विख्यात कीर्तिवाला और राजा लोगोंसे पूज्यमान होता है ॥ ३४ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रि-अनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने वैद्यशिक्षाविधानं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अथ देशकालबलाबल।

इदानीं संप्रवक्ष्यामि देशकालबलाबलम् ॥
सात्म्यं प्रकृतिदेहश्च तथाग्नीनां विशेषणम् ॥ १ ॥

अब देश, काल, बल, अबल, सात्म्य, प्रकृति, देह, अग्नियोंकी विशेषता कहूँगा ॥ १ ॥

देश भेदाः।

देशस्तु त्रिविधो ज्ञेयो ह्यनूपो जाङ्गलस्तथा ॥
साधारणो विशेषेण ज्ञातव्यास्ते मनीषिभिः ॥ २ ॥

और इस तरह देश तीन प्रकारके जानने चाहिये। अनूप, जाङ्गल, और साधारण। वे विद्वानोंको विशेषकरके जानने चाहिये ॥ २ ॥

अथ अनूपदेशलक्षण।

बहुतरशुभनद्यश्चारुपानीयपुष्टाः सरससरउपेता शाद्वलासारभूमिः ॥ हरितकुशजलानां शालिकेदाररम्या दिनकरकरदीप्तिं वाञ्छते यत्र लोकः ॥ ३ ॥ गुरुमधुररसाढ्या भाति चेक्षुः सदार्द्रा

१ 'धारासंपात आसारः' इत्यमरः।

विविधजनितवर्णाः शालिगोधूमयूषाः ॥ मधुररसविभुक्त्या मानवानां प्रकोपी भवति कफसमीरः स्यात्तदानूपदेशः ॥ ४ ॥

अथ अनूपदेशलक्षण-सुन्दर पानीसे पुष्टहुई बहुतसी सुन्दर नदियां, जलभरे तालाव, हरी दूब,झरनोंसे व्याप्त हुई पृथिवी जहां हो,हरीकुशा तथा पानीसे व्याप्त हुए जो चावलोंके खेतोंसे रमणीक और जहां सूर्यकी किरणोंकी संचार इच्छा करता है ॥ ३ ॥ और जहां भारी और मधुर रससे संयुक्त और सब कालमें गीली ऐसी ईख होती हैं और जहां अनेक वर्णोंवाले चावल, गेहूँ और यूष[1] (मूंग दालका पानी या दो तरहके पात्र उपजते हैं और जहां मधुर रसको खानेसे मनुष्योंके वात और कफका कोप होता है वह अनूपदेश है ॥ ४ ॥

अथ जांगलदेशलक्षण।

खरपरुषविशालाः पर्वताः कण्टकीर्णा दिशि दिशि मृगतृष्णा भूरुहाः शीर्णपर्णाः॥अतिखररविरश्मीपांशुसम्पूर्णभूमिः सरसि रसविहीना कूपकाम्भःप्रकर्षः[2] ॥५॥ तदनु विरससस्याहारिणो गोमहिष्यःप्रभवति रसमांसे रूक्षभावश्च सम्यक्॥पुनरपि हिमवाहं शालिशस्यं न चेक्षुर्भवति रुधिरपित्तं कोपमाशु ह्युपैति॥६॥

अथ जांगलदेशलक्षण-तीक्ष्ण, कठोर, बडे और कांटोंसे व्याप्त जहां पर्वत हैं, प्रतिदिशामें जहां मृगतृष्णा होती है, जहां विना पत्तोंके वृक्ष हैं, अति तेज सूर्यकी किरणोंके समान जल जलाती धूलवाली जहां सम्पूर्ण भूमि है, जो भूमि तालावसे रससे हीन है, और जहां केवल कुयेंके जलसे काम निकलता है ॥ ५ ॥ और जहां विनारसका धान्य खानेवाले गाय- और भैंस हैं और जहां रस और मांसमें रूखापन उपजता है, और शीतलवायु, चावलकी खेती, ईख ये नहीं उपजते हैं और जहां रक्त और पित्त शीघ्र कोपको प्राप्त होता है उसको जांगलदेश कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ साधरणदेशलक्षण।

उभयगुणशतं वा नातिरूक्षं न स्निग्धं न च खरबहुलं चेच्चासितः कण्टकाढ्यम् ॥ भवति च जलकीर्णं नातिशीतं न चोष्णं समप्रकृतिसमेतं विद्धि साधारणं च ॥ ७ ॥

अथ साधारणदेश लक्षण-जहां अनूपदेशके और जांगलदेशके बहुतसे लक्षण अर्थात् गुण हों और जहां न अति रूखापन हो और न चिकनापन है और जहां तेजकी बहुलता नहीं

'१ यूपं चमसचिक्कसौ' इत्यमरः। 'चमसचिक्कसौ पात्रभेदौ' इति महेश्वरः, यूषं मंड इति वैद्या यथा मुद्गामलकयूपस्तु ग्राही पित्तकफे हितः'। २ 'क्षिप्रक्षुद्राभीप्सितपृथुपीवरबहुलप्रकर्षार्थाः' इत्यमरसिंहः।

हो और जो सब ओरसे कांटोंसे व्याप्त न हो रहा हो और जहां साधारण पानी हो और न अति शीत अर्थात् जाडा हो और न अति गर्मी हो और समानप्रकृतिसे संयुक्त हो तिसको साधारण देश कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ कालज्ञान ।

कालस्तु त्रिविधो ज्ञेयोऽतीतोऽनागत एव च ॥
वर्त्तमानस्तृतीयस्तु वक्ष्यामि शृणु लक्षणम् ॥८ ॥

अथ कालज्ञान--काल तीन प्रकारका है, अतीत अर्थात् बीता हुआ, अनागत अर्थात् आनेवाला, वर्तमान अर्थात् वर्तता हुआ इन्होंके लक्षण कहताहूँ तुम सुनो ॥ ८ ॥

कालका स्वरूप ।

कालः कालयते लोकं कालः कालयते जगत् ॥ कालः कालयते विश्वं तेन कालो विधीयते ॥९॥ कालस्य वशगाःसर्वे देवर्षि-सिद्धकिन्नराः ॥ कालो हि भगवान्देवः स साक्षात्परमेश्वरः ॥१० ॥ सर्गपालनसंहर्त्ता स कालः सर्वतः समः ॥ कालेन काल्यते विश्व तेन कालो विधीयते ॥ ११ ॥

काल लोककी संख्या करता है, काल जगत्‌की संख्या करता है,काल विश्वकी संख्या करता है, इससे काल कहाता है ॥ ९ ॥ सब देव, ऋषि, सिद्ध, किन्नर, ये सब कालके वशमें हैं और भगवान् देव साक्षात् परमेश्वर ऐसा काल ही है ॥ १० ॥ सृष्टि, स्थिति, संहार, इन्होंको करनेवाला और सब जगहसे समान ऐसा काल ही है, कालसे विश्व संख्याको प्राप्त होता है इससे काल कहाता है ॥ ११ ॥

उत्पादक--कालका स्वरूप ।

येनोत्पत्तिश्च जायेत येन वै कल्पते कला ॥
सत्त्ववांस्तु भवेत्कालो जगदुत्पत्तिकारकः ॥ १२ ॥

जिससे प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है, जिससे कलायें कल्पित होती हैं और जो बलवान् है, जगत्‌को अर्थात् पञ्चमहाभूतादिको जो बनाता है वही काल है ॥ १२ ॥

प्रवर्तक--कालका स्वरूप ।

यः कर्माणि प्रपश्येत प्रकर्षं वर्त्तमानके ॥
सोऽपि प्रवर्त्तको ज्ञेयः कालः स्यात्प्रतिकालकः ॥ १३ ॥

जो वर्तमानके कर्मोंको देखता है और उनके अनुकूल आगेके लिये भविष्यत् के निर्माण करता है, एक दूसरेके बाद आनेवाला वह काल प्रवर्तक काल कहलाता है ॥ १३ ॥

संहारक-कालका स्वरूप ।

येन मृत्युवशं याति कृतं येन लयं व्रजेत् ॥
संहर्त्ता सोऽपि विज्ञेयः कालः स्यात्कलनापरः ॥ १४ ॥

जिस काल करके जीव मृत्युके वशको प्राप्त होता है और जिस करके कृत अर्थात् किया हुआ कार्य लयको प्राप्त होता है वही काल संहार करनेवाला जानना, यही काल ग्रास करनेवाला है ॥ १४ ॥

कालका सनातनत्व ।

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ॥
कालः स्वपिति जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥ १५ ॥

काल ही जीवोंको रचता है,काल ही प्रजाको हरता है, काल ही शयन करता है, काल ही जागता है, क्योंकि काल दुरतिक्रम है अर्थात् उल्लंघन नहीं किया जाता ॥ १५ ॥

कालका नाशकस्वरूप ।

काले देवा विनश्यन्ति काले चासुरपन्नगाः ॥
नरेन्द्राः सर्वजीवाश्च काले सर्वं विनश्यति ॥ १६ ॥

काल अर्थात् समयमें देवता नष्ट हो जाते हैं और कालमें ही दैत्य और सर्प नष्ट होते हैं राजा ही क्यों सब जीव कालमें ही नष्ट होते हैं,कालमें संपूर्ण नष्ट होता है ॥ १६ ॥

अथ अन्यकालोंके स्वरूप ।

त्रिकालात्परतो ज्ञेय आगन्तुर्गतचेष्टकः ॥ सूक्ष्मोऽपि सर्वगः सर्वैर्व्यक्ताव्यक्ततरः शुभः ॥ १७ ॥ तथा वर्षाहिमोष्णाख्या-स्त्रयः काला इमे मताः॥तथा त्रयोऽन्येऽपि ज्ञेया उदयमध्या-स्तमेव च ॥ १८ ॥

आगंतुक किन्तु चेष्टासे रहित, सूक्ष्म होनेपर भी सर्वगत,सबसे अतिव्यक्त होकर भी अत्यंत अव्यक्त और शुभ ऐसा काल त्रिकालसे परे जानना चाहिये ॥ १७ ॥ वर्षा, शीत, गर्मी ये तीन काल माने गये हैं और उदय, मध्य, अस्त ऐसे तीन अन्य भी काल जानने ॥ १८ ॥

अथ ऋतुचर्य्या ।

वर्षा शरच्च हेमन्तः शिशिरश्च वसन्तकः ॥ ग्रीष्मोऽतिक्रमतो ज्ञेय एवं षड्ऋतवः स्मृताः ॥ १९ ॥ पृथक्पृथक् प्रवक्ष्यामि

रवेर्गतिविशेषणैः ॥ प्रकोपं शमनं ज्ञात्वा अयने द्वे स्मृते बुधैः ॥ २० ॥ दक्षिणायनमेकं स्याद्द्वितीयं चोत्तरायणम् ॥

अथ ऋतुचर्या—वर्षा, शरद्, हेमंत, शिशिर, वसंत और ग्रीष्म एक दूसरेके बाद आनेवाले क्रमसे छः ऋतु कहे हैं ॥ १९ ॥ इन ऋतुओंको पृथक् पृथक् कहूंगा। सूर्य्यकी गतिके विशेषसे प्रकोप और शमनको जान पंडितोंने दो अयन कहे हैं ॥ २० ॥ एक दक्षिणायन होता है दूसरा उत्तरायण होता है ॥

अयनोंका वर्णन।

वर्षा शरच्च हेमन्तो दक्षिणायनमध्यगाः ॥ २१ ॥
शिशिरश्च वसन्तश्च ग्रीष्मः स्यादुत्तरायणे ॥

वर्षा, शरद्, हेमंत ये तीन ऋतु दक्षिणायनमें होते हैं ॥ २१ ॥ शिशिर, वसंत, ग्रीष्म, ये तीन ऋतु उत्तरायणमें होते हैं ॥

दक्षिणायनका लक्षण।

याम्ये गतिर्यदा भानोस्तदा चान्द्रगुणा मही ॥ २२ ॥ वारि शीतलसम्भूतं शीतं तत्र प्रजायते ॥ बलिनो मधुरास्तिक्ताः कषायास्तु विशेषतः ॥२३॥ जीवानां सात्म्यमतुलमोषधीनां च वीर्यता॥ आर्द्रत्वं भूधराणाञ्च दिशश्चाप्यतिशीतलाः२४॥ सक्लेदा पृथिवी सर्वा तस्मादार्द्रा सफेनिला॥कथं चिकित्सयेत् पित्तं कोपं याति विलीयते ॥ २५ ॥ तस्मादनुविपर्य्यासादुपचारेण शाम्यति ॥

जब सूर्यकी गति दक्षिणमें होती है तब चंद्रमाके गुणोंवाली पृथिवी हो जाती है ॥२२॥ और शीतल पानी हो जाता है और शीत पडने लगता है और मधुर तिक्त कसैला ये रस विशेष करके बलवाले हो जाते हैं ॥ २३ ॥ और ओषधी अर्थात् अन्न आदिकोंकी तथा जीवोंकी प्रकृति बहुत ही अच्छी रहती है और पर्वत भी गीले होजाते हैं और दिशाभी अति शीतल हो जाती हैं ॥ २४ ॥ क्लेदभावसहित संपूर्ण पृथिवी हो जाती है और इसी कारणसे गीली और झागोंवाली पृथिवी होजाती है इसमें कभी पित्त कोपको प्राप्त हो जाता है और लीन होजाता है २५ ॥ इस कारणसे कि विपर्य्यास करके चिकित्सासे पित्त शांत होता है ॥

उत्तरायणका लक्षण ।

यदोदीच्यां गतिर्भानोस्तदा सूर्य्यो जलाधिपः ॥ २६ ॥ तस्मादुष्णगुणास्तीव्राः सम्भवन्ति विदाहिनः ॥ खरसूर्य्यांशुजालैस्तु शुष्यते वनकाननम् ॥२७॥ संशुष्का मेदिनी सर्वा दिशः पानादिनीरसाः॥बलिनोऽम्लकटुक्षाराः सम्भवन्ति विदाहिनः ॥ २८ ॥ तस्मात्संकुप्यते पित्तं रक्तेन सह मूर्च्छितम् ॥ संशुष्क ओषधिरसो गोजातीनां पयांसि च ॥ २९ ॥ अल्पं बलं च जन्तूनां कथञ्चित्कफसम्भवः ॥ दृश्यते च वसन्ते च स्वयमेव शमं व्रजेत्॥३०॥एवं ज्ञात्वा सुधीः सम्यक्कुर्य्यात्सर्वप्रतिक्रियाम् ॥ ३१ ॥

जब उत्तर दिशामें सूर्य्यकी गति होती है तब सूर्य्य जलोंका स्वामी हो जाता है ॥ २६ ॥ इसलिये उष्णगुणवाले तीव्र और विदाही पदार्थ होते हैं ॥ २७ ॥ और संपूर्ण पृथिवी सूख जाती है और जल आदिसे रहित सब दिशा हो जाती हैं और खट्टा,चर्चरा,खारा ये रस बलवाले और विशेष करके दाहको करनेवाले होते हैं ॥ २८ ॥ उससे रक्तके साथ मूर्च्छित हुआ पित्त कुपित होता है और ओषधियोंका रस और गाय आदिका दूध सूख जाता है ॥ २९ ॥ और जीवोंमें अल्प बल उपजता है और कदाचित् कफकी भी उत्पत्ति होजाती है और यहां कफकी उत्पत्ति वसंत ऋतु अर्थात् चैत्र वैशाखमें दीखती है और आप ही शांत हो जाती है ॥ ३० ॥ ऐसे अच्छी तरह वैद्य जानके सब रोगोंकी चिकित्साको करे ॥ ३१ ॥

अथ वर्षाऋतुका लक्षण ।

सघनवारिदवारिसमाकुला अखिलवत्प्रवरोदकपूरिताः॥ससदवातकरा विदिशो दिशः प्रमुदितक्रिमिकीटभृता मही ॥३२॥ नीलसस्यहरितोज्ज्वला मही कुल्यका सलिलसंप्लुता नता ॥ इन्द्रगोपकविराजिता वरा पङ्कभूषणविभूषिता धरा ॥ ३३ ॥ उद्भिन्नचूताङ्कुरभूधरः स्याद्व्रजे वनं वा मधुरं व्यकूजन् ॥ भृङ्गा मयूरा जलदस्य घोषं सर्वेऽपि जीवा बलमाप्नुवन्ति॥३४॥केकी कूजति कानने च सरसी म्लानाम्बुपूर्णा तथा हंसा मानसमाव्रजन्ति कमलान्युन्म्लानतां यान्ति च ॥ गर्जन्मेघमहेन्द्रकन्दर-

दरी सस्यावृता श्यामला भात्येवं पवनस्य कोपनकरी वर्षा-ऋतुः श्रेयसी ॥३५॥ किञ्चिद्गर्भोद्भवानि स्युः सस्यानां दृढता-गमः॥ बहुसस्या भवेद्धात्री वारिपूर्णा शरन्मुहुः ॥३६॥ नद्यः पूर्णाम्भसोत्खातशीर्णपातास्तटद्रुमाः ॥ कुल्याप्रस्रवणानां तु स्रवत्यम्भो दिशो दिशः॥३७॥बहूदकधरा मेघा बहुवृक्षा घन-स्वनाः॥एवंगुणसमायुक्ता वर्षा स्यादृतुकोविदैः ॥३८॥ तस्मा-द्वातकफः कोऽपि जायते च नृणां भृशम्॥इति ज्ञात्वा भिषक्छ्रेष्ठः कुर्य्यात्तस्यां प्रतिक्रियाम् ॥३९॥ स्वेदनं मर्दनं पथ्यं निर्वात-सेवनं तथा॥ गौरारामारतं शस्तं व्यायामक्रमविक्रमः ॥४०॥ कट्वम्लक्षारसुरसाः सेव्या वातकफापहाः॥ निरूहबस्तिकर्मात्र कफवातरुजापहम् ॥ ४१ ॥

अथ ऋतुलक्षण-प्रथम वर्षाऋतुका लक्षण और उपचार-मोटे बादल और पानीसे अच्छी तरह आकुल, संपूर्ण तरहसे सुंदर पानी करके पूरित, मदसहित वायुको करनेवाली सब विदिशा और दिशा होवें और आनंदित हुए कीडोंको धारण करने वाली पृथिवी होवे ॥ ३२ ॥ और नीलीकी खेती और दूब घाससे प्रकाशित पृथिवी होवे, पानीसे मग्न हुए और नये हुए छोटी नदीके किनारे होवे, इंद्रगोप अर्थात् तीज नामवाले कीडोंकी पंक्तियोंसे शोभित और पंक अर्थात् कीचडरूपी गहनोंसे विभूपित ऐसी पृथिवी हो जावे ॥३३॥ऊपरको निकल आयेहुए आमके अंकुरोंवाले पर्वत हो जावें और वन प्रकाशित हो जावें और भौंरे तथा मोर मधुर शब्दको करें और बादलोंका शब्द हो और सब जीव बलको प्राप्त हो जावें ॥ ३४ ॥ वनमें मोर बोलें और सरोवर पक्षियोंकरिके रहित तथा पानीसे पूरित हो जावे और हंस मानस सरोवरमें आके प्राप्त होजावे और कमल म्लानपनेको प्राप्त होजावे गर्जता हुआ मेघ और महेंद्र करके फटीहुई कंदरावाली और खेतीसे आवृत और श्यामरूपवाली ऐसी पृथिवी प्रकाशित होजावे ऐसी वर्षाऋतु श्रेष्ठ होती है यह वायुको कोपित करती है ॥३५॥और खेतियोंके कछुक गाभा तथा दृढपना उपजे और बहुतसी खेतीसे संयुक्त और पानीसे पूर्ण ऐसी पृथिवी होवे और वारंवार शरदृतुके भी कछुक लक्षण मिलें ॥३६ ॥ और नदीमें नहीं पूरित हुए पानीसे उखाडे हुए और गिरेहुए पत्तोंवाले ऐसे तटके वृक्ष होवें और नाली झरनोंके द्वारा दिशा दिशामें पानीको झिरावे ॥ ३७ ॥ और बहुत पानीको धारनेवाले और बहुतसे शब्दको करनेवाले ऐसे मेघ होजावें और बहुतसे वृक्ष उपजें ऐसे

गुणोंसे संयुक्त वर्षाऋतु होती है ऐसा ऋतुओंको जाननेवालोंने कहा है ॥ ३८ ॥ इस ऋतुमें मनुष्योंको अतिशय वात,कफका कोप होताहै ऐसे कुशल वैद्य जानके उस कोपकी चिकित्सा करें ॥ ३९ ॥ स्वेदन अर्थात् पसीनोंका लाना, मर्दन अर्थात् शरीरको दाबना और वातको नहीं सेवना, गौर वर्णकी स्त्रीसे रति करना, कसरत करना ये सब बात कफके कोपमें श्रेष्ठ पथ्य हैं ॥ ४० ॥ चर्चरा, खट्टा, खारा ये रस सेवनेसे वात कफको नाशते हैं निरूह और वस्तिकर्म्म, कफ और वातकी पीड़ाको नाशते हैं ॥ ४१ ॥

अथ शरदृतुका लक्षण ।

मेघाःसूर्य्यशिलासमानरुचयो ह्यल्पस्रवाल्पस्वना हंसालीजल-जालिमण्डितजलं पद्माकरं शोभनम्॥ तीव्रस्निग्धमयूखचन्द्रवि-मला सानन्दिनी कौमुदी चित्रा घर्मविपक्वतोयसुरसास्या न्निर्मलं पुष्करम् ॥ ४२ ॥ तत्र शीतलगतं वयोगतं जातपित्तरुधिरस्य योग्यताम् ॥पथ्यमत्र च नरस्य शीतलं दृश्यते कथमपि त्रयो-द्भवम् ॥ ४३ ॥ शृतं क्षीरं सितापथ्यं चन्द्रिकासेवनं निशि ॥ श्यमारामारतं शस्तं प्रभाते निर्मलं दधि ॥४४॥ कामिन्यालि-ङ्गनानन्दश्रान्तः शीतसरोरुहैः ॥ चंदनादीनि सेवेत दृष्टं शरदि कोपनम् ॥ एवं प्रशमनं दृष्टं शरत्पित्तप्रकोपने ॥ ४५ ॥

अथ शरदृतुका लक्षण और उपचार-सूर्य्य और शिलाके समान रुचिवाले और अल्प झरनेवाले और अल्पशब्दको करनेवाले ऐसे मेघ हो जावें और हंसोंकी पंक्ति तथा कमलोंकी पंक्ति उसकरके मंडित जलवाला और शोभित कमलोंका स्थान हो जावे और तीव्र तथा स्निग्धरूपी किरणोंवाले चंद्रमासे स्वच्छ और आनंदवाली और चित्ररूपवाली और घामसे पके हुए पानीसे सुरसरूप ऐसी चांदनी हो और मलसे रहित पानी होवे ॥ ४२ ॥ ऐसी शरदृतुमें आकाशका पानी और पित्तरक्तके योग्य पदार्थ और शीतल पदार्थ ये सब पथ्य हैं इस ऋतुमें सन्निपातका कोप कदाचित् होता है ॥ ४३ ॥ घृत,दूध,मिश्री,रात्रिमें चांदकी चांदनीको सेवना,श्यामरंगकी वाला स्त्रीसे भोग,प्रभातमें निर्मल दही ये सब शरदृऋ-तुमें पथ्य हैं ॥ ४४ ॥ स्त्रीके आलिंगनसे प्राप्त हुए आनंदसे श्रांत हुए पुरुष कमलोंकरके अपने श्रम दूर करे, और शरदृतुमें पित्तका प्रकोप होनेसे चंदनादिकोंका लेप करे यह कमलधारण और चंदनानुलेपन शरदृतुमें पित्तके प्रकोपका शमनकारी है ऐसा देखा है ॥ ४५ ॥

अथ हेमन्तवर्णन।

बहुशीतःसमीरोऽल्पश्चाल्पवासरता ऋतौ॥अल्पतेजा दिवानाथो धूमाक्रांता च दिग्भवेत् ॥ ४६॥ विस्तीर्णशालिकेदारा नील-धान्योज्ज्वला मही॥ एवं गुणसमायुक्ता हैमन्ती स्म भवेदृतुः ॥४७॥ तत्र वातकफा दोषा दृश्यंते कुपिता भृशम् ॥ अग्निसंसे-वनंपथ्यंकटुक्षाराम्लसेवनम् ॥४८॥ गौरारामारतं शस्तं व्यायाम-श्च प्रशस्यते ॥ एवं संशाम्यंति दोषाः कफवातसमुद्भवाः ॥ ॥४९॥ बलिनः शीतसंरोधा हेमन्ते प्रबलोऽनिलः ॥ भवत्यल्पे-न्धनो धातून्स पचेद्वायुनेरितः॥ ५० ॥ अतो हिमेऽस्मिन्सेवेत स्वाद्वम्ललवणान्रसान्॥दीर्घा निशा भवेत्तर्हि प्रातरेव बुभुक्षितः॥ ॥ ५१ ॥ भवत्यकार्य्यं संभाव्य यथोक्तं शीलयेदनु ॥ ५२ ॥ अर्कन्यग्रोधखदिरकरञ्जककुभादिकम् ॥ प्रातर्भुक्ता च मधुरक-षायकटुतिक्तकम् ॥ ५३ ॥

अथ हेमंतऋतुका लक्षण और उपचार—बहुत शीत वायु अल्प चले और दिनका समय थोड़ा हो जावे और अल्प तेजवाला सूर्य रहे और धूमसे आकुलित हुई दिशा होवे॥ ४६॥ और विस्तारको प्राप्त हुए चावलोंके खेत होवें और नील तथा अन्नसे प्रकाशित पृथिवी होवे ऐसे गुणोंसे संयुक्त हेमंतऋतु होता है ॥ ४७ ॥ इस ऋतुमें अतिशयसे कुपित हुए वात और कफ दीखते हैं, इसमें अग्नि सेवना और चर्चरा, खारा, खट्टा, इन्होंको सेवना पथ्य है ॥ ४८ ॥ गौरवर्णवाली स्त्रीसे भोग करना और कसरत करना श्रेष्ठ है, इस तरहसे कफ वातसे उपजा दोष शांत होता है ॥ ४९ ॥ बलवाले मनुष्यके शीतको रोकनेसे हेमंतऋतुमें वायु प्रबल हो जाताहै, पीछे वायुसे प्रेरित किया यही वायु अल्प आहार आदिवाला होके धातुओंको पकाता है ॥ ५० ॥ इसलिये शीतकालमें स्वादु,खट्टा,सलोना ऐसा रस सेवे और हेमंतऋतुमें बडी रात्रियोंके होनेसे प्रभातमें ही भोजन करनेकी इच्छावाला मनुष्य हो जाता है॥ ५१ ॥ इसवास्ते अकार्यकी संभावना करके यथोक्त द्रव्यका अभ्यास करे ॥ ५२ ॥ आक, वड़, खैर, करंजुआ, अर्जुनवृक्ष इन आदिको प्रभातमें साधन करके पीछे मधुर, कसैला, चर्चरा, कडुआ इन रसोंको सेवे ॥ ५३ ॥

अथ शिशिरवर्णन ।

बहुलशिशिरवातः किञ्चिदुद्भूतसस्या भवति वसुमतीयं पक्वसस्यैस्तु पीता॥कथमपि तु हिमं स्याल्लिङ्गवैशेपिकं वा पवनकफविकारो जायते शैशिरं च॥ ५४॥गौरारामारतमतिशयेनारुणान्यम्बराणि सेव्यं तिक्तं कटुकलवणं प्रायशो ह्यम्लमेव॥स्वेदोन्मर्दं प्रतिदिनमिदंकारयेद्यत्र सम्यग् नाशं यातोऽनिलकफगदौ क्वास्ति तेषां प्रकोपः ॥ ५५ ॥

अथ शिशिरऋतुका लक्षण और उपचार-बहुत शीतल वायु चले, पृथ्वीपर कछुक धान्य उत्पन्न हो, और पकी हुई खेतीसे पीली पृथिवी हो, और इनमें जाड़ा पड़े कभी अधिक चिह्नकी विशेषता हो उसको शिशिर ऋतु कहते है इसमें वात और कफके विकार उपजते हैं ॥ ५४ ॥ और इस ऋतुमें गौरवर्णवाली स्त्रीसे भोग करना और अतिशय करके लाल रंगके वस्त्रोंको पहनना और कडुआ, चर्चरा,सलोना ये रस सेवने चाहिये और विशेष करके खट्टा रस सेवना चाहिये और इस ऋतुमें पसीनोंको लाना और मर्दन करना नित्यप्रति अच्छीतरह करना चाहिये ऐसा करनेसे वात और कफके रोग नाशको प्राप्त हो जाते हैं और उनके प्रकोपकी कौन कथा है ? ॥ ५५ ॥

अथ वसंतऋतुका वर्णन ।

मुदितकोकिलकूजितकाननं मदनसूचितकिंशुकशोभितम् ॥ कुसुमसौरभरञ्जितभूधरं क्वणितमत्तमधुव्रतलालसम्॥५६॥मकरकेतनबाणसमाकुलं मुदितमेव समस्तमिदं जगत् ॥ मलयमारुत उष्णगुणान्वितः कफकरो हि वसन्तऋतुर्भवेत् ॥५७॥ कफजकोपविनाशनलालनं वमननावनरूक्षनिषेवणम्॥५८ ॥ विविधः सुरतानन्दः सम्भ्रमः कफवारणः॥व्यायामश्रमसंरोधखिन्नविश्रान्तमानसः ॥५९॥ कटुक्षाराम्लाः सेव्याश्च शोषणं कफसम्भवम्॥एवं क्रियासमापन्नो नरः शीघ्रं सुखी भवेत् ॥६०॥

अथ वसंतऋतुका लक्षण और उपचार--जहां आनंदित हुए कोयल पक्षी वनमें बोलें कामदेवको सूचित करते हुए टेसूके फूलोंसे शोभा हो फूलोंके गंधसे रंजित पर्वत हो और जहां खेलते हुए और मदवाले भौरोंकी शोभा हो ॥ ५६ ॥ और कामदेवके बाणसे समाकुल और आनंदित जगत् होवे तिसको वसंतऋतु कहते हैं । यह सुन्दर वायुसे

और उष्ण गुणसे अन्वित हुआ वसंतऋतु होता है यह कफको उपजाता है ॥ ५७ ॥ इस ऋतुमें वमन, नस्य, रूखा पदार्थ इनका सेवन कफके कोपको नाशता है ॥ ५८ ॥ अनेक प्रकारसे कामदेवका आनन्द और अच्छी तरह चलना, फिरना कफको दूर करता है और इस ऋतुमें कसरतके परिश्रमको करनेसे स्वेदित और श्रांत मनवाला मनुष्य सुखी रहता है ॥ ५९ ॥ और चर्चरा, खारा, खट्टा ये रस सेवने चाहिये ये कफको शोषते हैं ऐसी क्रियाको प्राप्त हुआ मनुष्य शीघ्र सुखी हो जाता है ॥ ६० ॥

अथ ग्रीष्मवर्णन ।

दीर्घवास रसंतीक्ष्णं ज्वालामालाकुलं जगत् ॥ दिशि दिशि मृगतृष्णाचोष्णं भृशं भवेद्रजः ॥ ६१ ॥ नैर्ऋतोमारुतोरूक्षःशीर्णपर्णा महीरुहः ॥ दग्धतृणाकुलारण्यं दावाग्निसङ्कुला दिशः ॥ ६२ ॥ एवं तु लक्ष्म ग्रीष्मस्य पित्तरक्तमुदीर्य्यते ॥ तस्मात् क्रियाप्रतीकारं कुर्य्यात् संशमनं भिषक् ॥ ६३ ॥ जलक्रीडा दिवा निद्रासेवनं सुखसाधनम् ॥ श्यामारामारतं शस्तं किञ्जल्कं कुञ्जशीतलम् ॥ ६४ ॥ नीलनालदलोपेतः श्रमघ्नो व्यजनानिलः ॥ केतक्यामोदकुसुमं चन्दनोशीरशीतलैः ॥ ६५ ॥ लेपनं शीतलं सम्यग्धारागाराशयः पुनः ॥ एवं क्रियासमापन्नो ग्रीष्मे च सुखसङ्गमः ॥ ६६ ॥ इति आत्रेयभाषिते ऋतुचर्य्यानाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ ग्रीष्मऋतुका लक्षण और उपचार-बड़े दिन होवें और तीक्ष्ण होवें और गरमीके समूहसे जगत् व्याकुल हो जावे और दिशा दिशामें मृगतृष्णा होवे और अतिगर्मी और धूली उडे॥ ६१ ॥ नैर्ऋतदिशाका रूखा वायु चले, वृक्षोंके पत्ते उडजावें, दग्धहुए तृणोंके समूहसे व्याप्त वन होवे, और दावाग्निसे संकुलित दिशा होजावें ॥ ६२ ॥ उसको ग्रीष्मऋतु कहते हैं, इसमें पित्त और रक्त वढ़ता है इसलिये वैद्य रक्तपित्तको शमन करनेवाली क्रियाको करे ॥ ६३ ॥ इस ऋतुमें जलकी क्रीडा, दिनमें शयन, श्यामवर्णवाली स्त्रीसे भोग करना, और कछुक शीतल वस्तुको सेवना ये पथ्य हैं ॥ ६४ ॥ नीले कमलके पत्तोंसे संयुक्त हुए पंखेकी पवन ग्रीष्मके परिश्रमको हरता है और केतकीके खिले हुए फूल, सफेद चंदन, खस, शीतल चीजों करके ॥ ६५ ॥ अच्छी तरह लेप करना और फूहाराके स्थानमें बसना ऐसे क्रियाको प्राप्त हुआ मनुष्य ग्रीष्मऋतुमें सुखी रहता है ॥ ६६ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रि-अनुवादित-हारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने ऋतुचर्य्यानाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

इसके बाद वयो ज्ञानका कथन ।

वयश्चतुर्विधं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम् ॥ हीनं चातुर्थिकं प्रोक्तं तानि वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ १ ॥ बालं युवानं वृद्धं च मध्यमं च तथैव च॥चतुर्विधं वयः सम्यक् तत्समासेन वक्ष्यते ॥२॥

इसके अनंतर वय अर्थात् अवस्थाके ज्ञानको कहेंगे-अवस्था चार प्रकारकी कही है । उत्तम, अधम,मध्यम, और हीन । अब उन्हे कहता हूं ॥१॥ बालक,जवान,वृद्ध और मध्यम ऐसी चार प्रकारकी अवस्था है उसको विस्तारसे कहता हूँ ॥ २ ॥

मध्यमवयोलक्षण ।

पथि श्रान्तं श्रमक्षीणं बालस्त्रीसुकुमारकम् ॥
एतेषां मध्यमा संज्ञा प्रोच्यते वैद्यकागमे ॥ ३ ॥

रस्तेमें श्रांत हुआ, श्रमसे क्षीण हुआ, बालक, स्त्री और सुकुमार अर्थात् कोमल मनुष्य इनकी वैद्यकशास्त्रमें मध्यम संज्ञा कही है ॥ ३ ॥

आषोडशाद्भवेद्बालः पञ्चविंशो युवा नरः॥ मध्यमं सप्ततिर्यावत्परतो वृद्ध उच्यते ॥४॥ तथा च सुकुमाराश्चेत्येते मध्यमसंज्ञकाः॥वयसः षोडशाधिक्यं समयश्च भवेत्तु यः ॥५॥आविंशति समाः प्राप्तो यथा च कृशदेहवान्॥पूर्णं वयः स्त्रियःप्राप्ता मध्यमे चाधमं वयः ॥ ६ ॥

सोलह वर्षतक बालक अवस्था, पचीस वर्षतक जवान अवस्था, सत्तर वर्षतक मध्य अवस्था होती है, इससे परे वृद्ध अवस्था है ॥ ४ ॥ मध्यमसंज्ञकोंमें सुकुमार अर्थात् कोमल, सोलहवर्षसे ऊपर २० वर्षतक दुर्बल शरीरवाले, और पूर्ण अवस्थाको प्राप्त हुई स्त्री ये मध्यम अवस्थामें भी अधम वय कहाते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

पञ्चविंशत्समादूर्द्धमापञ्चाशद्गतः पुमान् ॥ कर्मकठोरा वनिता दृश्यते चोत्तमं वयः ॥७॥ सप्तविंशत्समादूर्द्धं पञ्चाशत्संयुताः समाः ॥ बालवृद्धिस्तथा यस्य इत्येतदुत्तमं वयः ॥ ८ ॥

पचीस वर्षसे लेकर पचास वर्षतक पुरुषत्व बना रहता है और इतने ही में स्त्री भी क्रियामें कठोर रहती है इसलिये यह उत्तम आयु देखी जाती है। सत्ताईस वर्षसे लेकर पचास वर्ष तक जिसके लड़के हों यह उत्तम वय है ॥ ७ ॥ ८ ॥

स्थूलोऽतिदीर्घकठिनस्तथा स्त्री बृहदोदरा ॥
इत्युत्तमोऽवयववान्ज्ञातव्यश्चोत्तमोत्तमः ॥ ९ ॥

जो स्थूल, अतिलंबा और कठोर, ऐसा पुरुष हो और बड़े पेटवाली स्त्री हो तो समझना यह उत्तम शरीरवाला और उत्तमोत्तम मनुष्य है ॥ ९ ॥

षष्ट्यूर्ध्वमशीतिसमाः प्राप्तं हीनबलं वयः ॥
तदूर्ध्वं हीनहीनश्च विज्ञेयो वयसः क्रमः॥ १० ॥

साठ वर्षसे उपरांत असी वर्षतक हीनबल अवस्था होती है और अस्सीवर्षसे उपरांत हीनसे भी हीन अवस्था होती है ऐसे अवस्थाका क्रम जानना चाहिये ॥ १० ॥

क्षीणोऽध्वश्रान्तसंखिन्नस्तथा रोगानुपीडितः ॥
रूक्षश्चातिकृशो ज्ञेयो बालसात्म्यमुदाहृतम् ॥११॥

क्षीण मार्गमें थकनेसे खेदको प्राप्त और रोगसे पीडित, रूखा अति कृश मनुष्य बालककी प्रकृतिके समान प्रकृतिवाले होते हैं ॥ ११ ॥

सुकुमारोऽतिभीरुश्च मध्यकायस्त्रियोऽपि वा ॥
मध्यसात्म्योऽपि विज्ञेयो मध्यमो वयसात्म्यकः ॥१२॥

कोमल शरीरवाला, अति डरनेवाला, मध्यम शरीरवाला, स्त्री-मध्य प्रकृतिवाला ऐसा मनुष्य मध्य अवस्थाकी प्रकृतिवाला जानना ॥ १२ ॥

पञ्चवर्षा स्मृता बाला मुग्धा च षट्सप्तावधिम् ॥ द्वादशाब्दं स्मृता बाला मुग्धा स्यात्सप्तमावधिम् ॥ १३ ॥ प्रौढा च नववर्षाणिप्रगल्भा चत्रयोदश॥चतुर्विंशद्वर्षादूर्ध्वं सप्तत्रिंशतिमध्यगाः ॥ पूर्णं वयः स्त्रियः प्राप्ता इत्येतदुत्तमं वयः॥ १४ ॥

पांच वर्षकी स्त्री बालक कहाती है, पांचसे आगे छः वर्षतककी स्त्री मुग्धा कहाती है, बारह वर्षकी स्त्री बाला कहाती है और बारह वर्षके आगे सात वर्षतक स्त्री मुग्धा कहाती है ॥१३॥ तिसके पीछे नव वर्षतक स्त्री प्रौढा कहाती है और तिसके पीछे तेरह वर्षतककी स्त्री प्रगल्भा कहाती है. और इतने वयके बीचमें ही चौबीस वर्षसे उपरांत सैंतीस वर्षतक मध्य अवस्थाकी स्त्री पूर्ण अवस्थाको प्राप्त होती हैं यह उन्होंकी उत्तम अवस्था है ॥ १४ ॥

अथ प्रकृतिका ज्ञान।

मध्यसात्म्यश्च स्थूलः स्याद्बलवान्सत्त्ववान्नरः ॥
सचाऽप्युत्तमसात्म्यः स्याद्बलवत्सम्रुपाचरेत् ॥ १५ ॥

मध्यप्रकृतिवाला नर स्थूल और बलवान होता है। उत्तमप्रकृतिवाला पुरुष सत्वगुणसे युक्त बलवान् होता है॥ १५ ॥

अथ वातादिप्रकृतिका ज्ञान।

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रकृतिज्ञानमुत्तमम् ॥
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ १६ ॥

इसके बाद वात, पित्त, कफ और सन्निपातकी प्रकृतिका ज्ञान कहूँगा ॥ १६ ॥

अथ वातप्रकृतिका लक्षण।

यः कृष्णवर्णश्चपलोऽतिसूक्ष्मः केशाल्परूक्षो बलवान्क्षमः स्यात्॥ सूक्ष्मातिदन्तो नखवृद्धिसेति दीर्घस्वनश्चंक्रमणक्षमो-ऽसौ ॥१७॥ दीर्घाङ्गसो लोलुपहीनसत्त्वस्तथैव चाम्लीरसभो-जनेच्छुः ॥ संस्वेदनेनातिविमर्दनेन सौख्यं समागच्छति वातलो नरः ॥ १८॥

अथ वातकी प्रकृतिका लक्षण–जो मनुष्य कृष्णवर्ण, चपल व अतिकृश शरीर, अल्पबाल,रूखा,बलवाला, समर्थ,अतिसूक्ष्म दंतोंवाला,नखोंकी वृद्धिको प्राप्त होवे तथा बडा और लंबा बोलनेवाला, चलने फिरनेमें समर्थ ॥ १७ ॥ बहुत कूदनेवाला, लोभी, सत्त्वसे वर्जित, खट्टे रसको खानेकी इच्छावाला और अच्छी तरह पसीना देनेसे तथा मर्दन करनेसे सुखको प्राप्त होता हो वह वातकी प्रकृतिवाला हो ॥ १८ ॥

अथ पित्तप्रकृतिका लक्षण।

गौरातिपिङ्गः सुकुमारमूर्त्तिः प्रीतः सुशीते मधुपिंगनेत्रः ॥ तीक्ष्णोऽपि कोऽपि क्षणभङ्गुरश्च त्रासी मृदुगात्रमलोमकं स्यात्॥१९॥ लौल्यप्रियस्तिक्तरसानुभोजी द्वेषी च तीक्ष्णश्च नवोष्णसेवी॥ स्तुतिप्रियो दन्तविशुद्धवर्णो जातः स पित्त-प्रकृतिर्मनुष्यः ॥ २० ॥

अथ पित्तकी प्रकृतिका लक्षण—जो गौरी वर्णके समान पीतवर्णवाला हो, सुकुमार मूर्तिवाला हो, शीतल पदार्थमें प्रीति रखता हो, मधुसरीखे तथा पिंगवर्णके नेत्रोंवाला हो, तेज स्वभाव वाला हो और कोई क्षण भर में ही स्वभावसे गिर जाने वाला हो, उद्वेगसे संयुक्त हो, कोमल हो, कम केशवाला हो ॥ १९ ॥ और चंचलपनेमें प्रियता करनेवाला हो, कडुआ रसको खानेवाला हो, वैर करनेवाला हो, तेजसे संयुक्त हो, नवीन और गरम वस्तुको सेवनेवाला हो, अपनी स्तुतिको चाहनेवाला हो, दांतोंसे विशेष करके शुद्धवर्णवाला हो, ऐसा मनुष्य पित्तकी प्रकृतिवाला होता है ॥ २० ॥

अथ कफप्रकृतिका लक्षण ।

सुस्निग्धवर्णः सितनेत्रतृप्तः श्यामः सुकेशो नखदीर्घरोमा ॥ गम्भीरशब्दः श्रुतिशास्त्रनिद्रातन्द्राप्रियस्तिक्तकटूष्णभोजी ॥ २१ ॥ स मांसलः स्निग्धरसप्रियश्च सगीतवाद्योऽतिसहिष्णुशीलः ॥ व्यायामशीलो रतिलालसोऽसौ भवेत्कफस्य प्रकृतिर्मनुष्यः ॥ २२ ॥

अथ कफकी प्रकृतिका लक्षण—सुन्दर चिकने वर्णवाला हो और सफेद नेत्रोंवाला हो, तृप्त हो, श्यामवर्णवाला हो, सुंदर बालोंवाला हो, लंबे नख और रोमोंसे संयुक्त हो, गंभीर बोलनेवाला हो, और वेद, शास्त्र, नींद, तंद्रा, इन्होंमें प्यार करनेवाला हो, कडुआ और गर्म भोजनकरनेवाला हो ॥ २१ ॥ मोटा हो स्निग्धरसको चाहनेवाला हो, गीत और वाजेको पसंद करनेवाला हो, अतिसहनेमें शीलस्वभाववाला हो, कसरतको करनेवाला हो, विषयभोगमें इच्छावाला हो, ऐसा मनुष्य कफकी प्रकृतिवाला होता है ॥ २२ ॥

अथ समप्रकृतिका लक्षण ।

संमिश्रवर्णोऽतिसुदीप्तगात्रो गम्भीरधीरोऽतिविदीर्णरोमा ॥ रामाप्रियो भारसहोऽतिमिश्रो भोगेन युक्तः समता प्रकृत्या ॥ २३ ॥

कई प्रकारसे मिले हुए वर्णवाला हो, अतिसुन्दर प्रकाशित अंगोंवाला, गंभीर पनमें धीर, अति विदारित हुए रोमोंवाला, स्त्रीसे प्यार करनेवाला, भार अर्थात् बोझेको सहनेवाला और सब लक्षणोंसे अति मिला हुआ, और भोगके भोगनेवाला ऐसा मनुष्य समप्रकृतिवाला होता है ॥ २३ ॥

अथ दिशाभेदसे वातके गुणदोष ।

(पूर्वदिशाका वायु)

अथागतं वच्मि मरुत्प्रवाहं पूर्वोत्तरादक्षिणपश्चिमाच्च ॥ तेषां गुणान्दोषविकोपनं च पृथक्पृथङ्मे गदतः शृणु त्वम् ॥ २४ ॥

शीतोऽतिमाधुर्य्यगुणः प्रयुक्तो वातप्रकोपी बलकृद्विशेषात् ॥
वाताधिकानां व्रणशोफिनाञ्च प्राचीप्रवृत्तः पवनो न शस्तः॥२५॥

अथ आठ दिशाओंमें प्रवृत्त हुए वायुके गुणदोषवर्णन—इसके अनन्तर पूर्व, उत्तर, दक्षिण और पश्चिमसे आनेवाले वायु और उसके गुण दोष और कोपोंको कहता हूं तथा अलग अलग अर्थात् अन्यवायु के भी गुण दोष कोप कहते हुए मुझसे तुम सुनो ॥२४॥ शीतल स्वभाववाला अतिमधुरपनेके गुणोंसे युक्त वातको कोपनेवाला, विशेष करके बलको करनेवाला, ऐसा, पूर्वदिशाका वायु है। यह वातकी अधिकतावालोंको और घावपै शोजावालोंको श्रेष्ठ नहीं है ॥ २५ ॥

आग्नेयदिशाका वायु।

किञ्चित्सतिक्तो मधुरान्वितः स्यात्कफःसमीरोद्भवरोगकारी ॥
सुशीतलः शोफवतां व्रणानां शस्तो न चाग्नेयसमीरणश्च॥२६॥

कछुक कडुआ है, मधुररससे अन्वित है, कफ और वातसे उपजे रोगोंको करता है, सुंदर शीतल है, शोजावाले घावोंको अच्छा नहीं है ऐसा आग्नेयदिशाका वायु है ॥ २६ ॥

दक्षिणादिशाका वायु।

तिक्तः कषायो मधुरोऽतिमन्दः सुगन्धसंशीतगुणैः प्रकृष्टः॥वद-
न्ति संज्ञां मलयानिलेति प्रकृष्टरामाजनचित्तहारी॥२७॥मनो-
भवस्य प्रकरो मरुत्स्यात्कफोद्भवः सम्भवति प्रचारः॥नचाति-
शीतो न तथोष्णको वा शुभश्च याम्यां प्रभवःसमीरः ॥२८ ॥

कडुआ है, कसेला है, मधुर है, अतिमंद है ,और सुगंध तथा शीतल गुणोंकरके संयुक्त है और मलयानिलसंज्ञावाला है यह स्त्रियोंके चित्तको हरता है ॥ २७ ॥ और कामदेवको जगाता है, कफके रोगोंको करता है और अतिशीतल नहीं है और अतिगर्म नहीं हैं और शुभ है ऐसा दक्षिणदिशाका वायु हैं ॥ २८ ॥

नैर्ऋत्यदिशाका वायु।

रूक्षोष्णवातः प्रथमः समीरः कट्वम्लपित्तासृजि दोषकारी॥
प्रशोषणो देहबलस्य वायुःकफान्वितो नैर्ऋतिकःसमीरः॥२९॥

रूखाहै और गर्मवायुसे संयुक्त है और वायुको शांत करताहै और कटु, अम्ल, पित्त और रक्तमें दोषको करता हो और देहके बलको शोषनेवाला है और कफसे अन्वित है ऐसा नैर्ऋतदिशाका वायु होता हैं ॥ २९ ॥

पश्चिमदिशाका वायु ।

अथातिसूक्ष्मो मरुतः प्रशस्तो नूनं प्रतीच्यास्तु दिशः प्रवृत्तः ॥
वायुस्तथोदीरति रक्तपित्तं शस्तो व्रणानां कफशोफिनां वा॥३०॥

पश्चिमदिशाका अतिसूक्ष्म वायु श्रेष्ठ है और रक्तपित्तको बढाता है। यह वायु घाववालोंको और कफसे उपजे शोजेवालेको श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥

वायव्यदिशाका वायु ।

वायव्यजातो मरुतः प्रशस्तःकषायसंशुष्कगुणप्रसन्नः ॥करोति
वातस्य वशं नराणां शस्तो न निन्द्यो व्रणशोफिनाञ्च ॥ ३१ ॥

वायव्यदिशाका वायु श्रेष्ठ है, कसैला और सुखानेवाले गुणसे संपन्न है और मनुष्योंके हवाके वशमें करता है और घावपै शोजेवालोंको श्रेष्ठ है और निंदित नहीं है॥ ३१ ॥

उत्तरदिशाका वायु ।

स्वादुः कषायश्च कफप्रकोपी वायुः कुबेरस्य दिशः प्रवृत्तः ॥
करोति मेघागमनं जलस्य शीतो न चोष्णो न च निन्द्य एषः ३२

उत्तर दिशाका वायु सजल मेघको लाता है, शीतल हैं, गर्म नहीं है, कसैला है, स्वादु है, कफको कोपता है यह निंदाके योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥

ऐशानदिशाका वायु ।

शीतोऽतिलौल्यः कफवातकोपं करोति चैशानदिशः प्रवृत्तः ॥
शस्तश्च नासौ व्रणशोफकासिनां क्षयस्तथा श्वासविकारिणाञ्च ३३

ईशान दिशाका वायु शीतल है, चंचल है, कफ और वातके कोपको करता है, और घाव, शोजा,खांसी,क्षय,श्वास,रोग इन विकारवालोंको अच्छा नहीं है ॥ ३३ ॥

अन्य-पंचविध वायुके गुण ।

वस्त्रं नानाविधं चर्म वैणवं तालव्यञ्जनम् ॥
उशीरं शिखिपिच्छं तु प्रत्येकेन गुणोत्तमाः ॥ ३४ ॥

अथ वस्त्रआदिके वायुका गुणदोषकथन—अनेक प्रकारका वस्त्र, चाम बांसका पंखा, ताडका पंखा, खसकी टट्टी अथवा पंखा, मोरके पंखोंका पंखा, ये सब हवाके करनेमें एकसे दूसरे उत्तम गुणवाले हैं ॥ ३४ ॥

वस्त्रवायुके गुण ।

वस्त्रप्रवृत्तो मरुतो न शस्तो व्रणशोफिनाम् ॥ रक्तवासःसमुत्पन्नं

---

१ व्यजनार्थेऽत्र व्यञ्जनमुक्तं छन्दोभङ्गभयादृषिणा । न खल्वभिमतमिदं यतोऽग्रेऽभिहितं "वैणवं व्यजनं तन्द्रा निद्राकरणमेव च" इति तथा च " अपि माषं मषं कुर्याच्छन्दोभङ्गं न कारयेत्" ।

विशेषेण तु वर्जयेत् ॥३५॥ करोति कफरक्तस्य कोपनं बहुरोगकृत् ॥ श्रमग्लानिपिपासासुतन्द्रानिद्राकरो भृशम् ॥ ३६ ॥

वस्त्रकी हवा वायुमे खोजवालेको अच्छी नहीं है और लाल वस्त्रसे उपजी हुई हवाको विशेष करके त्यागे ॥ ३५ ॥ क्योंकि लाल वस्त्रकी हवा कफ रक्तको कुपित करती है और बहुतसे रोगोंको उपजाती है और परिश्रम, ग्लानि, पिपासा, तंद्रा और नींदको अति करती है॥ ३६॥

वेणुवायुगुण।

वैणवं व्यजनं तन्द्रानिद्राकरणमेव च ॥
रूक्षोऽतिकषायरसो न च वातप्रकोपनः ॥ ३७ ॥

बाँसका पंखा; तंद्रा और नींदको करता है, रूखा है, अतिकसैला रसवाला है और वातको कोपित नहीं करता है ॥ ३७ ॥

कांस्यपात्रवायुके गुण।

कांस्यपात्रसरुद्रूक्षः सोष्णो वातस्य शान्तिकृत् ॥
दाहश्रमघ्नः स्वेदघ्नो निद्रासौख्यकरो नृणाम्॥ ३८ ॥

कांस्यपात्रकी हवा रूखी है, गरम, वातको शांत करती है,दाह और श्रमको हरती है,पसीना मारती है, मनुष्योंके नींद और सुखको करती है ॥ ३८ ॥

रम्भातालपत्रवायुके गुणः।

तालपत्रकरम्भाया दलस्य व्यजनो हिमः ॥ मधुरोऽतिश्रमघ्नः स्यादार्द्रत्वात्कफकोपनः ॥ ३९ ॥ निद्राकरः प्रीतिकरः शोकरोगविकारहा॥दाहपित्तश्रमग्लानिनाशनो भ्रमशान्तिकृत्४०॥

ताड़के पत्ते और केलेके पत्तेका पंखा शीतल है, मधुर है, अतिश्रमको हरता है और गीलेपनेसे कफको कोपता है ॥ ३९ ॥ नींद करता है, प्रीतिकरता है,शोक, रोग और विकारको नाशता है और दाह,पित्त, परिश्रम,ग्लानिको नाशता है और भ्रमकी शांति करता है ॥ ४० ॥

खस, शिखिपुच्छ व्यजनवायुके गुण।

उशीरमूलरचितं व्यजनं शिखिपिच्छकैः ॥ व्यजनेन सुगन्धः स्यान्मन्दशीतगुणात्मकः ॥४१॥ ग्लानिमूर्च्छाश्रमशोषविसर्पविषदर्पहा ॥इति पञ्चविधो वायुरुपायेन कृतो नृणाम् ॥४२॥

खसकी जड़ और मयूरके पंखका पंखा डुलानेसे सुगन्ध और कुछ शीत गुणवाला होता है ॥ ४१ ॥ ग्लानि, मूर्च्छा, भ्रम, शोष, विसर्प,और विषको हटाता है; इस तरह पांच प्रकारका वायु उपायसे किया हुआ होता है ॥ ४२ ॥

षड्ऋतुओंमें उत्तम दिग्वायु ।

शिशिरे पूर्वकद्वायुराग्नेयो हेमन्ते मरुत् । वसन्ते दक्षिणो वायुर्ग्रीष्मे नैर्ऋत्यकस्तथा ॥ ४३ ॥ वर्षासु पश्चिमो वायुर्वायव्यः शरदि स्मृतः ॥ हेमन्ते शिशिरे चैव प्रशस्तश्चोत्तरोऽनिलः ॥ ४४ ॥

शिशिर अर्थात् माघ, फाल्गुनमें पूर्वका वायु अच्छा है, हेमंत अर्थात् मृगशिर, पौषमें आग्नेयदिशाका वायु अच्छा है, वसंत अर्थात् चैत्र, वैशाखमें दक्षिणका वायु अच्छा है, ग्रीष्म अर्थात् ज्येष्ठ, आषाढ़में नैर्ऋतका वायु अच्छा है॥ ४३ ॥ वर्षा अर्थात् श्रावण भादुआमें पश्चिमका वायु अच्छा है, शरद् अर्थात् आश्विन, कार्तिकमें वायव्यदिशाका वायु अच्छा है, शिशिर और वसंतऋतुमेंउत्तरका वायु भी अच्छा है ॥ ४४ ॥

प्रतिदिनषड्ऋतु ।

अपराह्णे वर्षा[1] वदन्ति निपुणास्तस्मिन्निशीथे शरत्प्रोक्तः शैशिरिकस्ततो हिमऋतुः सूर्य्योदयादग्रतः ॥ मध्याह्ने च तथा वदन्ति निपुणा ग्रीष्मस्त्वृतुः स्यात्ततो वासन्तो मुनिभिर्ऋतुस्तु कथितो पूर्वापराह्णे सदा ॥ ४५ ॥

निपुण जन दिनके तृतीय प्रहरमें वर्षा कहते हैं अर्थात् वह समय वर्षाकालके जैसा सुहावन होता है अर्द्धरात्रिमें शरत् कहा गया है यानी वह समय शरत्कासा समय समझ पड़ता है। आधी रातके अनन्तर शिशिर ऋतु होता है अर्थात् उस समय कुछ शीत सदा लगता है । सूर्योदयसे कुछ पहिले हेमंत ऋतु होता है तब भी कुछ शीत रहता ही है वही निपुण जन दुपहरके समय ग्रीष्मकाल कहते हैं क्योंकि दुपहरमें सदा गर्मी जान पड़ती है । मुनियोंका कहना है कि दिनके पूर्व और परभागमें वसन्त होता है वास्तवमें वह समय वसन्तऋतुहीकी शोभा धारण करता है ॥ ४५ ॥

अथ सविष वायु ।

**कार्तिके मार्गशीर्षे वा माघे चाषाढसंज्ञके ॥
ऋतुसन्धौ च हेमन्ते सविषः स्यात्तु मारुतः ॥ ४६ ॥**

कार्तिक, मार्गशीर्ष, माघ और अषाढ़में और छः ऋतुओंके सान्धिमें तथा हेमंत ऋतुमें वायु सविष होता है ॥ ४६ ॥

स यस्मिन्नगरे देशे ग्रामे वाऽनगरेऽपि वा ॥ संस्पृशेदुल्बणो वायुर्गोमनुष्येभवाजिनाम् ॥ ४७ ॥ तिलकं गोषु जानीयाद्यक्ष्माणं मानुषेषु च ॥ गजेषु पावकं विद्याद्धयानां वेद्य उच्यते ॥ ४८ ॥

जिस नगरमें जिस देशमें अथवा जिस गाममें दारुणरूप बिगड़ा हुआ वायु जब गाय, मनुष्य, हस्ती, घोडा इनको छूता है ॥ ४७ ॥ तब गायोंमें तिलक नाम रोग उपजता है,

[1] अपराह्णे वर्षा इति छन्दोभंगे नचार्षत्वे न दोषः अन्यत्रापि यत्र यत्र छन्दोभंगो दृश्यते तत्र तत्र सर्वत्रार्षो ज्ञेयः ।

और मनुष्योंमें राजरोग उपजता है और हस्तियोंमें पावक अर्थात् अग्नि उपजता है और घोडोंमें वेद्य पीडा उपजती है ॥ ४८ ॥

रक्षणीयं गजे पित्तं श्लेष्मा वाजिषु सर्वदा ॥
पवनोऽयं मनुष्याणां प्रायो रक्षेत सर्वदा ॥ ४९ ॥

कुशल वैद्यको हस्तीकी पित्तसे, घोडोंकी सबकाल कफसे, मनुष्योंकी वायुसे रक्षा करनी चाहिये ॥ ४९ ॥

ऋतुभेदसे वातादिकोंका संचय, कोप, उपशम।

वर्षे वायुः कुप्यतेऽन्तः शरत्सु लीनो वायुः कुप्यते पित्तरोगे ॥ लीयेत्पित्तं शैशिरे श्लेष्मकुञ्जे हेमन्ते वा चीयमानस्तथापि ५० ॥ कोपं याति श्लेष्मरोगो वसन्ते तस्माच्छान्तिः श्लेष्मरोगस्य चोष्णे ॥ पित्तं यायात्कोपतां ग्रीष्मकाले दृष्टा शान्तिः पैत्तिकी वार्षिके च ॥ ५१ ॥

ग्रीष्ममें संचित वायु वर्षामें कुपित होता है । वर्षाका कुपित वही वायु शरद्में अन्तर्लीन होकर पित्तरोगका प्रकोप करता है। हेमन्त और वर्षामें लीन हुआ वही पित्त वसन्तमें श्लेष्माका प्रकोप करता है। इसलिये श्लेष्मरोग की शान्ति उष्ण कालमें होती है, ग्रीष्ममें पित्त कोपको प्राप्त होता है और उसी पित्तकी शान्ति वर्षामें देखी जाती है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ वायुका कोप।

अधोवातमूत्रपुरीषस्य रोधात् कषायातिशीताग्निशाजागरेषु ॥ व्यवायेऽथ वाहःश्रमाद्वातिभुक्त्याऽध्वनि प्रायशो भाषणेनाति-भीत्या ॥ ५२ ॥ विरूक्षैरतिक्षारतिक्तैः कटूभिस्तथा यानदोलाश्व-कोष्ट्रे रथे वा ॥ खरे कुञ्जरे मन्दिरारोहणेनोपवासे भवेन्मारुतस्य प्रकोपः ॥ ५३ ॥ सुशीते दिने दुर्दिने स्नानपीतेऽपराह्णे निशा जागरे वासरे वा । प्रकोपं मरुद्याति वर्षास्ववश्यं तथा सेवितो याति भुक्तस्य जीर्णम् ॥ ५४ ॥ मसूराः कलायाश्च निष्पावकाश्च महामाषगुञ्जा यवाश्चामलाः स्युः ॥ महाचावलाः कृष्णधान्याः प्रदिष्टा हिमाः कङ्गुनीवाररक्ताश्च शाल्यः ॥ ५५ ॥

१ वर्षशब्दः अकारान्तोऽपि वृष्टिवाचकः (श.स्तो,) २ ('भुजङ्गप्रयातं भवेद्यैश्चतुर्भिरिति वृत्तरत्नाकरानुरोधात्'' द्वितीययगणे त्रवर्णस्य दैर्घ्यमावश्यकं परमार्षत्वात् क्षन्तव्यमिति।

तथा कोद्रवश्चाग्रश्यामाक एतैः कृतं चौदनं वा यवागू[1]श्रृतं वा ॥ कलिङ्गानि वास्तूकचिल्लीकपूती पलाण्डुस्तथा गृञ्जनं कन्दशाकम् ॥ ५६ ॥ इमान्सेवितात्यर्थमेति प्रकोपं समीरस्य चोक्तः सुरासम्भवस्तु ॥ ततो यत्नतो रक्षणीयं मनुष्यैः शुभं चेहसे त्वं सदा रोगशान्तिम् ॥ ५७ ॥

अधोवात--मूत्र--विष्ठा--के रोकनेसे कसैले और शीतल पदार्थको सेवनेसे और रात्रिमें जागनेसे, मैथुनके करनेसे, नित्यप्रति श्रम करनेसे, अति भोजनको खानेसे और मार्गमें अति चलनेसे, ज्यादे बोलनेसे, अति भयसे ॥ ९२ ॥ रूखे पदार्थसे और अत्यंत नमकीन कडुआ, चर्चरा, खानेसे, डोला अर्थात् पीनस—घोडा, ऊंट, रथ, गधा, हस्ती और ऊंचे मकानमें चढनेसे उपवासे रहनेसे वायुका प्रकोप होता है ॥ ९३ ॥ बहुत शीतल दिनमें मेघआदिसे आच्छादित हुए दुर्दिनमें दुपहरके पीछे स्नान करनेसे तथा रात्रिमें जागकर जल पीनेसे और वर्षाऋतुमें दिनमें वायु कोपको प्राप्त होता है और सेवित किया वायु कियेहुए भोजनको जराता है ॥ ९४ ॥ मसूर, मटर, मोठ, चौला, जुवार, जव, मोटेचावल, कृष्णअन्न, शीतल अन्न, कांगनी, नीवार धान्य, लाल अन्न, तूरीअन्न ॥ ९५ ॥ कोदूअन्न, शामकका भात या मांड, इन्द्रजव, बथुवा, चाकवत अर्थात् बथुवा विशेष, प्याज, गाजर, कंद शाक ॥ ९६ ॥ इनके जादें सेवनेसे वायुका प्रकोप होता है। इसलिये यदि तुम शुभ और रोगकी शान्ति सदा चाहते हो तो मनुष्योंको इनसे सदा बचाना ॥ ९७ ॥

अथ पित्तप्रकोपकानिदान ।

तथात्युष्णकट्वम्लरूक्षैर्विदाहैः ससीधुसुरासेवनेनोपवासैः ॥ सुधर्मेण क्रोधेन वा स्वेदलेन व्यवायेन वा याति कोपञ्च पित्तम् ॥ ५८ ॥ कुलित्थाढकीयूषमूलाकशिग्रुशठीसर्षपाराजिकाशाकसेव ॥ निशाजागरेणापि युद्धे श्रमे वा घनान्ते शरत्सु प्रकोपः प्रदिष्टः॥५९॥सदम्लेन वाप्युष्णकाले शरत्सु भृशं वासरे मध्यमे वा निशीथे ॥ सुजीर्णे रसे भुक्तमात्रे प्रकोपः प्रदिष्टो विदैः कोविदैः पैत्तिकः स्यात् ॥ ६० ॥

अतिगर्म, चर्चरा, खट्टा, रूखा, और विदाही, सीधू तथा मदिराके, सेवनेसे, गर्मीसे, क्रोधसे पसीना निकालने और भोग करनेसे पित्त कोपको प्राप्त होता है ॥ ९८ ॥ कुलथी

[1] 'यवागूरुष्णिका श्राणा विलेपी तरला च सा' इत्यमरः । यवागू षड्गुणजले सिद्धा स्यात् कृष्णा घना। "तण्डुलैर्मुद्गमाषैश्च तिलैर्वा साधिता हिता । यवागूर्ग्राहिणी बल्या तर्पणी वातनाशिनी ॥ शार्ङ्गधरे।

अरहरका यूप, मूली, सहिंजना, कचूर, सरसों और राईका शाक अथवा इन्होंसे संयुक्त शाक खानेसे और वर्षाऋतुमें रात्रिके जागने, युद्ध करने, परिश्रम करनेसे शरद्ऋतुमें पित्त कोपको प्राप्त होता है ॥ ५९ ॥ अति खट्टे पदार्थसे, गरम समयमें, अतिशय करके दिनके मध्यभागमें, अर्ध रात्रिमें, भोजनका रस जीर्ण होते समय और खानेहीके समय विद्वान् वैद्योंने पित्तका प्रकोप बताया है ॥ ६० ॥

अथ कफप्रकोपकानिदान।

निशाजागरे वासरे वातिनिद्रा सुशीतोदसंसेवने शीतले वा ॥ पयःपानपीयूषसिक्षुस्तिलैस्तु तथा गृञ्जनैः कन्दशाकैरथापि ॥ ६१ ॥सदा सेवितैर्वास्तुकैश्चाणुमत्स्यैर्दधि[1] पिच्छिलैर्माषमद्यै-र्गुरुभिः॥अतिस्निग्धसंसेवनैर्भोजनेषु प्रदिष्टः कफस्य प्रकोपो वसन्ते॥ ६२ ॥ दिनान्ते प्रभाते निशान्ते नरस्य प्रकोपः प्रदिष्टोऽपि भुङ्क्ते न जीर्णे॥प्रदिष्टो बुधैःकोविदैरेव रोगःकफस्योपपत्तिं च जानीहि कष्टाम् ॥ ६३ ॥ सशीतेऽथवा शीतकाले निशान्ते नरस्य प्रकोपः प्रदिष्टोऽपि भुक्तेः॥ न जीर्णे प्रदिष्टो बुधै रोगवेगो निदानं कफस्येति चोक्तं सुधीभिः॥ ६४ ॥

रात्रिमें जागनेसे और दिनमें अति शयन करनेसे और सुन्दर शीतल पानीको तथा शीतल देशको सेवनेसे,नवीन ब्याई गायका दूध, ईख, तिल, गाजर, कन्दशाकके सेवनेसे ॥ ६१ ॥ बकराके अण्डे तथा मछलीको सदा सेवनेसे और दही,लवसादार पदार्थ, उडद, मदिरा, भारी पदार्थ, अतिचिकने पदार्थ सेवनेसे वसन्तमें दुष्ट हुए कफका कोप होता है ॥ ६२ ॥ दिनके अन्तमें, प्रभातमें, रात्रिके अन्तमें, भोजनके न पकनेसे कफका कोप होता है इसे विद्वान् वैद्य रोग ही कहते हैं इस भांति कफकी उत्पत्ति कष्ट करनेवाली जानो ॥ ६३ ॥ शीतल देशमें, शीतल समयमें, रात्रिके अन्तमें,भोजनको नहीं जीर्ण होनेमें, मनुष्यके कफका प्रकोप बुद्धिमानोंने कहा है ॥ ६४ ॥

अथ दो दोषोंके कोपकी उत्पत्ति।

ऋतौ विपर्य्यासगते यदा च प्रकोपनं यस्य यथा प्रदिष्टम् ॥ तत्सेवमानस्य नरस्य रोगः स्याद्द्वन्द्वजो नाम विकारकारी ॥ ६५ ॥ यस्मिन्नृतौ वातविकोप उक्तस्तस्मिन्यदि श्लेष्मविकोपनानि ॥ संसेवते वा मनुजस्तदास्य भवेत्प्रकोपःकफवात-

1 अत्र छन्दोभङ्गः।

योश्च ॥ ६६ ॥ यस्मिन्मरुत्कुप्यति सेवते यः पित्तस्य कोपप्र-
कराणि यानि ॥ विपर्य्ययो वा ऋतुधान्ययोश्च स पित्तवातप्रभ-
वस्तदा स्यात् ॥ ६७ ॥

जब विपरीतपनेको ऋतु प्राप्त हो जावे तब जिसका कोप जैसे कहा है उसको सेवने-वाले मनुष्यके द्वंद्वज अर्थात् दो दोषोंसे उपजा रोग उत्पन्न होता है ॥ ६५ ॥ जिस ऋतुमें वायुका कोप कहा है उस ही ऋतुमें जो कफको कुपितकरनेवाले पदार्थोंको मनुष्य सेवे तब उस मनुष्यके कफका और पित्तका कोप होता है ॥ ६६ ॥ जिस ऋतुमें वायु कोपता है उस ऋतुमें पित्तको कुपित करनेवाले पदार्थोंको सेवें अथवा ऋतुका और ऋतुके योग्य अन्नका विपरीतपना होवे तब पित्त वातसे उपजा रोग होता है ॥ ६७ ॥

अथ सन्निपातकी उत्पत्ति।

विपर्य्यासगते काले रसे विपरिसेविते ॥ तदा स्यात्सन्निपातो
हि रोगोपद्रवकारकः ॥ ६८ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे
दोषप्रकोपो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जब काल विपरीतपनेसे वर्ताव करे और रस भी विपरीतपनेसे सेवित किया जावे तब सन्निपात उपजता है यह रोगमें उपद्रव करता है ॥ ६८ ॥ इति बुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रि-अनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने दोषप्रकोपो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अथ रसोंके गुणदोषका वर्णन।

अथातः संप्रवक्ष्यामि रसानाञ्च गुणागुणान् ॥
येन विज्ञानमात्रेण रसानां गुणविद्भवेत् ॥ १ ॥

इसके अनन्तर रसोंके गुण और दोषको कहता हूं जिसके जाननेसे ही रसोंके गुणको जाननेवाला होजाता है ॥ १ ॥

छः रस।

तिक्तः कषायो मधुरोऽम्लकश्च क्षारः कटुः षड्रसनामधेयम् ॥
द्वयं द्वयं वातकफप्रकोपनं[1] द्वयं तथा पित्तकरं वदन्ति ॥ २ ॥

मधुर, कसैला, कडुआ, खट्टा, खारा, चर्चरा ऐसे छः प्रकारके रस हैं इन्हेंमें दो दो रस वात और कफको कोपते हैं और दो रस पित्तको करते हैं ॥ २ ॥

---

१ अस्मिन्तृतीयचरणे एकाक्षराधिक्यमस्ति।

षड्रसके गुणदोषवर्णन ।

क्षारः कषायः पवनप्रकोपी कफप्रकोपी मधुरोऽथ तिक्तः ॥
कट्वम्लकौ पित्तविकारिणौच कट्वम्लकौ वातशमौ प्रदिष्टौ॥३॥
पित्तस्य नाशी मधुरः सतिक्तः कटूकषायौ शमनौ कफस्य ॥
अन्योन्यमेतच्छमनं वदंति परस्परं दोषविवृद्धिमन्तः ॥ ४ ॥

खारा और कसैला रस वायुको कोपता है, मधुर और कडुआ रस कफको कोपता है, चर्चरा और खट्टा रस पित्तके विकारको करता है, और कटु तथा खट्टा रस वातको शांत करता है ॥३॥ मधुर और कडुआ रस पित्तको नाशता है,चर्चरा और कसैला रस कफको शांत करता है यही एक दूसरेके दोषको शमन करता है और परस्पर मिलकर दोषको बढ़ाते हैं ॥ ४ ॥

अथ रसगुणोंके गुणकर ।

मधुरकटुकावन्योन्यस्य प्रकर्षविधायिनौ लवणवियुतोऽम्लीकः प्रोक्तो विशेषरसानुगः ॥ अविकृतस्तथा तिक्तैर्युक्तः कषायरसो लघुर्भवति सुतरां स्वादुः श्रेष्ठो गुणं प्रकरोति वै ॥ ५ ॥

मधुर और चर्चरा रस आपसके प्रकर्षको करते हैं । नमकसे विशेष करके युक्त हुआ खट्टा रस विशेष रसके पश्चात् गमन करता है, विकारको नहीं प्राप्त होता और कडुआ रससे युक्त हुआ ऐसा कसैला रस हलका होता है और अच्छीतरह स्वादु रस सेवित किया जावे तो गुणको करता है ॥ ५ ॥

वातादिविरुद्धरस ।

कटुतिक्तकषायाश्च कोपयंति समीरणम् ॥
कट्वम्ललवणाः पित्तं स्वाद्वम्ललवणाः कफम् ॥ ६ ॥

चर्चरा, कडुआ, कसैला ये रस वायुको कोपते हैं, चर्चरा, खट्टा, नमकीन रस पित्तको कोपते हैं. मधुर, खट्टा, सलोना ये रस कफको कोपते हैं ॥ ६ ॥

दोषोंके विरोधी रसोंका वर्णन ।

समीरणे तु नो देयाः कटुतिक्तकषायकाः ॥
पित्ते कट्वम्ललवणाः स्वाद्वम्ललवणाः कफे ॥ ७ ॥

चर्चरा, कडुआ, कसैला रस वायुमें नहीं देने चाहिये । चर्चरा, खट्टा, सलोना रस पित्तमें नहीं देने चाहिये । मधुर, खट्टा, सलोना, रस कफमें नहीं देने चाहिये ॥ ७ ॥

वातादिकोंमें रसयोजना ।

स्वाद्वम्ललवणान्वाते तिक्तस्वादुकषायकान् ॥
पित्ते कफे तिक्तकटुकषायान्योजयेद्रसान् ॥ ८ ॥

मधुराम्लौ क्षारकटुकौ तिक्तकषायकौ चैत्येतावन्योन्यरसविरोधिनौ न भवेताम्[1]।

वायुमें मधुर, खट्टा, सलोना रस युक्त करे, पित्तमें कडुआ, मीठा, कसैला रस युक्त करे, कफमें कडुवा, चरपरा, कसैला रस युक्त करे ॥ ८ ॥ मधुर रस और खट्टा रस अविरोधी हैं । खारा और चर्चरा रस अविरोधी हैं, कडुआ और कसैला रस अविरोधी हैं ॥

अथ मधुर रसका वर्णन ।

यः स्वादुर्भ्रमशोषहारिबलकृद्वीर्य्यप्रदः पुष्टिदः प्रह्लादं रसने करोति तदनु श्लेष्मप्रवृद्धिं ततः ॥ पित्तानां दमनः श्रमोपशमनो वृष्यो नराणां हितः क्षीणानां क्षतपाण्डुनेत्ररुजसंहर्त्ता भवेन्माधुरः ॥ ९ ॥

जो स्वादु हो भ्रम और शोषका हरता हो, बलको करता हो, वीर्यको देनेवाल हो, पुष्टिको देता हो, खानेके समय आनन्द देता हो, पीछे कफकी वृद्धिको करता हो, पित्तको हरता हो, परिश्रमको शांत करता हो, मनुष्योंको पुष्ट करता हो, क्षीण मनुष्योंका कल्याण करनेवला हो, और घाव पांडुरोगनेत्ररोगोंको हरता हो वह मधुर रस है ॥ ९ ॥

अथ कडुआरसका वर्णन ।

यस्तिक्तः कफवायुसंहृतिकरः कुष्ठादिदोषापहः शान्तः सर्वरुजापहो भ्रमहरो रुच्यो न संक्लेदनः ॥ जिह्वास्फोटकनाशनोऽथ भवति क्षीणक्षतानां हितो वक्त्रोल्लासकरः प्रकृष्टकथितो निम्बादिकास्वादकृत् ॥ १० ॥

कडुआ रस कफवायुका संहार करता है, कुष्ठआदि दोषको नाशता है, शांतस्वरूप है, सब रोगोंको हरता है, भ्रमको हरता है, रुचिकर है, गीलापन नहीं लाता, और जीभकी फुन्सियोंको नाशता है, क्षीण और घाववालोंको हित है, मुखमें आनन्दको करता है और नींव आदिके स्वादको करता है ॥ १० ॥

अथ चरपरे रसका वर्णन ।

नेत्रं स्रावयते मुखं विदहते कर्णस्य तापं वहन्बीभत्सं तनुते मुखं विकुरुते पित्तासृजः कोपनम् ॥ अग्नीनभ्युषते क्षतं विदहते जीर्णो न शस्तो भवेद्वातान्नाशयते कफस्य कटुको रौद्रो महान्दाहकः

1 न जाने कुतस्त्योऽयं विचारः सत्योऽपि महर्षिकथनसरणिं नावहति प्रतीयते प्रक्षिप्तः ।

चर्चरा रस नेत्रसे आंसू गिराता है, मुखको विशेष करके दग्ध करता है, कानोंमें जलन पैदा करता है, भयानकरूप मुखको करता है, पित्तको और रक्तको कुपित करता है, जठराग्निको जगाता है, घावको जलाता है, और पुराना चर्चरा रस श्रेष्ठ नहीं होता है, वायुको नाशता है, कफको दग्ध करता है और अति दारुणरूप है ॥ ११ ॥

अथ खट्टे रसका वर्णन ।

जिह्वाक्लेदं जनयति तथा नेत्रनिर्मीलनं च बीभत्सं वा जनयति सदा वातरोगापहारी॥ कण्डूकुष्ठक्षतरुजकरो नो हितः शोफिनः स्यादम्लः प्रोक्तो मरुतशमनोऽसृक्प्रकोपं तनोति ॥ १२ ॥

खट्टा रस जीभमें पानी लाता है, नेत्रोंको मीचता है, सब कालमें भयानकपनेको उपजाता है, वातके रोगको हारता है, खाज कुष्ट, घाव रोग उपजाता है, शोजावालेको हित नहीं है, वायुको शांत करता है, रक्तके कोपको विस्तृत करता है, ऐसा तिक्त रस कहा गया है ॥ १२ ॥

अथ कसैले रसका वर्णन ।

जिह्वां कण्ठं ग्रसति नितरां ग्राहकश्चातिसारे श्लेष्मव्याधेरुपशमकरः श्वासकासापहर्त्ता ॥ हिक्कां शूलं हरति नितरां शोधनः स्याद्व्रणानां प्रोक्तश्चायं समधिकगुणः श्रेष्ठकाषायनामा॥१३॥

कसैला रस जीभको और कंठको ग्रसता है, अतीसारको बंद करता है, कफकी व्याधिको शांत करता है, श्वास और खाँसीको नाशता है, हिचकीको और शूलको हरता है और घावोंको निरंतर शोधता है, यह रस अधिक गुणोंवाला कहा है ॥ १३ ॥

अथ खाराररसके वीर्य्यका वर्णन ।

क्षारः क्लेदं जनयति मुखेऽस्वादुरुष्णो विदाही शूलश्लेष्मारुचिहरतृषामूत्रकृच्छोषणश्च॥आमाहारं जनयति पुनर्वह्निसन्धुक्षणः स्याच्छ्रेष्ठः प्रोक्तः स हि रससहान्सर्वतो योग्यभूतः ॥ १४ ॥

इति षड्रसवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

खारा रस मुखमें ग्लानि उपजाता है, स्वादु नहीं है, गर्म है, विशेष करके दाहको करता है, और शूल, कफ, अरुचि, तृषा, मूत्र इन्होंको करता है, शोषनेवाला है, बारंवार अफाराको उपजाता है, जठराग्निको जगाता है, सब जगह योग्य नहीं है कहीं कहीं अच्छा भी है ॥ १४ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने षड्रसवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥



सप्तमोऽध्यायः ७.

अथ पानीका वर्ग ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि पानीयानि पृथक्पृथक् ॥
शृणुध्वं च समासेन गुणान्गुणविपर्य्ययम् ॥ १ ॥

अब अलग अलग पानीके गुण और अगुण संक्षेपसे कहूँगा सुनो ॥ १ ॥

अथ जलके भेद ।

द्विविधं चोदकं प्रोक्तमन्तरिक्षं तथौद्भिदम् ॥ आन्तरिक्षं तु द्विविधं गाङ्गं सामुद्रिकं पयः ॥ २ ॥ तद्वच्चतुर्विधं प्रोक्तमन्तरिक्षसमुद्भवम् ॥ भूमौ निपतितं तच्च जातं चाष्टविधं जलम् ॥ ३ ॥ गाङ्गसामुद्रविज्ञानं कथयिष्यामि सांप्रतम् ॥ धारितं येन पात्रेण लक्ष्यते तेन तद्विधम् ॥ ४ ॥

पानी दो प्रकारका कहा है आंतरिक्ष अर्थात् आकाशका, दूसरा औद्भिद अर्थात् पृथिवीका और आंतरिक्ष पानी भी दो प्रकारका है एक गांग, दूसरा सामुद्रिक ॥२॥ वैसे ही आकाशसे उपजा पानी चार प्रकारका कहा है और पृथिवीमें पतित हुआ वही पानी आठ प्रकारका है ॥ ३ ॥ गांग और सामुद्र पानीके विज्ञानको अब कहताहूँ । जिस पात्र करके धारण किया जावे उसीप्रकारसे दीखता है ॥ ४ ॥

अथ गांगपानीकी परीक्षा ।

धौतं शुद्धं सितं वस्त्रं चतुर्हस्तप्रमाणकम्॥दण्डास्त्रिहस्ताश्चत्वारश्चतुष्कोणेषु बन्धयेत् ॥५॥तस्मात्परीक्ष्यं तत्तोयं शुद्धे रौप्यमयेऽथवा ॥ कांस्यपात्रे समुद्धृत्य परीक्षेत भिषग्वरः ॥ ६ ॥ शुद्धकार्पासतूलं वा श्वेतशाल्योदनस्य वा॥पिण्डिका तत्समाक्षिप्ता श्वेततां याति सा पुनः ॥ ७॥ श्वेता तु निर्म्मला पिण्डी शुद्धश्च निर्मलं पयः ॥ तद्गाङ्गं सर्वदोषघ्नं गृहीताङ्गं सुभाजने॥८॥

धोया, शुद्ध, श्वेत चार हाथका कपड़ा तीन तीन हाथके चार दंडोंसे चारो कोनोंमें बांधे और उसमें जल छोड़के टपकावे, अथवा शुद्ध चांदीके बर्तन या काँसेके पात्रमें शुद्ध कपासकी रुई या सपेद चावलके भातकी पिण्डी छोड़े। यदि इन सब कामोंसे भी पानी साफ ही निकले तो समझ लेना चाहिये गंगाका जल है। भातकी पिंडी भी सपेद ही चाहिये और वह जल सब दोषोंका नाश करने वाला है॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

गंगाजलके गुण।

तद्धारयेच्च मतिमान्बल्यं मेध्यं रसायनम् ॥ श्रमक्लमपिपासाघ्नं कण्डूदोषनिवारणम् ॥ ९ ॥ लघु मूर्च्छातृषाछर्दिमूत्रस्तम्भविनाशनम् ॥ गाङ्गोदकस्य वृष्टिः स्याद्दिवसे वाऽदृश्यते ॥ १० ॥

बुद्धिमान् मनुष्य इसे धारण करे,यह बलमें हित है, पवित्र है, रसायन है,और ग्लानि, परिश्रम, प्यास इन्होंको हरता है, खाजके दोषको दूर करता है ॥९॥ हलका है और मूर्च्छा, तृषा, छर्दि और मूत्रस्तंभको नाशता है अथवा सूर्यके दीखते हुए जो वर्षता है वह गांगपानी है१०॥

अथ सामुद्र पानीका लक्षण और गुण दोष वर्णन।

आविलं समलं नीलं घनं पीतस्तथापि च॥सक्षारं पिच्छिलं चैव सामुद्रं तन्निगद्यते ॥ ११ ॥ सघनं कफकृच्चैव कण्डूश्लीपदकारकम् ॥ सवातलं च विज्ञेयं रक्तदोषार्त्तिकारणम् ॥ १२ ॥

साफ न हो, मलसे सहित हो, नीला हो, भारी हो, पीला हो, खारसे संयुक्त हो, गाढा हो, तो उसको सामुद्रपानी कहते हैं ॥११॥ यह घनाहोता है, कफको करता है, खाजको और श्लीपद रोगको उपजाता है, वातल है, रक्तके रोगोंकी पीड़ाकी जड़ है ॥ १२ ॥

अथ चार प्रकारकी वृष्टि।

द्विविधमुदकं प्रोक्तं तथा वक्ष्ये चतुर्विधम् ॥
रात्रिवृष्टिर्दिवावृष्टिर्दुर्दिनावाक्षणोद्भवा ॥ १३ ॥

इस तरह गांग और समुद्र भेदसे दो प्रकारका जल कहा,अब चार प्रकारका कहूँगा।रात्रिको दिनकी, दुर्दिनकी और चलते वादलोंकी इस तरह चार प्रकारकी वृष्टिके चार ही भांतिके जल होते हैं ॥ १३ ॥

अथ रात्रिमें वर्षाहुए पानीके गुण दोष वर्णन।

निशाजलं कफकरं घनशीतगुणात्मकम् ॥
सामुद्रतोयस्य समं विज्ञेयं वातकोपनम् ॥ १४ ॥

रात्रिमें वर्षा हुआ पानी कफको करता है, भारी है, शीतल गुणवाला है, सामुद्रसंज्ञक पानीके समान है और वातको कोपता है ॥ १४ ॥

अथ दिनको बरसे पानीके गुण दोष वर्णन।

दिवा सूर्य्यांशुतप्ताश्च मेघा वर्षन्ति यत्पयः ॥
तत्कफघ्नं पिपासाघ्नं लघु वातप्रकोपनम् ॥ १५ ॥

दिनमें सूर्यके किरणोंसे तप्त हुए जो मेघ पानी वर्षाते हैं वहकफको नाशता है, प्यासको हरता है, हलका है, वातको कुपित करता है ॥ १५ ॥

अथ दुर्दिनमें बरसे पानीके गुण दोष वर्णन।

दुर्दिने वृष्टिसम्पातं वातभूतं सवातलम् ॥
कफकृच्छोषहननं तर्पणं दोषकोपनम् ॥ १६ ॥

दुर्दिनमें वर्षा हुआ पानी वातल है, कफको करता है, शोषको हरता है, तृप्तिको, करता है। दोषोंको कुपित करता है ॥ १६ ॥

अथ क्षणवृष्टिके गुण।

तथा वा क्षणवृष्टिश्च दोषरोगकरी नृणाम् ॥
कण्डूत्रिदोषजननं पानीयं न प्रशस्यते ॥ १७ ॥

जो क्षण क्षण में वृष्टि होती है वह वर्षा मनुष्योंके दोषको और रोगको करती है और इसका पानी खाजको और त्रिदोषको उपजाता है और अच्छा नहीं है ॥ १७ ॥

अथ श्रावणवृष्टिके गुण।

मेघा वसन्ति यत्तोयं सशैलवनकानने ॥
श्रावणे निन्द्यते भूमौ कराम्बु वर्षते रविः ॥ १८ ॥

जो श्रावणके महीनेमें सूर्य अपनीकिरणोंसे पर्वत, वन, उपवन और पृथ्वीमें वर्षा करताहै, वह निंदित जल होता है (करांबु वर्षते रविः) इसका अर्थ हस्तनक्षत्रपर सूर्य होता है और श्रावणमें मेघ वर्षता है वह निंदित है ऐसा कहते है ॥ १८ ॥

अथ भादोंके वृष्टिके गुण।

सघनं नाभसं नीरं श्लेष्मकृद्वातकोपनम् ॥
शमनं पित्तरोगाणां मधुरं रक्तदोषकृत् ॥ १९ ॥

भादोंकी वर्षाका पानी गाढ़ा है, कफको करता है, वातको कोपता है, पित्तके रोगोंको शांत करता है, मधुर है और रक्तदोषको करता है ॥ १९ ॥

अथ आश्विनीकी वृष्टिके गुण।

रूक्षं पित्तकरं चाम्लं गुल्मरक्तविकारकृत् ॥
चित्रानक्षत्रसम्भूतं खरं सस्यविदोषकृत् ॥ २० ॥

आश्विनमें हुई वर्षाका पानी रूखा है, पित्तको करता है, खट्टा है, गुल्मको और रक्तके विकारको करता है, चित्रा नक्षत्रमें वर्षा हुआ पानी तेज है और खेतीके दोषको करता है ॥ २० ॥

अथ कार्तिककी वृष्टिके गुण।

कार्तिकीवृष्टिसम्भूतं स्वातिसन्तापशीतलम् ॥ नाशनं च त्रिदोषाणां सर्वसस्यप्रवर्धनम् ॥ २१ ॥ शीतलं बलकृद्वृष्यं विदाहज्वरनाशनम् ॥

कार्तिककी वर्षाका पानी स्वातिके संतापको शीतल करता है, त्रिदोषको नाशता है, सब प्रकारकी खेतीको बढ़ाता है ॥ २१ ॥ शीतल है, बलको करता है, पुष्टिमें हित है, पित्त-ज्वरको हटाता है ॥

अथ स्वातीजलके गुण।

क्वचित्पुण्यतरे देशे शरद्वर्षति माधवम् ॥ २२ ॥ पित्तज्वर-विनाशाय सस्यनिष्पत्तिहेतवे ॥ अम्बरस्थं सदा पथ्यममृतं स्वातिसम्भवम् ॥ २३ ॥ गगनाम्बु त्रिदोषघ्नं गृहीतं यच्च भाजने ॥ बल्यं रसायनं मेध्यं यन्त्रापेक्ष्यं ततः परम् ॥ २४ ॥

कहीं कहीं अति पवित्रदेशमें शरदृऋतु उत्तम पानीको वर्षाता है ॥ २२ ॥ यह पित्तज्वरको हरता है और खेतीकी सिद्धिका कारण है। स्वातीनक्षत्रमें आकाशसे गिरा जल पथ्य है, अमृत-रूप है ॥ २३ ॥ सुन्दरपात्रमें गृहीत किया आकाशका पानी त्रिदोषको नाशता है, बलमें हित है, रसायन है, पवित्र है। भभकेका खींचा हुवा जल इससे परे जानना ॥ २४ ॥

अथ अकालवृष्टिके लक्षण और गुण।

अनार्त्तवं विमुञ्चन्ति जलं जलधरास्तु यत् ॥
पतितं तत्त्रिदोषाय सर्वेषां देहिनामपि ॥ २५ ॥

जो वादल समयके विना पानीको वर्षाते हैं वह पानी सब मनुष्योंके त्रिदोषको करता है ॥ २५ ॥

अथ अकालमें वर्षे हुए पानीका लक्षण।

अकाले वृष्टिसन्तापसम्भूतं तद्विकारकृत् ॥
विशेषाच्छ्लेष्मरोगाणां कारणं न प्रशस्यते ॥ २६ ॥

अकालमें वृष्टि और संतापसे उत्पन्न वह जल विकारी है। विशेष करके श्लेष्माके रोगोंका हेतु है उसकी प्रशंसा नहीं ॥ २६ ॥

अथ धारसंज्ञक आदि चार प्रकारके पानीका लक्षण।

तथा धारं च कारं च तौषारं हैममेव च ॥
चतुर्विधं समुद्दिष्टं तेषां वच्मि गुणागुणान् ॥ २७ ॥

धार, कार, तौषार, हैम इन भेदोंसे पानी चार प्रकारके हैं उन्होंके गुण और दोषको कहता हूँ । (धार वृष्टिका जल, कार, ओलोंका जल, तुषार ओसका पानी और हैम वर्फका जल है) ॥ २७ ॥

अथ कारजलकी उत्पत्ति ।

धारं चतुर्विधं प्रोक्तं वक्ष्ये कारं महामते ॥ श्रीमतामतिप्रज्ञानां हिताय रुजशान्तये ॥ २८॥ स्वर्णद्याः शीतवातेन मेघविस्फूर्जसङ्कुलम् ॥ शीताम्बु कठिनं भूत्वा शिलं जातं हिमेन तु ॥ २९ ॥ पश्चात् सूर्य्यस्य सन्तापात्किञ्चिद्वै द्रवते जलम् ॥ वमन्ति मेघाः सलिलशकलं शीतलं मतम् ॥ ३० ॥

धारसंज्ञक पानीको गंगआदि चार प्रकारसे मैं कह चुका हूँ । अब हे महामते ! कारसंज्ञक पानीको कहूँगा जो श्रीमान् और वड़े पंडितोंके कल्याणके लिये और रोगकी शांतिके लिये है कहता हूँ ॥ २८ ॥ गंगाके शीतल वायुसे और मेघकी गर्जनासे मिला शीतल जल ठंढ़कके मारे ओला बन जाता है ॥ २९ ॥ पीछे सूर्यके संतापसे कुछ जल द्रवित हो जाता है तब मेघ पानीके किनके अर्थात् ओलोंको वर्षाते हैं उन्हींका पानी शीतल माना है ॥ ३० ॥

अथ कारजलके गुण ।

कारं शीतगुणैः श्रमोपशमनं शोषार्त्तिनिर्णाशनं मूर्छामोहशिरोऽर्तिनाशनकरं हिक्कावमेर्वारणम् ॥ शोफानां व्रणिनां तु दोषशमनं पित्तात्मिकानां हितं शंसंति प्रवरं गुणैः प्रतिदिनं तस्मान्न दूरे कृतम् ॥ ३१ ॥

यह कारसंज्ञक ओलोंका पानी शीतके गुणोंसे परिश्रमको शांत करता है और शोषरूपी पीड़ाको नाशता है और मूर्छा, मोह और शिरकी पीडाको नाशता है, हिचकी और छर्दिको दूर करता है, शोजावालोंके और घाववालोंके दोषको हरता हैं और पित्तकी प्रकृतिवालोंकोहित है, गुणोंसे श्रेष्ठ है, प्रति दिन इस लिये दूर नहीं किया जाता ऐसा लोग कहते हैं ॥ ३१ ॥

अथ तुषारपानीके गुण ।

तौषारं लघु शीतलं श्रमहरं पित्तार्त्तिशान्तिप्रदं दोषाणां शमनं जलार्तिहननं सर्वामयघ्नं परम् ॥ कुष्ठश्लीपदचर्चिकाविषहरं पामाविसर्पापहं क्षीणानां क्षतशोषिणां हितकरं संसेव्यते मानवैः ३२

तौषारसंज्ञक ओसका पानी हलका है,शीतल है, श्रमको हरता है,पित्तके रोगको शांत करता है,दोषोंको शांत करता है, जलके रोगको हरता है, सब रोगोंको नाशता है और कुष्ठ,श्लीपद रोग और मकडीके विषको नाशता है, पामाको और विसर्परोगको हरता है, क्षीणपुरुषोंको और क्षितशोषियोंको हितकारी है इसवास्ते मनुष्योंको सेवना चहिये ॥ ३२ ॥

अथ हिमपानीके गुण।

हैमं घनञ्च मधुरञ्च कफात्मकञ्च मूर्छाश्रमार्तिशमनं भ्रमनाशनञ्च ॥ पित्तासृजः प्रशमनं रुधिरक्षमञ्च शान्तिं करोति हिमरूस्ववारि सद्यः ॥ ३३ ॥

हैमसंज्ञक वर्फका पानी भारी है,मधुर है,कफकारी है, मूर्च्छाको,श्रमको और भ्रमको हरता है, रक्तपित्तको शांत करता है, रक्तको वंद करता है और शान्तिको शीघ्र करनेवाला है ॥ ३३ ॥

अथ धार पानीके गुण।

धारं पृथिव्यां पतितं पयस्तु तत्रैव जातं गुणभेदभिन्नम् ॥ नानाविधैर्भेदगुणैश्च सम्यग्जातं जलं चाष्टविधं वदन्ति ॥३४॥

धारसंज्ञकपानी पृथिवीमें पतित हुआ वहां ही गुणोंके भेदोंसे भिन्न हो जाता है, पीछे अनेक प्रकारके भेद गुणोंसे अच्छीतरह संयुक्त हुआ वही पानी आठ प्रकारसे कहा है ॥ ३४ ॥

अथ नदीआदिके आठ प्रकारका जल।

नद्यौद्भिदं प्रस्रवणं च चौंड्यं कौपं तडागं सरसोद्भवञ्च ॥ वाप्युद्भवं तत्प्रवदन्ति धीरा नीरं समासेन वदन्ति चात्र ॥३५॥

नदीका, पृथ्वीका, झरनेका, चौंडयका, कूपका, तडागका, सरसका और बावडीका जल धीर लोग बताते हैं अर्थात् इतनीभांतिका जल और भी होता है ॥ ३५ ॥

अथ नदीके पानीका गुण।

यच्छ्रीमताञ्चैव महीपतीनां सेव्यं तथा योग्यतमं प्रदिष्टम् ॥ लघ्वम्बु नादेयमिदं प्रियं[1] च रूक्षं तथोष्णं शमनञ्च वायोः॥३६॥ सन्दीपनं सस्यविनाशनञ्च हिमागमे वा शिशिरे निषेव्यम् ॥ बलप्रदं पथ्यकरं नराणां प्रदिष्टमेतत्तु सदा भिषग्भिः ॥३७॥

नदीका पानी लक्ष्मीवालोंको और राजालोगोंको अतियोग्य कहा है और लघु है, मधुर है, रूखा है, गरम है, वायुको शांत करता है ॥३६॥ जठराग्निको जगाता है, खेतीको नाशता है, शीतके आगमनमें अथवा शिशिरऋतुमें सेवने योग्य है और बलको देता है, मनुष्योंको पथ्य है ऐसे पंडितोंने सब कालमें कहा है ॥ ३७ ॥

---

१ "स्वादुप्रियौ तु मधुरौ" इत्यमरः।

अथ औद्भिद पानीका गुण दोष ।

औद्भिदमुष्णं लघु वातहारि सपैत्तिकं तृड्ज्वरनाशनञ्च ॥
कुष्ठव्रणानां श्रमशोषिणाञ्च शस्तं न च क्षारगुणोपपन्नम् ॥३८॥

पृथिवीको विदारित कर बड़ी धारासे निकलनेवाला पानी औद्भिद कहाता है,यह पानी गरम है, हलका है, वातको हरता है,पित्तसे संयुक्त है,तृषाको और ज्वरको नाशता है,कुष्ठ और घाववालोंको, श्रम और शोषवालोंको श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि नमकके गुणसे युक्त है ॥ ३८ ॥

अथ झरनेके पानीका गुण दोष ।

उष्णं कषायं स्रवणोद्भवञ्च श्लेष्मापहं गुल्महृदामयघ्नम् ॥
कण्डूविसर्पक्षयरोगकारि नानाविधं दोषचयं करोति ॥३९॥

पर्वतके झरनासे उपजा पानी गरम है, कसैला है, कफको हरता है, गुल्मरोगको और हृद्रोगको नाशता है, खाज, विसर्परोग और क्षयरोगको करता है, और अनेक प्रकारके दोषोंको संचित करता है ॥ ३९ ॥

अथ चौंडचसंज्ञक पानीका गुण दोष ।

वदन्ति चौंडचं लवणं तथा गुरु कफात्मकं वारि विकारकर्तृ॥
हिक्काज्वरं शूलमरोचनं तथा करोति नूनं त्वचि दोषसंग्रहम्॥४०

आप ही शिलासे आकीर्ण हुआ छिद्रमें नीले अंजनके समान पानी हो और लता वेल आदिसे आच्छादित हो तिसको चौंडयसंज्ञक पानी कहते हैं यह पानी सलोना है भारी है,कफको करता है, विकारको उपजाता है हिचकी, शूल, अरोचकको उपजाता है और त्वचा अर्थात् खालमें दोषको और रोगको उपजाता है ॥ ४० ॥

अथ कुयेंके पानीके गुण दोष ।

रूक्षं कफघ्नं लवणात्मकञ्च सन्दीपनं पित्तकरं लघूष्णम् ॥
कौपं जलं वातहरं प्रदिष्टं शरद्दतौ नैव हितं न शस्तम् ॥४१॥

कुयेंका पानी रूखा है, कफका नाश करता है, नमकसे संयुक्त है, अग्निको जगाताहै, पित्तको करता है, हलका है, गर्म है, वातको हरता हैऐसा कहा गया है,किन्तु शरदृतुमें न तो हितकर है न प्रशंसनीय है ॥ ४१ ॥

अथ तलावके पानीके गुण दोष ।

घनं कषायञ्च तडागजं स्यात्स्वादु प्रपाके मधुरं तथैव ॥
सरस्तु शस्तं कफकृत्सवातं ग्रीष्मे हितं न प्रवदन्ति धीराः॥४२॥

सुंदर पृथिवीके भागमें जहां बहुत वर्षाका पानी इकट्ठा हो उसको तलावका पानी कहते हैं । यह गाढा है, कसैला है, स्वादु है,पाकमें मधुर है, शरदृतुमेंअर्थात् आश्विन, कार्तिकमें श्रेष्ठहै, कफको करता है,वायुसे सहित है,ग्रीष्मऋतु अर्थात् ज्येष्ठ आषाढमें हित नहीं है ॥ ४२ ॥

अथ सारसपानीके गुणदोष ।

क्षारं घनं वातकफानुकारि त्वग्दोषदं वा कटु दीपनं च ॥
प्रोक्तं विपाके श्रमशोषकारि स्यात् सारसं नो सुखकारि वारि ४३

पर्वतकी शिला आदिसे रुकी हुई नदीका पानी जहां झिरके इकट्ठा होवे उसको सारसपानी कहते हैं। यह पानी खारा है, भारी है,वातको और कफको करता है और खालमें दोषको उपजाता है, कडुआ है, अग्निको जगाता है, पाककालमें श्रमको और शोषको करता है और सुखको देनेवाला नहीं है ॥ ४३ ॥

अथ बावड़ीके जलके गुण ।

क्षारं कवोष्णं कफवातरोगविनाशनं पित्तकरं कटु स्यात् ॥
शस्तं सदा पित्तविकारिणाञ्च शस्तं न वाप्यं शरदि प्रदिष्टम्॥४४

बावड़ीका पानी खारा, कुछ थोडा गरम, कफ वात रोगोंको नाश करनेवाला, पित्तकारक, तीखा और पित्तविकारी मनुष्योंको सदा हितकारी है, परन्तु शरदृतुमें हितकारी नहीं है ॥ ४४ ॥

अथ नदियोंकी प्रकृति ।

इति चाष्टविधं प्रोक्तं जलं भिषजसत्तमैः ॥
नादेयं संप्रवक्ष्यामि समुद्रंगामिस्रोतसाम् ॥ ४५ ॥

ऐसे उत्तम वैद्योंने पानी आठ प्रकारसे कहा है। अब नदियोंमें समुद्रको जानेवाली नदियोंका जल कहूँगा ॥ ४५ ॥

तथा प्राच्यां गमाश्चान्याः पश्चिमानुगमास्तथा ॥तासां गुणागुणान्वक्ष्ये समासेन गुणोत्तम ! ॥ ४६ ॥ ससैकता सपाषाणा द्विविधा चाम्बुवाहिनी ॥ एवं चतुर्विधा नद्यो वातपित्तकफात्मिकाः ॥ ४७ ॥

पूर्वमें गमन करनेवाली और पश्चिममें गमन करनेवाली जो नदियां हैं उनके गुणदोषोंको हे गुणोत्तम ! विस्तार करके कहूंगा ॥ ४६ ॥ वालुरेतवाली और पत्थरोंवाली ऐसे नदी दो प्रकारसे हैं और पूर्वोक्त दोनोंके मिलनेसे चार प्रकारकी नदी हैं, ये वात पित्त कफसे संयुक्त हैं ॥ ४७ ॥

अथ सदा बहनेवाली नदीके गुण दोष ।

सदावहा वा घनवारिकोष्णा मरुत्कफानां शमनञ्च तस्याः ॥
नीरं वसन्ते हितकृद्विशेषान्नदीभवं नैव हिमागमे च ॥ ४८ ॥

सब कालमें वहनेवाली नदियां भारी पानीवाली होती हैं, कुछ गर्म होती हैं, वायुको और कफको शांत करती हैं; तिन्होंका पानी चैत्र और वैशाख मासमें विशेष करके हितको करता है और जाडेके आगमनमें अच्छा नहीं है ॥ ४८ ॥

अथ पत्थरोंवाली नदीके गुण दोष ।

घनविमलशिलानां स्फालनाज्जातफेनं बहलसजलवीचीच्छन्नसंक्षोभहंसम् ॥ ननु लघु सुखशीतं नाति चोष्णं घनञ्च हरति पवनपित्तं श्लेष्मकृद्धारि सम्यक् ॥ ४९ ॥

भारी और विशेषकरके मलोंवाले ऐसे पत्थरोंके संयोगसे झागोंवाला और बहुतसे तरंगोंके क्षोभसे गर्मको प्राप्त हुआ और सुन्दर शीतल और अतिगर्म नहीं और भारी ऐसा पानी वातको और पित्तको अच्छीतरह हरता है और कफको पैदा करता है ॥ ४९ ॥

अथ वालूरेतवाली नदीके पानीके गुण दोष ।

सघनविमलतोयं सैकतायाः प्रवाहे न च भवति लघुत्वं श्लेष्मकृद्धन्ति पित्तम् ॥ भवति मधुरमेवं किञ्चिदुष्णं कषायं भवति पवनकारि शोषमूर्च्छां निहन्ति ॥ ५० ॥

वालूरेतके प्रवाहमें यह पानी भारी नहीं है, विशेष करके मलसे रहित नहीं है, हलका भी नहीं है, कफको करता है, पित्तको हरता है, मधुर है कुछ गर्म है, कसैला है, पवनको करता है, शोषको और मूर्च्छाको नाशता है ॥ ५० ॥

अथ उत्तरसे वहनेवाली नदियोंके और पानीके गुण दोष ।

हिमवत्प्रभवा नद्यः पुण्या देवर्षिसेविताः ॥ घनपाषाणसिकतावाहिन्यो विमलोदकाः ॥ ५१ ॥ हन्ति वातकफं तोयं श्रमशोषविनाशनम् ॥ किञ्चित्करोति वा पित्तं त्रिदोषशमनं जलम् ॥ ५२ ॥ मलयप्रभवा नद्यः शीततोयामृतोपमाः ॥ घ्नंति वातञ्च पित्तञ्च शोषभ्रमश्रमापहाः ॥ ५३ ॥ गङ्गा सरस्वती शोणो यमुना सरयू शची ॥ वेणा शरावती नीला उत्तरापूर्ववाहिनी ॥ ५४ ॥ हिमवत्प्रभवा ह्येता हिमसम्भवशीतलाः ॥ समाः सर्वगुणैर्नद्यो वातश्लेष्महरा नृणाम् ॥ ५५ ॥ आसां नवशतैर्युक्ता गङ्गा प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ तथा चर्म्मण्वती वेत्रवती पारावती तथा ॥ ५६ ॥ क्षिप्रा महापद्री पीता मुत्सकान्या मनस्विनी ॥ शेवती शैवलि-

न्यश्च सिन्धुयुक्ताः समुद्रगाः॥९७॥ वातपित्तहरं नीरं त्रिदोषघ्नं मतं परम् ॥ श्रमग्लानिहरं वृष्यमुत्तराशानुगामि च ॥ ९८ ॥

हिमालय पर्वतसे उत्पन्न हुई नदियां पवित्र हैं देवता और मुनियोंसे सेवित हैं मोटे पत्थर और वालूरेतको बहानेवाली हैं मलसे रहित पानीवाली हैं, ॥ ९१ ॥ इनका पानी वातको और कफको नाशता है,श्रमको और शोषको दूर करता है अथवा कुछ पित्तको करता है और त्रिदोषको शांत करता है ॥९२॥ मलय पर्वतसे उपजी नदियाँ शीतपानीवाली हैं अमृतके समानपानी वहती हैं और वात, पित्त, शोष, भ्रम, और श्रमको नाशती है ॥ ९३ ॥ गंगाजी, सरस्वती, शोण,यमुना,सरयू,शची,वेणा,शरावती, नीला ये नदियां उत्तरको और पूर्वको वहती हैं ॥९४॥ हिमालय पर्वतसे उत्पन्न हुई और बर्फके सम्भवसे शीतल हुई ऐसी ये नदी सर्वगुणोंसे समान हैं और मनुष्योंके वातको और कफको हरती हैं ॥ ९५ ॥ इन्होंमेंसे नौसौ ९०० नदियोंसे युक्त हुई गंगाजी पंडितोंने कही है तैसेही चर्मण्वती, वेत्रवती, पारावती, ॥ ९६ ॥क्षिप्रा, महापदी, पीता,मुत्सका, मनस्विनी, शैवती, शैवलिनी,सिंधु ये सब नदी समुद्रमें गमन करती हैं ॥९७॥ इनका पानी वातको और पित्तको हरता है और त्रिदोषको हरनेवाला मानाहै परिश्रमको और ग्लानिको हरता है वीर्य्यमें हित है और उत्तर दिशासे आता है ॥ ९८ ॥

अथ तापीआदिनदियोंके गुण दोष ।

तापी तापा च गोलोमी गोमती सलिला मही ॥ सरस्वतीयुता नद्यो नर्म्मदा पश्चिमानुगाः ॥ ९९॥ आसां जलं घनं पीतं पित्तघ्नं कफकृत्तथा॥ वातदोषहरं हृद्यं कण्डूकुष्ठविनाशनम्॥६०॥

तापी, तापा, गोलोमी, गोमती,सलिला, मही, सरस्वती,नर्मदा, ये पश्चिमसे बहती हैं॥९९॥ इनका पानी मीठाहै पीनेसे पित्तको नाशकरता है कफको करता है वातदोषको हरता है सुन्दर है खाजको और कुष्ठको नाशता है ॥ ६० ॥

पश्चिमाद्रिसमुद्भूता गौतमी पुण्यभावना ॥अस्या शीतं जलं वापि कफवातविकारकृत्॥पित्तदं शमनं बल्यं मूत्रदोषविकारकृत् ॥ ६१ ॥ पूर्णा पयस्विनी वेत्रा प्रणीता च वरानना ॥ द्रोणा गोवर्द्धनी यान्या गौतम्यानुगता इमाः ॥ ६२॥ आसां जलं घनं नातिवातश्लेष्मविकारकृत् ॥ पूर्वसामुद्रगाश्चैव नद्यो नवशतैर्युताः ॥ ६३ ॥ कावेरी वीरकांता च भीमा चैव पयस्विनी ॥ विभावरी विशाला च गोविन्दी मदनस्वसा ॥ पार्वती

चापरा नद्यो दक्षिणादिग्गमा इमाः ॥६४॥ प्रत्यकशो न सेवेत युक्तायाश्च पृथक् पृथक् ॥ सर्वासां परिसंख्या च शतानां चैकविंशतिः ॥ ६५ ॥

पश्चिमके पर्वतसे उपजी गौतमी पवित्रहै,इसका पानी शीतलहै,कफ और वातके विकारको करता है, पित्तकारक है, दोषशामक है, बलकारक है, मूत्रदोषके विकारको करता है ॥ ६१ ॥ पूर्ण, पयस्विनी, वेत्रा, प्रणीता, वरानना, द्रोणा,गोवर्द्धनी इत्यादि नदी गौतमी नदीके अनुगमन करतीं हैं ॥ ६२ ॥ इनका पानी अति भारी नहीं है,वातके और कफके विकारको करता है और पूर्वके समुद्रमें गमन करनेवाली नौसौ ९०० नदियां हैं ॥६३॥ कावेरी, वीरकांता, भीमा, पयस्विनी, विभावरी,विशाला,गोविंदी,मदनस्वसा,पार्वती इत्यादि नदी दक्षिणदिशाको गमन करती हैं ६४॥ एक एक नदीको नहीं सेवे, मिली हुई नदीकासेवन करे क्योंकि सब नदियोंकी २१०० इक्कीससौ संख्या अर्थात् गिनती ॥ ६५ ॥

क्रोशे क्रोशे भवेत् कुल्या योजने योजने नदी ॥
द्वियोजना च विज्ञेया महानीरा बुधैर्नदी ॥ ६६ ॥

कोश कोश में विस्तारवाली कुल्या कहाती है और चार चार कोशमें विस्तार वाली नदी कहाती हैं और आठ आठ कोशमें विस्तारवाली महानदी कहाती हैं ॥ ६६ ॥

अथ पृथिवीके भागका पानी।

भूमिः पञ्चविधा ज्ञेया कृष्णा रक्ता तथा सिता ॥ पीता नीला भवेच्चान्या गुणास्तासां प्रकीर्त्तिताः ॥६७॥ कृष्णा च मधुरा रूक्षा कषाया पीतवर्णिनी ॥ रक्ता सा च भवेत्तिक्ता मधुराम्ला सिता स्मृता ॥ ६८ ॥ नीला सकटुका चैवं भूमिभागजलं विदुः ॥ सघनं मधुरं नीरं कृष्णं भूमिपरिश्रितम् ॥ ६९॥ पीताश्रितं कषायञ्च रक्तायाः क्षारमाधुरम् ॥ सितायामम्लमधुरं भूमिभागेन लक्षयेत्॥ ७०॥तथा चतुर्विधं तोयं वक्ष्यामि शृणु कोविद ॥ पापोदकं रोगोदकमंशूदकारोग्योदकौ ॥ ७१ ॥

काली,लाल, सफेद, पीली, नीली, इन भेदोंसे पृथ्वी पांचप्रकारकी है उनके गुण कहते हैं ॥ ६७ ॥ काली पृथ्वी मधुर है, रूखी है, पीली पृथ्वी कसली है, लाल पृथिवी कड़वी है सफेद पृथिवी मधुर और खट्टी है ॥ ६८ ॥ नीली पृथिवी चर्चरी जाननी ऐसेही पृथिवीके भागका पानी कहा है, काली भूमिका जल घना, मीठा; होता है ॥ ६९ ॥ पीली पृथिवीका कसैला पानी है, लाल पृथिवीका पानी खारा और मधुर है, सफेद पृथिवीका

पानी खट्टा है, मधुर है, ऐसे पृथिवीके भागसे पानीकोलक्षित करे ॥ ७० ॥ अब पापोदक, रोगोदक, अशुद्धक, आरोग्योदक इन भेदोंसे पानीको चार प्रकारसे कहता हूं, हे कोविद! सुन ॥ ७१ ॥

अथ पापोदकका गुण दोष।

पापं पापोदकं चैव करोत्येवमरोचकम् ॥ विष्ठायुक्तं ग्राहि नीरं कृमिकीटरसाकुलम्॥७२॥ समलं नीलशैवालं पापन्तु नर्दितञ्च यत् ॥ स्नाने पाने न तच्छस्तं नराणां वा हयेषु च ॥७३॥ स्नानेन त्वग्भवान्रोगान्कण्डूकुष्ठविसर्पकृत् ॥ पानेन कफगुल्मानां कृमीणां वरसम्भवान् ॥ करोति विविधान्रोगांस्तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ ७४ ॥

पापोदकसंज्ञक पानी पापरूप है, और रुचिको विगाडता है, मलसे संयुक्त हुआ पानी कब्जको करता है और कीडे आदिसे सयुंक्त ॥ ७२ ॥ मलसे सहित, नीले शिवालसे संयुक्त, उसका शब्द भी पापसे भरा है, यह मनुष्यों और घोडोंको स्नानमें और पानमें अच्छा नहीं है ॥ ७३ ॥ यह पानी स्नानके करनेसे खालके रोग, खाज, कुष्ठ, विसर्पको करता है और पीनेसे कफको, गुल्मरोगको कृमिरोगको और, त्वचाके रोगोंको उपजाता है इससे इसे त्यागना ही चाहिये ॥ ७४ ॥

अथ रोगोदकके गुणदोष।

बहुवृक्षलताकुञ्जे छायाकूपोऽथ वा सरः ॥ अव्ययश्चेदपोऽप्येवं कृमिशैवालसंयुतम्॥७५॥क्लिन्नं सपिच्छलं कृष्णं वृक्षमूलाश्रितं भवेत् ॥ बहुवृक्षपर्णयुक्तंच दुर्गन्धं मूत्रगन्धवत् ॥ ७६॥ रोगोदकं विजानीयात्करोति विषमान्गदान् ॥ शूलं कुष्ठं च कण्डूञ्च सेवितन करोति हि ॥ ७७ ॥ विण्मूत्रतृणनीलिकाविषयुतं तप्तं घनं फेनिलं दन्तग्राह्यमनार्त्तवं हि सजलं दुर्गन्धि शैवालजम्॥ नानाजीवविमिश्रितं गुरुतरं पर्णौघपङ्काविलं चन्द्रार्कांशुसुगोपितं न च पिबन्नीरं सदा दोषलम् ॥ ७८ ॥ गुल्मप्लीहार्शः पाण्डुश्च जलं वापि जलोदरात् ॥ ७९ ॥

१ वरसंभवान् त्वक्सम्भवान् वेष्टनत्वात् वरशब्दः त्वचि वर्तते।

व बहुतसे वृक्ष और वेलोंके समूहकी छायामें जो कूप अथवा तलाव हो और उसमें पानी सदा बना रहता हो, कीडे और शिवालसे वह पानी संयुक्त हो ॥७५॥ और क्लेदपनेको प्राप्त हो और झागोंसे संयुक्त हो काला हो और वृक्षोंकी जडमें आश्रित हो और बहुतसे वृक्षोंके पत्तोंसे व्याप्त हो दुर्गंधित हो और मूत्रके गंधके समान गंधवाला हो ॥७६॥ उसे रोगोदक जानना यह विषमरोगोंको करता है और सेवनेसे शूल, कुष्ठ, खाज इन्होंको करता है ॥७७॥ अथवा विष्ठा, मूत्र, तृण, नीला शिवाल, विष इनसे संयुक्त हो और गर्म हो, गाढाहो, झागोंसेंसंयुक्त हो दंतोंको ग्रहण करता हो, अकालमें वर्षाहो दुर्गंधसे युक्त हो, शिवालसे संयुक्त हो अनेकप्रकारके जीवोंसे मिश्रितहो, अत्यंत भारी हो, पत्तोंके समूह और कीचडसे मैला हो, चंद्रमा और सूर्यकी किरणोंसे रक्षित हो, ऐसा पानी भी रोगोदक कहाता है इसको भी नहीं पीना, यह सबकालमें दोषोंको उपजाता है॥७८॥और सेवनेसे गुल्मरोग, तिल्लीरोग, बवासीर, पांडु, जलोदर इनको उपजाता है॥७९॥

अथ अंशूदकके गुणदोष ।

दिवा सूर्य्यांशुसन्तप्तं रात्रौ चन्द्रांशुशीतलम् ॥ अंशूदकमिति ख्यातं सर्वरोगनिवारकम् ॥ ८० ॥ कफमेदोनिलघ्नं च दीपनं बस्तिशोधनम् ॥ श्वासकासहरं नीरं चक्षुष्यं नेत्ररोगहृत् ॥ ८१ ॥

दिनमें सूर्यके किरणोंसे तप्त हुआ और रात्रिमें चंद्रमाके किरणोंसे शीतल हुआ ऐसा पानी अंशूदक कहा है, यह सब रोगोंको दूर करता है ॥ ८० कफ, मेद, वात इन्होंको नाश करता है, जठराग्निको जगाता है, बस्तिको शोधता है, श्वासको और खाँसीको हरता है, नेत्रोंमें हित हैं और नेत्रके रोगोंको हरता है ॥ ८१ ॥

अथ आरोग्योदकके गुणदोष ।

पादशेषन्तु कथितं तच्चारोग्यजलं विदुः ॥ कासश्वासहरं पथ्यं मारुतं चापकर्षति ॥ ८२ ॥ सद्यो ज्वरं हरत्याशु समेदं कफनाशनम् ॥ प्रतिश्यायं पाचयति शूलगुल्मार्शनाशनम् ॥ ८३ ॥ दीपनञ्च हुताशस्य पाण्डुशोफोदरापहम् ॥ अजीर्णञ्च जरत्याशु पीतमुष्णोदकं निशि ॥ ८४ ।

अग्निके द्वारा पकानेसे जो चौथाई भाग शेष रहे वह आरोग्योदक कहाता है, यह खाँसीको और श्वासको हरता है, पथ्य है, वायुको नाशता है॥ ८२ ॥नये ज्वरको शीघ्र हरता है, मेदको और कफको नाशता है, जुकाम पकाता है और शूल, गुल्मरोग, बवासीरको नाशता हैं ॥८३॥ अग्निको जगाता है और पांडुरोग, शोजा, उदररोगको हरता है और रात्रिमें पियाहुआ गर्मपानी अजीर्णको जलाता है ॥ ८४ ॥

अथ शीतपानीके गुण।

मद्यपानसमुद्भूते रोगे पित्तान्विते पुनः॥
सन्निपातसमुत्थे च तत्र शीतोदकं हितम्॥ ८५॥

मदिराके पीनेसे उपजे रोगमें और पित्तसे अन्वित हुए रोगमें और सन्निपातसे उपजे रोगमें शीतल पानी हित है॥ ८५॥

गर्मपानीके गुण।

शरदृतौ तथा ग्रीष्मे क्वथेत्पादावशेषितम्॥ शिशिरे च वसन्ते च कुर्य्यादर्द्धावशेषितम्॥ ८६॥ विपरीतमृतौ घृष्ठा प्रावृषि चार्द्धभागिकम्॥ ८७॥ क्वाथ्यमानं च निर्वेगं निष्फेनं निर्मलञ्च यत्॥ अर्द्धावशिष्टं भवति तदुष्णोदकमुच्यते॥८८॥ तत्पादहीनं वातघ्नं चार्द्धं पित्तविकारजित्॥ कफघ्नं पादशेषन्तु पानीयं लघुपाचनम्॥८९॥ धारापाते हि विष्टम्भि दुर्जरं पवनापहम्॥ शृतशीतं त्रिदोषघ्नं कफान्तश्रामि शीतलम्॥९०॥ दिवसे क्वथितं तोयं रात्रौ तद्गुरु वर्जयेत्॥रात्रौ शृतं तु दिवसे गुरुत्वमधिगच्छति॥ ९१॥

शरदृतुमें और ग्रीष्मऋतुमें पकानेमें चौथाई भाग शेष रहा पानी हित है,शिशिरमें और वसंतऋतुमें पकानेमें आधा शेष रहा पानी हित है॥ ८६॥ हेमंतऋतुमें पकानेसे तीनहिस्से शेषरहा पानी हित है और वर्षाऋतुमें पकानेमें आधा भाग शेषरहा पानी हित है॥ ८७॥ अग्निपै पकानेमें वेगसे रहितहो, झागोंसे वर्जितहो मलसे रहितहो,पकानेमें आधा भाग शेषहो तिसको उष्णोदक कहते हैं॥८८॥ पकानेमें चौथाई भाग जलाहुआ पानी वातको हरता है आधा भाग जलाहुआ पानी पित्तको हरता है तीन भाग जलाहुआ पानी कफको हरता है,ऐसा पानी हलका है पाचन है॥ ८९॥ धाराके पातसे लिया पानी विष्टंभको करता है, मुश्किलसे जरता है, वायुको हरता है, अग्निपै पकाके शीतल किया पानी त्रिदोषको नाशता है कफको हरता है, शीतल है,॥९०॥ दिनमें पकाये हुए पानीको रात्रिमें नहीं पीवे,यह भारी होजाता है और रात्रिमें पकाये हुए पानीको दिनमें नहीं पीवै यह भी भारी हो जाता है॥ ९१॥

अथ पानीविषयकविधि।

मदात्यये सदाहे च रक्तपित्ते तथोर्ध्वगे॥रक्तमेहे विशेषेण नोष्णं तोयं प्रशस्यते॥९२॥ पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे॥ आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यःशुद्धौ नवज्वरे॥ ९३॥

अजीर्णे च तथा कासे न शीतमुदकं हितम् ॥ प्रतिश्याय प्रसेके च ज्वरे कुष्ठे व्रणेषु च ॥ ९४ ॥ शोफे नेत्रामये चैव मन्दाग्नौ च तथा क्षये ॥ सूतिजातासुतानारीरक्तस्रावेऽप्यरोचके ॥९५॥ एतेषां सिद्धिमिच्छद्भिः पानीयं मन्दमाचरेत् ॥ जीर्णेच क्षुत्प्रपन्ने च पीतं हन्त्युदरानलम् ॥ ९६ ॥

मदात्यय रोग, दाह, शरीरके ऊपरले अंगोंमें प्राप्त हुआ रक्तपित्त, रक्तप्रमेह, इन्होंमें विशेषकरके गर्मपानी श्रेष्ट नहीं है ॥९२ ॥ पसली, शूल, जुकाम, वातरोग, गलग्रह, अफारा, स्तिमित, श्वासरोग, कोष्टरोग, तत्कालके जुलाब, वमनआदि, नवीनज्वर ॥९३॥ और अजीर्ण, खासीमें शीतल पानी अच्छा नहीं है और पीनस रोग प्रसेक (मुंहसे रालबहने), ज्वर, कुष्ठ, घाव ॥ ९४ ॥ शोजा, नेत्रके रोग, मंदाग्नि, क्षयरोग, सूतिका नारी, रक्तस्राव, अरोचक ॥ ९५ ॥ इनसे सिद्धिको चाहनेवाला मनुष्य अल्पपानीको पीवे भोजनको जीर्ण होनेमें क्षुधाके समय पिया हुआ पानी पेटके अग्निको नाशता है ॥ ९६ ॥

करोति गुल्मं शूलं वा तथा श्रान्ते बहूदकम् ॥ तस्माज्जीर्णऽनलं हन्ति अजीर्णे वारि भेषजम् ॥ ९७ ॥ भुक्तान्तः परतः शस्तं पीतं वारि गुणात्मकम्॥ अध्वश्रान्तक्षुधाक्रान्ते शोकक्रोधातुरेषु च ॥ ९८ ॥ विषमासनोपविष्टे च पीत वारि रुजाकरम् ॥ तस्मात् प्रसन्ने मनसि पानीयं मन्दमाचरेत् ॥ ९९ ॥ आदौ पीत्वा दहत्यग्निर्मध्ये पीत्वा रसायनम् ॥ तदन्ते च जलं पीत्वा तज्जलं दुर्जरं भवेत् ॥ १०० ॥ भोजनादौ जलं पीत्वा चाग्निसादः कृशाङ्गता ॥ अन्त करोति स्थूलत्वमूर्ध्वमामाशयात्कफम् ॥१०१॥ इति तोयपानविधिः ॥ इति जलवर्गो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

परिश्रमसे थका हुआ मनुष्य बहुत पानीको पीवेतो गुल्म और शूलरोगकी उत्पत्ति होती है और भोजनको जीर्ण होनेमें पियाहुआ पानी जठराग्निको हरता है और अजीर्णमें पानी औषधरूप है ॥ ९७ ॥ भोजन करनेके मध्यमें और पीछेसे पियाहुआ पानी गुणोंको करता है और मार्गके चलनेसे श्रांत हुआ और भूखसे पीडित हुआ और शोक, क्रोध, रोगसे पीडित हुआ ॥ ९८ ॥ और विषम आसनपै स्थित हुआ ऐसा मनुष्य पानीको पीवे तो शीघ्र रोगकी उत्पत्ति होती है इसलिये प्रसन्न हुए मनमें भी अल्प पानीको पीवे ॥ ९९ ॥

भोजनकी आदिमें पिया पानी अग्निको नाशता है, भोजनके मध्यमें पिया पानी रसायन अर्थात् अमृतके समान है, भोजनके अंतमें पिया पानी दुःखसे जरता है॥ १०० ॥ भोजनकी आदिमें पानीको पीनेसे मंदाग्नि और अंगोंका कृशपना होता है और भोजनके अंतमें पिया हुआ पानी मुटापेको करता है और अमाशयसे ऊपर कफको करता है ॥ १०१॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरदत्तशाब्यनवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने जलवर्गो नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

अथ दुग्धवर्गवर्णन ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि क्षीरवर्गन्तु वत्सक ॥
दधिसर्पिर्वसातक्रं तेषां सर्वगुणागुणम् ॥ १ ॥

हे पुत्र ! अब क्षीरवर्गको कहता हूँ और दही, घृत, वसा, तक्र इनके सब गुण और दोष कहूंगा ॥ १ ॥

अथ दूधकी उत्पत्ति ।

यद्यदाहारजातन्तु रसं क्षीरशिरानुगम्॥ रसो जलं च भुक्तं च तथा पित्तेन संयुतम् ॥२॥ पाचितं जाठरे वह्नौ पित्तेन सह मूर्च्छितम् ॥ पच्यमानं शिराप्राप्तं क्षीरतोयेन पुत्रक ॥ ३॥ तत्र क्षीरमिति ख्यातमग्निसामात्मकं पयः ॥ अमृतं सर्वभूतानां जीवनं बलकृन्मतम् ॥ ४ ॥

जो जो भोजनसे रस उपजता है वही दूधकी नाडीके अनुगत होता है रस पदार्थ, पानी, और भोजन पित्तसे संयुक्त होके ॥ २ ॥ जठराग्निके द्वारा पच्यमान होकर अन्नजल रस शिरामें दुग्धजलके साथ प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ इससे दूध ऐसा कहाता है। यह दूध जठराग्निके समान स्वभाववाला होता है और यही दूध अमृत है, सब जीवोंका जीवन है और बलको करनेवाला माना है ॥ ४ ॥

हारीतः संशयापन्नः पप्रच्छ पितरं पुनः॥कथं रसस्य सम्पत्तिः कथं संचीयते विभो ॥ ५ ॥कथं रक्तस्य संस्थाने क्षीरं पाण्डुं[1] समीरितम्॥कथ तत्र कुमारीणां वन्ध्यानां न कथं भवेत् ॥६॥

---

१. 'पाण्डुर्ना नृपतौ सिते' इति मेदिनी ।

संशयको प्राप्त हुआ हारीत फिर पिताको पूछता भया हे विभो! रसकी सिद्धि कैसे है ? और कैसे रस संन्दित होता है ? ॥ ५ ॥ कैसे रक्तके स्थानमें सफेद रंगका दूध हो जाता है कुमारी, कन्याके और वंध्या स्त्रियोंके कैसे नहीं होता ? ॥ ६ ॥

एवं पृष्टो महावीर्य्यः प्रोवाच मुनिपुगंवः ॥ शृणु पुत्र महाप्राज्ञ यदुक्तं पूर्वसूरिभिः ॥ ७ ॥ क्षीरं स्निग्धं तथा रक्तं पित्तेन पाकतां गतम् ॥ रक्तं श्वेतत्वमायाति तथा क्षीरं सितं भवेत ॥ ८ ॥

ऐसे पूछे हुए महावीर्य्यवाले आत्रेयजी कहने लगे हे पुत्र ! हे महाप्राज्ञ ! जो पहले पंडितोंने कहा है वह सुनो ॥ ७ ॥ पहिले दूध गाढा और लाल रहता है, फिर पित्तसे पककर वही रक्त सफेद होजाता है और वही श्वेत दूध हो जाता है ॥ ८ ॥

क्षीरनाडी कुमारीणां वन्ध्यानां च कथं भवेत् ॥ अल्पधातुबलं यस्मात्तस्मात्क्षीरं न जायते ॥ ९ ॥ वन्ध्यानां क्षीरनाड्यस्तु वातेन परिपूरिताः ॥ क्षीरं च न भवेत्तस्मादार्त्तवं चाधिकं यतः ॥ १० ॥

कुमारी, कन्याओंके और वंध्याओंके दूधकी नाडी कहां होती है? अल्पधातु और अल्पबल होनेके कारण कुमारीके और वंध्याके दूध नहीं होता है ॥ ९ ॥ वंध्यस्त्रियोंकी दूधकी नाडी वायुसे पूरित होती है इससे दूध नहीं उपजता है किंतु आर्तव अधिक होता है ॥ १० ॥

प्रसूतासु च नारीषु बलेन सह सूयते ॥ तेन स्रोतोविशुद्धिःस्यात् क्षीरमाशु प्रवर्त्तते ॥ ११ ॥ तस्मात् सद्यःप्रसूतायां जायते श्लैष्मिकं पयः ॥ तेन कठिनतां याति तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ १२ ॥

और बालकको जन्मानेवाली नारियोंमें बल करके बालक जन्मता है इससे विशेष करके स्रोतोंकी शुद्धि होती है तब दूध शीघ्र प्रवृत्त होता है ॥ ११ ॥ इसलिये तत्काल प्रसूतहुई नारीमें कफकी प्रकृतिवाला दूध उपजता है इसलिये वह दूध गाढा रहता है उसका त्यागकर देना चाहिये ॥ १२ ॥

स्रोतोविशुद्धिकरणं बलकृद्दोषनाशनम् ॥ पयस्त्रिदोषशमनं वृष्यञ्चाग्निप्रवर्द्धनम् ॥ १३ ॥

स्रोतोंके विशेष करके शुद्धिको करनेवाला, बलको करनेवाला और दोषको नाशनेवाला दूध त्रिदोषको शांत करता है, पुष्ट है और जठराग्निको बढ़ाता है ॥ १३ ॥

पृथक् २ स्त्रियोंके दूधके गुण।

कृष्णा वृष्या च वातघ्नी पयस्तस्या विशिष्यते ॥ श्वेतापयः श्लेष्मकृच्च वातलं रक्तिकापयः ॥ १४ ॥ पित्तसंशमना पीता तस्याः क्षीरं विशिष्यते ॥

काली स्त्री पुष्टिको करती है, वातको नाशती है, उसका दूध अच्छा होता है, सफेद रंगकी स्त्रीका दूध कफको करता है, लाल रंगकी स्त्रीका दूध वातको करता है ॥ १४ ॥ पीलीका दूध पित्तको शांत करता है और यह अच्छा है ॥

पृथक् पृथक् रंगकी गायोंका दूध।

कृष्णासृक्पित्तसंयुक्ता श्वेता श्लेष्मगुणान्विता॥ १५ ॥ कफवा-ताश्रिता पीता रक्ता वातगुणान्विता ॥ यद्यद्द्रव्यगुणास्ते तु ज्ञातव्याः सुमहात्मना ॥ १६ ॥

काली गाय रक्त और पित्तसे संयुक्त होती है, सफेद रंगवाली कफके गुणोंसे संयुक्त होती है ॥ १५ ॥ पीली कफ और वातसे संयुक्त होती है, लाल रंगवाली वातके गुणसे संयुक्त होती है, ऐसे जो जो उत्तम गुण हैं वे सब महात्मा वैद्यको जानने चाहिये ॥ १६ ॥

धारोष्णं शस्यते गव्यं धाराशीतन्तु माहिषम् ॥
शृतोष्णमाविकं पथ्यं शृतशीतमजापयः ॥१७॥

गायका दूध धारोंसे गर्म हुआ ही हित है, भैंसका दूध धारोंसे पीछे शीतल हुआ हित है, भेडके दूधको गर्म करके पीछे गरम रूप ही पथ्य है, बकरीके दूधको गर्म कर पीछे शीतल करा पथ्य है १७

अथ गायके दूधके गुण।

गव्यं पवित्रं च रसायनं च पथ्यं च हृद्यं बलपुष्टिदं स्यात् ॥
आयुष्प्रदं रक्तविकारपित्तत्रिदोषहृद्रोगविषापहं स्यात् ॥ १८ ॥

गायका दूध पवित्र है, रसायन है, पथ्य है, मनोहर है, बलको और पुष्टिको देता है, आयुको देता है, और रक्तविकार, पित्तरोग, त्रिदोष, हृद्रोग और विषको नाशता है ॥ १८ ॥

अथ बकरीके दूधके गुण।

छागं कषायं मधुरञ्च शीतं पयो लघु ग्राहि क्षयापहारि ॥
कासज्वराणां रुधिरातिसारे पित्ते त्रिदोषे विहितं हितं वै॥१९॥

बकरीका दूध कसैला है, मधुर है, शीतल है, कब्ज करता है, हलका है, क्षयको नाशता है, खांसीसहित ज्वर, रक्तका अतीसार, पित्त और त्रिदोषमें हित कहा गया है ॥ १९ ॥

अथ भेडके दूधके गुण।

औरभ्रं मधुरं रूक्षमुष्णवातकफापहम् ॥
न शस्तं रक्तपित्तानां वातिकानां हितं भवेत् ॥ २० ॥

भेडका दूध मधुर है, रूखा है, उष्ण है, वातको और कफको नाशता है, रक्तपित्तवालोंको अच्छा नहीं है और वातवालोंको अच्छा है ॥ २० ॥

अथ भैंसके दूधके गुण।

स्निग्धं मरुच्छीतकरं च तन्द्रानिद्राकरं वृष्यतमं श्रमघ्नम् ॥
बलप्रदं पुष्टिकरं कफस्य सञ्जीवनं चास्ति पयो महिष्याः॥२१॥

भैंसका दूध चिकना है, वायुको और शीतको उपजाता है, तन्द्राको और नींदको करता है, अति पुष्ट है, परिश्रमको नाशता है, बलको देता है, कफको करता है और कफको बढ़ाता है॥ २१ ॥

अथ ऊँटनीके दूधके गुण।

रूक्षं तथोष्णं लवणं कफस्य निवारण वातविकारहारि ॥
लघु प्रशस्तं कटुकं कृमीणां शोफार्शसामौष्ट्रपयोऽनुकूलम्॥२२॥

ऊँटनीका दूध गर्म है, सलौना है, रूखा है, कफको दूर करता है,वातके विकारको नाशता है, हलका है, अच्छा है, चर्चरा है, कीडोंको निकासता है, शोजाको और बवासीरको शांत करता है॥ २२ ॥

स्त्रियोंके दूधका गुण।

सञ्जीवन बृंहणमेव सात्म्यं सन्तपण नेत्ररुजापहं च ॥
पित्तस्य रक्तस्य च नाशन च नारीपयः स्नेहनमेव शस्तम्२३॥

स्त्रियोंका दूध सजीवन है, पुष्टिकारक है, स्वभावसे हित है, तृप्ति करता है, नेत्रोंकी पीडा दूर करता है, दुष्टपित्तका और रक्तका नाश करता है, चिकनाई देता है, ऐसा स्त्रियोंका दूध अच्छा है॥ २३ ॥

अथ दूधके गुण।

निशाशीतांशुसंशीतं निद्रालस्यश्रमानुगम् ॥
सघनं शीतकफकृत्क्षीरं प्राभातिक भवेत् ॥ २४ ॥

रात्रिके चन्द्रमाकी किरणोंसे शीतल हुआ नींद, आलस्य और परिश्रम करनेवाला है, गाढ़ा है, शीतको और कफको करनेवाला ऐसा प्रभातका दूध होता है॥ २४ ॥

अथ दिनके दूधके गुण।

वासरे सूर्य्यसन्तापात्सद्योष्णं कफवातजित् ॥

दिनमें सूर्यके सन्तापसे तत्काल गर्म हुआ दूध कफ और वातको जीतनेवाला है।

अथ रात्रिके दूधके गुण।

हितं तत्पित्तशमन सुशीतं भोजने निशि ॥ २५ ॥

रात्रिमें भोजनके समय अच्छा शीतल किया दूध हित है और पित्तको शांत करता है॥२५॥

अथ दूधके पीनेकी विधि।

अल्पाम्बुपानव्यायामात्कटुतिक्ताशने लघु ॥ पिण्याकाम्लाशिनीनां तु गुर्वभिष्यन्दि शीतलम् ॥ २६ ॥

थोडा पानी पीनेवाली, फिरनेवाली, कडवा तीखा खानेवाली, गौआदिका दूध हलका होता है और खली तथा खट्टे पदार्थ खानेवाली गौआदिका दुग्ध भारी, अभिष्यंदी और शीत होता है ॥ २६ ॥

क्षीणानां दुर्बलानाञ्च तथा जीर्णज्वरार्दिते॥दीप्ताग्नीनामतन्द्राणां श्रमशोषविकारिणाम् ॥ २७ ॥ श्वासिनां विषमाग्नीनां रेतोऽल्पानां व्यवायिनाम्॥तथा च राजरोगाणां क्षीरपानं विधीयते ॥ २८ ॥ न शस्तं लवणैर्युक्तं क्षीरं चाम्लेन वा पुनः ॥ करोति कुष्ठं त्वग्दोषं तस्मान्नैव हितं मतम् ॥ २९ ॥

क्षीण, दुर्वर, जीर्णज्वरसे पीडित, दीप्त अग्निवाला, तंद्रासे वार्जित, श्रम और शोषके विकारवाले ॥ २७ ॥ श्वासवाले, विषम अग्निवाले, अल्पवीर्यवाले मैथुन करनेवाले, और राजरोगवाले इन सबोंको दूधका पान कराना चाहिये ॥ २८ ॥ नमकसे संयुक्त अथवा खट्टे पदार्थसे संयुक्त किया दूध अच्छा नहीं है यह कुष्टको और खालमें रोगको करता है इसलिये यह हित नहीं है ॥ २९ ॥

अथ गायके दहीके गुण।

अम्लं स्वादुरसं ग्राहि गुरूष्णं वातरोगजित् ॥ मेदःशुक्रबलश्लेष्मरक्तपित्ताग्निशोफकृत् ॥ ३० ॥ स्निग्धं विपाके मधुरं दीपनं बलवर्द्धनम् ॥ वातापहं पवित्रं च दधि गव्यं रुजापहम् ॥ ३१ ॥

गायका दही खट्टा है । स्वादु रसवाला है, कब्जको करता है, भारी है, गर्म है, वातरोगको जीतता है और मेद, बल, वीर्य, कफ, रक्त, पित्त, अग्नि सोजाको करता है ॥ ३० ॥ स्निग्ध है और विशेष करके पाककालमें मधुर है, अग्निको जगाता है, बलको बढाता है, वायुको नाशता है, पवित्र है और रोगको हरता है ॥ ३१ ॥

अथ बकरीके दहीके गुण।

आजं दधि भवेच्चोष्णं क्षयवातविनाशनम् ॥ दुर्नामश्वासकासेषु हितमग्निप्रदीपनम् ॥ ३२ ॥ विपाके मधुरं वृष्यं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ शस्तं प्राभातिकं प्रोक्तं वातपित्तनिबर्हणम् ॥ ३३ ॥

बकरीका दही गर्म है,क्षयको और वातको नाशता है और बवासीर, श्वास, खांसीमें हित है, अग्निको जगाता है ॥ ३२ ॥ पाककालमें मधुर है, वीर्यमें हित है, रक्तपित्तको साफ करता है उसमें भी प्रभातका दही अच्छा है वात और पित्तको दूर करता है ॥ ३३ ॥

अथ भैंसके दहीके गुण ।

घनं माहिषमुद्दिष्टं मधुरं रक्तदोषकृत् ॥
कफशोफहरं स्वस्थं पित्तकृद्वातकोपनम् ॥३४॥

भैंसका दही गाढा है, मधुर है,रक्तदोषको करता है, कफको और शोजको हरता है, स्वस्थ है, पित्तको करता है, वातको कोपता है ॥ ३४ ॥

अथ ऊँटनीके दहीके गुण ।

विपाके कटु सक्षारं गुरु भेद्यौष्ट्रिकं दधि ॥
वातमर्शांसि कुष्ठानि क्रिमीन्हंत्युदरं परम् ॥ ३५ ॥

ऊंटनीका दही विपाकमें तीखा, खारा, भारी, मलका भेदनेवाला, वायु, अर्श, कोढ, कृमि और उदररोगोंका नाश करता है ॥ ३५ ॥

अथ स्त्रीके दहीके गुण ।

स्निग्धं विपाके मधुरं बल्यं संतर्पणं हितम् ॥
चक्षुष्यं ग्राहि दोषघ्नं दधि नार्या गुणोत्तमम् ॥ ३६ ॥

स्त्रियोंका दही चिकना, विपाकमें मधुर, वल देनेवाला, धातुओंको तृप्त करनेवाला, ठंढा, नेत्रोंको हितकर, ग्राही वातादिदोषोंको नाशनेवाला और वडा गुणकारी है ॥ ३६ ॥

अथ भेडके दहीके गुण ।

कोपनं कफवातानां दुर्नाम्नां चाविकं दधि ॥ दीपनीयं तु चक्षुष्यं पांडुकृच्चापि वातुलम् ॥३७॥ रूक्षमुष्णं कषायं स्यादत्यभिष्यं-दि दोषलम् ॥ रसे पाके च मधुरं कषायं कुष्ठवर्द्धनम् ॥ ३८॥

भेड़का दही कफ और वात तथा अर्शरोगको कोपनेवाला, जठराग्निको प्रदीप्त करनेवाला, नेत्रको हितकर, पांडुरोगको उपजानेवाला, और वायु उत्पन्न करनेवाला होता है॥ ३७॥ रूखा, गरम, कसैला, श्लेष्माको पैदा करनेवाला, दोषोंको उपजानेवाला, रसमें और पाकमें मधुर और कसैला, कुष्ठरोगको बढ़ानेवाला होता है ॥ ३८ ॥

अथ वर्षाकालके दहीके गुण ।

वार्षिकं पित्तकृद्वातशमनं कफकोपनम् ॥
गुल्मार्शः कुष्ठरोगे च रक्तपित्ते न शस्यते ॥ ३९ ॥

वर्षाकालका दही पित्तकारक है, वात शांत करता है और कफको कोपता है और गुल्मरोग, बवासीर, कुष्ठ, रक्तपित्तमें अच्छा नहीं है ॥ ३९ ॥

अथ शरदृऋतुके दहीका गुण।

शारदं दधि गुर्वम्लं रक्तपित्तविवर्द्धनम् ॥
शोषतृष्णाज्वरार्त्तानां करोति विषमज्वरम् ॥ ४० ॥

शरदृऋतुका दही भारी है, खट्टा है, रक्तपित्तको वढ़ाता है और शोजा,तृषा, ज्वरसे पीडितोंके विषमज्वरको करता है ॥ ४० ॥

अथ हेमंतऋतुके दहीका गुण।

गुरु स्निग्धं सुमधुरं कफकृद्बलवर्द्धनम् ॥
वृष्यं मेध्यं च हैमन्तं पुष्टिदं तुष्टिवृद्धिदम् ॥ ४१ ॥

हेमंतऋतुका दही भारी है, मधुर है, कफको करता है, वलको वढ़ाता है, वीर्यमें हित है, पवित्र है, पुष्टिको देता है और तुष्टिको वढ़ाता है ॥ ४१ ॥

अथ शिशिरऋतुके दहीका गुण।

वृष्यं वलकरं पैत्तं श्रमस्यापहरं परम् ॥
शैशिरं सघनं चाम्लं पिच्छलं गुरु चैव च ॥ ४२ ॥

शिशिरऋतुका दही कडा है, खट्टा है, कफकारी है, भारी है, वीर्यमें हित है, वलको करता है, पित्तमें अच्छा है, श्रमको हरता है ॥ ४२ ॥

अथ वसंतऋतुके दहीका गुण।

वातलं मधुरं स्निग्धं किञ्चिदम्लं कफात्मकम् ॥
बलकृद्वीर्य्यकृत्प्रोक्तं वसन्ते न प्रशस्यते ॥ ४३ ॥

वातल है, मीठा है, चिकना है, कुछ खट्टा है, कफकी प्रकृतिवाला है, वलको और वीर्यको करता है, कफकारक है, इसलिये वसंतऋतुमें दही अच्छा नहीं है ॥ ४३ ॥

अथ ग्रीष्मऋतुके दहीका गुण।

लघु चाम्लं भवेद्ग्रीष्मे चात्युष्णं रक्तपित्तकृत् ॥
शोषभ्रमपिपासाकृद्दधि प्रोक्तं न ग्रैष्मिकम् ॥ ४४ ॥

ग्रीष्मऋतुका दही हलका है, खट्टा है, अतिगर्म है, रक्तपित्तको करता है और शोष, भ्रम, पिपासाको करता है इसलिये ग्रीष्ममें दधि अच्छा नहीं कहा गया ॥ ४४ ॥

अथ दहीका वर्जना।

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु दोषकृन्न हितं भवेत् ॥ न नक्तं दधि भुञ्जीत

न चाऽप्यघृतशर्करम् ॥ ४५ ॥ लवणं दधि भुञ्जीत भुञ्जीताऽप्युदकेन च। तल्लवणाम्बुसंयुक्तं दधि शस्तं निशि ध्रुवम्॥४६॥ ज्वरासृक्पित्तवीसर्पकुष्ठिनां पाण्डुरोगिणाम् ॥ संप्राप्तकामलानाञ्च शोफिनाञ्च विशेषतः ॥४७॥ तथा च राजयक्ष्मणामपस्मारे च पीनसे॥प्रतिश्यायार्दितानाञ्च भोजने न हितं दधि॥४८॥

शरद, ग्रीष्म, वसंत, इन ऋतुओंमें दही दोषको करता है, हित नहीं है, रात्रिमें दहीको नहीं खाना, घृत और खांडसे रहित दहीको नहीं खाना ॥ ४५ ॥ नमकसे मिलाहुआ और पानीसे मिलाहुआ ऐसे दहीको खाना और रात्रिमें दहीको खावे तो नमक और पानीसे संयुक्त कर खाना ॥ ४६ ॥ ज्वर, रक्तपित्त, विसर्प, कुष्ठ, पांडुरोग, कामला, शोजा ॥४७॥ राजरोग, मृगीरोग, पीनस, सखरमा रोगवालोंको भोजनमें दही हित नहीं है ॥ ४८ ॥

अथ दहीको खानेकी विधि।

हिक्कार्शःश्वासःप्लीहानामतीसारे भगन्दरे ॥
शस्तं प्रोक्तं दधि चैषां लवणेन विमूर्च्छितम् ॥ ४९ ॥

हिचकी, श्वास, बवासीर, तिलीरोग, अतिसार, भगंदरमें नमकसे संयुक्त किया दही खाना अच्छा है ॥ ४९ ॥

अथ गायके तक्र अर्थात् छाँछके गुण।

गव्यं त्रिदोषशमनं पथ्य श्रेष्ठं तदुच्यते ॥
दीपनं रुचिकृन्मेध्यमर्शोदरविकाराजित् ॥ ५० ॥

गायका तक्र त्रिदोषको शांत करता है, पथ्यमें श्रेष्ठ है, अग्निको जगाता है, रुचिको करता है, पवित्र है, बवासीर और उदरविकारोंको जीतता है ॥ ५० ॥

अथ भैंसके तक्रके गुण।

माहिषं कफकृत्किञ्चिद्घनं शोफकरं नृणाम् ॥
शस्तं प्लीहार्शोग्रहणीदोषेऽतीसारिणामपि ॥ ५१ ॥

भैंसका तक्र कफको करता है, कुछ घना है, मनुष्योंके शोजाको करता है, और तिलीरोग, बवासीर, संग्रहणी, अतीसार इन रोगवालोंको श्रेष्ठ है ॥ ५१ ॥

अथ बकरीके तक्रके गुण।

छागलं लघु सांस्निग्धं त्रिदोषशमनं परम् ॥
गुल्मार्शोग्रहणीशूलपाण्ड्वामयविनाशनम् ॥ ५२ ॥

बकरीका तक्र हलका चिकना, त्रिदोषको नाशनेमें उत्तम है और गुल्म, बवासीर, संग्रहणीरोग, शूल, पांडुरोग इन्होंको नाशता है ॥ ५२ ॥

अथ तक्रका वर्णन ।

तथा च त्रिविधं तक्रं कथ्यते शृणु पुत्रक ॥ यथा योगेन तत्सम्यक्शस्यते येषु रोगिषु ॥५३॥ समुद्धृतघृतं तक्रमर्द्धोद्धृतघृतं च यत् ॥ अनुद्धृतघृतं चान्यदित्येतत्त्रिविधं मतम्॥५४॥ स्व लघु च पथ्यं च त्रिदोषशमनं परम् ॥ ततः परं वृष्यतरं क्रमेण समुदीरितम् ॥ ५५ ॥ अनुद्धृतघृतं सान्द्रं गुरु विद्यात्कफात्मकम् ॥ बलप्रदं तु क्षीणानामामशोफातिसारकृत्॥५६॥

तक्र ३ प्रकारका है, हे पुत्र ! जिस उत्तमयोगसे जिन रोगियोंमें उचित है सो कहता हूँ, सुनो ॥ ५३ ॥ विना घीका, आधे घीका और पूर्ण इस तरह तीन प्रकारका तक्र कहा गया है ॥ ५४ ॥ घृतसे वर्जित तक्र हलका है, पथ्य है, त्रिदोषको शांत करता है । घृतसहित तक्र वीर्यमें हित कहा है ॥ ५५ ॥ अनुद्धृतघृतसंज्ञक तक्र कठिन है, भारी है, कफकी प्रकृतिवाला है, क्षीणमनुष्योंको बल देता है और आमदोष, शोजा, अतीसार इनको करता है ॥ ५६ ॥

अथ साधारण तक्रके गुण ।

गरोदराशोंग्रहणीपाण्डुरोगे ज्वरातुरे ॥ वर्चोमूत्रग्रहे वापि प्लीहव्यापदमेहिषु ॥ ५७ ॥ हितं संप्रीणनं बल्यं पित्तरक्तविरोधकृत् ॥ मधुरं पित्तरक्तघ्नमत्युष्णं रक्तपित्तकृत् ॥ ५८ ॥

कृत्रिमविष, उदररोग, बवासीर, ग्रहणीदोष, पांडुरोग, ज्वर, दिशापेशाबकी रोकपर, तिल्लीरोग, प्रमेह इन रोगवालोंको ॥५७॥ साधारण तक्र हित है, प्रीतिको करता है, बलमें हित है, पित्तरक्तका विरोधी है, मधुर है, पित्तरक्तको नाशता है, अतिगरम है, रक्त और पित्तको करता है ॥ ५८ ॥

अथ बहुत पानीवाले तक्रका गुण ।

बहूदकं दीपनीयं रक्तपित्तप्रकोपनम् ॥
पीनसे श्वासकासे च न शस्तमिह कथ्यते ॥ ५९ ॥

बहुत पानीवाला तक्र अग्निको जगाता है, रक्तपित्तको कुपित करता है और पीनस खांसी, श्वास इन रोगोंमें अच्छा नहीं है ॥ ५९ ॥

अथ विशेषवर्णन ।

आर्द्धोदकमुदश्वित्स्यात्तक्रं पादजलान्वितम् ॥
वातं कफं हरेद्घोरमुदश्विच्छ्लेष्मलं भवेत् ॥ ६० ॥

आधे पानीसे संयुक्तको उदश्वित् कहते हैं और चौपाई पानीसे संयुक्तको तक्र कहते है यात कफनाशक है और उदश्वित् कफकारी है ॥ ६० ॥

अथ हाथसे मर्दित किये तक्रका गुण।

करेण मर्दितं जन्तुतर्पणं बलकृन्मतम् ॥
श्रमापहरणं स्निग्धं ग्रहण्यर्शोऽतिसारनुत् ॥ ६१ ॥

हाथसे मर्दित किया तक्र जीवोंको तृप्त करता है, बलको करनेवाला है, परिश्रमको हरता है, चिकना है और ग्रहणीदोष, बवासीर, अतीसारको नाशता है ॥ ६१ ॥

अथ तक्रका निषेध।

ऋते शोफे च क्षीणानां नोष्णकाले शरत्सु च ॥ न मूर्च्छाभ्रमतृष्णासु तथा रक्ते सपैत्तिके ॥ न शस्तं तक्रपानं च करोति विविधान्गदान् ॥ ६२ ॥

शोजाके विना क्षीणोंको और गरम कालमें, शरदऋतुमें और मूर्च्छा, भ्रम और तृषा इनमें और रक्तपित्तमें तक्रको पीना अच्छा नहीं है क्योंकि अनेक प्रकारके रोगोंको करता है ॥ ६२ ॥

तक्रपानविधि।

शीतकालेऽग्निमान्द्ये च कफोच्छ्रायामयेषु च ॥ मार्गावरोधे दुष्टेऽग्नौ गुल्मार्शसि तथामये ॥ ६३ ॥ शस्तं प्रोक्तं च तक्रं स्यादमीषां सर्वदा हितम् ॥ सर्वकालेषु तच्छस्तमजाजिलवणान्वितम् ६४॥

शीतकालमें, मन्दाग्निमें, कफकी अधिकतासे उपजे रोगोंमें, स्रोतोंके रुकजानेमें दुष्ट हुए अग्निमें, गुल्मरोगमें, बवासीरमें ॥ ६३ ॥ मनुष्योंको तक्र हित कहा है, जीरा और नमकसे संयुक्तकिया तक्र सब कालमें उत्तम है ॥ ६४ ॥

अथ नेनूकी विधि।

नवनीतं नवं ग्राहि हृद्यं चोल्बणदीपकम् ॥ क्षयारुच्यर्दितप्लीहग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥ ६५ ॥ चक्षुष्यं शिशिरं स्निग्धं वृष्यं जीवनबृंहणम् ॥ क्षीणे द्रवं हिमं ग्राहि रक्तपित्ताक्षिरोगनुत् ॥ ६६ ॥ स्मृतिवाय्वग्निशुक्रौजःकफमेदोविवर्द्धनम् ॥ वातपित्तकफोन्मादशोफालक्ष्मीज्वरापहम् ॥ सर्वदोषापहं शीतं मधुरं रसपाकयोः ६७

नवीन नेनू ग्राही है, सुन्दर है, उल्वण है, अग्निको जगाता है और क्षय, अरुचि, ऊरुस्तम्भवात, तिल्लीरोग, ग्रहणी, ववासीर इनको नाशता है ॥ ६५ ॥ नेत्रोंमें हित है, शीतल है चिकना है, वीर्यको करता है, जीवोंके जीवनको बढ़ानेवाला है, क्षीणमनुष्यके धातुओंको पुष्ट करता है, अर्थात् द्रवरूप है, शीतल स्वभाववाला है, कब्जको करता है, रक्तपित्तको और नेत्ररोगको नाशता है ॥ ६६ ॥ और स्मृति, वायु, अग्नि, वीर्य, पराक्रम, कफ और मेद इनको बढ़ाता है और वात, पित्त, कफ, उन्माद, शोजा, कान्तिहीनता और ज्वर इनको नाशता है, सब दोषोंको हरता है, शीत है, रसमें और पाकमें मधुर है ॥ ६७ ॥

अथ फेनविधि।

कृष्णगोऽश्वपयःफेनमजानां वेति शस्यते ॥ मन्दाग्नीनां कृशानां च विशेषादतिसारिणाम् ॥६८॥ उत्साहदीपनं बल्यं मधुरं वातनाशनम् ॥ सद्यो बलकरं चैव तस्य क्षीरविलोडितम् ॥६९॥ क्षीणज्वरातिसारे च सामे च विषमज्वरे ॥ मन्दाग्नौ कफमाश्रित्य पयःफेनं प्रशस्यते ॥७०॥ क्षीरं गवां क्षीरफेनं तक्रं वा हितमेव च ॥ पक्वाम्रभक्षणाद्वापि ग्रहणी तस्य नश्यति॥७१॥ ताम्बूलं नैव सेवेत क्षीरं पीत्वा तु मानवः ॥ यावत्तच्च द्रवेत्क्षीरं भुक्तान्ताद्वापि शस्यते ॥ ७२ ॥

काली गाय और घोड़ीके दूधका झाग अथवा बकरीके दूधका झाग मंदाग्निवालोंको और कृशमनुष्योंको और विशेष करके अतिसारवालोंको अच्छा होता है ॥ ६८ ॥ दूधको मथनेसे उत्पन्नहुए झाग उत्साहको करते हैं, बलमें हित है, मधुर हैं, वातको नाशते हैं, शीघ्र बलको करते हैं ॥ ६९ ॥ क्षीणज्वर, अतीसार, आमज्वर, विषमज्वर, मंदाग्नि, कफको आश्रित होके दूधका फेन श्रेष्ठ है ॥७०॥ गायका दूध अथवा गायके दूधके झाग अथवा गायके दूधका तक्र हित होता है और गायके तक्रको पीनेवाला पके हुए आंबको खावे तो ग्रहणीदोषका नाश होता है ॥ ७१ ॥ दूधका पान करके नागरपानको सेवे नहीं, जबतक वह दूध द्रवभावको नहीं प्राप्त होवे और अन्यभोजनके अंतमें नागरपान अच्छा है अथवा भोजनके अंतमें दूधका पीना अच्छा है ॥ ७२ ॥

अथ गायके घृतका गुण।

विपाके मधुरं वृष्यं वातपित्तकफापहम् ॥
चक्षुष्यं बलकृन्मेध्यं गव्यं सर्पिर्गुणोत्तमम् ॥ ७३ ॥

गायका घृत पाक कालमें मधुर है, वीर्यमें हित है और वात, पित्त, कफ इनको नाशता है, नेत्रोंमें हित है. बलको करता है, पवित्र है, गुणोंमें उत्तम है ॥ ७३ ॥

अथ बकरीके घृतका गुण ।

आज्यं सन्दीपनीयं च चक्षुष्यं बलवर्द्धनम् ॥
कासश्वासक्षयाणाञ्च हितं पाके कफापहम् ॥ ७४ ॥

बकरीका घृत जठराग्निको जगाता है, नेत्रोंमें हित है, बलको बढ़ाता है और खांसी, श्वास, क्षय, इन रोगवालोंको हित है और पाक कालमें कफको नाशता है ॥ ७४ ॥

अथ भैंसके घृतका गुण ।

सवातपित्तशमनं सुशीतं माहिषं घृतम् ॥
मधुरं गुरु विष्टम्भि बल्यं श्रेष्ठगुणात्मकम् ॥ ७५ ॥

भैंसका घृत वातको और पित्तको शांत करता है, सुन्दर शीतल है, मधुर है, भारी है, विष्टंभी है, बलमें हित है और श्रेष्ठगुणोंवाला है ॥ ७५ ॥

अथ ऊंटनीके घृतके गुण ।

औष्ट्रं कटु घृतं पाके शोषकृमिविषापहम् ॥
दीपनं कफवातघ्नं कुष्ठगुल्मोदरापहम् ॥ ७६ ॥

ऊंटनीका घृत पाककालमें चर्चरा है और शोष, कृमि, विष इनको नाशता है, अग्निको जगता है, कफ और वातको नाशता है और कुष्ठ, गुल्म और उदररोग इनको हरता है ॥ ७६ ॥

अथ भेड़के घृतका गुण ।

पाके लघ्वाविकं सर्पिः सर्वरोगविषापहम् ।
वृद्धिं करोति चास्थ्नां वै वाश्मरीशर्करापहम् ॥ ७७ ॥

भेड़का घृत पाककालमें हलका है, सब तरहके रोगोंको और विषको हरता है, हड्डियोंको बढ़ाता है, पथरीको और शर्कराको नाशता है ॥ ७७ ॥

अथ घोड़ीके घृतका गुण ।

वृद्धिं करोति देहाग्नेः पय आश्वं विषापहम् ॥
चक्षुष्यमूषणं चाग्निवातदोषनिवारणम् ॥ ७८ ॥

घोड़ीका घृत देह और जठराग्निको बढ़ाता है, विषको हरता है, नेत्रोंमें हित है, शरीरमें जलन पैदा करता है या वीर्याग्नि बढाता है और वातदोष हटाता है ॥ ७८ ॥

अथ दूधसे ही निकाले घृतका गुण।

दूधसे निकाला घृत तृप्तिको करता है, नेत्ररोगको नाशता है, हड्डियोंको बढ़ाता है, पित्तको दूर करता है और दाहको हरता है ॥ ७९ ॥

वृद्धिं करोति चास्थ्नां वै तत्प्रोक्तं च विपापहम् ॥
तर्पणं नेत्ररोगघ्नं दाहनुत्पयसो घृतम् ॥ ७९ ॥

अथ पुराने घृतका गुण।

सर्पिर्जीर्णं तच्च सन्धुक्षणे च मूर्च्छाकुष्ठोन्मादकर्णाक्षिशूले ॥
शोफार्शसोर्योनिदोषे व्रणेषु शस्तं सर्पिर्जीर्णमेवं नृणां स्यात् ८० ॥

पुराना घृत जठराग्निको जगाता है और मनुष्योंके मूर्च्छा, कुष्ठ, उन्माद, कर्णशूल, नेत्रशूल, सोजा, बवासीर, योनिदोष और घाव इनमें हित है ॥ ८० ॥

अथ नारीके घृतका गुण।

कफेऽनिले योनिदोषे रोगेष्वन्येषु तद्धितम् ॥
चक्षुष्यमार्त्तं स्त्रीणां च सर्पिः स्यादमृतोपमम् ॥ ८१ ॥

कफ, वात, योनिदोष, अन्य भी रोगोंमें उत्तम है, नेत्रोंमें हित है और अमृतके समान है ऐसा नारीका घृत कहा है ॥ ८१ ॥

अथ घृतका विशेष वर्णन।

बलक्षये तर्पणभोजनेषु श्रमे च पित्तासृजि रेणुयुक्ते ॥ नेत्रामये कामलपाण्डुरोगे सर्पिःक्षये योग्यतमं प्रदिष्टम् ॥ ८२ ॥ ज्वरे विबन्धेषु विषूचिकायामरोचके वा शमिते तथाग्नौ ॥ पानात्यये वापि मदात्यये वा शस्तं न सर्पिः सुधियो वदन्ति ॥ ८३ ॥

इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे क्षीरवर्गो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

बलक्षयमें, तर्पणमें, भोजनमें, परिश्रममें, पित्तरक्तमें, रेणुयुक्त नेत्रके रोगमें, कामलामें, पांडुरोगमें, क्षयमें वैद्य घृतको उत्तम कहते हैं ॥ ८२ ॥ ज्वरमें, विबन्धमें, विषूची संज्ञक हैजामें, अरोचकमें, मन्दाग्निमें, पानात्ययमें, मदात्ययमें वैद्य घृतको अच्छा नहीं मानते हैं ॥ ८३ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने क्षीरवर्गो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

अथ मूत्रवर्गः ।

मूत्रं गोऽजाविमाहिष्यं गजाश्वोष्ट्रखरोद्भवम् ॥
मूत्रं मानुषजं चान्यत्समासेन गुणाञ्छृणु ॥ १ ॥

गाय, बकरी, भेड, भैंस, हस्ती, घोडा, ऊंट, गधा और मनुष्य इनके मूत्रोंके गुणोंको विस्तारसे सुनो ॥ १ ॥

अथ गोमूत्रके गुण ।

तीक्ष्णं चोष्णं क्षारमेवं कषायं बल्यं मेध्यं श्लेष्मवातान्निहन्ति ॥
भेदि रक्तपित्तशमं करोति गुल्मानाहोन्माददोषापहं च ॥ २ ॥
भ्रूशङ्खहनुकण्ठकमुखानां च रोगान्गुल्मातिसारगुदमारुतनेत्रगदान् ॥ कासं सकुष्ठं जठरकृमिकोशजालं गोमूत्रमेकमपि पीतमहानि हन्ति ॥ ३ ॥

गायका मूत्र तीक्ष्ण है, गरम है, खारा है, कसैला है, बलमें हित है, पवित्र है, कफको और वातको नाशता है, भेदित करनेवाला है, रक्तपित्तको शांत करता है और गुल्म, अफारा, उन्माद दोष इन्होंको हरता है ॥ २ ॥ और भ्रुकुटी, कनपटी, ठोडी, कंठ, मुख, इनके रोगोंको और गुल्म, अतीसार, बवासीर, वातरोग, नेत्ररोग, खांसी, कुष्ठ, पेटमें कीडोंका समूह इन्होंको कई दिन पीनेसे नाशता है ॥ ३ ॥

अथ बकरीके मूत्रका गुण ।

आजं मूत्रं तीक्ष्णमुष्णं कषायं योज्यं पाने शूलगुल्मार्त्तिनाशम् ॥
कासे श्वासे कामलापाण्डुरोगे दुर्नाम्न्येतच्छ्रेष्ठमस्तीति वैद्याः ॥ ४ ॥

बकरीका मूत्र तीक्ष्ण है, गर्म है, कसैला है, गुलमको और शूलको नाशता है और खांसी श्वास, कामला, पांडुरोग, बवासीर इनमें श्रेष्ठ है ऐसा वैद्य कहते हैं ॥ ४ ॥

अथ मेंढाके मूत्रका गुण ।

सक्षारं कटुकं तीक्ष्णं मूत्रं वातघ्नमाविकम् ॥
दुर्नामोदरशूलघ्नं कुष्ठमेहविशोधनम् ॥ ५ ॥

मेढाका मूत्र क्षार है, कडुआ है, तीक्ष्ण है, वातको नाशता है और कुष्ठ, बवासीर, उदररोग, शूल और प्रमेह इनको नाशता है ॥ ५ ॥

अथ भैंसाके मूत्रका गुण।

माहिषं सतिक्तं कटुकं कषायं प्रभेदि वातस्य शमं करोति॥
पित्तप्रकोपं कुरुते सदा च कुष्ठार्शपाण्डूदरशूलनाशम्॥ ६॥

भैंसाका मूत्र घना है, कडुआ है, चर्चरा है, कसैला है, भेदन करता है, वातको शांत करता है, सब कालमें पित्तको कुपित करता है और पांडु, बवासीर, कुष्ठ, उदररोग और शूल इनको नाशता है॥ ६॥ अथ हस्तीके मूत्रका गुण।

सुतिक्तं लवणं भेदि वातघ्नं कफकोपनम्॥
क्षारमण्डलकुष्ठानां नाशनं गजमूत्रकम्॥ ७॥

हस्तीका मूत्र सुंदर, कडुआ है, सलोना है, भेदन करता है, वातको नाशता है, कफको कोपता है और धूर्त अर्थात् दुराचारियोंके मंडल और कुष्ठोंको नाशता है॥ ७॥

अथ घोडेके मूत्रका गुण।

कफकासहरं छर्दिक्रिमिकुष्ठविनाशनम्॥
दीपनं कटु तीक्ष्णोष्णं वातश्लेष्मविकारनुत्॥ ८॥

घोडेका मूत्र खांसीको और कफको हरता है, छर्दि, कृमि और कुष्ठ इनको नाशता है, अग्निको जगाता है, चर्चरा है, तीक्ष्ण है, गरम है, वात और कफके विकारको नाशता है॥८॥

अथ ऊँटके मूत्रका गुण।

औष्ट्रं कफहरं रूक्षं क्रिमिदद्रुविनाशनम्॥
श्रेष्ठं कुष्ठोदरोन्मादशोषार्श क्रिमिवातनुत्॥ ९॥

ऊंटका मूत्र कफको हरता है, रूखा है, कृमिरोगको और दद्रूको नाशता है, श्रेष्ठ है और कुष्ठ, उदररोग, उन्माद, शोष, बवासीर, कृमि और वात इनको नाशता है॥ ९॥

अथ गधेके मूत्रका गुण।

गार्दभं नामनं मूत्रं तैले योज्यं क्वचिद्भवेत्॥
सक्षारं तिक्तकटुकमुन्मादकुष्ठरोगनुत्॥ १०॥

गधेका मूत्र टेढा कर देता है और किसी तेलमें युक्त करनेके योग्य है, खारा है, तिक्त है, कडुआ है, चर्चरा है, उन्मादको और कुष्ठको नाशता है॥ १०॥

अथ नरके मूत्रका गुण।

मानुषं क्षारकटुकं मधुरं लघु चोच्यते॥
चक्षूरोगहरं बल्यं दीपनं कफनाशनम्॥ ११॥

१ "सारो बले स्थिरांशे च मज्ज्ञि पुंसि जले घने। न्याय्ये क्लीबं त्रिषु वरे सांद्रं मृदि वने घने" इति। मेदिनी। २ 'क्षारो रसान्तेर धूर्ते लवणे काचभस्मनोः' इति मेदिनी।

मनुष्यका मूत्र खारा है, चर्चरा, है, मधुर है, हलका है, नेत्रोंके रोगको रहता है, बलमें हित है, अग्निको जगाता है और कफको नाशता है ॥ ११ ॥

अथ प्रसूता और अप्रसूताके मूत्रका गुण।

अप्रसूताया घनं मूत्रं प्रसूताया द्रवं लघु ॥
न किंगुणविशेषः स्यात्समता पाकवीर्य्ययोः ॥ १२ ॥

नहीं प्रसूत अर्थात् विना व्याई हुईका मूत्र कठिन होता है, व्याई हुईका मूत्र पतला होता है, हलका होता है और कुछ गुणमें विशेषता नहीं है,पाक कालमें और वीर्य्यमें भी समता है॥ १२॥

अथ मूत्रविशेष।

सौरभेयकमूत्रं तु घनं सान्द्रं प्रशस्यते ॥ तच्च वृषणहीनानां किञ्चिल्लघुतरं मतम् ॥ १३ ॥ वृषमूत्रं च शोफघ्नं क्रिमिदोषविनाशनम् ॥ कामलाग्रहणीपाण्डुनाशनं चाग्निदीपनम् ॥ १४ ॥ अजागविगतं मूत्रं पाने शस्तं भिषग्वर ॥ आविकं माहिषं चाश्वं तैलपाके विधीयते ॥ १५ ॥ गजमूत्रप्रलेपं च कण्डूदद्रूविसर्पनुत् ॥ कारभं खरमूत्रं वा तैले नस्ये विधायकम् ॥ १६ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे मूत्रवर्गो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

वृषभका मूत्र कठिन और मोटा, श्रेष्ठ होता है। बधिया किये बैलका मूत्र कुछ हलका है ॥ १३ ॥ बैलका मूत्र शोजाको हरता है, कृमिदोषको नाशता है और कामला, ग्रहणी, पांडुरोगको नाशता है और अग्निको जगाता है ॥ १४ ॥ बकरीका और गायका मूत्र पीनेमें श्रेष्ठ है। हे वैद्यवर ! मेढाका मूत्र, भैंसाका मूत्र, घोड़ेका मूत्र ये तीनों तेलपाकमें हित हैं ॥ १५ ॥ हस्तीके मूत्रका लेप खाज, दद्रू, विसर्प इनको नाशता है। ऊटका मूत्र और गधेका मूत्र तेलमें और नस्यमें उत्तम है ॥ १६ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने मूत्रवर्गो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

अथ इक्षुवर्ग।

अथातः संप्रवक्ष्यामि इक्षुवर्ग गुणाधिकम् ॥
रसायनोत्तमं बल्यं रोगवारणमुत्तमम् ॥ १ ॥

अब गुणोंसे अधिक संयुक्त हुए ईखके वर्गको कहता हूं, यह ईखवर्ग उत्तम रसायन है, बलप्रद है, रोगोंको दूर करता है ॥ १ ॥

स्वादु ईखके गुण।

स्निग्धं च तर्पणं वापि बृंहणं च सजीवनम् ॥ २ ॥

स्वादु ईख चिकना है,तृप्तिको करता है, धातुओंको पुष्ट करता है और जीवनरूप है ॥२॥

अथ सफेद ईखका गुण।

तद्वातपित्तशमनश्च तथैव वृष्य अन्तर्विदाहकफकृत्प्रथितः सितेक्षुः ॥ ३ ॥

सफेद ईख वातको और पित्तको शांत करता है, वीर्यको बढाता है, और शरीरके भीतर दाह और कफकारक प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

अथ काले ईखके गुण।

तद्वत् सुकृष्णो भवते गुणानां वृष्यो भवेत्तर्पणदाहहन्ता ॥ क्षारः स किञ्चिन्मधुरो रसेन शोषापहर्त्ता व्रणशोफकारी ॥ ४ ॥

काला ईख सफेद ईखके गुणोंसे संयुक्त होता है, वीर्यको बढ़ाता है, तृप्तिको और दाहको नाशता है,कुछ खारा है,रसकरके मधुर है,शोषको हरता है, घावको और शोजाको करता है ॥४॥

अथ यंत्रसे निकासे हुए रसका गुण।

यन्त्रेण पीडितरसः कथितो गुरुश्च वृष्यः कफं च कुरुतेऽथ सुशीतलश्च ॥ पाके विदाहबलकृच्च सुशोभनश्च संसेवितो रुधिरपित्तरुजं निहन्ति ॥ ५ ॥

यंत्रसे निकाला हुआ ईखका रस भारी है, वीर्यको करता है, कफको करता है, सुन्दर शीतल है, पाककालमें दाहको करता है, बलको उपजाता है, सुन्दर शोभित है और सेवित किया रक्त और पित्तके रोगको नाशता है ॥ ५ ॥

अथ दांतोंसे पीडित किये रसका गुण।

दन्तैर्विपीडितरसो रुचिकृद्गुरुश्च सन्तर्पणो बलकरः कफकृच्छ्रमघ्नः ॥ विष्टम्भकश्च रुधिरस्य तथव पित्तदोषं निहन्ति सकलं वमनं च शोषम् ॥ ६ ॥

दांतोंसे पीडित कर निकाला हुआ ईखका रस रुचिको करता है, भारी है, तृप्तिको करता है, बलको उपजाता है, कफको करता है, परिश्रमको नाशता है, विष्टंभको करता है, रक्तको और पित्तको नाशता है, वमनको और शोषको हरता है ॥ ६ ॥

अथ वासी रसका गुण।

रसपर्य्युषितो नेष्टस्तापहैकमते गुरुः ॥
कफपित्तकरः शोषी भेदनो वाऽथ मूत्रलः ॥ ७ ॥

बासी ईखका रस अच्छा नहीं है और किसीके मतमें तापको हरता है, भारी है, कफको और पित्तको करता है, शोषको करता है, भेदन करता है, वातको उपजाता और मूत्रल है ॥ ७ ॥

अथ पक्वरसका गुण।

पक्वो गुरुतरः स्निग्धः सतीक्ष्णः कफवातहा ॥
पित्तघ्नोऽपि विशेषेण गुल्मातीसारकासहा ॥ ८ ॥

पकाया हुआ ईखका रस विशेष भारी है, चिकना है, तीक्ष्ण है, कफको और वातको नाशता है और विशेष करके पित्तको शांत करता हुआ भी गुल्म अतीसारऔर खांसी इनको नाशता है ८

अथ फाणित रसका गुण।

फाणितं गुर्वभिष्यन्दि बृंहणं शुक्लं च तत् ॥
पित्तघ्नं च श्रमहरं रक्तदोषनिषूदनम् ॥ ९ ॥

कुचल कर निकाला रस भारी है, कफको करता है, धातुओंको पुष्ट करता है, वीर्य्यको बढाता है, पित्तको नाशता है, परिश्रमको हरता है और रक्तदोषको दूर करता है ॥ ९ ॥

अथ गुडका गुण।

बल्यो वृष्यो गुरुः स्निग्धो वातघ्नो मूत्रशोधनः ॥ स पुराणोऽधिकगुणो गुल्मार्शोऽरोचकापहः ॥ १० ॥ क्षये कासे क्षतक्षीणे पाण्डुरोगेऽसृजः क्षये ॥ हितो योग्येन सयुक्तो गुडः पथ्यतमो मतः ॥ ११ ॥

गुड बलमें हित है, वीर्यको करता है, भारी है, चिकना है, वातको नाशता है, मूत्रको शोधता है और पुराना गुड़ अधिक गुणोंवाला है और गुल्म, बवासीर और अरोचक इनको नाशता है॥ १०॥ क्षय, खासी, क्षतक्षीण, पांडुरोग, रक्तक्षय, इन रोगोंमें हित पदार्थसे संयुक्त किया गुड़ अतिपथ्य माना है ॥ ११ ॥

अथ गुडकी खांडका गुण।

गुडखण्डश्च मधुरः सितश्च वातपित्तहा ॥
किञ्चिच्छीतगुणोपेतो बल्यो वृष्यो रुचिप्रदः ॥ १२ ॥

गुड़की खांड मधुर है, सफेद है, वातको और पित्तको नाशती है, कुछ शीतगुणसे संयुक्त है बलमें हित है, वीर्यको देती है और रुचिको भी देती है ॥ १२ ॥

अथ साधारण खांड़का गुण।

वातपित्तहरं शीतं स्निग्धं बल्यं सुखप्रियम् ॥
चक्षुष्यं श्लेष्मकृत्प्रोक्तं खण्डं वृष्यतमं मतम् ॥ १३ ॥

खांड साधारण वातको और पित्तको हरती है, शीतल है, चिकनी है, बलमें हित है, मुखमें प्रिय है, नेत्रोंमें हित है, कफको करती है और वीर्यको अति बढ़ाती है ॥ १३ ॥

अथ मिश्रीका गुण।

सिता सुमधुरा प्रोक्ता वृष्या शुक्रविवर्द्धनी ॥
पित्तघ्नी मधुरा बल्या शर्करा पायिनी नृणाम् ॥ १४ ॥

मिश्री सुंदर मधुर है, धातुओंको पुष्ट करती है, वीर्यको बढ़ाती है पित्तको नाशती है, मधुर है, बलमें हित है, मनुष्योंकी रक्षा करती है ॥ १४ ॥

अथ सुन्दरखांडका गुण।

शर्करान्या सुशीता च कासशूलसमुद्भवा ॥
हिता पित्तासृजि शोषे मूर्च्छाभ्रममदापहा ॥ १५ ॥

सफेद खांड सुंदर शीतल है, खांसीको और शूलको उपजाती है, पित्त रक्तमें हित है, शोषमें हित है और मूर्च्छा, मद, भ्रम, इनको नाशती है ॥ १५ ॥

अथ गुडकी विशेषता।

गुदामये कामलशोषमेहे गुल्मामय पाण्डुहलीमके च ॥ वाते सपित्तासृजि राजरोगे रुचिप्रदो रोगहरो गुरुः स्यात् ॥१६ ॥ कासे शोषे गुडो नेष्ट अन्यत्रापि हितो मतः ॥ योगयुक्तोहि सर्वत्र हितो गुणगणालयः ॥१७॥ क्षामक्षामक्षतगतरुजाश्वासमूर्च्छा-गदीनामध्वश्रान्तिश्रममदविषमूत्रकृच्छ्राश्मरीणाम्॥जीर्णक्षाम-ज्वरविषमगे रक्तपित्तप्रकोपे तृष्णादाहक्षयरुधिरगे सर्वरोगा-न्निहन्ति ॥ १८॥ इति आत्रेयभाषितं हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने इक्षुवर्गो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

गुदारोगमें, कामलामें, शोषमें, प्रमेहमें गुल्ममें, पांडु और हलीमकमें, वातमें, रक्तपित्तमें, राजरोगमें, गुड़ रुचिको देता है और रोगको हरता है, भारी है ॥ १६ ॥ परंतु खांसी और शोषमें अकेला गुड़ अच्छा नहीं है और अन्य जगह हित है और योगोंमें युक्त किया गुड़ सब रोगोंमें हित है और गुणोंके समूहका स्थान है ॥ १७ ॥ कृश, क्षयरोग, श्वास, मूर्च्छा,

इन रोगोंको और मार्गके चलनेसे थकना,परिश्रम, मद, विष, मूत्रकृच्छ्र, पथरी इन रोगोंको और बुढ़ापा, विषमज्वर, रक्तपित्तका प्रकोप, तृषा, दाह, क्षय, रक्तरोग इनको गुड़ हरता है ॥ १८॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने इक्षुवर्गो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १०

एकादशोऽध्यायः ११.

अथ कांजीके वर्ग।

सन्धानं शीतलं स्वादु महातीसारनाशनम् ॥

काजी शीतल है, स्वादु है, महातीसारको नाशती है।

अथ चावलोंके पानीका गुण।

सुस्वादु शीतलं चैव बृंहणं तण्डुलोदकम् ॥ १ ॥

चावलोंका पानी सुंदर स्वादु है, शीतल है और धातुओंको पुष्ट करता है ॥ १ ॥

अथ तुषोदकका गुण।

सवातपित्तस्य हरं तुषोदं सरक्तपित्तस्य प्रभेदकञ्च ॥
विपाचनं स्याज्जरणं कृमिघ्नमजीर्णनाशं कटुकं विपाके॥२॥

तुषोदक वातपित्तको हरता है, रक्तपित्तको हरता है, भेदन करता है, विशेषकरके पाचन जराता है, कीडोंको हरता है, अजीर्णको हरता है और पाककालमें चर्चरा है ॥ २ ॥

अथ जव और गेहूंकी कांजीका गुण।

जातं यवाम्लं कटुकं विपाके वातापहं श्लेष्महरं सरक्तम्॥पित्तप्रकोपं कुरुते सभेदि विदूषणं पित्तगदासृजश्च ॥३॥ संदीपनं शूलहरं सुरुच्यं गोधूमजातं क्वथितं कषायम्॥सन्दीपनं स्याज्जरणं कफघ्नं समीरदोषं हरते ततोऽपि ॥ ४ ॥

जवोंकी कांजी पाककालमें चर्चरी है, वातको और कफको हरती है, रक्तको और पित्तको कोपती है,भेदन करती है और पित्त और रक्तको दूषित करती है॥ ३ ॥ गेहूंकी कांजी दीपन है, शूल हरती है, रुचिकर है, कषैली है, जठराग्निको तेजकरती है, कफघ्न है और वातदोषको हरती है ॥ ४ ॥

अथ तैलयुक्त कांजीका गु

पीतं जरयते चामं बाह्यदाहश्रमापहम् ॥
स्याच्च तत्कुष्ठकण्डूघ्नं तैलयुक्तं समीरहृत् ॥ ५ ॥

तेलसे युक्त हुई कांजी पीनेसे आमको जराती है, शरीरके बाहिरके दाहको और परिश्रमको हरती है, कुष्टको और खाजको तथा वायुको नाशती है ॥ ५ ॥

अथ शुगंधरकांजीका गुण।

शुगन्धराम्लं कफवातहन्तृ शूलामयानां जरणप्रकर्त्तृ ॥ तीक्ष्णं तथाम्लं श्रमदोषहन्तृ मेहार्शसो रक्तहितं मतं च ॥ ६ ॥

जवारकी कांजी कफको और वातको हरती है, शूल रोगोंको जलाती है, तीक्ष्ण है, खट्टी है, श्रम दोषको हरती है, प्रमेहमें ववासीरमें और रक्तमें हित कही गयी है ॥ ६ ॥

अथ कांजीका परिहार।

शोषे मूर्च्छाज्वरार्त्तानां भ्रमके दुर्विषार्दिते ॥ कुष्ठानां रक्तपित्तानां काञ्जिकं न प्रशस्यते ॥ ७ ॥ पाण्डुरोगे राजयक्ष्मे तथा शोफातुरेषु च ॥ क्षतक्षीणे पथि श्रान्ते मन्दज्वरनिपीडिते ॥ नरे नैव हितं प्रोक्तं काञ्जिकं दोषकारकम् ॥ ८ ॥

शोषमें, मूर्छा और ज्वरसे पीडितको भ्रममें, दुष्ट विषकी पीडामें, कुष्ठ और रक्तपित्तमें कांजी अच्छी नहीं है ॥ ७ ॥ पांडुरोगमें, राजरोगमें और शोजासे पीडित रोगीको और क्षतसे क्षीण हुएको और मार्गमें थके हुए और मंद ज्वरसे पीडितको कांजी अच्छी नहीं है किंतु दोषोंको करती है ॥ ८ ॥

अथ कांजीकी प्रशंसा।

शूलवातार्दितानां तु तथा जीर्णविबन्धिनाम् ॥ श्रेष्ठं प्रोक्तं तथाम्लं च गुणाधिक्यं नरेषु च ॥ ९ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे काञ्जिकवर्गो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

शूल और वातसे पीडितोंको, अजीर्ण और बद्धकोष्ठवालोंको कांजी श्रेष्ठ है और मनुष्योंमें गुणोंकी अधिकता करती है ॥ ९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां कांजिकवर्गो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

अथ चावलोंके मंडका गुण।

धान्यमण्डं पित्तहरं श्रमघ्नं चाश्मरीहरम् ॥
वातलं रक्तशमनं ग्राहि सन्दीपनं वरम् ॥ १ ॥

चावलोंका मांड पित्तको हरता है, परिश्रमको हरता है, पथरीको हरता है, वायुको उपजात है, रक्तको शांत करता है, कब्जको करता है और अग्निको अच्छी तरह जगाता है ॥ १ ॥

अथ लाल चावलके मांडका गुण ।

रक्तशाल्युद्भवं मण्डं मधुरं ग्राहि शीतलम् ॥
प्रमेहानश्मरीं हन्ति वातलं पित्तहृद्वरम् ॥ २ ॥

लाल चावलोंका मांड मधुर है, कब्जको करता है, शीतल है, प्रमेहोंको और पथरीको हरता है, वातल है, पित्तको हरता है, सुन्दर है ॥ २ ॥

अथ सफेद चावलोंके मांडका गुण ।

मधुरं शीतलं किञ्चिच्छ्लेष्मलं शोषनाशनम् ॥
अश्मरीमेहसंच्छर्दिवातलं श्वेततण्डुलम् ॥ ३ ॥

सपेद चावलोंका मांड मधुर है, शीतल है, कुछ कफको करता है, शोषको नाशता है और पथरी, प्रमेह, छर्दि, वात इनको करता है ॥ ३ ॥

अथ जवोंके मांडका गुण ।

यवमण्डं कषायं स्याद्ग्राहि चोष्णे विपाकि च ॥

जवोंका मांड कषैला है, कब्जको करता है, गरम पाकवाला है ।

अथ गेहूंके मांडका गुण ।

तद्वद्गोधूमसम्भूतं मधुरं पित्तवारणम् ॥ ४ ॥

गेहुँओंका मांड जवोंके मांडके समान गुण देता है, परंतु मधुर है और पित्तको दूर करता है ॥ ४ ॥

अथ क्षुद्र-अन्नके मांडका गुण ।

अन्येषां क्षुद्रधान्यानां मण्डं वातहरं स्मृतम् ॥

अन्य क्षुद्रसंज्ञक अन्नोंका मांड वातको हरनेवाला कहा है ।

अथ कोदू अन्नके मांडका गुण ।

ग्लानिमूर्च्छाकरं सद्यः कोद्रवं न हितं मतम् ॥ ५ ॥

कोदू अन्नका मांड ग्लानिको और मूर्च्छाको शीघ्र करता है और हित नहीं माना है ॥ ५ ॥

अथ क्षुद्र अन्नके कांजीका गुण ।

तद्वच्च क्षुद्रधान्याम्लं वातलं पित्तकारकम् ॥ करोति श्लीपदं गुल्मं प्रतिश्यायादिकोपनम् ॥ ६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे मण्डवर्गो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

क्षुद्र अन्नकी कांजी ग्लानिको और मूर्च्छाको शीघ्र हरती है,वातल है,पित्तको भी करती है श्लीपदको और गुल्मको करती है और जुकाम आदिको कोपती है ॥६॥ इति वेरीनिवासि-पंडितशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने मंडवर्गो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.



अथ यूषवर्ग।

प्रथम कुलथीके यूषका लक्षण ।

कुलत्थयूषो मधुरः कषायो भवेच्च रक्तस्य कफस्य हन्ता ॥
सत्वाश्मरीपाण्डुजमेदहन्ता सन्दीपनो मेहविशोषणश्च ॥ १ ॥

कुलथीका यूष मधुर है, कसैला है, रक्तसहित कफको नाशता है और पथरी, बवासीर, मेद इनको नाशता है, अग्निको जगाता है और प्रमेहको शोषता है ॥ १ ॥

अथ हरडके यूषका गुण ।

भवेत्तुवर्या[1] मधुरं च यूषं विशोषणं वातनिवारणं च ॥
श्लेष्मापहं पित्तहरं ज्वराणां पृथक्पृथग्हत्क्रिमिदारुणं च ॥२॥

अरहरका यूष मधुर है, शोषता है, वातको दूर करता है, कफको और पित्तको हरता है, समस्त ज्वरोंको शांत करता है, क्रमिरोगको नाशता और दारुण अर्थात् गर्म है ॥ २ ॥

अथ मूँगके यूषका गुण ।

शीतलं मधुरं मौद्गयूषं पित्तविकारजित् ॥
तच्च वातहरं प्रोक्तं ज्वराणां शमनं परम् ॥३॥

मूंगका यूष शीतल है, मधुर है, पित्तके विकारको जीतता है, वातको हरता है और ज्वरोंको निश्चय शांत करता है ॥ ३ ॥

अथ चनाके यूषका गुण ।

कषायं कटुकं चोष्णं वातघ्नं कफदोषकृत् ॥
रक्तपित्तं निहन्त्याशु चणानां यूषमुच्यते ॥ ४ ॥

चनाका यूष कसैला है, चर्चरा है, गरम है, वातको नाशता है, कफको करता है और रक्त-पित्तको निश्चय नाशता है ॥ ४ ॥

---

१ " आढकी तु तुवर्यां स्त्री " इति मेदिनी ।

अथ उडदके यूषका गुण ।

घनं सवातं कफकृन्माषयूषं च पित्तकृत् ॥
अम्लं पर्य्युषितं तच्च तैलपाके च शस्यते ॥ ५ ॥

उड़दका यूष भारी है, वातको और कफको करता है,पित्तको करता है,खट्टा है और बासी हुआ यह खट्टा यूष तेलपाकमें श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥

अथ अन्ययूषोंके गुण ।

अन्यानि च प्रशस्तानि कुलत्थान्युषितानि च ॥ मसूरास्त्रिपुटा बल्याः कलायाद्याश्च वर्जिताः ॥ ६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे यूषवर्गो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

और बासी हुए कुलथी आदिके भी यूष अच्छे हैं और मसूरके यूष बलमें हित हैं और मटर आदिके यूष वर्जित हैं ॥ ६ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादित-हारीतसंहिताभाषाटीकायां यूषवर्गो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

अथ तैलवसावर्ग ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि तैलानां च गुणागुणान् ॥
तच्च ज्ञेयं समासेन यथायोग्यं यथाविधि ॥ १ ॥

अब तेलोंके गुणदोषको कहता हूं,वह तेल विस्तारसे यथायोग्य और यथाविधि जानना॥१॥

अथ तिलोंके तेलका गुण ।

कषायानुरसं स्वादु सूक्ष्ममुष्णं व्यवायि च ॥ पित्तकृद्वातशमनं श्लेष्मरोगादिवर्द्धनम् ॥ २॥ अल्पं रुचिकरं मेध्यं कण्डूकुष्ठविकारनुत् ॥ वृष्यं श्रमापहं ज्ञेयं तिलतैलं विदुर्बुधाः॥ ३ ॥ छिन्ने भिन्ने च्युते घृष्टे भग्नाग्निदाहकेऽपि च ॥ वाताभिष्यन्दिस्फुटने चाभ्यङ्गे तिलतैलकम् ॥४॥ विषे व्यालशुनः सर्पभेकाभ्यङ्गावगाहने ॥ पाने बस्तौ बलाशे च तिलतैलं विधीयते ॥ ५ ॥ तिलतैलं विधेयं स्यात्सर्वरोगनिवारण ॥ ६ ॥

तिलोंका तेल कसैला है, स्वादु है, सूक्ष्म है, गरम है, फैलनेवाला है, पित्तको करता है, वातको शांत करता है और कफरोग आदिको बढ़ाता है ॥ २ ॥ अल्परूपी यह तेल रुचिको करता है, पवित्र है, खाजको और कुष्ठको नाशता है, धातुको पुष्ट करता है, परिश्रमको नाशता है ऐसे तिलोंके तेलको बुद्धिमान् कहते भये ॥ ३ ॥ और छिन्न अर्थात् तलवार आदिसे कटे, भिन्न अर्थात् बरछी आदिसे कटे, गिरे, विसे अर्थात् पत्थर आदिकी रगडसे छिले, हाड़ आदिके टूटने, अग्निसे जलने, वाताभिष्यंद, कूटने और मालिश करनेमें तिलोंका तेल उत्तम है ॥ ४ ॥ भेडिय, और कुत्ताके विषमें, सर्प, विषैले मींडक आदिके विषमें, मालिश, स्नान, पान और बस्तिकर्म्म इनके द्वारा चिकित्सामें और कफके रोगमें तिलोंका तेल हित है ॥ ५ ॥ और सब रोगोंके दूर करनेके लिये तिलोंके तेलका विधान है ॥ ६ ॥

अथ सरसोंके तेलका गुण।

कटु तिक्तं तथा ग्राहि उष्णं स्यात्कफवातनुत् ॥ कृमिकण्डूशोधनं स्यात्पित्तकृत्सार्षपं स्मृतम् ॥ ७ ॥ कर्णरोगे कृमिरोगे तथा वातामयेषु च ॥ कण्डूकुष्ठामये चैव कफमेदोगणेषु च ॥ ८ ॥ प्रशस्यं सार्षपं चैव रोगाणां च विभावयेत् ॥ वस्तिकर्मणि नो शस्तं पित्तदाहकरं महत् ॥ ९ ॥

सरसोंका तेल चर्चरा है, कडुआ है, कब्जको करता है, गरम है, कफको और वातको नाशता है, कीड़ोंको और खाजको शोधता है और पित्तको करता है ॥ ७ ॥ और कानरोग, कृमिरोग, वातके रोग, खाज, कुष्ट, कफका रोग, मेद ॥ ८ ॥ इनमें उत्तम है, वस्तिकर्ममें अच्छा नहीं है, पित्त और दाहको करता है ॥ ९ ॥

अथ अलसीके तेलका गुण।

अतसीप्रभवं तैलं घनं मधुरपिच्छलम् ॥
विपाके चोष्णवीर्यं च वातश्लेष्मनिवारणम् ॥ १० ॥

अलसीका तेल भारी है, मधुर है, गाढ़ा है और पाककालमें गरम वीर्यवाला है, वातको और कफको दूर करता है ॥ १० ॥

अथ एरंडके तेलका गुण।

एरण्डजं घनं चापि शीतमेव मृदु स्मृतम् ॥
हृद्वस्तिजङ्घाकट्यूरुशूलानाहविबन्धनुत् ॥ ११ ॥

एरंडका तेल गाढ़ा है, शीतल है, कोमल है और हृदय, बस्तिस्थान, जांघ, कटि, ऊरु, इनमें उत्पन्न शूल, अफारा, कोष्ठबद्धताको दूर करता है ॥ ११ ॥

अथ तैलविशेषता।

आनाहाष्ठीलवातासृक्प्लीहोदावर्त्तशूलिनाम् ॥ हन्ति वातविकाराणां विदध्याच्च प्रशान्तये॥१२॥यावन्तः स्थावराः स्नेहाः समासेन प्रकीर्तिताः॥ सर्वे तैले गुणा ज्ञेयाः सर्वे चानिलनाशनाः॥ १३॥ सर्वेभ्यस्त्विह तैलेभ्यस्तिलतैलं प्रशस्यते॥ १४ ॥

अफारा, अष्ठीला, वातरक्त, तिलीरोग उदावर्त, शूल, वातरोग, इनकी शांतिके लिये तेल है ॥ १२॥ जो स्थावरसंज्ञक स्नेह विस्तारसे कहे हैं वे सब तेलके समान गुणोंको करनेवाले हैं और वातको नाशते हैं ॥ १३ ॥ सब प्रकारके तेलोंसे तिलोंका तेल श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

अथ लाल एरंडके तेलका गुण।

तैलमेरण्डजं बल्यं गुरूष्णं मधुरं तथा ॥
तीक्ष्णोष्णं पिच्छलं विस्रं रक्तमेरण्डसम्भवम्॥ १५ ॥

लाल एरंडका तेल बलको करता है, भारी है,गरम है, मधुर है, तीक्ष्ण और गरम है, कफको करता है, कचे गंधवाला है ॥ १५ ॥

अथ कुसुंभके तेलका गुण।

कुसुम्भतैलमुष्णंतु विपाके कटुकं गुरु ॥
विदाहकं विशेषेण सर्वदोषप्रकोपनम् ॥१६ ॥

कुसुंभका तेल गरम है, पाककालमें चर्चरा है, भारी है, विशेषकरके दाहको करता है और सब दोषोंको कोपता है ॥ १६ ॥

कफोद्घातानि तैलानि यान्युक्तानि च कानिचित् ॥
गुणं कर्म च विज्ञाय कफवातानि निर्दिशेत् ॥ १७ ॥

कफको नाशनेवाले जो तेल कहे हैं उनके गुण और कर्मको जानकर कफ और वात रोगमें प्रयुक्त करने ॥ १७ ॥

अथ कुरंटाके तेलका गुण।

सहकारतैलमीषत्तिक्तमतिसुगन्धि वातकफहरं सूक्ष्मम् ॥
मधुरं कषायमेवं नातिरक्ते पित्तकरञ्च ॥ १८ ॥

कुरंटाका तेल कछुक कडुआ है, अतिसुगंधित है,वातको और कफको हरता है, सूक्ष्म है,मधुर है, कसैला है, रक्तको अति नहीं उपजाता है और पित्तको करता है ॥ १८॥

१ सम्यग्विचार्य दृष्टं पद्येऽस्मिन्नास्ति वृत्तयोगो वै। विद्वद्भिः क्षन्तव्यं ह्यार्षश्चायं महर्षिभिः प्रोक्तः सहकारपुष्पस्य कुरंटकपुष्पेण साम्यमतो लक्षणया सहकारस्यार्थः कुरण्टक इति।

अथ तेलकी विशेषता।

सौवर्चलेङ्गुदीपीलुशिंशपासारसम्भवम्॥ सरलागुरुदेवादिपाद-पैः सम्भवं तु यत्॥१९॥ तुम्बुरूत्थं करञ्जोत्थं ज्योतिष्मत्युद्भवं तथा॥ अर्शःकुष्ठकृमिश्लेष्मशुक्रमेदोऽनिलापहम्॥२०॥ करञ्जारिष्टके तिक्ते नात्युष्णेन विनिर्दिशेत्॥२१॥

काला नमक, हिङ्गोट, पीलू, सीसमका सार इनका तेल और सरलवृक्ष, अगर, देवदार इनका तेल ॥ १९ ॥ धनियांका तेल, करंजुवाका तेल, मालकांगनीका तेल ये बवासीर, कुष्ठ, कृमिरोग, कफ, वीर्य्य, मेद और वात इनको नाशते हैं ॥ २० ॥ करंजुवाका तेल और नींबका तेल अतिगरम नहीं कहा है ॥ २१ ॥

अथ स्वच्छ तिवसका तेल, आच्छोडका तेल, नारियलका तेल तथा महुवाके तेलका गुण।

कषायं मधुरं तिक्तं सारणं व्रणशोधनम्॥
अच्छातिमुक्तकाच्छोडनालिकेरमधूकजम्॥२२॥

अतिशुद्ध तिवसका तेल, अच्छोडका तेल, नारियलका और महुवाका तेल कसैला है, मधुर है, कडुआ है, दोषोंको दूर करता है, घावको शोधता है ॥ २२ ॥

अथ काकड़ी, खीरा, कोहला, लहेसवा, पीलू इनके तेलका गुण।

त्रपुष्युर्वारुकूष्माण्डश्लेष्मातकपीलूद्भवम्॥
वातपित्तहृदर्शोघ्नं श्लेष्मलं गुरु शीतलम्॥२३॥

काकड़ी, खीरा, कुम्हड़ा, लहेसुवा, पीलू इनका तेल वात, पित्त और बवासीर इनको नाशता है, कफको करता है, भारी है, शीतल है ॥ २३ ॥

अथ सालपर्णी और टेशूके तेलका गुण।

पित्तश्लेष्मप्रशमनं श्रीपर्णीकिंशुकोद्भवम्॥२४॥

सालपर्णी और टेशूका तेल पित्तको और कफको नाशता है ॥ २४ ॥

अथ वसावर्ग।

वसा मज्जा च वातघ्नी बलपित्तकफप्रदा॥ सौकरी माहिषी वसा वातला श्लेष्मवर्द्धनी॥२५॥ सर्पनकुलगौधेया व्रणकुष्ठघ्नी विलेपनादेव॥ मत्स्यशिशुमारमकरग्राहादीनां वसाप्येवम्॥ सा

विसर्पहरा हृद्या कुष्ठरोगविनाशिनी ॥ २६ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने तैलवसावर्गोनाम चतुर्दशोऽध्यायः १४॥

वसा, चरबी, मज्जा अर्थात् हड्डियोंका स्नेह वातको नाशता है और बल, पित्त और कफ इनको देता है, सूकरकी और भैंसकी वसा वातको करती है और कफको बढ़ाती है ॥ २५ ॥ सर्प, नोला, गोहकी वसा लेप करनेसे घावको और कुष्ठको नाशती है और मच्छ, शिशुमार, मकरमच्छ, ग्राह आदिकी भी वसा लेप करनेसे घावको और कुष्ठको नाशती है परंतु यह वसा विसर्परोगको हरती है, हृदयको हित है और कुष्ठको विशेषकरके हरती है ॥ २६ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने तैलवसावर्गो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

अथ धान्यवर्ग ।

प्रथम शालिचावलका वर्णन ।

रक्तशालिर्महाशालिः कलमा षष्टिकापरा ॥ खञ्जरीटा पसाही च जीरकान्या कपिञ्जला ॥ १ ॥ सौगन्धी शूकला चान्या बिलवासी कचोरका ॥ गरुडा रुक्मवन्ती च कलमान्या तथापरा ॥ बिल्वजा मागधी पीता ता अष्टादश शालयः ॥ २ ॥

रक्तशाली, महाशालि, कलमा, साठी, खंजरीटा, पसही जीरका, कपिञ्जला ॥ १ ॥ सौगंधी शूकला, बिलबासी, कचेरका, गरुडा, रुक्मवंती, कलमा, बिल्वजा, मागधी, पीता ऐसे अठारह प्रकारके शालिचावल कहे हैं ॥ २ ॥

अथ शालियोंके गुण दोष ।

रक्तशालिस्त्रिदोषघ्नी चक्षुष्या मूत्ररोगहा ॥ महाशालिर्गुरुर्वृष्या चक्षुष्या बलवर्द्धिनी ॥ ३ ॥ शीता गुरुस्त्रिदोषघ्नी मधुरापरषष्टिका ॥ ४ ॥ जीरका वातपित्तघ्नी कलमा श्लेष्मपित्तहा ॥ कपिञ्जला श्लेष्मला स्यान्मागधी कफवातला ॥ ५ ॥ बिलवासी गुरुश्चापि पित्तघ्नी शुक्रवार्द्धनी ॥ शूकला पित्तवातघ्नी कचोरा पित्तनाशिनी ॥ ६ ॥ गरुडान्या च वातघ्नी पित्तमूत्रगदापहा ॥ रुक्मवन्ती लघू

रुचिबलपुष्टिकरा मता॥ ७ ॥ कलमान्या लघुः पथ्या वातश्लेष्मविवर्द्धिनी ॥ विल्वजा मागधी पीता सामान्यास्ता गुणागुणैः ॥८॥ रुचिकृद्बलकृन्मूत्रदोषघ्नी च श्रमापहा ॥ दग्धग्रामाचले जाताः शालयो लघुपाकिनः ॥९॥ सुपथ्या बद्धविण्मूत्रा रूक्षाः श्लेष्मापकर्षिणः ॥ केदारप्रभवा वृक्षा वातपित्तविनाशिनः॥१०॥ रक्तपित्तविकारघ्ना वातलाः कफकारकनाः॥देशे देशे विभिन्नानि नामानि परिलक्षयेत् ॥११॥ समान्गुणैश्च सर्वास्तान्भूमिभागोद्भवान्विदुः॥१२॥शालयश्छिन्नरोहाश्च मूत्रला वातला हिमाः १३

रक्तशालिचावल त्रिदोषको नाशता है, नेत्रोंमें हित है, मूत्ररोगको नाशता है। महाशालि भारी है, धातुको पुष्ट करता है, नेत्रोंमें हित है,बलको बढ़ाता है ॥ ३ ॥ साठी शीतल है, भारी है, त्रिदोषको हरता है और मधुर है॥४॥जीरका वातको और पित्तको हरता है। कुलमा कफको और पित्तको नाशता है। कपिंजला कफको करता है। मागधी कफको और वातको करता है ॥५॥ बिलवासी भारी है, पित्तको नाशता है,वीर्यको बढ़ाता है। शूकला पित्तको और वातको नाशता है। कचोरा पित्तको नाशता है॥६॥ गरुडा वातको नाशता है,पित्तको और मूत्ररोगको हरता है। रूक्मवंती हलकी है और रुचि, बल,पुष्टि इनको करता है ॥७॥अन्यप्रकारका कलमा हलका है, पथ्य है, वातको और कफको बढ़ाता है और विल्वजा, मागधी, पीता ये तीनों गुण और दोषों करके समान हैं ॥८॥ खंजरीटा शालि रुचिको और बलको करता है, मूत्रदोषको नाशता है और परिश्रमको हरता है। दग्ध ग्राममें और पर्वतमें उपजे शालिचावल हलके पाकवाले हैं ॥९॥ खेतमें उपजे शालि चावल सुन्दर पथ्य हैं, विष्ठाको और मूत्रको बांधते हैं, रूखे हैं, कफको नाशते हैं, वातको और पित्तको नाशते हैं॥१०॥कोई शालि रक्तपित्तके विकारको नाशते हैं, वातल हैं और कफको करते हैं। इन शालियोंके नाम देशदेशमें भिन्न जानने ॥११॥ पृथिवीके भागोंसे उपजे सब प्रकारके शालि गुणोंसे समान जानने ॥ १२ ॥ रोया शलि मूत्रको उपजाते हैं, वातको उपजाते और शीतल हैं ॥ १३ ॥

अथ क्षुद्रधान्यवर्ग।

श्यामाकः कोद्रवः कण्डूर्मर्कटी कपिकच्छुरा ॥
क्षुद्रधान्यमिदं प्रोक्तं शृणु पुत्र प्रवक्ष्यते ॥ १४ ॥

श्यामाक, कोदू, कङ्ग,मर्कटी अर्थात् मकडा, कपिकच्छुरा इन नामोंसे क्षुद्रधान्य कहा है,अब मैं कहता हूँ हे पुत्र ! सुन ॥ १४ ॥

अथ श्यामक और कोदूके गुण दोष ।

श्यामाकः शोषणो रूक्षो वातलः कफवारणः ॥ कोद्रवो रूक्षो ग्राही स्याद्रक्तपित्तविशोषणः ॥ १५ ॥ नाधिककफकृत् प्रोक्तो रुच्यः स्वादुः प्रकीर्तितः ॥ १६ ॥

श्यामक शोषनेवाला है, रूखा है,वातल है, कफको दूर करता है । कोदूं रूखा है, कब्जको करता है और रक्तपित्तको शोषता है ॥ १५ ॥ और कफकी अधिकताको नहीं करता है, रुचिमें हित है और स्वादु है ॥ १६ ॥

अथ विदलान्नका गुण ।

विदलान्नानि वक्ष्यामि शृणु पुत्र यथाक्रमम् ॥ यवगोधूमचणका माषो मुद्गाढकी तथा ॥१७॥ मकुष्टकः कुलत्थश्च मसूरस्त्रिपुटस्तथा ॥ निष्पावकः कलायश्च विदलान्नं प्रकीर्त्तितम् १८

हे पुत्र ! विदल संज्ञक अन्नोंको कहता हूँ सुन । जव,गेहूं, चना,उड़द, मूग, तूरीअन्न॥ १७॥ मोठ, कुलथी, मसूर, चौला, रेवसारी, मठर इनको विदल अन्न कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ जवोंका गुण ।

रूक्षः शीतो गुरुः स्वादुः कषायो मधुरो यवः ॥
वृष्यो ग्राही कफघ्नश्च स्यात्पित्तश्वासकासनुत् ॥ १९ ॥

जव रूखा है, शीतल है, भारी है, स्वादु है, कसैला है, मधुर है, वीर्यमें हित है कब्जको करता है कफको नाशता है, पित्त, श्वास और खाँसीको हरता है ॥ १९ ॥

अथ गेहूंका गुण ।

मधुरो गुरुविष्टम्भी वृष्यो बल्योऽथ बृंहणः ॥
ईषत्कषायो मधुरो गोधूमः स्यात्रिदोषहा ॥ २० ॥

गेहूँ मधुर है, भारी है, विष्टंभी है, वीर्यमें हितहै, बलको करता है, धातुओंको बढ़ाता है, कुछ कसैला, मधुर है और त्रिदोषको नाशता है ॥ २० ॥

अथ तिलोंका गुण ।

तिलो विपाके मधुरो बलिष्ठः स्निग्धो व्रणालेपनपथ्य उक्तः ॥
बल्योऽग्निमेधाजननो वरेण्यो मूत्रस्य दोषापहरो गुरुश्च॥२१॥
तिलेषु सर्वेष्वसितः प्रधानो मध्यः सितो हीनतरास्तथान्ये २२॥

तिल पाककालमें मधुर है, अतिवलवाला है, चिकना है, घावपे लेप करनेमें पथ्य है, बलमें हित है, अग्निको और बुद्धिको देता है, सुंदर है, मूत्रके दोषको हरता है और भारी है॥ २१॥ सब प्रकारके तिलोंमें काला तिल प्रधान है और सपेद तिल मध्यम है और अन्य प्रकारके तिल हीन गुणवाले हैं ॥ २२ ॥

अथ चनाका गुण ।

रक्ते कफे पीनसके तु कण्ठे गलामये वातरुजे सपित्ते ॥शीतः प्रतिश्यायकृमीन्निहन्ति शुष्कस्तथार्द्रश्चणकः प्रशस्तः ॥ २३ ॥

रक्त, कफ, पीनस, कंठरोग, गलरोग, वातरोग और पित्त इनमें चना हित है, शीतल है, सखरमा और कीडोंको नाशता है, सूखे और गीले चने अच्छे कहे हैं ॥ २३ ॥

अथ उडदका गुण ।

स्निग्धोऽथ वृष्यो मधुरश्च बल्यो मरुत्कफानां परिबृंहणश्च ॥ पाकेऽम्लकोष्णो विदितो हिमश्च माषोऽथ हृद्यःकथितो नरैश्च २४

उडद चिकना है, वीर्यमें हित है, मधुर है, बलमें हित है, वायुको और कफको बढ़ाता है, पाककालमें खट्टा है, कुछ गरम है, शीतल और सुंदर है ॥ २४ ॥

अथ मूंगका गुण ।

शीतः कषायो मधुरो लघुः स्यात्पित्तास्रदोषस्य हरः सरश्च॥ विपाकतोऽसौ कटुकप्रधानो मुद्गस्तथान्यः कथितोऽभिरम्यः२५

मूँग शीतल है,मधुर है,हलका है,पित्त और रक्तके दोषको हरता है,सर है, पाककालमें चर्चरा है और रमणीक है ॥ २५ ॥

अथ तुवरका गुण ।

मृदुः कषाया च सरक्तपित्तं वातं कफं हन्ति मुखव्रणञ्च ॥ गुल्मज्वरारोचककासछर्दिहृद्रोगदुर्नामहराढकी स्यात् ॥२६॥

तुवर अर्थात् अरहर कसैला है,कोमल है और रक्तपित्त,वात,कफ,मुखका घाव,गुल्म, ज्वर, अरोचक, खाँसी, छर्दि, हृद्रोग और बवासीर इनको हरती है ॥ २६ ॥

अथ मोठके गुण ।

स रक्तपित्तंकफवातहन्ता चोष्णः कषायो मधुरः प्रदिष्टः ॥ ग्राही सुशीतो गुदकीलगुल्मं मकुष्टकः सर्वगदान्निहन्ति ॥२७॥

मोठ रक्तपित्त, कफ,और वात इनको नाशती है,गरम है,कसैला है,मधुर है, कब्जको करती है, शीतल है और बवासीर, गुल्म और सब रोगोंको हरती है ॥ २७ ॥

अथ कुलथीका गुण।

उष्णो जयेन्मारुतपीनसं तु कासप्रतिश्यायविबन्धगुल्मान् ॥
हिक्कां सरक्तं तु बलाशपित्तं निहन्ति मेदश्च कुलत्थकोऽयम् ॥२८॥

कुलथी गर्म है, वात, पीनस, खांसी, खेहर, बंधा, गुल्म, हिचकी इनको नाशती है और लाल कुलथी कफ, पित्त, मेद इनको हरती है ॥ २८ ॥

अथ चौलाका गुण।

रूक्षो विशोषी मधुरः प्रदिष्टः स्नायुं करोत्यस्थिगतं बलिष्ठम् ॥
विबन्धशूलभ्रमशोफकर्ता दाहार्शहृद्रोगविकारकारी ॥२९॥

चौला रूखा है, विशेष करके शोषता है, मधुर है, हड्डीके नसको बलवाला बनाता है और शूल, बँधा, भ्रम और शोजा इनको करता है और दाह, हृद्रोग, बवासीर इनको करता है॥ २९॥

अथ मटरका गुण।

किञ्चित्कषाया मधुराः प्रदिष्टा रक्तप्रशान्तिं जनयन्ति बल्याः॥
किञ्चित्सवातं विनिहन्ति पित्तं कलायका मुद्गसमानरूपाः॥३०॥

मटर कछुक कसैला है, मधुर है, रक्तको शांत करता है, बलमें हित है, वातको और पित्तको कछुक नाशता है, यह मूंगके समान रूपवाला होता है ॥ ३० ॥

अथ मसूरका गुण।

रूक्षो विशोषी मधुरः प्रदिष्टः शूलार्तिगुल्मग्रहणीविकारान् ॥
करोति वातामयवर्द्धनं च पित्तासृजं ग्राहहरो मसूरः ॥३१॥

मसूर रूखा है, शोषी है, मधुर है और शूल, गुल्म और ग्रहणीदोष इनको करता है, वातरोगको बढ़ाता है, पित्त रक्तको उपजाता है, कब्जको नाशता है ॥ ३१ ॥

अथ धान्यवर्गका उपसंहार।

इति प्रदिष्टो बहुधान्यवर्गो ग्रन्थस्य विस्तारभयाच्च किञ्चित् ॥
ये ये प्रसिद्धाःसुतरां हि लोके तेषां गुणाः श्रेष्ठतमाः प्रदिष्टाः ॥३२॥

इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने धान्यवर्गो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस तरह धान्यवर्ग बहुत है किन्तु विस्तारके भयसे जो जो प्रसिद्ध और श्रेष्ठ हैं उन्हींके गुण कहे हैं ॥ ३२ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने धान्यवर्गो नाम पंचदशोऽध्यायः॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

अथ शाकवर्ग।

शाकं चतुर्विधं प्रोक्तं पत्रं पुष्पं फलं तथा॥ कन्दं चापि समुद्दिष्टं वक्ष्याम्येतत्पृथक्पृथक्॥ १॥ द्विविधं शाकमुद्दिष्टं गुरु विद्यात्तथोत्तरम्॥ प्रायः सर्वाणि शाकानि विष्टम्भीनि गुरूणि च॥ २॥ रूक्षाणि बहुवर्चांसि सृष्टविण्मारुतानि च॥

पत्र, पुष्प, फल, कंद इन भेदोंसे शाक चार प्रकारका कहा है उसे पृथक् पृथक् कहता हूं॥ १॥ शाक २ प्रकारका कहा है इनमें उत्तरोत्तर भारी है अर्थात् कन्द सबसे भारी है और विशेष करके सब शाक विष्टम्भको करती हैं, भारी हैं॥ २॥ रूखी हैं बहुत मलवाली हैं विष्टा और अधोवातको करती हैं।

अथ पृथक् पृथक् शाकोंके गुणदोष।

जीवंती शाकके गुण।

चक्षुष्या सर्वरोगघ्नी जीवन्ती मधुरा हिमा॥ ३॥

जीवंती शाक नेत्रोंमें हित है, सब रोगोंको नाशती है, मधुर और शीतल है॥ ३॥

अथ चौलाई शाकके गुण।

स्वादुपाकमसृक्पित्तविषघ्नं तण्डुलीयकम्॥
विविधवातविड्हन्ता मूत्रवातकफे हितः॥ ४॥

चौलाई शाक पाककालमें स्वादु है और रक्तपित्त और विष इनको नाशती है; अनेक प्रकारके वात और विष्टाको हरती है और मूत्र, वात और कफ इनमें हित है॥ ४॥

अथ कासविंदाके शाकके गुण।

मधुरः कफवातघ्नः पाचनः कण्ठशोधनः॥
विशेषतः पित्तहर इत्युक्तः कासमर्दकः॥ ५॥

कासविंदाशाक मधुर है, कफको और वातको नाशता है, पाचन है, कंठको शोधता है और विशेष करके पित्तको हरता है॥ ५॥

अथ जयंती और मकोह शाकके गुण।

जयंती वातकफकृत्पित्तसंशमनी तथा॥
त्रिदोषशमनी वृष्या काकमाची रसायनी॥ ६॥

जयंती शाक वातको और कफको करता है,पित्तको शांत करता है । मकोह विशेष शाक त्रिदोषको शांत करता है, वीर्यमें हित है और रसायन है ॥ ६ ॥

अथ बथुवा और चिल्ली शाकके गुण ।

वास्तुकं मधुरं हृद्यं वातपित्तार्शसां हितम् ॥
तद्वच्चिल्ली तु विज्ञेया वातपित्तविकारिणाम् ॥ ७ ॥

बथुवा शाक मधुर है, हृदयकी हित है, वात,पित्त और बवासीरवालोंको हित है । चिल्लीशाक भी बथुवाके समान गुणोंको देता है परंतु वात पित्तके विकारवालोंको अच्छा है ॥ ७ ॥

अथ केतकी और मेथी शाकके गुण ।

केतकी वातला वृष्या तन्द्रानिद्राकरी मता ॥
मेथिका वातशमनी वेजिका वातला मता ॥ ८ ॥

केतकीशाक वातल है, वीर्यमें हित है, तंद्राको और नींदको करता है । मेथी शाक वातको शांत करता है । वेजिका शाक वातको करता है ॥ ८ ॥

अथ सरसों और सोंपके शाकका गुण ।

सार्षपं च त्रिदोषघ्नं रुचिदं चाग्निवर्द्धनम् ॥
शतपुष्पा त्रिदोषघ्नी मेध्या पथ्या रुचिप्रदा ॥ ९ ॥

सरसोंका शाक त्रिदोषको नाशता है, रुचिको देता है, अग्निको बढाता है, सौंपका शाक त्रिदोषको नाशता है, पवित्र है, पथ्य है, रुचिको देता है ॥ ९ ॥

अथ कटेली और कुसुंभा शाकके गुण ।

जरांत्री[1] सिंहिका प्रोक्ता सातीसारे प्रशस्यते ॥ कुसुम्भं रुचिकृद्वातं हन्ति बल्यं रुचिप्रदम् ॥ १० ॥ किञ्चिद्वातावहं स्वादु विपाके च कफापहम् ॥ किञ्चिच्चाम्लं भवेत्क्षारं प्रशस्तमग्निमान्द्यके ॥ ११ ॥ भेदनं रूक्षमधुरं कषायमतिवातलम् ॥

कटेलीका शाक वृद्धतासे रक्षा करता है,अतिसारमें श्रेष्ठ है । कुसुंभाका शाक रुचिको करता है, वातको हरता है और बलमें हित है, प्रीति बढ़ाता है ॥ १० ॥ कुछ उदरमें वातको करता है, पाककालमें चूका स्वादु है, कफको हरता है,कुछ खट्टा है, खारा है और मंदाग्निमें श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥ भेदन है, रूखा है, मधुर है, कसैला है, अति वातल है ।

अथ चांगेरी शाकके गुण ।

उष्णा कषायमधुरा चाङ्गेरीवह्निदीपनी ॥ १२ ॥

चांगेरी (लोणी) शाक गरम है, कसैला है, मधुर है और अग्निको जगाता है ॥ १२ ॥

---

[1] जरया वृद्धावस्थया त्राय्यत इति जरात्री ।

अथ दूसरे शाकोंके गुण।

कफादनी तथा फञ्जी तिलपर्णी तु सिंहिका ॥
चक्रमर्दन इत्यन्ये दुर्जरा वातकोपना ॥ १३ ॥

कफादनी, फंजी, तिलवन, सिंहिका, चकोंड़ा ये शाक दुर्जर हैं और वातको कोपते हैं ॥ १३ ॥

अथ कफकारक और वातल शाक।

पिण्डालुको बला भिण्डी चिञ्चुकान्या बलादनी ॥
एते श्लेष्मकराः शाका वातलाग्निप्रशान्तकाः ॥ १४ ॥

श्वेतरतालु, खरेंहटी, भिंडी चिंचुका, बलादनी ये शाक कफको करते हैं, वातल हैं, अग्निको मंद करते हैं ॥ १४ ॥

अथ शाकोंके विशेष गुण।

सर्वे शाका दृष्टिहरा वीर्य्यत्वात्तण्डुलीयकम्॥तथैव शतपुष्पं च जयन्ती कासमर्दकम्॥१५॥आलूषकं च वेताग्रं गुडूची चापमर्दकम् ॥ किराततिक्तसहितास्तिलाः पित्तहरा मताः ॥१६॥

सब शाक दृष्टिको हरते हैं और वीर्यपनेसे चौलाई, सौफ, जयंती, कासविंदा ॥ १५ ॥ आलू, वेंतकी कोपल, गिलोय, चापमर्दक, चिरायता ये शाक कडुवे हैं और पित्तको हरनेवाले माने हैं ॥ १६ ॥

अथ अन्यप्रकारके शाक।

कूष्माण्डकालिङ्गकलिङ्गचिर्भटं पटोलपुष्पं च तथैव तुण्डी ॥
बीजं तु कर्कोटककारवेल्लं कोशातकीवेल्लिफलानि चैव॥ १७॥

कुम्हडा, कलिंगड, इंद्रजव, लाल तूंबी, परवल, मीठी तोरी, ककोडा, करेला, कडुई तोरी, वेलिफल ये भी सब शाक कहे हैं ॥ १७ ॥

अथ कुम्हड़ाका गुण।

कूष्माण्डं त्रिविधं ज्ञेयं बाल्यं मध्यं तथोत्तमम् ॥ वातघ्नं रोचकं बाल्यं मध्यमं स्यात्त्रिदोषहृत् ॥१८॥शोफं वातकफौ हन्ति रक्तपित्तनिबर्हणम् ॥ १९ ॥

कुम्हडा ३ प्रकारका जानना एक बालक, दूसरा मध्य, तीसरा उत्तम। बालक कुम्हड़ा वातको नाशता है, रुचिको उपजाता है मध्यम। कुम्हड़ा त्रिदोषको हरता है ॥ १८ ॥ उत्तम कुम्हड़ा सोजा, वात और कफ इनको हरता है और रक्तपित्तको दूर करता है ॥ १९ ॥

अथ कुकडूके शाकका गुण ।

कालिङ्गं कफकृद्वातकरणं पित्तनाशनम् ॥ २० ॥

तरबूजका शाक कफको करता है, वातको हरता है और पित्तको नाशता है ॥ २० ॥

अथ करेलाका गुण ।

कारवेल्लश्च वातघ्नः कफघ्नः पित्तकारकः ॥
उष्णो रुचिकरः प्रोक्तो रक्तदोषकरो नृणाम् ॥ २१ ॥

करेला वातको नाशता है, कफको हरता है, पित्तको करता है, गरम है, रुचिको करता है और मनुष्योंके रक्तके दोषको करता है ॥ २१ ॥

अथ लालतूरीके पुष्पका गुण ।

पुष्पं तु चैर्भटं चैव दोषत्रयकरं स्मृतम् ॥
अपक्कं जीर्णकफकृत्पक्कं किंचिद्विशिष्यते ॥ २२ ॥

तूंबाका फूल त्रिदोषको करता है, नहीं पका हुआ अजीर्णको और कफको करता है और पकाहुआ कुछ विशेष अच्छा होजाता है ॥ २२ ॥

अथ तोरी, ककोडा, कडुई तोरीका गुण ।

तुण्डीरमग्निरुचिकृद्वातपित्तनिवारणम् ॥ ककोंटकं त्रिदोषघ्नं रुचिकृन्मधुरं तथा ॥ २३ ॥ कोशातकीफलं स्वादु मधुरं वातपित्तनुत् ॥ विपाके च कफं हन्ति ज्वरे शस्तं प्रदिश्यते ॥ २४ ॥

तोरी शाक अग्निको और रुचिको करता है, वातको और पित्तको दूर करता है । ककोड़ा त्रिदोषको नाशता है, रुचिको उपजाता है और मधुर है ॥ २३ ॥ कडुई तोरी स्वादु है, पाकमें मधुर है, वातको और पित्तको नाशती है, कफको हरती है और ज्वरमें श्रेष्ठ है ॥ २४ ॥

अथ परवलका गुण ।

पटोलपत्रं विनिहन्ति पित्तं नालं कफघ्नं प्रवदन्ति धीराः ॥ फलं च तस्यास्तु त्रिदोषशान्तिं करोति नूनं ज्वरिणो हितं स्यात् ॥ २५ ॥

परवलका पत्ता पित्तको हरता है और परवलका नाल कफको नाशता है और परवलका फल त्रिदोषको शांत करता है और ज्वरवालेको निश्चय हित है (ये सब बेलियोंके शाक कहे) ॥ २५ ॥

अथ बैंगनका गुण ।

निद्राकरं प्रीतिकरं गुरु स्यात्सवातलं [illegible]सविकारकारि ॥
श्रेष्ठं सुदीर्घं कफवर्धनं च सश्वासकासारुचिवर्धनं च ॥ २६ ॥

बैंगन नींदको और प्रीतिको करता है, भारी है, वातल है, खांसीके विकारको करता है और सुंदर, लंबा बैंगन श्रेष्ठ है, कफको बढ़ाता है और श्वास, खांसी, रुचि इनको बढ़ाता है ॥२६॥

अथ बड़ी कटेलीका गुण ।

तथा बृहत्याः फलमेव शस्तं सन्दीपनं स्यात्कफवातनाशनम् ॥
कण्डूविसर्पज्वरकामलानां तथारुचौ शस्तमिदं वदंति ॥ २७ ॥

बड़ी कटेलीका फल श्रेष्ठ है, अग्निको जगाता है, कफको और वातको नाशता है और खाज, विसर्प, ज्वर, कामला, अरुचि इनमें उत्तम है (ये फलशाकके गुण कहे) ॥ २७ ॥

अथ कंदशाक ।

कन्दशाकान्प्रवक्ष्यामि शृणु पुत्र पृथक्पृथक् ॥ सूरणः पिण्ड-
पिण्डालू पलाण्डुर्गृञ्जनस्तथा ॥ २८ ॥ ताम्बूलवर्णः कन्दः स्याद्धस्ति-
कन्दस्तथापरः ॥ वराहकन्दश्चाप्यन्यः कन्दशाका इमे स्मृताः २९

कंदशाकोंको पृथक् पृथक् कहता हूं । हे पुत्र ! सुन । जिमीकंद, पिंडशाक, आलू, प्याज, गाजर ॥ २८ ॥ रतालु, हस्तिकंद, वराहकंद ये कंदशाक कहे हैं ॥ २९ ॥

अथ जमीकंदका गुण ।

दीपनः सूरणो रुच्यः कफघ्नो विशदो लघुः ॥
विशेषात्सर्वपथ्यः स्यात्प्लीहगुल्मविनाशनः ॥ ३० ॥

जमीकंद अग्निको जगाता है, कफको नाशता है, रुचिमें हित है, सुंदर है, हलका है, विशेष करके पथ्य है, तिल्लीरोगको और गुलमको नाशता है ॥ ३० ॥

अथ आम्लिकाकंदका गुण ।

आम्लिकायाः स्मृतः कन्दो ग्रहण्यर्शोहितो लघुः ॥ ३१ ॥

आम्लिका कंद हलका है, ग्रहणीदोष और बवासीरमें हित है ॥ ३१ ॥

अथ पिंडशाकका गुण ।

पिण्डको वातलः श्लेष्मी ग्राही वृष्यो महागुरुः ॥

पिंडशाक वातको करता है, कफवाला है, ग्राही है, वीर्यमें हित है, बहुत भारी है ॥

अथ आलूका गुण ।

पिण्डालुकः श्लेष्मकरः शुक्रवृद्धिकरो मृदुः ॥ ३२ ॥

पिंडालू कफको करता है, वीर्यको बढ़ाता है और कोमल है ॥ ३२ ॥

अथ प्याजका गुण ।

पलाण्डुर्वातकफहा शुक्रलः शूलगुल्मनुत् ॥

प्याज वातको और कफको नाशता है, वीर्यको बढ़ाता है, शूलको और गुलमको नाशता है ।

अथ रतालूका गुण ।

ताम्बूलपर्णः कन्दः स्याच्छुक्रलो विशदो लघुः ॥ ३३ ॥

रताळुकंद वीर्यको बढ़ाता है, सुंदर है और हलका है ॥ ३३ ॥

अथ हस्तिकंदका गुण ।

हस्तिकन्दो गुरुर्ग्राही शुक्रवृद्धिप्रदो मतः ॥

हस्तिकंद भारी है, कब्जको करता है, वीर्यको बढ़ाता है ॥

अथ वाराहकंदका गुण ।

वराहकन्दश्चार्शोघ्नो वातगुल्मनिवारणः ॥ ३४ ॥

वराहकंद बवासीरको नाशता है, वातको और गुल्मको दूर करता है ॥ ३४ ॥

अन्ये तेऽज्ञातकन्दाश्च ते न प्रोक्ता मयाऽनघ ॥ सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ३५ ॥ दीपनोऽर्शस्तथा गुल्मक्रिमिप्लीहविनाशनः ॥ दद्रूणां रक्तपित्तानां कुष्ठानां न प्रशस्यते ॥ ३६ ॥ एते कन्दाः समाख्याताः श्रीमन्तो हि भिषग्वर॥३७॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने शाकवर्गोनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अन्य भी कंद हैं वे अप्रसिद्ध हैं इस वास्ते मैंने नहीं कहे हैं परंतु सब प्रकारके कंद शाकोंमें जमीकंद श्रेष्ठ है ॥ ३५ ॥ और अग्निको जगाता है बवासीर, गुल्म, कृमिरोग, तिल्लीरोग इन्होंको नाशता है परंतु दद्रू रक्तपित्त और कुष्ठको अच्छा नहीं है ॥ ३६ ॥ हे वैद्यवर! शोभासे युक्त हुए कंद मैंने अच्छी तरह कहे हैं ॥ ३७ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने शाकवर्गो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

अथ फलवर्ग ।

आम्रं जम्बूश्च कोलश्च दाडिमामलकं तथा ॥ खर्जूरश्च परूषश्च मातुलुंगपियालजम्॥१॥नारंगं वालिमका चैव द्राक्षा च करमर्दकम् ॥ क्षीरिका मधुराश्चैव फलवर्गे प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥

आम, जामुन, बेर, अनार, आमला, छुहारा अथवा खजूरिया, फालसा, विजौरा, चिरौंजी ॥ १ ॥ नारंगी, अमली, दाख, करौंदा, खिरनी, सुन्दर खजूर फल ये सब फलवर्गमें कहे हैं ॥ २ ॥

अथ आमके फलका गुण ।

अपक्वमाम्रं फलमेव शस्तं संग्राहि पित्तासृजि कोपनं च ॥
तथा विपक्वं मधुरं च चाम्लं भेद्यं सपित्तामयनाशनं च ॥ ३ ॥

कुछेक पका हुआ आमका फल श्रेष्ठ है, कब्जको करता है, पित्तको और रक्तको कोपता है और विशेष पका हुआ आमका फल मधुर है, खट्टा है, दस्तावर है और पित्तके रोगको नाशता है ॥ ३ ॥

अथ जामन बेर अनार चिरौंजीके गुण ।

जम्बूर्ग्राही मधुरकफहा रोचनो वातहारी कोलं चाम्लं मधुरम-
थवा श्लेष्मलं ग्राहि शस्तम्॥श्रेष्ठं वातादिकरुजहरं दाडिमं चा-
मयघ्नं तत्प्रोक्तं च मधुरमुदितं स्वादु राजादनं च ॥ ४ ॥

जामुनका फल कब्जको करता है, मधुर है, कफको नाशता है, रुचिको करता है और वातको हरता है । बेर खट्टा है अथवा मधुर है, कफको करता है, कब्जको करता है, सुन्दर है ।अनारका फल श्रेष्ठ है, वात आदिकी पीडाको हरता है और रोगको नाशता है । खिरना मधुर है और स्वादु कहा है ॥ ४ ॥

अथ विशेषवर्णन ।

परूषकंकरहपीलुकानां पियालसिंहीकरमर्दकानाम्[1] ॥
फलानि मेहं विनिहंति पित्तं हन्याच्च सर्वातुरसंधिवातम्॥५॥

फालसा, करहा, पीलू, चिरौंजी, कटेली, करौंदी इनके फल प्रमेहको और पित्तको हरते हैं और रोगीके संपूर्ण शरीरके वातको हरते हैं ॥ ५ ॥

अथ बिजौराका गुण ।

स्यान्मातुलुङ्गः कफवातहंता हन्ता क्रिमीणां जठरामयघ्नः ॥
संदुष्टरक्तस्य विकारपित्तसंदीपनः शूलविकारहारी॥६॥ श्वास-
कासारुचिहरं तृष्णाघ्नं कण्ठशोधनम् ॥ दीपनं लघु रुच्यं च
मातुलुङ्गमुदाहृतम्॥७॥त्वक् तिक्ता दुर्जरा तिष्या क्रिमिवात-
कफापहा ॥स्वादु शीतं गुरु स्निग्धं करहं वातापित्तजित्॥८॥
मध्यं श्लेष्मातकं छर्दिकफारोचकनाशनम् ॥ दीपनं लघु संग्राहि
गुल्मार्शो हन्ति केशरम्॥ ९ ॥ पित्तमारुतहृद्वातपित्तलं बद्धकेश-

[1] छन्दोभंगः प्रथमचरणेऽस्य पद्यस्य ।

रम् ॥ हृद्यं वर्णकरं रुच्यं रक्तमांसबलप्रदम् ॥१०॥ शूलाजीर्णविबद्धेषु मन्दाग्नौ कफमारुते॥अरुचौ श्वासकासे च स्वरसोऽस्योपदिश्यते ॥११॥ रसोऽतिमधुरो हृद्यो वीर्य्यं पित्तानिलापहम्॥ कफकृद्दुर्जरः पाके मातुलुङ्गकटाहकः ॥ १२ ॥ चेतोहारी पृथगति कटुत्वं च धत्तेऽमितोऽयं हृद्रोगानाहगुल्मश्वसनकफकरो ग्रीष्मकालेऽपहन्ता ॥ १३ ॥ वीर्य्यकृच्चार्शहृत्काले स्यात्तथा क्रिमिहृन्मतम्॥तिक्तंपुष्पं च बीजं च गुल्मनुत्स्यात्तथापरम् १४

बिजौरा कफको और वातको नाशता है और कृमिरोगको हरता है और पेटके रोगको दूर करता है, दूषित हुए रक्तविकारको और पित्तको दूर करता है अग्निको जगाता है, और शूलविकारको नाशता है ॥ ६ ॥ और बिजौराका फल श्वास, खांसी, अरुचि इनको नाशता है, तृषाको हरता है, कंठको शोधता है, अग्निको जगाता है, हलका है, रुचिमें हित है ॥ ७ ॥ बिजौराकी छाल कडुई है, दुर्जर है, खट्टी है और कृमि, वात, कफ इनको नाशती है और बिजौराकी कोंपल स्वादु है, शीतल है, भारी है, चिकनी है, वातको और पित्तको जीतती है ॥ ८ ॥ और बिजौराका गूदा कफको नाशता है, छर्दिको और कफ और अरोचकको नाशता है और बिजौराका केसर अग्निको जगाता है, हलका है, कब्जको करता है, गुल्मको और बवासीरको नाशता है॥ ९ ॥ पित्तको और वातको हरता है और केसरसे संयुक्त हुआ बिजौराका फल पित्तको और वातको करता है, सुन्दर है, वर्णको करता है, रुचिमें हित है और रक्त, मांस, बल इनको देता है ॥ १० ॥ और बिजौराका स्वरस शूल, अजीर्ण, मन्दाग्नि, कफ, वात, अरुचि, श्वास, खांसी इनमें उत्तम है ॥ ११ ॥ और बिजौराका रस अति मधुर है, सुन्दर है, वीर्य्यको देता है, पित्तको और वातको नाशता है, कफको करता है और पाककालमें दुर्जर है ॥ १२ ॥ और चित्तको हरता है, तिससे पृथक् अति चर्चरापनाको धरता है और हृद्रोग, अफारा, गुल्म, श्वास इनको अन्य कालमें करता है और गरमकालमें नाशता है ॥ १३ ॥ बिजौराके फूल और बीज सुन्दर कालमें वीर्यको करते हैं बवासीरको दूर करते हैं, कृमिको हरते हैं, कडुवे हैं और गुल्मको नाशते हैं ॥ १४ ॥

अथ निंबूका गुण।

निम्बुकं क्रिमिसमूहनाशनं तीक्ष्णमुष्णमुदरग्रहापहम् ॥ वातपित्तकफशूलिनां हितं नष्टधान्यरुचिशोधनं परम् ॥ १५ ॥ त्रिदोषसद्योज्वरपीडितानां दोषाश्रितानां च सवज्जलानाम् ॥ मलग्रहे बद्धगुदे हितं च विषूचिकायां मुनयो वदन्ति ॥ १६ ॥

१ "आहतात्तत्क्षणाकृष्टाद्द्रव्यात्क्षुण्णात् समुद्धरेत् । वस्त्रनिष्पीडितो यः स रसः स्वरस उच्यते" ॥ २ चरणद्वयात्मकस्यास्य श्लोकस्य प्रथमे पादे मन्दाक्रान्ता द्वितीये स्रग्धरेति ।

निंबू कीड़ोंके समूहको नाशता है, तीक्ष्ण है, गरम है, पेटके कब्जको हरता है और वात, पित्त, कफ इनके शूलवालोंको हित है और नष्ट अन्नमें रुचिको शोधता है ॥ १५ ॥ त्रिदोष और तत्काल उपजे ज्वरसे पीडितको और दोषसे आश्रितोंको और पानी झरनेवालोंको और विष्ठाके बन्धमें और बद्ध गुदरोगमें और विषूचिका अर्थात् हैजाके भेदमें हित है ऐसे मुनिजन कहते हैं ॥ १६ ॥

अथ नारंगीका गुण।

नारङ्गजं स्वादु गुणोपपन्नं सन्दीपनं रोचकमर्शसां च ॥
त्रिदोषहृच्छूलक्रिमीन्निहन्ति मन्दाग्निकासश्वसनापहारि ॥ १७ ॥

नारंगी फल स्वादु है, गुणवाला है, अग्निको जगाता है, बवासीरमें रुचिको उपजाता है और त्रिदोष, शूल, कृमि, मंदाग्निरोग, खाँसी, श्वास इनको नाशता है ॥ १७ ॥

अथ इमलीका गुण।

अपक्वमम्लीफलमम्लमस्ति तदस्रपित्तामकरं विदाहि ॥
वातामये शूलगदे प्रशस्तं पक्वं तथा शीतगुणोपपन्नम् ॥ १८ ॥

कच्ची इमली खट्टी होती है, वह रक्तपित्त और आमके रोगोंको उत्पन्न करती है तथा विदाही होती है। पकी हुई इमलीका फल वातरोगमें और शूलमें श्रेष्ठ है और शीतल होता है ॥ १८ ॥

अथ दाखका गुण।

द्राक्षाफलं मधुरमम्लकषाययुक्तं क्षारेण पित्तमरुतां कफहारि शीघ्रम् ॥ श्रेष्ठं निहन्ति रुधिरामयदाहशोषमूर्च्छाज्वरश्वसनकासविनाशकारि ॥ १९ ॥ कषायघ्ना विपाके च द्राक्षा चैव कफे हिता ॥ २० ॥

दाख मधुर है, खट्टा है, कसैला है, खारेपनेसे पित्त, वात, कफ इनको शीघ्र हरता है, श्रेष्ठ है और रक्तरोग, दाह, शोष, मूर्छा, ज्वर, श्वासरोग, खांसी इनको नाशता है ॥ १९ ॥ और पाककालमें कसैलेपनेको नाशता है और कफमें हित है ॥ २० ॥

अथ नारियलका गुण।

नालिकेरं सुमधुरं गुरु स्निग्धं च शीतलम् ॥ हृद्यं सबृंहणं बस्तिशोधनं रक्तपित्तनुत् ॥ २१ ॥ विष्टम्भि पक्वं मतिमन्नपक्वं कफवातलम् ॥ बृंहणं शीतलं वृष्यं नालिकेरफलं विदुः ॥ २२ ॥

नारियल मधुर है, भारी है, चिकना है, शीतल है, हृदयको हित है, धातुओंको पुष्ट करता है, बस्तिको शोधता है, रक्तपित्तको नाशता है ॥ २१ ॥ विष्टंभी हैं ये सब पके हुए के गुण हैं, हे बुद्धिमन्! नहीं पका हुआ नारियल कफको और वातको करता हैं, धातुओंको बढ़ाता है, शीतल है और वीर्यमें हित है ॥ २२ ॥

अथ केलेके फलका गुण ।

हृद्यं मनोज्ञं कफवृद्धिकारि शान्तं च सन्तर्पणमेव बल्यम् ॥ रक्तं सपित्तं श्वसनं च दाहं रम्भाफलं हन्ति सदा नराणाम् ॥ २३ ॥ संग्राह्यपक्कं किल शीतलं च कषायकं वातकफं करोति ॥ विष्टम्भि बल्यं गुरु दुर्जरं च आरण्यरम्भाफलमेव तद्वत् ॥ २४ ॥

पकाहुआ केलेका फल हृदयको हित है, मनोहर है, कफको बढ़ाता है, शांतिको करता है, तृप्तिको करता है, बलमें हित है और रक्तपित्त, श्वासरोग, दाह इनको सबकालमें नाशता है ॥ २३ ॥ नहीं पका हुआ केलेका फल कब्जको करता है, शीतल है, कसैला है, वातको और कफको करता है, विष्टंभी है, बलमें हित है, भारी है, दुर्जर है और वनके केलेका फल भी इन्ही गुणोंवाला है ॥ २४ ॥

अथ कैथाका गुण ।

कपित्थकाम्लं मधुरं कषायं विषदं[1] गुरु ॥ कासातिसारहृद्रोगच्छर्द्यामयकफापहम् ॥२५॥ कपित्थं मधुरं शीतं कषायं ग्राहकं लघु ॥ २६ ॥

कैथा फलका आमचूर खट्टा है, मधुर है, कसैला है, दस्त बन्द करता है, भारी है और खांसी, अतीसार, हृद्रोग, छर्दि, और कफरोग, इनको नाशता है ॥ २५ ॥ कैथा मधुर है, शीतल है, कसैला है, कब्जको करता है और हलका है ॥ २६ ॥

अथ खजूरिया अथवा छुहारेका गुण ।

अपक्कं खर्जूरफलं त्रिदोषशमनं मतम् ॥
पक्कमेव हितं श्रेष्ठं त्रिदोषशमनं परम् ॥ २७ ॥

नहीं पका हुआ खजूरिया अथवा छुहारा त्रिदोषको शांत करता है और पका हुआ हितकर श्रेष्ठ है और निश्चय त्रिदोषको शांत करता है ॥ २७ ॥

अथ सुपारीका गुण ।

कषायमधुरं भेदि पूगं पित्तकफापहम् ॥ २८ ॥

सुपारीका फल कसैला है, मधुर है, मलको पतला करता है, पित्तको और कफको नाशता है ॥ २८ ॥

अथ नागरपानका गुण ।

नागवल्लीदलं हृद्यं सुगन्धि कफवातजित् ॥२९॥

नागरपान हृदयको हितकर है, सुगंधवाला है, कफको और वातको जीतता है ॥ २९ ॥

---

१ विषेण सीदत्यवसादं करोत्युदरस्येति ।

अथ कत्थाका गुण।

खदिरः कफपित्तघ्नः कण्ठ्यः कुष्ठनिबर्हणः ॥ ३० ॥

कत्था कफको और पित्तको नाशता है, कंठमें हित है, कुष्ठको दूर करता है ॥ ३० ॥

अथ चूनेका गुण।

चूर्णकं पित्तहृत्तीक्ष्णं ताम्बूलं कफवातजित् ॥ ३१ ॥संयोगात्सुरसं स्वादु मुखवैरस्यनाशनम् ॥ दन्तस्थैर्य्यकरं शोषपीनसास्यशान्तिकृत् ॥ ३२ ॥

चूना पित्तको हरता है, तीक्ष्ण है और नागरपान कफको और वातको जीतता है परंतु संयोगसे सुन्दर रसवाला है, स्वादु है और मुखके विरसपनेको हरता है ॥ ३१ ॥ और दांतोंको स्थिर करता है और शोष, पीनस इनको शांत करता है ॥ ३२ ॥

अथ कत्था कपूरसे संयुक्त नागरपानका गुण।

रोगपाटवसंशुद्धिस्वरकान्तिकरं मतम् ॥ कण्ठ्यं रुच्यमुरस्यं च फलकर्पूरसंयुतम् ॥ ३३ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने फलवर्गो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

कत्था,कपूरसे संयुक्त किया नागरपान रोगको शोधता है, स्वरको और कांतिको करता है, कंठमें हित है, रुचिको उपजाता है और छातीमें गुणको करता है ॥ ३३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने फलवर्गो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

अथ मधुवर्ग।

अतो वक्ष्यामि माक्षीकं त्रिविधं शृणु पुत्रक ॥
भ्रामरं सारघं क्षौद्रं तेषां वच्मि गुणागुणम् ॥ १ ॥

अब शहदको कहूँगा। हे पुत्र! वह शहद तीन प्रकारका है सुनो। भ्रामर १,सारघ २, क्षौद्र ३ इनके गुणोंको और दोषोंको कहता हूँ ॥ १ ॥

अथ सामान्यशहदका गुण।

शीतं कषायं मधुरं लघु स्यात्सन्दीपनं लेहनमेव शस्तम् ॥ संशोधनं च व्रणशोधनं च संरोपणं हृद्यतमं च बल्यम् ॥ २ ॥ त्रिदोष-

नाशं कुरुते च पुष्टिं कासक्षये वा क्षतजे च छर्दौ ॥ हिक्काभ्रमे शोषणपीनसानां रक्तप्रमेहे सरलातिसारे ॥ ३ ॥ रक्तातिसारे च सपित्तरक्ते तृण्मोहहृत्पार्श्वगदेऽपि शस्तः ॥ नेत्रामये वा ग्रहणीगदे वा विषे प्रशस्तं भ्रमरैश्चितं यत् ॥ ४ ॥ भ्रामरं सघनं जाड्यं भूयिष्ठं मधुरं च यत् ॥

शहद शीतल है,कसैला है, मधुर है, हलका है,अग्निको जगाता है, स्वादु है, सुन्दर शोधता है, घावको शुद्ध करता है, घावपे अंकुरको लाता है,हृदयको परमहित है,बलमें हित है ॥ २ ॥ त्रिदोषको नाशता है, पुष्टिको करता है, खांसीमें, क्षयमें, छातीके फटनेमें,छर्दीमें और हिचकी, श्रम, शोष, पीनस, रक्तप्रमेह, सीधे अतीसार इनमें हित है ॥ ३ ॥ और रक्तातिसार, पित्तरक्त, तृषा, मोह, हृद्रोग, और पसलीरोग इनमें श्रेष्ठ है, भ्रामर शहद नेत्ररोगमें अथवा संग्रहणीमें और विषमें हित है॥ ४॥ यह भ्रामर शहद बहुत गाढ़ा और भारी होता है तथा अतिमधुर होता है ।

अथ शहदकी विशेषता ।

क्षौद्रं विशेषतो ज्ञेयं शीतलं लघु लेहनम् ॥ ५ ॥ तस्माल्लघुतरं रूक्षं सारघं नातिशीतलम् ॥ कासे क्षये प्रशस्तं स्यात्कामलार्शोविनाशनम् ॥ ६ ॥ नातिशीतं न च रूक्षं दीपनं बलकृन्मतम् ॥ अतीसारे नेत्ररोगे क्षते वा क्षतजे हितम् ॥ ७ ॥ भ्रामरं वृक्षसंस्थाने विटपे सारघं भवेत् ॥ रन्ध्रे तु कोटरे वापि क्षौद्रं तत्र प्रशस्यते ॥ ८ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे मधुवर्गो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

और क्षौद्रसंज्ञक शहद विशेषपनेसे शीतल है,हलका है, स्वादु है॥ ५॥ इससे भी अति हलका सारघ शहद है, यह रूखा है, अति शीतल नहीं है, खांसीमें और क्षयमें अतिश्रेष्ठ है, कामलाको और बवासीरको नाशता है॥ ६ ॥ क्षौद्र शहद अतिशीतल नहीं है,रूखा भी नहीं है,अग्निको जगाता है; बलको करता है और अतीसार, नेत्ररोग, घाव,क्षतसे उपजारोग इनमें हित है॥ ७॥ वृक्षपे भ्रामर शहद होता है, तृणके गुच्छेमें सारघ शहद होता है, वृक्षके छिद्रमें अथवा कोटरमें क्षौद्र शहद होता है, सो अच्छा होता है॥ ८॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने मधुवर्गो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.



अथ मद्यवर्ग ।

गौडी माध्वी तथा पैष्टी निर्यासा कथितापरा ॥ इति चतुर्विधा ज्ञेयाः सुरास्तासां प्रभेदकाः ॥१॥ भेदेन द्वादश प्रोक्ताः सुराः सौवीरकारसैः ॥ सीधुर्गौडी च मत्स्यण्डी गुडेन प्रभवास्त्रयः ॥२॥ माध्वीकं मधुकं माध्वं मधुना संयुताः सुराः ॥ पैष्टीष्वरिष्टजातं तु तण्डुलप्रभवास्त्रयः ॥३॥ मृद्वीकारससम्भूता ताडमाडरसोद्भवा[1] ॥ निर्यासा सा तु विज्ञेया तासां वच्मि गुणागुणम् ॥४॥

गौडी, माध्वी, पैष्टी, निर्यासा, इन भेदोंसे मदिरा ४ प्रकारकी है उनके भेद ॥ १ ॥ बारह १२ कहे हैं। सीधु, गौडी, मत्स्यंडी ये तीन मदिरा गुड़से बनती हैं ॥ २ ॥ माध्वीक, मधुक, माध्व, ये तीन मदिरा शहदसे बनती हैं। पैष्टी, अरिष्ट, जात ये तीन मदिरा चावलोंसे बनती हैं ॥ ३ ॥ और मृद्वीका द्राक्षाके रससे बनती है, ताड़ मदिरा ताड़के रससे बनती है, और माड़ वृक्षके रससे भी मदिरा बनती है, वही निर्यास मदिरा जाननी । उनके गुण और दोषोंको कहता हूं ॥ ४ ॥

अथ सीधुमदिराका गुण ।

सीधुः कषायाम्लकमाधुरो वा सन्दीपनो मेदमलापमर्दः ॥ आमातिसारानिलपित्तशूलश्लेष्मामयार्शोग्रहणीगदघ्नः ॥ ५ ॥

सीधु मदिरा कसैली है, खट्टी है, कोई कोई मीठी होती है अग्निको जगाती है, मेदको और मलको नाशती है और आमातीसार, वात, पित्त, शूल, कफका रोग, बवासीर, ग्रहणीदोष इनको नाशती है ॥ ५ ॥

अथ गौडी मदिराका गुण ।

गौडी कषाया मधुराम्लशीता सन्दीपनी शूलमलापहन्त्री ॥ हृद्या त्रिदोषं शमयत्यजीर्णं पाण्ड्वामयार्शःश्वसनं निहन्ति ॥६॥

गौडी मदिरा कसैली है, मधुर है, खट्टी है, शीतल है, अग्निको जगाती हैं, शूलको और अफाराको हरती है, सुंदर है और त्रिदोष, अजीर्ण, पांडुरोग, बवासीर, श्वास रोग इनको शांत, करती है ॥ ६ ॥

---

१ (ताडमाडरसोद्भवा) ताडनामक-वृक्षरससंभूता तथा माडनामक वृक्षरसतो जाता अपि मदिरा माडनामको वृक्षः कौंकणदेशे प्रसिद्धः । इति औषधकोशः ।

अथ मत्स्यंडी मदिराका गुण ।

हरति मलमियं संदीपनी पाण्डुमेहाँल्लघुमधुरसुशीता रोचना पित्तहन्त्री॥ जरयति सकलं वा पीतमम्लातिमात्रं श्वसनरुधिरकासान्हन्ति वा कामलां च ॥ ७ ॥

राबकी मदिरा मलको हटाती है, अग्निको जगाती है, पांडुरोग, प्रमेह इनको हरती है, हलकी है, मधुर है, सुंदर शीतल है, रुचिको करती है, पित्तको हरती है, सब चीजोंको जलाती है, पीनेमें अति खट्टी है और श्वासरोग, रक्त, खांसी, कामला, इनको नाशती है ॥ ७ ॥

अथ माध्वीक मदिराका गुण ।

माध्वीकं शीतलाम्लं मधुरमपि तथा सत्कषायोष्णकं च हन्यात्पित्तामयार्शःश्वसनमपि तथा चातिसारं प्रमेहान् ॥ शूलानाहोपमर्दं जरयति सकलं दीपयत्यग्निसात्म्यं तस्माद्वातामवातं वमनमपि तथा हन्ति सर्वांश्च रोगान् ॥ ८ ॥

माध्वीक मदिरा शीतल है, खट्टी है, मधुर है, पीनेमें उत्तम है, कसैली है, गरम है और पित्तरोग, बवासीर, श्वासरोग, अतीसार, प्रमेह, शूल, अफारा और हड़फूटन इनको नाशती है, सब चीजोंको जराती है, अग्निको जगाती है इसलिये वात आमवात और वमन सब प्रकारके रोगोंको नाशती है ॥ ८ ॥

अथ मदिराका गुण ।

कषाया मधुरा चाम्ला सुरा सन्दीपनी मता ॥
कासार्शोग्रहणीस्तन्यमूत्ररोगविनाशिनी ॥ ९ ॥

मदिरा कसैली है, मीठी है, खट्टी है, अग्निको जगाती है और खाँसी, बवासीर, ग्रहणीदोष, दूधरोग, मूत्ररोग इनको नाशती है ॥ ९ ॥

अथ पैष्टीमदिराका गुण ।

पैष्टी सन्दीपनी रुच्या कफकृद्वातनाशिनी ॥
पित्तला पाण्डुरोगाणां कारिणी बहुधा मता ॥ १० ॥

पैष्टी मदिरा अग्निको जगाती है, रुचिमें हित है, कफको करती है, वातको नाशती है, पित्तको उपजाती है और बहुधा के पांडुरोगोंको करती है ऐसा माना गया है ॥ १० ॥

अथ महुआ वृक्षकी मदिराका गुण ।

वातपित्तकरो रूक्षः कषायो विशदो गुरुः ॥
श्लेष्मलो भेदनो ग्राही मूत्रकृच्छ्रशिरोऽर्त्तिनुत् ॥ ११ ॥

महुआकी मदिरा वातको और पित्तको करती है, रूखी है, कसैली है, सुंदर है, भारी है, कफको करती है, मलको पतला करती है, कब्जको करती है, मूत्रकृच्छ्रको और शिरके रोगको नाशती है ॥ ११ ॥

अथ ताड़की मदिराका गुण।

श्लेष्मदोषकरा वृष्या वातला श्लेष्मवर्द्धिनी ॥
कासहृल्लासविध्वंसकरणा ताडमण्डिका ॥ १२ ॥

ताड़की मदिरा कफको करती है, वीर्यमें हित है, वायुको उपजाती है, कफको बढ़ाती है और खाँसीको तथा जीकी मिचलाहट नाशती है ॥ १२ ॥

अथ मदिराकी विशेषता।

पूर्णे कषायपित्ते च योगयुक्ता सुरा हिता॥बहुदोषहरा चैव श्लेष्मरोगे विशेषतः॥१३॥ श्रमज्वरातुरे शोषे शोफपाण्ड्वामये क्षये ॥ मतेः क्लमेऽपस्मारे च यक्ष्मिणां च श्रमेषु च ॥ १४ ॥ श्रान्ते वा विषपीते वा सर्पदष्टे जलोदरे ॥ रक्तपित्ते तथा श्वासे वारुणी न हिता मता ॥ १५ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे मद्यवर्गो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

कषायपनेसे युक्त हुआ पित्त जब पूर्ण हो तब योगसे युक्तकरी मदिरा हित है, यह बहुत दोषोंको हरती है और विशेष करके कफके रोगमें हित है ॥ १३ ॥ परिश्रम और ज्वरसे पीडित और शोष, शोजा, पांडुरोग, क्षय, बुद्धिकी ग्लानि, मृगीरोग, यक्ष्माआदिसे उपजा श्रम इनसे पीडितको ॥ १४ ॥ थकेको और विष खानेवालेको और सर्पसे डसेको और जलोदर, रक्तपित्त और श्वासरोगसे पीडितको मदिरा हित नहीं है ॥ १५ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः २०.

अथ चौपायोंका और दुपायोंका मांसवर्ग।

शूलिनः शृङ्गिणश्चैव नखिनोऽन्ये प्रकीर्तिताः ॥ श्वापदाः पक्षिणश्चान्ये मत्स्याश्चान्याः सरीसृपाः ॥ १ ॥ जलेचरा जलाधारा

ग्रामारण्यनिवासिनः ॥ अनूपा जाङ्गला जीवास्तथा साधारणोऽपरः ॥ २ ॥ मृगरुरुचित्राङ्गास्तथा गण्डश्च वनगवयमहिषाः॥ सूकराद्याश्च येऽपि भवन्ति विविधवर्णा ग्रामवासिनश्च॥३॥ ये ये वनगजाद्याश्च ग्रामकाद्याश्च शृङ्गिणः॥ शूकरच्छिक्कराद्याश्च शूरिणो वा भवन्त्यमी ॥ ४ ॥

शूलवाले, शींगवाले, नखवाले, श्वापद, पक्षी, मच्छ, सर्प ये जो कहे हैं ॥ १ ॥ जलमें विचरनेवाले, जलके आश्रित हुए, ग्राममें वसनेवाले, वनमें वसनेवाले, आनूपदेशमें रहनेवाले, जांगलदेशमें रहनेवाले, साधारणदेशमें रहनेवाले ॥ २ ॥ मृग, लाल हरिण, विलावभेद, गेंडा नीलीगाय, भैंसा, शूकर आदि ये सब अनेक प्रकारके वर्णवाले ग्राममें वसनेवाले हैं॥३॥जो जो वनमें रहनेवाले हस्ती आदि हैं और जो ग्राममें रहनेवाले शींगवाले हैं और शूकर, छिकर और शूरी आदि भी ग्रामवासी हैं ॥ ४ ॥

अथ सरीसृपवर्णन ।

शशकः शल्लकी गोधा मार्जाराद्या नखायुधाः॥
सर्पमत्स्यादिका ये च ते विज्ञेयाः सरीसृपाः ॥ ५ ॥

शशा, साही, गोह, बिलाव, आदि नखरूपी शस्त्रोंवाले हैं। सर्प और मत्स्य आदि सरीसृप संज्ञक जानने ॥ ५ ॥

अथ आनूपवर्णन ।

मत्स्यमंकुरकाद्या ये कच्छपा दुर्जरादयः ॥ हंससारसचक्राद्याः कपिञ्जलकुमूदकाः ॥६॥ आनूपास्ते च विज्ञेयाः श्लेष्मला वातकोपनाः ॥ ७ ॥

मत्स्य, मंकुरक आदि कच्छप, दुर्जर आदि और हंस, सारस, चकवा आदि और पपैय्या, पंडेरिआ पक्षी ॥ ६ ॥ ये सब आनूपदेशमें रहनेवाले हैं, कफको करते और वातको कोपते हैं ॥७॥

अथ जांगलवर्णन ।

शशलावकवाताटा गोधाहरिणकूटकाः॥ छिक्कराद्यास्तथान्येऽपि तित्तिराद्याश्च कूर्चकाः ॥ ८ ॥ भारद्वाजास्तथा श्येना मूषका वरवारणाः॥इत्येता जाङ्गला जीवा ये जलेन विना स्थिताः॥९॥

शशा, लावा, वाताट, गोह, हरिण, कूटक, छिकर आदि और तीतर आदि, जीवक पक्षी ॥ ८ ॥ काग अथवा मुर्गा विशेष, शिकरा, मूषा मापीविशेष ये सब जांगलसंज्ञक जीव हैं। ये पानीके विना भी स्थित रह सकते हैं ॥ ९ ॥

अथ जलचरजीववर्णन।

शूकरा मृगशल्लाद्याः सलिलाशयमाश्रिताः ॥ मकराद्याश्च गण्डाका गवयाश्च तथापराः ॥ महिषाद्याश्च ये चैव ते च साधारणा मताः ॥१० ॥ कुररबकमकराः कङ्कचटकपिकभृङ्गसारसाः॥आडिदात्यूहहंसा जलकरटिकपिङ्कटिट्टिभाद्याश्च ११ जलेचरा विहङ्गास्त खञ्जरीटाश्च भासकाः ॥ १२ ॥ इत्येते जलजा जीवाः स्थलजाः स्थलचारिणः ॥१३ ॥

शूकर, हरण, शल्ल अर्थात् साही आदि जीव पानीके आशयके आश्रित रहते हैं और मकर, मच्छ आदि गेंड़ा, नीलगाय भैंसा आदि जीव साधारण माने हैं ॥ १० ॥ पपैया, बगला, मकरा, कंक, चत्तक, कोयल, भौंरा, सारस, आड़ीपक्षी, ढौंकरपक्षी, हंस, शंखका जीव, रटिक, पिंगापक्षी, टिटिहरी आदि जलमें विचरनेवाले हैं, खंजरीट और भासपक्षी भी जलचारी हैं और स्थलमें विचरनेवाले स्थलचारी जीव कहाते हैं ॥ ११-१३ ॥

अथ ग्रामचारी पशुवर्ग।

गजवाजिनस्तथोष्ट्रा माहिषा सौरभाजकाः ॥ खरशूकरमषाश्च श्वानो मार्जारमूषकाः ॥ १४ ॥ इत्येते पशवो ज्ञया ग्रामवासनिवासिनः ॥

हस्ती, घोड़ा, ऊंट, भैंसा, बैल, बकरा, गधा, सुवर, मेढ़ा, कुत्ता, बिलाव, मूषा ॥ १४ ॥ ये सब जीव ग्राममें बसनेवाले हैं ॥

ग्रामचारी पक्षी।

कुक्कुटकलविङ्कपारावतकपोतकाः ॥ १५ ॥
पक्षिणो ग्रामचाराश्च वच्मि चैषां गुणागुणम् ॥ १६ ॥

और मुर्गा, गौरैया, परेवा, कबूतर, ॥ १५ ॥ ये पक्षी ग्राममें विचरते हैं इनके गुण और दोषको कहता हूं ॥ १६ ॥

हरिणोंके मांसका गुण।

शृङ्गिणां हरिणः श्रेष्ठो बल्यो रोचनदीपनः ॥
त्रिदोषघ्नो लघुः पाके मधुरो ज्वरिणां हितः ॥ १७॥

शींगवालोंमें हरिण श्रेष्ठ है, बलमें हित है, रुचिको देता है, अग्निको जगाता है, त्रिदोषको हरता है, हलका है, पाककालमें मधुर है, ज्वरवालोंको हित है ॥ १७ ॥

अथ कृष्णमृगके मांसका गुण।

क्षते क्षयार्शसोः पाण्ड्वावरोचकनिपीडिते ॥
कासश्वासातुराणां च एणमांसं सुखावहम् ॥ १८ ॥

छातीका फटजाना, क्षय, बवासीर, पांडु, अरुची, खाँसी और श्वास इनसे पीडित रोगियोंको कृष्णमृगका मांस हित है ॥ १८ ॥

अथ चित्रांगके मांसका गुण।

चित्राङ्गो वातशमनो बृंहणो बलकृन्मतः ॥
श्लेष्मलः कथितो वापि दुर्जरो मेदवर्द्धनः ॥ १९ ॥

चित्तलका मांस वातको शांत करता है, धातुओंको पुष्ट करता है, बलको बढ़ाता है, कफको करता है, दुर्जर है और मेदको बढ़ाता है ॥ १९ ॥

अथ छिक्करके मांसका गुण।

छिक्करो लघु बृंही च मधुरो दोषनाशनः ॥
तुल्यो हरिणमांसस्य ज्वरेष्वपि प्रशस्यते ॥ २० ॥

छिक्करका मांस हलका है, धातुओंको पुष्ट करता है, मधुर है, दोषको नाशता है, मृगके मांसके समान है और ज्वरमें भी श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

अथ रक्तमृगके मांसका गुण।

रोहितो बृंहणश्चैव विबन्धी दुर्जरो घनः ॥
ज्वरिणां विषमाग्नीनामतीसारेण त्रास्यते ॥ २१ ॥

रक्त मृगका मांस धातुओंको बढ़ाता है, विशेष करके कब्ज करता है, दुर्जर है, कठिन है और ज्वर, विषमज्वर, अग्नि, इन रोगवालोंको अतीसार करके त्रासित करता है ॥ २१ ॥

अथ गेंडा, रोझ, भैंसा, ऊंट, घोड़ा इनके मांसोंके गुण।

तथैव गण्डगवयमहिषोष्ट्रतुरङ्गमाः ॥
विबन्धिगुरवः स्निग्धा वातालस्ये प्रकीर्त्तिताः ॥ २२ ॥

गेंड़ा, नीलीगाय, भैंसा, ऊंट, घोड़ा इन पाँचोंके मांस विशेष करके कब्ज करते हैं, भारी हैं चिकने हैं, वातमें और आलस्यमें हित हैं ॥ २२ ॥

अथ शूकरके मांसका गुण ।

वातघ्नं रोचनं वृष्यं दुर्जरं श्रमनाशनम्॥
सौकरं पित्तशमनं रुचिदं धातुवर्द्धनम्॥ २३॥

सुअरका मांस वातको नाशता है,रुचिमें हित है, वीर्यमें हित है, दुर्जर है, परिश्रमको नाशता है, पित्तको शांत करता है, कांतिको देता है,धातुओंकों वढ़ाता है, ॥ २३ ॥

अथ शशाके मांसका गुण ।

शशको जाङ्गलश्रेष्ठो लघुर्वृष्यश्च दीपनः॥रुचिकृत्तर्पणो बल्यस्त्रिदोषशमनो मतः ॥ २४ ॥ ज्वरे च पाण्डुरोगे च क्षये कासे गुदामये॥राजयक्ष्मणि पाण्डौ च तथातीसारिणां हितः॥२५॥

शशाका मांस जांगलजीवोंके मांसोंमें श्रेष्ठ है, हलका है, वीर्यमें हित है, अग्निको जगाता है, रुचिको करता है, तृप्तिको करता है, बलमें हित है और त्रिदोषको शांत करता है ॥ २४ ॥ और ज्वर, पांडुरोग, क्षय, खासी बवासीर, राजरोग, पांडुरोग, अतीसार, इन रोगवालोंको हित है ॥ २५ ॥

अथ साहीके मांसका गुण ।

शल्लकी बृंहणो बल्यः स्निग्धो वृष्यो रुचिप्रदः ॥
वातश्लेष्महरो हृद्यो मधुरो धातुवर्द्धनः ॥ २६ ॥

साहीका मांस धातुओंको पुष्ट करता है, वीर्यमें हित है, बलको करता है,चिकना है, रुचिको देता है, वातको और कफको हरता है, सुन्दर है, मधुर है और धातुओंको बढ़ाता है ॥२६॥

अथ गोह सरीखे शल्यकनामवाले जीवके मांसका गुण

शल्यको बृंहणो बल्यःस्निग्धो वृष्यो रुचिप्रदः ॥
वातलः किञ्चिद्धातूनां वर्द्धनो मधुरो घनः॥ २७ ॥

गोह सरीखे जीवका मांस धातुओंको पुष्ट करता है, बलमें हित है, चिकना है, वीर्यमें हित है,रुचिको देता है, वातको करता है, धातुओंको कुछ बढ़ाता है, मधुर है और कठिन है ॥ २७ ॥

अथ गोहके मांसका गुण ।

रक्तपित्तहरा वृष्या स्निग्धा मधुरशीतला ॥
श्वासकासहरा प्रोक्ता गोधा चार्शोहिता बला॥२८॥

गोहका मांस रक्तपित्तको हरता है, वीर्यमें हित है, चिकना है,मधुर है, शीतल है, श्वासको और खांसीको हरता है और बवासीरमें हित है बलप्रद है ॥ २८ ॥

अथ मूषाके मांसका गुण ।

स्निग्धो बलकरः शुक्रवर्द्धनो मधुरो लघुः ॥ दुर्नामकृमिदोषघ्नो वातहारी च मूषकः ॥ २९ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुष्पदानां मांसवर्गो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

मूसेका मांस चिकना है, बलको करता है, वीर्य्यको बढ़ाता है, मधुर है, हलका है और बवासीरको और कृमिदोषको हरता है और वातको भी नाशता है ॥ २९ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने मांसवर्गो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१.



अथ स्थलमें विचरनेवाले जीवोंका मांसवर्ग ।

(प्रथम लावापक्षीके मांसका गुण)

पक्षिणां च महाश्रेष्ठो लावको जाङ्गलात्मजः ॥ संग्राही दीपनः प्रोक्तः कषायो मधुरो लघुः ॥ १ ॥ तथा विपाके मधुरः सन्निपातेऽतिपूजितः ॥ २ ॥

जांगलदेशमें विचरनेवाले लावापक्षीका मांस अन्य पक्षियोंके मांससे श्रेष्ठ है । यह कब्जको करता है, अग्निको जगाता है, कसैला है, मधुर है और हलका है ॥ १ ॥ और पाककालमें मधुर है और सन्निपातमें अतिपूजित है ॥ २ ॥

अथ तीतरके मांसका गुण ।

तथैव तित्तिरो वृष्यो मेधाग्निबलवर्द्धनः ॥ सर्वदोषहरो बल्यो बलाका समता गुणैः ॥ ३ ॥ वार्त्ताको विशदो वृष्यो यथा लावस्तथैव च ॥ कृष्णगौरप्रभेदाश्च श्रेष्ठो गौरश्च तित्तिरः ॥ ४ ॥ तृतीयतित्तिरोऽन्योऽपि सामान्यो गुणलक्षणैः ॥ सवातलोऽतिबलकृद्धनः किञ्चिद्रसायनः ॥ ५ ॥

तीतरका मांस वीर्यमें हित है और बुद्धि, अग्नि, और बल, इनको बढ़ाता है, सब दोषोंको हरता है, बलमें हित है और बगलाके मांसके समान गुणोंवाला है ॥ ३ ॥ वार्ताकसंज्ञक तीतरका मांस सुन्दर है, वीर्यमें हित है और लावाके मांसके समान गुणोंवाला है, कृष्ण और

गौर तीतरोंमें गौर वर्णका तीतर श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ इन्हींके गुण और लक्षणोंके समान तीसरे, रंगका तीतर अन्य भी होता है परंतु वह वातल है, अतिवलको करता है, उसका मांस कठिन है और कुछ रसायन हैं ॥ ५ ॥

अथ नीले मोरके मांसका गुण।

मेधावृद्धिं स्रोतसां च करोत्युत्पाटनं शिखी ॥
सवातलोऽतिवलकृद्घनः किञ्चिद्रसायनः ॥ ६ ॥

नीले मोरका मांस बुद्धिको बढ़ाता है और नाड़ियोंको शुद्ध करता है, वातल है, अतिवलको करता है, कठिन है और कुछ रसायन है ॥ ६ ॥

अथ साधारण मोरके मांसका गुण।

सुस्निग्धो श्लेष्मलो वृष्यो घनः शुक्रविवर्द्धनः ॥
मांसवृद्धिकरो बल्यो द्वितीयश्च मयूरकः ॥७॥

साधारण मोरका मांस सुन्दर चिकना है, कफको करता है, वीर्यमें हित है, कठिन है, वीर्यको बढ़ाता है, मांसको बढ़ाता है, बलमें हित है ॥ ७ ॥

अथ मुर्गाके मांसका गुण।

तथैव कौक्कुटो ज्ञेयो मधुरश्च गुणात्मकः ॥ ८ ॥

वैसे ही मुर्गाका मांस भी मोरके मांसके समान गुणोंवाला है और मधुर है ॥ ८ ॥

अथ कपोतके मांसका गुण।

कापोतो बृंहणो बल्यो वातपित्तविनाशनः ॥
तर्पणः शुक्रजननो हितो नृणां रुचिप्रदः ॥९॥

कपोतका मांस धातुओंको पुष्ट करता है, बलमें हित है, वातको और पित्तको नाशता है, तृप्तिको करता है, वीर्यको बढ़ाता है और मनुष्योंको हित है, रुचिको देता है ॥ ९ ॥

अथ परेवाके मांसका गुण।

तथा पारावतो ज्ञेयो वातश्लेष्मकरो गुरुः ॥ बल्यो वृष्यो रुचिकृच्च तथा हारीतको मतः ॥ १० ॥ पोतकी भङ्गिका क्षुद्रा तथा च कुनटी तथा ॥ एते तुल्यगुणा ज्ञेया लघुवातापहारिणः ॥११॥

परेवाका मांस वातको और कफको करता है, भारी है, बलमें हित है, वीर्यमें हित है, रुचिको करता है और ऐसे ही गुणोंवाला तिलजिरुपक्षीका मांस है ॥ १० ॥ और पोतक, इन्द्रगोप, मधुमाखी, कुनटी इन चारोंका मांस समान गुणोंवाला है, हलका है और वातको हरता है ॥ ११ ॥

अथ ककेराके मांसका गुण।

लघुश्च कृकरो ज्ञेयः कायाग्निवर्द्धनो भृशम् ॥ १२ ॥

ककेराका मांस हलका है, शरीरकी अग्निको बढ़ाता है ॥ १२ ॥

अथ खाती चिड़ाके मांसका गुण ।

तथा लघुर्वातहरः काष्ठकूटोऽग्निवर्द्धनः ॥ वातश्लेष्माधिको ज्ञेयः शीतलः शुक्रवर्द्धनः ॥ १३ ॥ अश्मरीं हन्ति विशदो बलकृन्मांसतक्षणः ॥१४॥

खातीचिडाका मांस हलका है, वातको हरता है और जठराग्निको बढ़ाता है, वात और कफकी अधिकतासे संयुक्त है, शीतल है और वीर्यको बढ़ाता है ॥ १३ ॥ पथरीको हरता है सुन्दर है, बलको करता है, मांसको काटता है ॥ १४ ॥

अथ चकोर, तोता, मैना इनके मांसका गुण ।

चकोरोऽथ तथा शारी समदोषौ गुणागुणैः ॥ १५ ॥

चकोर, तोता, मैंना इन्होंका भी मांस गुण और दोषोंसे समान है ॥ १५ ॥

अथ कुंजके मांसका गुण ।

क्रौंचो वृष्योऽतिरुचिकृदश्मरीं हन्ति नित्यशः ॥
शोषमूर्च्छाहरो वृष्यो हन्ति कासमरोचकम् ॥ १६॥

क्रौंचका मांस वीर्यमें हित है, अधिक रुचिको करता है,निश्चय पथरीको हरता है और शोष, मूर्च्छा, खांसी, अरुचि इनको नाशता है वीर्यमें हित है ॥ १६॥

अथ कोयलके मांसका गुण ।

कोकिलः श्लेष्मलो ज्ञेयः पित्तसंशमनो मतः ॥ १७॥

कोयलका मांस कफको करता है, पित्त शांत करता है ॥ १७ ॥

अथ विवृताक्षके मांसका गुण ।

वैवृताक्षस्त्रिदोषघ्नो बल्यः शुक्रविवर्द्धनः ॥ १८॥

विवृताक्षका मांस त्रिदोषको नाशता है, बलमें हित है और वीर्यको बढ़ाता है ॥ १८ ॥

अथ घरके चिड़ेके मांसका गुण ।

गृहस्य चटको वृष्यो बलशुक्रविवर्द्धनः ॥ सर्वदोषहरश्चापि दीपनो मांसवर्द्धनः ॥ १९ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे स्थलचराणां मांसवर्गो नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

घरकी चिड़ियाका मांस वीर्य्यमें हित है, बल और वीर्यको बढ़ाता है, सब दोषोंको हरता है, अग्निको जगाता है और मांसको बढ़ाता हैं ॥ १९ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने स्थलचराणां मांसवर्गो नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

अथ जलचरोंका मांसवर्ग।

प्रथम हंस आदि जलके पक्षियोंके मांसका गुण।

हंसः श्लेष्मकरो बलातिरुचिदो वृष्योगुरुः शीतलस्तद्वत्कण्ठ सुजाडचशुक्रजननो वृष्योऽतिरुच्यो मृदुः॥ ज्ञेयः सारसकः कफानिलहरो वृष्यो गुरुश्चोच्यते वृष्यो वीर्य्यविवर्द्धनः कफहरः कङ्कस्तथा भासकः॥ १॥

हंसका मांस कफको करता है, बलको और अति रुचिको देता है,वीर्यमें हित है, भारी है और शीतल है। और सारसका मांस हंसके मांसके समान गुणोंवाला है, कंठमें जडपनेको और वीर्यको करता है, वीर्यमें हित है, रुचिमें हित है और कोमल है, और कंक पक्षीका मांस कफको और वातको हरता है, वीर्यमें हित है और भारी है और भासपक्षीका मांस वीर्यमें हित है और वीर्यको बढ़ाता है, कफको नाशता है॥ १॥

आडी आदि पक्षीके मांसका गुण।

आडी वातविकारकासहननी बल्या वृषा दीपनी क्रौञ्ची चासुरिशुक्रदोषहननी तुल्यस्तथा कर्कटः॥ दात्यूहो मरुतस्यनाशनकरो वृष्यो बलः शुक्रदश्चैष श्रेष्ठगुणः श्रमोपशमनः शुक्रप्रदो वातहा॥ २॥

आड़ीका मांस, वातका विकार और खाँसीको हरता है, बलमें और वीर्यमें हित है और अग्निको जगाता है। क्रौंचका मांस और आसुरीका मांस वीर्यके दोषको हरता है, और इसीके समान गुणोंवाला कांकडपक्षीका मांस है और करढोंक पक्षीका मांस वातको नाशता है, वीर्यमें हित है, बलको और वीर्यको देता है और यह श्रेष्ठ गुणोंवाला है,परिश्रमको शांत करता है॥ २॥

अथ मकर मच्छके मांसका गुण।

मत्स्यानां मकरः श्रेष्ठो दीपनो वातनाशनः॥
रुचिप्रदः शुक्रकरश्चाश्मरीदोषनाशनः॥ ३॥

सब प्रकारके मच्छोंके मांसोंमें मकरमच्छका मांस श्रेष्ठ है, अग्निको जगाता है,वातको नाशता है, रुचिको देता है, वीर्यको करता है और पथरीदोषको नाशता है॥ ३॥

अथ मच्छके मांसका गुण ।

श्रृङ्गी वातविनाशनो रुचिकरो वृष्यः कफघ्नो मतस्तस्माद्रोहितको हितो बलकरो वातात्मकः श्लेष्मकः ॥ ४ ॥ श्लेष्माकरी तु शफरी नलमीनः कफात्मकः ॥ शकुली च विशाला च ज्ञेयौ वातकफात्मकौ॥ बिलं विमत्स्यं ज्ञेयं च वातपित्तकफाकरम्॥५॥

श्रृङ्गी मछलीका मांस वातको नाश करता है, रुचिकर है,वीर्यमें हित है और कफको नाश करनेवाला माना गया है । रेहू मछलीका मांस श्रृङ्गीसे अधिकहित करनेवाला है,बल करता है, वात प्रकृतिवाला है और कफको बढ़ाता है ॥४॥ शफरी मछली कफ करती है, नल मछली कफ प्रकृतिवाली है, शकुली मछली वातप्रकृतिवाली है, विशाला मछलीका मांस कफस्वभाववाला है, बिल और विमत्स्य नामक मछलीका मांस वात, पित्त,कफ इन तीनोंको करता है॥५ ॥

अथ कछुवाके मांसका गुण ।

कच्छपो मधुरः स्वादुःशुक्रवृद्धिकरो मतः ॥
वातश्लेष्मप्रजननो बृंहणो रूक्ष एव च ॥ ६ ॥

कछुवेका मांस मधुर है, स्वादु है, वीर्यको बढ़ाता है ,वात और कफको उपजाता है, धातुओंको पुष्ट करता है और रूखा है ॥ ६ ॥

अथ खेकड़ाके मांसका गुण ।

कुलीरोऽतिबलो वृष्यः पाण्डुक्षयविनाशनः ॥
शोफातिसारग्रहणीस्थविराणां स्त्रियां हितः ॥ ७ ॥

खेकड़ाका मांस अधिक बलको करता है वीर्यमें हित है,पाण्डु और क्षय रोगको नाश करता है और शोजा,अतीसार,संग्रहणी दोष,इनसे पीडित और बूढे और स्त्रियोंको हित है ॥ ७ ॥

अथ मांसविशेषता ।

मकरो दीपनो हृद्यो ग्राही चोष्णविकारहा॥
मूत्राश्मरीणां शमनो गुल्मातीसारनाशनः ॥ ८ ॥

मकर मच्छका मांस अग्निको जगाता है, सुन्दर है, कब्जको करता है, गरम विकारको नाशता है, मूत्ररोग और पथरीको शांत करता है, गुल्म और अतीसारको नाशता है ॥ ८ ॥

अथ वर्जनीय मांसका गुण ।

काकश्येनखगारिसारसशुका यूकाः कलिङ्गा बकाः ।
भल्लूकोष्ट्रवराहधेनुतनयव्यालास्तथा गर्दभाः ॥

१ अस्मिन् श्लोके शार्दूलविक्रीडितस्य चरणद्वयमेवास्ति ।

मण्डूकादिसरीसृपादिकगणा येऽन्ये मता ईदृशास्ते भक्ष्या न शुभावहा ननु नृणां वर्ज्या भिषग्भिर्बुधैः ॥ ९ ॥गृहचटकचकोराः काकजात्याः खगाश्च पिकशुकमवशारीभृङ्गदात्यूहमाङ्गाः ॥ जलकरटकपोताः पोटकीखञ्जरीटाः कुकुरमवसलिङ्गा यूकपिङ्गादयश्च ॥ १० ॥ एते भक्ष्या नैव भक्ष्या नचेष्टा ये चान्येऽप्यज्ञातनामाण्डजाश्च ॥ अन्ये चापि श्वापदा ये च निंद्यास्ते खाद्ये वै वर्जिताश्चात्र सर्वे॥ ११॥इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे मांसवर्गो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

काक, बाज, शिकरा, सारस, तोता, यूक, कलिङ्ग और वक पक्षी तथा रीछ,ऊंट, सूकर, बैल, भेड़िया और गर्दभ तथा मण्डूक आदि सरीसृप जीवोंका समूह तथा और भी जो इन्हीकी भांति माने गयेहैं वे सब भक्ष्य मनुष्योंका कल्याण करनेवाले नहीं इसी लिये पंडित वैद्योंको अवश्य इनका त्याग करना चाहिये ॥ ९ ॥ घरमें रहनेवाली चिड़िया, चकोर, काककी जातिके पक्षी, शिकराकी जातिके पक्षी, कोयल, तोताकी जातिके पक्षी, मवा, शारी, भौरा, करढौकपक्षी, मांग, शंखका जीव, कबूतर, पोटकी, खंजना कुत्ता, मव, मलिंग, जूस,पिंगापक्षी ॥१०॥इनके मांस खानेके योग्य नहीं हैं और श्रेष्ठ भी नहीं हैं तथा जो जो हिंसक तथा निंदित जीव हैं उनके भी मांस वर्जने चाहिये॥ ११ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने मांसवर्गो नाम द्वाविंशोध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

अथ अन्नपानवर्ग।

प्रथम मंडका गुण।

मण्डः परिस्रवो भक्तस्तर्पणो वातनाशनः ॥ मूत्रमेहसमीरघ्नो रुचिकृन्मूत्रलो मतः ॥ १ ॥ आशुमण्डो भवेद्ग्राही मधुरो वा कफात्मकः ॥ तर्पणः क्षयदोषघ्नः शुक्रवृद्धिकरः परः ॥ २ ॥

मण्ड झरनेवाला है, खानेयोग्य हैं तृप्तिको करता है, वातको नाशता है,मूत्र,मेह और वातको नाशता है, रुचिको करता है और मूत्रको उपजाता है ॥१॥ शीघ्र किया मण्ड कब्जको करता है, मधुर है, कफकी प्रकृतिवाला है,तृप्तिको करता है,क्षय दोषको नाशता है और वीर्यको बढ़ाता है२

अथ भातका गुण।

अप्रसाधितभक्तो युगन्धराणां भक्तश्च घनो विशदमधुरश्च ॥
कफे त्रिदोषशमनश्च कथ्यते कासश्च श्वासात्मक एव स स्मृतः॥३॥

नहीं साधित किया ऐसा युगन्धर चावलोंका भात कठिन है, सुन्दर है, मधुर है, कफमें हित है, त्रिदोषको नाशता है, खांसीको और श्वासरोगको हरता है ॥ ३ ॥

अथ यवागूका गुण।

सन्दीपनी स्वेदकरा यवागूः सम्पाचनी दोषमलामयानाम् ॥
सन्तर्पणी धातुबलेन्द्रियाणां शस्ता भवेत्स्याज्ज्वररोगिणां च॥४॥

यवागू पसीनाको लाती है, अग्निको जगाती है, दोष, मल और रोग इनको पकाती है और धातु,बल और इन्द्रियोंको तृप्त करती है और ज्वररोगवालोंको श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

अथ यवागूका लक्षण।

भागैकश्च भवेद्द्रव्यं द्विभागन जलं क्षिपेत् ॥ चित्रकं पिप्पली-मूलं पिप्पलीचव्यनागरम् ॥५॥ धान्यकस्य समांशानि पिष्ट्वा श्वेतांश्च तण्डुलान्॥संशुद्धा शिथिला किञ्चित् सा यवागूर्निगद्यते ॥ ६ ॥ यवागूमुपभुञ्जानो जनो नारुचिमाचरेत्॥ शाक-माषफलैर्युक्ता यवागूः स्याच्च दुर्जरा ॥ ७ ॥

एक भाग द्रव्य और दो भाग पानी मिलावे और चीता, पीपलामूल, पीपल, चव्य, सोंठ ॥ ५ ॥ धनियां ये सब समभाग लेने, सफेद और दूसरे रंगके चावल इन सबोंको पीस मिलाके पकावे कुछ पतली रहे तिसको यवागू कहते हैं ॥ ६ ॥ यवागूका भोजन करता हुआ मनुष्य अरुचिको नहीं प्राप्त होता और शाक, उड़द, फलसे युक्त यवागू दुर्जर होती है ॥ ७ ॥

अथ मंडका गुण।

पञ्चकोल[1]कधान्याकैर्युक्तो रास्नान्वितः पुनः ॥
मण्डस्त्रिदोषशमनो ज्वराणां पाचनः परः॥ ८ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य,चीता, सोंठ, धनिया,रायसनसे युक्त किया मंड त्रिदोषको नाशता है और ज्वरोंको पकाता है ॥ ८ ॥

अथ खीरका गुण।

पायसं गुरु विष्टम्भजननं श्लेष्मवातलम् ॥
पित्तसंशमनं बल्यं वृष्यं श्रेष्ठं रसायनम् ॥ ९ ॥

खीर भारी है, विष्टंभको करती है, कफ और वातको करती है, पित्तको शांत करती है, बलमें और वीर्यमें हित है, श्रेष्ठ है और रसायन है ॥ ९ ॥

---

१ "पिप्पली चव्य विश्वाह्वा पिप्पलीमूलचित्रकैः। पञ्चकोलमिति ख्यातं सद्यो दीपनपाचनम्"॥ शार्ङ्गधरे।

अथ खीचडीका गुण।

गुरुर्विष्टम्भजननो वातश्लेष्मकरः स्मृतः ॥ पित्तसंशमनो बल्यो वृष्यश्चैव बलप्रदः ॥ १० ॥ मुहुस्तण्डुलसंयुक्तो माषतण्डुलवान् पुनः ॥ अन्यथा धान्यगुणवांल्लक्ष्यते च भिषग्वर ॥११॥ तिलानां संयुतो हृद्यो धातुपुष्टिविवर्द्धनः ॥ गुरुर्विष्टम्भमलकृद् दुर्जरः श्लेष्मकोपनः ॥ १२ ॥

खीचडी भारी है, विष्टंभको करती है, वातको और कफको करती है,पित्तको शांत करती है, बलमें और वीर्य्यमें हित है और बलको देती है॥१०॥फिर चावलोंसे युक्त हुई अथवा चावल और उड़दोंसे युक्त हुई खीचडीके भी वही गुण है। अन्य तरहकी खीचडी अन्नके गुणको देती है ॥ ११ ॥ तिलोंकी खीचडी सुंदर है, धातुओंकी पुष्टिको वढाती है, भारी है, विष्टंभको और मलको करती है, दुर्जर है, कफको कोपती है ॥ १२ ॥

अथ दालका गुण।

सूपश्चोक्तस्त्रिदोषघ्नो व्यञ्जितश्चैव सर्पिषा ॥
धातुपुष्टिकरः श्रेष्ठो बृंहणो बलवर्द्धनः ॥ १३ ॥

दाल त्रिदोषको नाशती है और घृतमें भूनी अथवा छोंकी हुई दाल धातुओंकी पुष्टिको करती है,श्रेष्ठ है, धातुओंको और बलको वढ़ाती है ॥ १३ ॥

अथ खलका गुण।

कफवातकरो हृद्यः खलको बलकारकः ॥ १४ ॥

तिलोंका खल वातको और कफको करता है, सुन्दर है और बलको करता है ॥ १४ ॥

अथ अनारका पना।

कफानिलहरो हृद्यो दीपनो दाडिमाम्लकः ॥ १५ ॥

अनारका पना कफको और वातको हरता है, सुन्दर है और अग्निको जगाता है ॥ १५ ॥

अथ पापड़का गुण।

पर्पटस्तैलसंभृष्टो दोषाणां च ज्वरापहः ॥
रुचिकृद्बलकृच्चैव दाहशोषतृषापहः ॥ १६ ॥

तेलमें भुना हुआ पापड दोषोंसे उपजे ज्वरको नाशता है, रुचिको और बलको करता है, दाह, शोष, तृषाको नाशता है ॥ १६ ॥

अथ संड़ाकीका गुण।

सण्डाकी च गुरुः स्निग्धा दुर्जरा अतिशीतला ॥
पित्तश्लेष्मकरा बल्या धातूनां च बलप्रदा ॥ १७ ॥

संडाको भारी है, चिकनी है, दुर्जर है, अति शीतल है, पित्तको और कफको करती है, बलमें हित है और धातुओंके बलको देती है ॥ १७ ॥

अथ उड़द आदिके वड़ोंका गुण।

दुर्जरा मधुरा रुच्या वटिका माषकादिभिः ॥ १८ ॥

उड़द आदिके बडे दुर्जर हैं, मधुर हैं, रुचिमें हित हैं ॥ १८ ॥

अथ शिखरनका गुण।

गुडदधिप्रमुदिता हिता शिखरिणी नृणाम् ॥
धातुवृद्धिकरा वृष्या वातपित्तविनाशिनी ॥ १९ ॥

गुड़ और दहीसे बनी हुई शिखरण मनुष्योंको हित है, धातुओंको बढ़ाती है, वीर्यमें हित है, वातको और पित्तको नाशती है ॥ १९ ॥

अथ घृतयुक्त दहीके पतले शिखरनके गुण।

शीतलः पित्तशमनो भ्रममूर्च्छातृषापहः ॥
खण्डेन संयुतः श्रेष्ठो घृतयुक्तो जलाधिकः ॥ २० ॥

यह शीतल है, पित्तको शांत करता है और भ्रम, मूर्च्छा, तृषाको नाशता है, खांड तथा घृतसे संयुक्त और पानीकी अधिकतासे संयुक्त ऐसा शिखरन श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

अथ मंथका लक्षण और गुण।

सक्तवः सर्पिषाभ्यक्ताः शीतवारिपरिप्लुताः ॥ नातिद्रवा नातिसान्द्रा मन्थ इत्यभिधीयते॥२१॥ मन्थः सद्यो बलच्छर्दिपिपासादाहनाशनः॥साम्लस्नेहश्च सगुडो मूत्रकृच्छ्रस्य साधनः२२

घृतमें भुने हुए सत्तुओंमें पानी मिलाके ऐसा बनावे जो न अति पतला और न अति कठिन हो तिसको मन्थ कहते हैं ॥२१॥ तत्कालका बनाया मन्थ बल, छर्दि, पिपासा और दाहको नाशता है, तेल, खटाई और गुडयुक्त मन्थ मूत्रकृच्छ्रको साधता है ॥ २२ ॥

अथ सिद्धमांसका गुण।

सिद्धं मांसं वेसवारेण युक्तं बाल्यं श्रेष्ठं स्वादु संदीपनं च ॥
त्रिदोषशमनं गुरु लवणस्नेहयुक्तं दुर्जरं दीपनं स्मृतम् ॥ २३ ॥

सिद्ध किया और वेसवारसंज्ञक मसालासे संयुक्त किया मांस बलमें हित है, श्रेष्ठ है, स्वादु है, अग्निको जगाता है, त्रिदोषको शांत करता हैं, भारी है, नमक और स्नेहसे संयुक्त किया मांस दुर्जर है और अग्निको जगाता है ॥ २३ ॥

१ आर्षत्वनात्र छंदोभङ्गत्वदोषो नास्ति।

अथ मांसकी श्रेष्ठता।

नहि मांससमं किञ्चिदन्यदेहमहत्त्वकृत् ॥
मांसादमांसं मांसेन संभृतत्वाद्विशिष्यते ॥ २४ ॥

शरीरके वढानेके वास्ते मांससरीखा दूसरा कोई पदार्थ नहीं है, उस मांसमें भी जो प्राणी मांस खाते हैं उन प्राणियोंका मांस मांससे भरा रहता है, इसलिये वह वहुत अच्छा होता है ॥ २४ ॥

अथ भूंजेहुए मांसका गुण।

अङ्गारैः परिपक्वं च दीपनं श्लेष्मनाशनम्॥
बल्यं च स्नेहसंयुक्तं घनं घनगुणात्मकम् ॥ २५ ॥

शूल आदिके द्वारा अंगारोंसे पकाया मांस दीपन है, कफनाशक है, बलमें हित है, स्नेहयुक्त रहता है कड़ा है, और कड़े गुणवाला है ॥ २५ ॥

अथ मंडका गुण।

अत्युष्णं मण्डकं पथ्यं लघु चैव यथोत्तरम् ॥ त्रिकशूलपार्श्वशूलपरिणामापहं तथा॥तृष्णामारुतछर्दिघ्नमामाशयकरं तथा२६॥

मंड अति गर्म है, पथ्य है और हलका है, यह त्रिकशूल, पसलीशूल, परिणामशूलको नाशता है, तृष्णा, वायु, छर्दि इनको नाशता है, आमको वढ़ाता है ॥ २६ ॥

अथ मांडका गुण।

तप्तकर्परपक्वा या रोचनी मधुरा घना ॥
कफवृद्धिकरी बल्या पित्तरक्तप्रदायिनी ॥ २७ ॥

तप्त किये तवेपर पकाया मांडा रुचिको करता है, मधुर है, कठिन है, कफको बढ़ाता है, बलमें हित हैं, पित्त और रक्तको देता है ॥ २७ ॥

अथ पूरी और घेवरका गुण।

पूरिका घृतपूरन्तु त्रिदोषशमनं परम् ॥
वृष्यं संबृंहणं स्वादु क्षतक्षयनिवारणम् ॥ २८ ॥

पूरी और घेवर त्रिदोषको शांत करता है, वीर्यमें हित है, धातुओंको पुष्ट करता है, स्वादु है, क्षत और क्षयको नाशता है ॥ २८ ॥

अथ मालपुवाका गुण।

गुरूष्णो दुर्जरो ज्ञेयो वातश्लेष्मकरो गुरुः ॥
पूपकः श्लेष्मको हृद्यो वृष्यो वातानुलोमकः ॥ २९ ॥

१ मांसमत्ति भक्षयति असौ मांसादः तस्य मासमिति मांसभक्षकस्य मांसम्।

मालपुआ भारी है, दुर्जर है, वातकफको करता है और कफको करता है, सुंदर है, वीर्यमें हित है, वातको अनुलोम करता है ॥ २९ ॥

अथ सोमालिकाका गुण।

सोमालिका घना स्वादू रोचनी बलवर्द्धनी ॥
दुर्जरा दोषशमनी वृष्यानुकरणी मता ॥ ३० ॥

सोमालिका (पक्वान्न) कठिन है, स्वादु है, रुचिको उपजाती है, बलको बढ़ाती है, दुर्जर है, दोषको शांत करती है और वीर्यमें हित है ॥ ३० ॥

अथ फेनीका गुण।

बृंहणी वातपित्तघ्नी पथ्या लघुतरा मता ॥
फेनिका रोचनी बल्या सर्वधातुबलप्रदा ॥ ३१ ॥

फेनी बल वढाती है, वात पित्तको शांत करती है, पथ्य है, बहुत हलकी है, रुचिको उपजाती है, बलमें हित है और सब धातुओंमें बलको देती है ॥ ३१ ॥

अथ भिन्न वड़ाका गुण।

विष्टम्भी मधुरो हृद्यो घनो वातकफात्मकः ॥
ससिक्तो वा त्रिदोषघ्नो दुर्जरो जायते पुनः ॥ ३२ ॥

भिन्न किया बड़ा विष्टंभको करता है, मधुर है, सुंदर है, कठिन है, वातकी और कफकी प्रकृतिवाला है, सेचित्त किया बड़ा त्रिदोषको नाशता है, फिर दुर्जर हो जाता है ॥ ३२ ॥

अथ अभिन्न वड़ाका गुण।

अभिन्नो दुर्जरो बल्यो घनतृष्णाप्रदः स्मृतः ॥
तीक्ष्णो विपाके विष्टम्भी दुर्जरो जायते पुनः ॥ ३३ ॥

नहीं भिन्न किया बड़ा दुर्जर है, बलमें हित है, अधिक तृषाको देता है, तेज है, पाककालमें विष्टंभी है, फिर दुर्जर हो जाता है ॥ ३३ ॥

अथ लड्डूका गुण।

कटुकास्तर्पणा बल्या दुजराः शोषकारकाः॥मन्दाग्नौ न प्रशस्यन्ते मोदका बहुवर्णकाः ॥ द्रव्यं गुणविशेषेण सारस्वादेन वा पुनः॥ ३४ ॥

लड्डू चर्चरे हैं, तृप्तिको करते हैं, बलमें हित हैं, दुर्जर हैं, शोषको करते हैं और मन्दाग्निमें हित नहीं हैं, बहुत वर्णवाले हैं, अथवा द्रव्यका गुणविशेष करके व सारस्वाद करके लड्डू कहे हैं ३४

अथ यवपोलिकाका गुण।

पोलिका कथिता बल्या कफदोषकरी मता ॥
वृष्या वीर्य्यप्रदा ज्ञेया दोषला वीर्य्यवर्द्धिनी ॥ ३५ ॥
विदलान्नस्य या पर्णा सिद्धा कर्परकेण तु ॥
रुच्या वान्नविशेषेण दोषान् सर्वान् विभावयेत् ॥ ३६ ॥

जवोंकी पोली वलमें हित है, कफदोषको करती है, वीर्य्यमें हित है,वीर्यको देती है, दोषोंको उपजाती है और वीर्य्यको वढ़ाती है ॥ ३५ ॥ और तंदूरपर पकायी हुई रोटी रुचिमें हितहै, ऐसे ही अन्नके दोषके अनुसार सव पदार्थोंको विचारे ॥ ३६ ॥

अथ अन्नके गुणोंका उपसंहार।

अन्यानि चान्नपानानि नैवोक्तानि महामते ॥
ग्रन्थविस्तारभीरुश्च लोको वक्तुं न च क्षमः ॥ ३७ ॥

हे महामते ! अन्य अन्न और पान नहीं कहे हैं, क्योंकि ग्रन्थके वढ़ जानेसे संसारके लोक विचारनेको समर्थ नहीं हो सकेंगे ॥ ३७ ॥

अथ थके हुए मनुष्यका भोजननिषेध।

श्रमात्तु भोजनं यस्तु पान वा कुरुते नरः ॥
ज्वरः संजायते तस्य छर्दिर्वा तत्क्षणाद्भवत् ॥ ३८ ॥

जो मनुष्य परिश्रम करके शीघ्र भोजनको अथवा पानको करता है, उसके शीघ्र ही ज्वर अथवा छर्दि उपजती है ॥ ३८ ॥

अथ भोजनके उपरांत मेहनत और सुरतका निषेध।

कृत्वा तु भोजन सद्यो व्यायामं सुरतं तथा ॥
यः करोति विपत्तिः स्यात्तस्य गात्रस्य निश्चितम् ॥ ३९ ॥

जो मनुष्य भोजनको करके तत्काल कसरतको अथवा मैथुनको करता है उसके शरीरमें निश्चय दुःख हो जाता है ॥ ३९ ॥

अथ ठंढा और गरम भोजनका निषेध।

न चातिशीतं भुञ्जीत नात्युष्ण भोजने हितम् ॥
कुर्य्याद्वातकफौ शीतमुष्णं भवति सारकम् ॥ ४० ॥

अतिशीतल पदार्थको खावे नहीं और अति गरम भोजन भी हित नहीं है, क्योंकि शीतल भोजन वातको और कफको करता है, गरम भोजन दस्तावर है ॥ ४० ॥

श्रमित आदिकोंके भोजनका निषेध।

न श्रान्तो भोजनं कुर्य्यान्न व्यायामसमाकुलः ॥
विषमासने न भोक्तव्य करोति विविधान्गदान ॥ ४१ ॥

परिश्रमसे थका हुआ और कसरतसे थका हुआ मनुष्य भोजनको करे नहीं और विषम आसनपर बैठके भोजनको करे नहीं ये अनेक प्रकारके रोगोंको करते हैं ॥ ४१ ॥

भोजनमें फलादिकोंका नियम।

आदौ फलानि भुञ्जीत वर्जयित्वा तु कर्कटीम् ॥
न नक्तं दधि भुञ्जीत भोजनार्द्धे न धावनम् ॥ ४२ ॥

काकडीके विना सब फलोंको आदिमें खावे रात्रिमें दहीको नहीं खावे और भोजनके बीचमें उठकर नहीं भागे (अर्थात् आधा भोजन करके उठना फिरना फिर भोजन करना उचित नहीं) ॥ ४२ ॥

भोजनके पीछे बैठनेका नियम।

भोक्तोपविशति स्थौल्यं बलमुत्तानशायिनः ॥
आयुर्वामकटिस्थस्य मृत्युर्धावति धावतः ॥ ४३ ॥

जो भोजनको करके बैठता है वह स्थूलपनेको प्राप्त हो जाता है और भोजन करके सीधा शयन करनेवालेका बल वढ़ता है, भोजन करके बायें करवट शयन करनेसे आयु बढ़ता है और भोजन करके दौड़नेसे मृत्यु दौड़ती है ॥ ४३ ॥

भोजनमें पानीका नियम।

नचादौ सलिलं पेयं भोजने पानमाचरेत्॥अर्द्धाहारेण भुञ्जीत तृतीयं व्यञ्जनेन तु॥४४॥चतुर्थं तोयपानेन पूर्णाहारःसुजायते४५॥

भोजनके आदिमें पानीको नहीं पीवे भोजन करते हुए पानीको पीवे दो भागके कोष्ठको भोजनसे पूरित करे और तीसरे भागको व्यंजनसे पूरित करे ॥ ४४ ॥ और चौथे भागको पानीसे पूरित करे ऐसे पूर्ण भोजन होता है ॥ ४५ ॥

भोजनके ऊपर व्यायाम।

भोजनोर्ध्वं चंक्रमेत शतपादं शनैः शनैः ॥
पश्चादुत्तानशयनं ततो वामे क्षणं स्वपेत् ॥ ४६ ॥

और भोजन करके सौ १०० पैर हौले हौले चले,पीछे सीधा शयन कर पीछे बायें करवट दो घडी शयन करे ॥ ४६ ॥

अथ भोजनके उपरांत नेत्रादिकोंका मार्जन।

भुक्त्वोपरि समाचम्य मार्जयेद्दक्षिणाकरैः ॥
पुनर्दक्षिणहस्तेन मार्जयेदुदरं सुधीः ॥ ४७ ॥

भोजन करके पीछे आचमन ले, दाहिने हाथसे मुखको शुद्ध कर पीछे दाहिने हाथ करके बुद्धिमान् पेटको शोधित करे ॥ ४७ ॥

अथ अड्कारका नियम ।

उद्गीरयेत्समुद्गारं न चोद्गारस्य धारणा ॥ ४८ ॥

अड्कारको अच्छी तरह लेवे, क्योंकि अड्कारको धारित करना अच्छा नहीं ॥ ४८ ॥

अथ व्यायामादिकोंका नियम ।

व्यायामं च व्यवायं च धावनं पानमेव च ॥ युद्धं गीतं च पाठं च क्षणभुक्तो विवर्जयेत् ॥ ४९ ॥ न सद्यः पीते पठनं गमनं च न कारयेत् ॥ न वा वाहनमारोहं विवादं न च कारयेत् ॥ ५० ॥

और भोजन करके दो घडीतक कसरत, मैथुन, दौडना अदि शुद्धि, जलआदिका पान और कुस्ती आदि युद्ध, गाना, पढ़ाना, इनको वर्जे ॥ ४९ ॥ और तत्काल पानीको पीके पठन और गमनको न करे । बोझाको उठावे नहीं, सवारी आदिपर चढे नहीं, विवादको करेनहीं॥ ५० ॥

अथ दिनमें शयन करनेका निषेध ।

दिवास्वापं न कुर्य्यात्तु भुक्त्वोपरि च विश्रमेत् ॥ अकालशयनाच्छ्लेष्मा प्रतिश्यायः प्रपीनसः ॥ ५१ ॥ क्षयशोफशिरोऽर्त्तिश्च जायते चाग्निमन्दता ॥ ५२ ॥

और दिनमें शयनको करे नहीं किंतु भोजनकरके विश्राम करे, अकालमें शयन करनेसे कफ, जुकाम, पीनसरोग ॥ ५१ ॥ क्षय, शोजा, शिरमें पीड़ा, मंदाग्नि ये उपजते हैं ॥ ५२ ॥

अथ दिनमें शयन कराने लायक मनुष्य ।

मद्यपीते परिश्रान्ते हिक्काश्वासातुरेषु च ॥ भयशोकक्षुधार्त्तानां पठनान्मैथुनेन च ॥ ५३ ॥ तथैव वृद्धबाले च भाराक्रान्ते तथातुरे ॥ अतीसारे च शोफे च तृष्णापानात्ययेऽपि च ॥ ५४ ॥ ग्रीष्मे बाल्ये निशाहते दिवा स्वप्नं हितं भवेत् ॥ ५५ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे अन्नपानवर्गो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ प्रथमस्थानं समाप्तम् ॥ १ ॥

मद्यपान करनेमें, परिश्रमसे थकनेमें, हिचकी और श्वासकी पीड़ामें, भय, शोक और भूख इनमें, पठन और मैथुनमें॥ ५३ ॥ वृद्धपना, बालकपना इनमें, बोझेसे थकनेपर, रोगमें, अतीसार और शोजामें, तृषा और पानात्यय रोगमें ॥ ५४ ॥ ग्रीष्मऋतुमें, बाल्यावस्थामें, रात्रिके जागनेमें दिनको शयन करना हित है ॥ ५५ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशाह्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने अन्नपानवर्गो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः २३

यहां प्रथमस्थान समाप्त हुआ ।

अथ द्वितीयस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः १.

आत्रेय उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि द्वितीयस्थानमुत्तमम् ॥ शुभाशुभानि स्वप्नानि स्वास्थ्यारिष्टानि मानुषे ॥ १ ॥ शृणु पुत्र समासेन यथा वत्स प्रकाश्यते ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-अब उत्तम द्वितीयस्थानको कहता हूं । मनुष्योंके शुभ-अशुभ, स्वप्न, स्वस्थपना, अरिष्ट ॥ १ ॥ इनको हे पुत्र ! विस्तारसे सुनो । जैसे हे वत्स ! प्रकाशित किया जाता है ॥ २ ॥

हारीत उवाच ॥ ज्ञातं मया महाप्राज्ञ अन्नपानं तथोत्तमम् ॥ इदानीं ज्ञातुमिच्छामि रोगाणां रोगविज्ञताम् ॥ ३ ॥ कर्मजा व्याधयो ये च तान्वद त्वं महामते ॥ ४ ॥

हारीत बोले-हे महाप्राज्ञ ! अन्नपानकी विधि मैंने जानी । अब रोगवालोंके रोगोंको जाननेकी इच्छा करता हूं ॥ ३ ॥ हे महामते ! कर्मसे जो व्याधियां उपजती हैं उन्हें आप कहें ॥ ४ ॥

आत्रेय उवाच ॥ कर्मजा व्याधयः सर्वे भवन्ति हि शरीरिणाम् ॥ सर्वे नरकरूपाः स्युः साध्यासाध्या भवन्त्यमी ॥५॥ अज्ञातं यत्कृतं पाप पश्चात्कृच्छ्रं समाचरेत् ॥ प्रायश्चित्तबलेनापि साध्यरूपो भवेद्गदः ॥६॥ क्रियते ज्ञातरूपेण यत्पश्चात्कृच्छ्रमाचरेत् ॥ प्रायश्चित्तेन प्रान्ते तु कष्टसाध्यो भवेद्गदः ॥७॥ ब्रह्मघ्नगोघ्नधरणीपतिघातकश्च आरामतोयघरनाशकपारदाराः ॥ स्वाम्यङ्गनागुरुवधूकुलजाभिगामी एते त्रयोदशविधाः प्रबला गदाश्च ॥८॥ पाण्डुः कुष्ठं राजयक्ष्मातिसारो मेहो मूत्रं चाश्मरी मूत्रकृच्छ्रम् ॥ शूलः श्वासः कासशोफव्रणाश्च दोषाश्चैते पापरूपा

नृणां स्युः॥९॥ ज्वरो जीर्णं तथा छर्दिभ्रममोहाग्निमान्द्यताः॥ यकृत्प्लीहार्शःशोपाश्च एते चैवोपदूषकाः ॥ १० ॥ व्रणं शूलं शिरःशूलं रक्तपित्तं तथोर्द्धगम्॥एते रोगा महाप्राज्ञ अभिशापाद्भवन्ति हि ॥११॥अन्येऽपि बहुधा रोगा जायन्ते दोषसम्भवाः॥ अतो वक्ष्य समासेन शृणु त्वं च महामते ॥१२॥

आत्रेयजी कहते हैं-शरीरधारियोंके कर्मसे उपजनेवाली सब व्याधियां हैं और सब दुःखरूप हैं साध्य और असाध्य होती हैं॥५॥ विना जाने जो किये हुए पापके पीछे कृच्छ्र चांद्रायण करे, क्योंकि प्रायश्चित्तके बलसे वह पाप साध्य हो जाता है॥६॥जानके पाप करनेके पीछे कृच्छ्रचांद्रायण करनेसे कष्टसाध्य रोग हो जाता है ॥ ७ ॥ ब्राह्मणको मारनेवाला, गायको मारनेवाला, राजाको मारनेवाला और बाग तथा जलके स्थानको नाशनेवाला और पराई स्त्रीको अपनी स्त्री बनानेवाला और स्वामीकी भार्य्या, गुरुकी भार्य्या,अपने कुलमें उपजी ऐसी स्त्रियोंसे भोग करनेवाला ऐसे मनुष्योंके तेरह प्रकारके रोग होते हैं॥ ८ ॥ पांडु, कुष्ठ, राजरोग, अतीसार, प्रमेह, मूत्ररोग, पथरीरोग, मूत्रकृच्छ्र, शूल, श्वास, खांसी, शोजा, घाव ये पापरूपरोग उन मनुष्योंके उपजते हैं ॥ ९ ॥ और ज्वर,अजीर्ण छर्दि,भ्रम,मोह,मंदाग्नि, यकृत्‌रोग,तिल्लीरोग, बवासीर, शोष ये उपरोग कहाते हैं ॥ १० ॥ घाव,शूल, शिरका शूल, शरीरके ऊपरले अंगोंमें प्राप्त हुआ रक्तपित्त ये रोग हे महाप्राज्ञ ! अभिशापसे होते हैं ॥ ११ ॥ अन्य भी बहुतसे रोग दोषोंसे उपजते हैं इसवास्ते विस्तारसे मैं कहूँगा । हे महामते तुम सुनो ॥ १२ ॥

अथ कर्मविपाक ।

ब्रह्मघ्नो जायते पाण्डुः कुष्ठी गोवधकारकः॥राजघ्नो राजयक्ष्मी स्यादतिसार्य्योपघातकः ॥ १३ ॥ स्वाम्यङ्गनाभिगमने मेहा रोगा भवन्ति हि॥गुरुजायाप्रसङ्गेन मूत्ररोगोऽश्मरीगदः ॥१४॥ स्वकुलजाप्रसङ्गाच्च जायते च भगंदरः॥शूली परोपतापी च पैशून्याच्छ्वासकासिनः॥१५॥मार्गे विघ्नकरा ये तु जायन्ते पादरोगिणः ॥ अभिशापाद्व्रणोत्पत्तिर्यकृद्वापि प्रजायते ॥ १६ ॥ सुरालये जले चापि शकृद्वृद्धिं करोति यः॥गुदरोगा भवन्त्यस्य पापरूपातिदारुणाः ॥१७॥ परतापिद्विजानां च जायन्ते हि

महाज्वराः॥परान्नविघ्नजननादजीर्णमपि जायते ॥१८॥ गरद-श्छर्दिरोगी स्यात्पादाष्टविभ्रमी तथा॥धूर्त्तोऽपस्माररोगी स्यात्कदन्नदेऽग्निमान्द्यकम्॥१९॥यकृत्प्लीहो भवेद्रोगो भ्रूणपातकपातकात्॥व्रणं शूलं शिरःशूलं परतापोपकारणात्॥२०॥अपेयपानरतको रक्तपित्ती प्रजायते ॥ दावाग्निदायको यस्तु जायते च विसर्पवान्॥२१॥बहुवृक्षोपच्छेदी च जायते च बहुव्रणः ॥ परद्रव्यापहाराच्च जायते ग्रहणीगदः ॥२२॥ कुनखी स्वर्णस्तेयाच्च प्रसूतिस्तस्य जायते ।। रौप्यस्तेयाच्चित्रकुष्ठं ताम्रचौराद्विपादिका ॥२३॥ त्रपुश्चौरः सिध्मलश्च मुखरोगी च सीसहृत्॥वर्वरो लोहचौरः स्यात्क्षारचौरोऽतिमूत्रलः ॥२४॥ घृतचौरोऽन्त्ररोगी च तैलचौरोऽतिकण्डुकः॥एतैश्छिद्रैस्तु काणाक्षो वक्रोक्तो वक्रलोचनः ॥२५॥ दोषवान्स्याच्छयावदन्तो दुष्टवाक्कुष्ठदूषणः ॥ रसनाशाज्जिह्वारोगी गोत्रहा लूतिकाव्रणी॥२६॥एते चैव महादोषा अतो वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥कृच्छ्रेण येन सिध्यन्ति पापरूपा इमे गदाः ॥ २७ ॥

ब्राह्मणको मारनेवाला पांडुरोगी होता है,गायको मारनेवाला कुष्ठी होता है, राजाको मारनेवाला राजरोगी होता है, मनुष्यको मारनेमें सलाह देनेवाला अतीसाररोगी होता है ॥१३॥ स्वामीकी स्त्रीसे भोग करनेसे प्रमेह रोग उपजता है और गुरुकी स्त्रीसे भोग करनेमें मूत्ररोग और पथरी रोग उपजता है॥१४॥ अपने कुलसे उपजी स्त्रीके संग भोग करनेसे भगंदर रोग उपजता है, पराये सुखको देख दुःख पानेवालेको शूलरोग होता है, चुगली करनेसे श्वासरोग और खांसी उपजती है ॥१५॥ मार्गमें विघ्न करनेवालोंके पैरोंमें रोग उपजता है,अभिशापसे घावकी उत्पत्ति अथवा यकृत् रोग उपजता है ॥ १६ ॥ देवताओंके स्थानमें और पानीमें जो विष्ठाको गेरता है उसके पापरूपी और दारुण ऐसे गुदाके रोग उपजते हैं ॥१७॥ ब्राह्मणको दुःख देनेसे महाज्वर उपजता हैं और पराये भोजनमें विघ्नको करनेसे अजीर्ण रोग उपजता है॥ १८॥ विषको देनेवालेके छर्दिरोग उपजता है अथवा वह रोगी घुटनोंसे आठ दिशातक भ्रमनेवाला होता है, धूर्त मनुष्यके मृगीरोग उपजता है और कुत्सित अन्नको देनेवाला मन्दाग्निसे पीडित होता है ॥ १९ ॥ गर्भको गिरानेवाला यकृत्रोगसे और तिल्लीरोगसे पीडित होता है, ॥ दूसरेको देख दुःख पानेसे घाव, शूल, शिरका शूल ये उपजते हैं ॥२०॥ नहीं पीनेके योग्य चीजको पीनेवाला रक्तपित्तसे पीडित होता है और वनमें अग्निको

लगानेवाला विसर्परोगी हो जाता है ॥ २१ ॥ बहुतसे वृक्षोंको छेदनेवाला बहुत घावोंसे पीड़ित होता है और पराये द्रव्यको हरनेसे ग्रहणी रोग उपजता है ॥ २२ ॥ सोनेकी चोरी करनेसे कुत्सित नखोंवाला हो जाता है,चांदीको चोरनेसे चित्रकुष्ठ उपजता है,तांबेको चुरानेसे विपादिका कुष्ठ उपजता है ॥ २३ ॥ रांगको चुरानेसे सेपरोग होता है,सीसाके चुरानेसे मुखरोग उपजता है, लोहाको चुरानेसे बर्बर संज्ञक रोगको प्राप्त होता है, क्षारको चोरनेवालेको अतिमूत्ररोग उपजता है ॥ २४ ॥ घृतको चोरनेसे आंतरोग होता है,तेलको चोरनेसे खाजरोग उपजता है, दूसरोंमें छिद्रको काढ़नेवाला नेत्रोंसे काणा होता है और टेढ़ा बोलनेवाला ठेढ़े नेत्रोंवाला होता है ॥ २५॥ दोषवालेके काले दंत होते हैं, दुष्टकर्मको करनेवाला कुष्टरोगी होता है, रसको नाशनेवाला जीभरोगी होता है, गोत्रके मनुष्योंको नाशनेवाला भूत और वायसे पीड़ित होता है ॥ २६ ॥ ये सब महादोष हैं इसलिये इनकी निष्कृतिको कहता हूँ जिस कृच्छ्रसे ये पापरूपी रोग सिद्ध होते हैं ॥ २७ ॥

अथ पाप दोषोंका प्रतिकार।

गोदानं भूमिदानं च स्वर्णदानं सुरार्चनम् ॥ कृत्वा पश्चात्प्रतीकारं कुर्य्यात्पाण्डूपशान्तये ॥२८॥ महापापेषु सर्वस्वं तदर्द्धमुपदोषजे॥आत्रेयाद्दशषष्ठांशात्कल्प्यं व्याधिबलाबलम्॥२९॥ नवषष्टिकृतं कर्म कुष्टरोगोपशान्तये ॥ गोभूहिरण्यदानं च तथा मिष्टान्नभोजनम् ॥ ३० ॥ चतुर्विधं दानमिदं दत्त्वा कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम्॥कदाचिदपि सिध्येत आयुषश्च बलक्रियाम्॥३१॥ मेहे सुवर्णदानं च शूले श्वासे भगन्दरे॥आश्वानडुहदानेन श्वासकासाद्विमुच्यते॥३२॥ज्वरे चेश्वरपूजा च रुद्रजाप्यं समाचरेत् ॥ अतिपानान्नदानं च शस्त्रदानं भ्रमातुरे ॥ ३३ ॥ अग्निहोमं चाग्निमान्द्ये कन्यादानं च गुल्मके ॥ मेहाश्मरीविनाशाय लवणं च प्रदीयते ॥ ३४ ॥ बहुभोजनदानेन शूलरोगाद्विमुच्यते ॥ महाज्वरे शान्तिकं च सहस्रं गण्डुकं शिवम् ॥३५ ॥ स्नापयेत्तेन सिद्धिः स्याज्ज्वररोगाद्विमुच्यते ॥ घृतमधुप्रदानेन रक्तपित्तं प्रशाम्यति ॥ ३६ ॥ वनस्पतिसिञ्चनेन विसर्पात्परिमुच्यते ॥ विटपिसिञ्चनेनाथ नात्र याति बहुव्रणः ॥ ३७ ॥ चतुर्विधेन दानेन साध्यः स्याद्ग्रहणीगदः ॥ सुवर्णदानात्कुनखी

श्यावदन्तः सुखी भवेत् ॥ ३८ ॥ रौप्यदानाच्छित्रकुष्ठं साध्यं वापि प्रदिश्यते॥सिध्मले त्रपुदानं च बर्बरे लोहदानकम्॥३९॥ मुखव्रणे नागदानं गोदानं बहुपुत्रके॥नत्ररोगे घृतं दद्यात्सुगन्धं नासिकागदे ॥४० ॥ तैलदानं च कण्डूके रसदानं च जिह्वके॥ श्यावदन्तेन देवानां सत्कृतिः प्रविधीयते॥ ओष्ठरोगेऽपि तद्वच्च लूतारोगे ददेत गाः ॥४१ ॥

गोदान,पृथिवीदान,सोनादान, देवताओंकी पूजा इनको करके पीछे पांडुरोगकी शांतिके लिये चिकित्साको करे ॥ २८ ॥ महापापोंमें सर्वस्वका दान करे और उपदोषमें घरके धनसे आधा दान करे। आत्रेयके मतसे व्याधिके बल और अबलको देख घरके धनसे सोलहवां हिस्सा दानको करे ॥ २९ ॥ कुष्टरोगकी शांन्तिके लिये उनहत्तर ६९ प्रकारका कर्म्म करना लिखा है परंतु गाय भूमि सोनेका दान और मिष्टअन्नका भोजन ॥ ३० ॥ इन चार प्रकारके दानोंको देकर पीछे कुष्ठकी चिकित्सा करनी,क्योंकि आयुकी शेषतासे कदाचित् चिकित्सा सिद्ध भी हो जाती है ॥ ३१ ॥प्रमेह,श्वासरोग, खांसी,भगंदर इन रोगोंमें सोनेका दान करना, घोड़ा और वैलके दानको करनेसे मनुष्य श्वासरोग और खांसीसे छुट जाता है॥ ३२॥ ज्वररोगमें महादेवकी पूजा और महादेवके स्तोत्रका पाठ करावे और भ्रमरोगमें पानीका और अन्नका दान श्रेष्ठ है ॥ ३३॥ मंदाग्नि में अग्निमें होम करे, गुल्मरोगमें कन्याका दान करे और प्रमेह तथा पथरीरोगको दूर करनेके लिये नमकका दान करना ॥ ३४ ॥ बहुतसे भोजनका दान करनेसे मनुष्य शूलरोगसे मुक्त होता है, महाज्वरमें शांतिकर्म करावे और हजारधारावाले कलशेसे शिवको स्नान करावे ॥ ३५ ॥ इससे सिद्धि होती है और महाज्वर दूर होता है, घृत और शहदके दानसे रक्तपित्त दूर होता है ॥ ३६ ॥ वनस्पतिको सींचनेसे विसर्परोग दूर होता है, वृक्षको सींचनेसे घावरोग दूर होता है ॥ ३७॥ चार प्रकारके दानसे ग्रहणी रोग साध्य हो जाता है, सोनेके दानसे कुनखी और काले दांतोंवाला सुखी होता है ॥ ३८ ॥ चांदीके दानसे श्वित्रकुष्ठ साध्य कहा है, सींपरोगमें रांगका दान और बर्बररोगमें लोहेका दान श्रेष्ठ है ॥ ३९ ॥ मुखके घावमें हस्तीका दान हित है और पापडीरोगमें गौका दान हित है, नेत्ररोगमें घृतको देवे,नासिकाके रोगमें सुगंधका दान करना ॥ ४० ॥ खाजमें तेलका दान और जीभके रोगमें रसका दान करना, काले दांतोंके रोगमें देवताओंका सत्कार करना और ओष्ठरोगमें भी यही विधि है और लूतारोगमें गौका दान देना ॥ ४१॥

अथ अन्यान्य रोगोंका कारण।

अन्यांश्च कथयिष्यामि मनुष्याणां शरीरगान्॥लज्जितः परनिन्दायां परतर्केण काणगः ॥ ४२ ॥ खरहा स्याद्वक्रनासः पक्षा-

घातेन पक्षहा ॥ वामनः स्वप्रशंसायां परद्वेषातिपिङ्गलः ४३ ॥ परस्य कृत्यकर्त्ता च जायते विकृतात्मकः॥एते महागदाश्चान्ये जायन्ते पापसम्भवाः ॥४४॥ यदि वात्र न सिध्येत्तु परभावो भवेन्न च ॥ अतो हि प्रायश्चित्तं तु कारयेद्भिषजां वरः ॥४५॥ भूयो जन्मान्तरे यावत्पापं रोग्यथ भुञ्जति ॥ प्रायश्चित्ते कृते वापि न पुनर्जायते भवे ॥ ४६ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने पापदोषप्रतीकारो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

मनुष्योंके शरीरमें प्राप्त हुए अन्य रोगोंको भी कहूँगा ।परायी निंदा करनेवाला मनुष्य लाजवाला होता है, दूसरेको तर्क करनेवाला मनुष्य काणा होता है ॥४२॥ गधाको मारनेवाला टेढ़ी नासिकासे संयुक्त होता है, दूसरेके पक्षको काटनेवाला मनुष्य अर्धांगरोगसे पीड़ित होता है, अपनी प्रशंसा करनेमें मनुष्य वामनाकी योनिको प्राप्त होता है, दूसरोंसे वैर करनेवाला मनुष्य अतिपिंग शरीरवाला होता है ॥ ४३ ॥ दूसरेके कृत्यको करनेवाला मनुष्य विकृत शरीरवाला होता है ये सब और भी अन्य महारोग पापसे उपजनेवाले हैं ॥४४॥ यदि रोग सिद्ध न होवें तो वैद्यवर रोगीको प्रायश्चित्त करावे ॥ ४५ ॥ किये हुए पापको दूसरे जन्ममें भी रोगी भोगता है परन्तु प्रायश्चित्तके करनेमें फिर वह पापरूपी रोग नहीं उपजता है ॥ ४६ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां द्वितीयस्थाने पापदोषप्रतीकारो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अथ स्वप्नाध्यायका वर्णन ।

आत्रेय उवाच॥शृणु पुत्र समासेन यथा वत्स प्रकाश्यते ॥
तथारिष्टपरिज्ञानं भेषजं संप्रवक्ष्यते ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र ! विस्तारसे जैसे प्रकाशित किया जाता है वैसे ही आरिष्टके परिज्ञानको और औषधको सुनो ॥ १ ॥

अथ वर्ज्य स्वप्न ।

वातिकः पैत्तिकश्चैव भयाद्धीनबलादपि ॥
मूत्रान्विष्टे सपित्ते च षट्स्वप्नानि च वर्जयेत् ॥ २ ॥

वात, पित्त, भय, हीनवल, मूत्रकी शंका, पित्तका संयोग इनके संयोगसे उपजे ये छः स्वप्न वर्जित हैं ॥ २ ॥

अथ कालसे स्वप्नफल।

संवत्सरेण फलदो हि भवेन्निशायां स्वप्नोऽशुभस्य प्रहरे च शुभस्य वाद्ये ॥ स्याद्वत्सरार्द्धमतियाममथ द्वितीये मासत्रयेण फलदो भवति तृतीये ॥ ३ ॥ निशावसाने प्रवदन्ति किञ्चिद्दशाहकः स्यात्फलदो मनुष्ये॥वर्षादिने स्यात्तमुशन्ति शान्ताः षाण्मासिको मध्यदिने प्रदिष्टः॥ ४ ॥

रात्रिके प्रथम पहरमें आया स्वप्न एक वर्षमें शुभ फलको देता है और दूसरे पहरमें आया स्वप्न छः महीनोंमें फलको देता है और तीसरे पहरमें आया स्वप्न तीन महीनोंमें फलको देता है ॥ ३ ॥ रात्रिके अन्तमें आया स्वप्न दश दिनमें फलको देता है और वर्षामें दुपहरीके समय आया स्वप्न छः महीनोंमें फलको देता है ॥ ४ ॥

अथ स्वप्नमें शुभ द्रव्य ।

स्वप्नेषु शुभ्राणि शुभानि धीराः सर्वाणि चेमानि विवर्जयित्वा ॥ कार्पासभस्मास्थिकपालशूलं कुर्य्यान्नराणां विपदं रुजं वा॥५॥

सब श्वेत पदार्थ स्वप्नमें दीखे शुभ कहे हैं,कपास, भस्म,हड्डी, खोपरी छोड़कर इनका दर्शन स्वप्नमें होवे तो मनुष्योंको दुःख अथवा रोग उपजता है ॥ ५ ॥

अथ अशुभद्रव्य ।

सर्वाणि कृष्णानि विनिन्दितानि स्वप्ने नराणां विपदं रुजं वा ॥ कुर्वन्ति चैतानि हि वर्जयित्वा गोवाजिराजद्विजहस्तिमत्स्यान्॥६॥

और स्वप्नमें सब प्रकारकी काली चीज निंदित है, जो स्वप्नमें काली चीज दीख जावे तो सिवाय इनके काली गौ, घोडा, राजा ब्राह्मण, हाथी और मत्स्य मनुष्योंको दुःख अथवा रोग उपजता है ॥ ६ ॥

अथ शुभ स्वप्नोंका वर्णन।

मुकुरकुसुमशृङ्गारातपत्रं ध्वजं वा दधि फलमथ वस्त्रं चान्नताम्बूलवल्लम् । कमलकलशशंखं भूषणं काञ्चनस्य भवति सकलसंपच्छ्रेयसे रोगिणां च॥ ७ ॥

शीशा, फूल, शृंगार, छत्र,ध्वजा, दही, फल, वस्त्र, अन्न, नागरपान, कमल, कलश,शंख, सोनेका गहना इनको स्वप्नमें देखना सब प्रकारका सुख और रोगियोंको कल्याण देता है ॥७॥

अथ शुभ स्वप्न।

दिनकरनिशिनाथं मण्डलं तारकस्य विकचकमलकुञ्जैः पूर्णपद्माकरं वा ॥ तरति सलिलराशिप्रौढनद्याश्च पारं धनसुखविभवाप्तिर्व्याधिनां रोगमुक्तिः ॥ ८ ॥ देवो द्विजो वा पितरो नृपो वा स्वप्नेषु वाक्यं वदते यथैव ॥ तथैव नान्यच्च भवेन्मनुष्ये यद्यस्य सौख्यं विपदो रुजो वा ॥ ९ ॥ गोवाजिकुञ्जरनृपाः सुमनः प्रशस्तं स्वप्नेषु पश्यति नरः सरुजः सुखाय ॥ रोगान्वितश्च रुजनाशनसम्भवाय बद्धोऽपि वै सपदि बन्धविमोचनाय ॥ ॥ १० ॥ यो भूषणं पश्यति मन्दिरं वा कन्यां दधि मीनकुमारकं वा ॥ सपुष्पवल्लीफलितं द्रुमं वा स्वस्थे धनाप्तिं रुजनाशनाय ॥ ११ ॥ स्वप्ने पयःपानमतिप्रशस्तं पानं सुराया अजभोजनं वा ॥ घृतं यवागूः कृसरोदनं वा क्षैरेयिकं भोजनकं सुखाय ॥ १२ ॥ सितो भुजङ्गो दशति कराग्रे नरस्य सुप्तस्य शरीरकेषु ॥ पुत्रस्य लाभं वदते धनं वा नाशं विदध्यादचिराद्रुजां वा ॥ १३ ॥ सश्वेतवस्त्रां रमणीं सुरम्यां स्वप्ने समालिङ्गति यो मनुष्यः ॥ तस्य प्रकर्षेण सुखं श्रियः स्यात्सुपुत्रलाभश्च रुजां विनाशः ॥ १४ ॥ यो धान्यपुञ्जं तिलतण्डुलानां गोधूमसिद्धार्थयवादिकानाम् ॥ धान्याप्तिरस्यामयनाशहेतुः स्वप्नेषु शीघ्रं मनुजे सुखाय ॥ १५ ॥ सफले धनसम्पत्तिर्दीप्ते रोगविनाशनम् ॥ सुखं च पुष्पिते ज्ञेयं सम्पूर्णे वाञ्छितं फलम् ॥ १६ ॥

सूर्य, चंद्रमा, तारागण इनके मंडलको देखे और खिले हुए कमलोंके समूहसे पूरित हुए तालाबको देखे और पानीके समूहसे भरी हुई नदीको तरे और नदीसे पार हो तो धन तथा सुखकी प्राप्ति हो और रोगको गया जानना ॥ ८ ॥ देवता, पंडित, पितर, राजा, ये सब जैसे स्वप्नमें वाक्यको कहदेवें तैसे ही मनुष्यको होता है चाहे सुख हो, चाहे दुःख हो या रोग हो ॥ ९ ॥ गौ, घोड़ा, हस्ती, राजा, फूल, इनके जो मनुष्य स्वप्नमें देखता है उस रोगीको सुख होता है और इस स्वप्नको देखनेसे बंधमें प्राप्त हुआ मनुष्य शीघ्र छूट जाता है ॥ १० जो मनुष्य स्वप्नमें गहनाको और मंदिरको देखता है अथवा

१ अत्र छन्दोभंगः। २ अत्रापि।

कन्या, दही, मछली, बालक इनको देखता है अथवा फूल और बेलसे फलित हुए वृक्षको देखे ये स्वप्न स्वस्थ मनुष्यको आवें तो धनकी प्राप्ति होगी और रोगीमनुष्यके रोगका नाश होवे ॥ ११ ॥ स्वप्नमें दूधका पीना अतिश्रेष्ठ है, मदिराका पीना अथवा बकराके मांसका भोजन, घृत, गुडयाणी, खीचड़ी, चावल, दूधका भोजन इनको स्वप्नमें देखे तो सुखकी प्राप्ति होवे ॥ १२ ॥ मनुष्यके दाहिने हाथके अग्रभागको अथवा शरीरको सपेद सर्प सोतेहुए डसता है ऐसे स्वप्नसे पुत्रका और धनका लाभ होता है अथवा शीघ्र ही रोगका नाश होता है ॥ १३ ॥ सपेद वस्त्रोंवाली और रमणीक और सुन्दर ऐसी स्त्रीसे जो मनुष्य मिलाप करता है उसको अत्यंत स्त्रीसुख और धनकी प्राप्ति होती है और पुत्रका लाभ और रोगोंका नाश होता है ॥ १४ ॥ जो मनुष्य तिल, चावल, गेंहू, सरसों, जव, अन्नका समूह स्वप्नमें देखता है, उसको अन्नकी प्राप्ति और रोगका नाश होता है और सुख भी मिलता है॥ १५ ॥ जो मनुष्य स्वप्नमें फल सहित वृक्षको देखे, तो उसको धनसंपत्ति प्राप्त होती है और जलता हुआ देखे तो रोगका नाश होता है, पुष्पकरिके युक्त वृक्षको देखे तो सुख होता है और पत्र, पुष्प, फल और शाखा आदिकोंकरिके युक्त वृक्षको देखे तो मनवांछित फल मिलता है ॥ १६ ॥

अथ अशुभ स्वप्नोंका वर्णन ।

काकैः कंकैः करभभुजगैः सूकरोलूकगृध्रैर्जम्बूकैर्वा वृकखरमहिष्यातिरक्षैः श्वभिश्च ॥ व्याघ्रैर्ग्राहैर्मकरकपिभिर्भक्ष्यमाणं स्वकायं पश्येद्योऽसौ भजति नितरां हानिमापद्रुजं वा ॥ १७ ॥ योऽभ्यञ्जितं स्वं मनुजः प्रपश्येत्सर्पिर्वसातैलविशेषणेन ॥ शीघ्रं रुजाप्तिर्भवतीह तस्य वदन्ति धीरा निपुणं विधेयम् ॥ १८ ॥ व्याघ्रोष्ट्रखरसंयुक्ते रथे सौरभसंयुते ॥ उह्यमानो दिशं याम्यां गच्छेच्च स मृतिं भजेत् ॥१९॥ रक्तवस्त्रां कृष्णवस्त्रां मुक्तकेशां विसर्पिणीम् ॥ याम्यां स्थितां रुदन्तीं वा गायन्तीमथ पश्यति ॥ २० ॥ अथाह्वयति संक्रुद्धां समालिङ्गति चर्वति॥यः पश्यति सुखी स स्याद्व्याधितो मृत्युमृच्छति ॥२१॥ यस्य स्वप्ने च निष्कुष्टदन्तपातः प्रदृश्यते ॥ शीर्यन्ते केशरोमाणि स सुखी चापदं व्रजेत् ॥२२॥ यस्य खड्गा प्रभज्येत तोमरादिप्रहारतः॥ रक्तं च दृश्यते देहे स स्वस्थो व्याधिमृच्छति ॥२३॥ शून्यागारं

यो मनुष्यः प्रपश्येत्प्रासादं वा देवहीनं च पश्येत्॥तापश्चान्द्रे पुष्पितानां द्रुमाणां तस्यानिष्टं मृत्युमाशु प्रपद्येत्॥२४॥विपश्येन्नरो भिन्नदेवं घटं वाथवा भग्नशाखं तरुं मन्दिरं वा॥विशीर्णं विपश्येत्सुखी व्याधिपुञ्जं प्रपद्येद्रुजाग्रस्त आशु म्रियेत ॥२५॥ यस्याह्वयन्ति पितरो दिशि दक्षिणस्यामाश्रित्य चाशु तनुते मनुजस्य मृत्युम् ॥ यश्चैव शूललकुटोद्यतबाणपाणीनाहूयते स मृतिमाशु लभेन्मनुष्यः॥२६॥कार्पासभस्मास्थिकपालशूलं चक्रं सपाशं च विलोकयेद्यः ॥ तस्यापदो रोगधनक्षयौ वा रोगी मृतिं वा तनुतेऽतिकष्टम् ॥ २७ ॥ इति प्रदिष्टानि शुभानि तानि निशासु सुप्ते मनुजे विशेषात् ॥ तथाशु विज्ञाय महामते त्वं गदस्य नाशाय विधेहि मन्त्रम् ॥ २८ ॥ स्नानं च दानं च सुरार्चनं च होमं तथा भाग्यविधानतश्च॥दुःस्वप्नमेतेषु विनाशमेति शुभं च सौख्यं च तनोति शीघ्रम् ॥ २९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने स्वप्नाध्यायो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

काक, कंक, ऊंट, सर्प, सूकर, उल्लू, गीध, गीदड़, भेडिया, गधा, भैंसा, तिरखू, कुत्ता, व्याघ्र, ग्राह, मच्छ, वानर इनसे भक्षित हुए अपने शरीरको देखे उसको हानि, दुःख, रोग इनकी प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥ जो मनुष्य अपने शरीरको घृत, वसा, तेल आदिसे भीजाहुआ देखे उसको रोगकी प्राप्ति शीघ्र होती है, ऐसा वैद्योंने कहा है । वहां अरिष्टनाशकशांतिवगैरह करे ॥ १८ ॥सिंह, ऊंट, गधा बैल, इनसे जुड़ेहुए रथमें बैठके जो मनुष्य दक्षिणदिशाको गमन करै उसकी मृत्यु जानना ॥ १९ ॥ रक्तवस्त्रोंको पहननेवाली और कृष्णवस्त्रोंको पहननेवाली और छुटेहुए बालोंवाली और दौड़ती हुई और दक्षिणदिशामें स्थित हुई और रोती हुई ऐसी स्त्रीको जो देखता है ॥ २० ॥ और क्रोधको प्राप्तहुई उस स्त्रीको बुलाता है अथवा उससे मिलता है ऐसा स्वप्न सुखीको आवे तो रोगकी उत्पत्ति होती है और रोगीको आवे तो वह रोगी मरजाता है ॥ २१ ॥ स्वप्नमें जिस सुखी मनुष्यके दांत, बाल, रोम ये गिर पड़ें उसके रोगकी उत्पत्ति होती है ॥ २२ ॥ जिस सुखी मनुष्यकी स्वप्नमें शय्या टूट जावे और भालाआदि शस्त्रके प्रहारसे देहमें रक्त दीखे वह मनुष्य व्याधिको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ शून्य हुए स्थानको और देवतासे रहित मंदिरको जो स्वप्नमें देखे और जो स्वप्नमें चंद्रमामें तापको और फूले हुए वृक्षोंमें तापको देखे उस मनुष्यकी शीघ्र मृत्यु कही है ॥ २४ ॥ जो

मनुष्य स्वप्नमें देवतासे रहित मंदिरको और पानीसे रहित कलशेको और टूटी हुई शाखाओं-वाले वृक्षको देखे अथवा स्थानके नाशको देखे उस रोगी मनुष्यकी मृत्यु हो जाय और सुखी मनुष्य रोगको प्राप्त होवे ॥ २५ ॥ स्वप्नमें जिसको दक्षिणदिशामें आश्रितहुए पितर बुलाते हों तब उस मनुष्यकी मृत्यु जानो और जिसको स्वप्नमें शूल, लाठी, फांसी इनको हाथमें धारनेवाला मनुष्य बुलाता है उसकी शीघ्र मृत्यु जाननी ॥ २६ ॥ जो स्वप्नमें कपास, हड्डी, भस्म, खोपरी, शूल, चक्र, फांसी, इनको देखे उस मनुष्यके रोग, दुःख, धनका नाश ये उपजते हैं और ऐसा स्वप्न रोगीको आवे तो मृत्यु अथवा अत्यंत कष्ट होता है ॥ २७ ॥ रात्रिमें सोते हुए मनुष्यको विशेषकरके ऐसे अशुभ स्वप्न भी कहे हैं. हे महामते ! तैसे ही जानके रोगके नाशके लिये मंत्रविधिको करना उचित है ॥ २८ ॥ स्नान, दान, देवताकी पूजा, होम इनसे भाग्यके विधान करके दुःस्वप्न नाशको प्राप्त होता है शुभ और सुख शीघ्र प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ इति वेरीनिवासिवुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिता-भाषाटीकायां द्वितीयस्थाने स्वप्नाध्यायो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अथ स्वास्थ्यारिष्टम् ।

आत्रेय उवाच ।

शृणु पुत्र महाप्राज्ञ सर्वदेहार्थसाधकम् ॥
वैद्यशास्त्रस्य सारं यत्स्वास्थ्यारिष्टं च मानवे ॥ १ ॥

स्वस्थमनुष्यको अरिष्टवर्णन-आत्रेयजी कहते हैं-हे महाप्राज्ञ ! हे पुत्र ! संपूर्ण देहके प्रयोजनको साधनेवाला और वैद्यकशास्त्रका सार ऐसे स्वस्थ मनुष्यके अरिष्टको सुनो ॥ १ ॥

अथ ध्रुवादिके न देखनेका अरिष्ट ।

यो न पश्येद् ध्रुवं सम्यक्स्वर्णं वा मनुजो बुधः ॥
तस्य षण्मासमध्ये तु मृतिश्चैवोपपद्यते ॥ २ ॥

जो मनुष्य ध्रुवताराको अथवा ध्रुव अर्थात् नासिकाके अग्रभागको और सोनाको अच्छी-तरह नहीं देखता है, उसका छः महीनोंके मध्यमें मृत्यु होता है ॥ २ ॥

अथ द्वितीयाचंद्रके अदर्शनका अरिष्ट ।

यो वै द्वितीयां हिमधामलेखां नरो न पश्येद्द्विजहानिरस्य ॥
मासत्रयं प्राप्य शरीरमाशु जीवो व्रजेत्तस्य यमस्य लोकम् ॥ ३ ॥

जो मनुष्य किरणोंसे व्याप्त हुआ द्वितीयाका चंद्र नहीं देखे और जिसके दंत गिर पड़े उस मनुष्यकी तीन महीनोंमें मृत्यु जानना ॥ ३ ॥

अथ कर्णघोष न सुननेका अरिष्ट।

यः कर्णघोषं न शृणोति दृप्ता मृताश्च यूकाः प्रपतन्ति लाभात्॥
यो वैपरीत्यं विशृणोति शब्दं मासद्वयं प्राप्य जहाति जीवम् ४॥

जो मनुष्य कानमें शब्दको न सुने और गर्वित हुई और मृत हुई जूम और लीख शरीरमें पड़ जावे और जो विपरीतपनेसे शब्दको विशेष करके सुने वह दो महीनोंमें मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

अथ मुखश्वासादिकका अरिष्ट।

यः स्वस्थदेहः श्वसते मुखेन नेत्रेऽरुणे श्यावमथैव वक्त्रम् ॥
जिह्वा विशीर्णा दशनाश्च कृष्णाःस्वस्थोऽपि शीघ्रं यमलोकगन्ता५

जो स्वस्थ शरीरवाला मनुष्य मुख करके श्वासको लेवे और लाल नेत्र हो जावें और कालामुख हो जावे और फटी हुई जीभ हो जावे और काले दंत हो जावें ऐसा स्वस्थ भी मनुष्य मृत्युको शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है ॥ ५ ॥

अथ प्रभातमें मस्तकशूलका अरिष्ट।

यस्य प्रभाते च शिरोव्यथा स्याद्दीपे परीवेषमवेक्षमाणः ॥
विपश्यते यः पटलं च रेणोः स वै मृतिं याति न दीर्घमायुः॥६॥

प्रभातमें जिसके शिरमें पीड़ा हो और जो दीपककी ज्योतिमें मंडलको देखे और जो आकाशमें धूलीके समूहको विशेष करके देखे वह शीघ्र मरजाता है, दीर्घायु नहीं पाता ॥६ ॥

अथ सूर्यबिंबादिकके दर्शनका अरिष्ट।

यः सूर्य्यबिम्बे शशिनं प्रपश्येद्विना परीवेषमवेक्षमाणः ॥
धूमावृतं वा रविमण्डलं च प्रपश्यते शीघ्रमृतिं स गन्ता ॥७॥

जो सूर्य्यके बिंबमें चंद्रमाको देखे और बिना चंद्र हुए ही मंडलको देखे और धूमोंसे आच्छादित हुआ सूर्यका मंडल दीखे उसकी शीघ्र मृत्यु जानना ॥ ७ ॥

अथ इंद्रधनुष देखनेका अरिष्ट।

स्वच्छे निरभ्रे गगने च पश्येद्यः शक्रचापं विदिशादिशासु ॥
तथैव विद्यान्नयनाग्रतो यः स शीघ्रमेव यमलोकगन्ता ॥८॥

जो स्वस्थ और बादलोंसे रहित हुए आकाशमें और दिशा तथा दक्षिणमें इंद्रके धनुषको देखे अथवा नेत्रोंके आगे इन्द्रके धनुषको देखे वह मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

१ विदिशाया उज्जयिन्या दिशास्वर्थाद्दक्षिणदिशासु। २ अत्राव्यानकीवृत्तम्, परंतु तुर्यपादे तगणस्याभावोऽस्ति ववर्णस्यादीर्घत्वादतो वृत्तच्छेदः।

अथ विपरीत देखने सुननेका अरिष्ट ।

योनेत्रे मीलितेऽपि द्युतिमथ चपलां पश्यते यः पुरस्तात्कर्णे रन्ध्रं निरुध्याद्ध्वनिमथ मनुजो न शृणोति कथञ्चित्॥ तिक्तादीनां रसानां कथमपि रसनास्वादमात्रं न वेत्ति रौद्रं वैवस्वतस्य प्रतिगमनमथो पश्यते मानुषश्च ॥ ९ ॥

जो नेत्रोंके मूंदनेपर भी चपल ज्योतिको आगे देखता है, कानके छेद मूँदकर जो अनहद नाद नहीं सुनता, कडुवा आदि रस जिसे नहीं समझ पड़ते वह मनुष्य भयंकर यमराजकी ओर अपनेको जाता हुआ समझे ॥ ९ ॥

अथ शरीरके स्पर्शसे अरिष्टकथन ।

यस्यात्युष्णं शरीरं शिशिरमथ मनूजस्य यस्याविलं च शीतं नो चेति यस्य हिमजलसिकते रोमहर्षो न यस्य॥ दण्डाघातेन राजी न भवति स पुनः श्राद्धदेवस्य लोके लोकानां दर्शनाय कृतमतिरचिरां स्वस्थतां न प्रयाति ॥ १० ॥

जिस मनुष्यका शरीर अतिशय गरम हो और तुरंत ही ठंढा और धूमिल हो जाय, जो पुरुष ठंढीको और गर्मीको जान सकता नहीं, जिस मनुष्यके शरीरको शीतल जलके बिन्दुओंका या ठंढेंबालूरेतके स्पर्श होनेसे रोमांच नहीं होता और दंड (वेत) मारनेसे रेखा न हो तो वह मनुष्य यमराजके लोकको देखनेके लिये जल्दी करता है. और स्वस्थताको वह पुरुष प्राप्त नहीं होता है ॥ १० ॥

अथ प्रतिबिंब न देखनेसे अरिष्ट ।

तैले जले दर्पणके घृते वा परस्य नेत्रे प्रतिबिम्बमात्मनः ॥ पश्येन्न योऽसौ यमलोकगन्ता जानीहि तं जीवविहीनमेव॥ ११॥

इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने स्वास्थ्यारिष्टं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जो मनुष्य तेल, पानी, शीशा, दूसरोंके नेत्र, इनमें अपने प्रतिबिंबको नहीं देखता है उसकी मृत्यु जाननी ॥ ११ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां स्वास्थ्यारिष्टं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः



अथ व्याध्यरिष्टका लक्षण।

आत्रेय उवाच॥ उपद्रवैश्च ये जुष्टा व्याधयो यान्ति वार्य्यताम्॥ रसायनादिना वत्स तान्सदेकमनाः शृणु ॥ १ ॥

उपद्रवोंसे युक्त हुए रोग रसायन आदिसे निवारण किये जाते हैं। हे पुत्र! उन रोगोंको एकमन होके सुनो ॥ १ ॥

अथ अष्ट महाव्याधियोंका नाम।

वातव्याधिः प्रमेहश्च कुष्ठमर्शो भगन्दरम्॥ अश्मरी मूढगर्भश्च तथा चोदरमष्टमम् ॥ २ ॥ अष्टावेते प्रकृत्यैव दुश्चिकित्स्या महागदाः ॥ ३ ॥

वातव्याधि, प्रमेह, कुष्ठ, बवासीर, भगंदर, पथरी, मूढगर्भ, आठवाँ उदररोग ॥ २ ॥ ये आठों प्रकृति करके महारोग दुश्चिकित्स्य हैं ॥ ३ ॥

अथ आठ महारोगोंके उपद्रव।

प्राणमांसक्षयश्वासतृष्णाशोषवमिज्वरैः॥ मूर्च्छातिसारहिक्काभिः पुनरेतैरुपद्रुताः ॥ ४ ॥ वर्जनीया विशेषेण भिषजा सिद्धिमिच्छता ॥ ५ ॥

बलक्षय, मांसक्षय, श्वासरोग, तृषा, शोष, छर्दि, ज्वर, मूर्छा, अतिसार, हिचकी इन उपद्रवोंसे युक्त हुए पूर्वोक्त महारोग ॥ ४ ॥ सिद्धिकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको वर्जने चाहिये ॥ ५ ॥

अथ ज्वररोगीके अरिष्ट।

यस्य जिह्वा भवत्तीव्रा पीता वा नीलसम्भवा॥ श्वासो भवत्यतीवोष्णः शरीरं पुलकांकितम् ॥ ६ ॥ नीलनेत्रेऽरुणे पीते कण्ठो घुरघुरायते॥ न जीवति ज्वरार्त्तस्तु लक्षणं यस्य चेदृशम् ॥ ७ ॥ मुखे श्वासो भवेद्यस्य श्यावा दन्तावली पुनः॥ स्तब्धनेत्रो बलाढ्यः स्याज्ज्वरार्तो नैव जीवति ॥ ८ ॥ बहुमूत्री बहुश्वासी क्षामोऽरोचकपीडितः॥ हतप्रभेन्द्रियो यश्च ज्वरी

शीघ्रं विनश्यति ॥ ९ ॥ यस्यास्ये श्रयते रक्तं शिरोर्तिर्यस्य दृश्यते ॥ अन्तर्दाहो बहिःशीतो ज्वरस्तु मृत्युमृच्छति॥१०॥ यस्ताम्यति विसंज्ञस्तु शेत विपतितोऽपि वा॥शीतार्दितोऽन्तरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः ॥११॥ यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि संघातशूलवान्॥नित्यं च वक्रेणोच्छ्वासः स ज्वरो हन्ति मानवम् ॥१२॥ हिक्काश्वासपिपासार्त्तं मूढं विभ्रान्तलोचनम् ॥ सन्ततोच्छ्वासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः ॥ १३ ॥ आविलाक्षं प्रताम्यं च तन्द्रायुक्तमतीव च॥क्षीणशोणितमांसं च नरं नाशयति ज्वरः ॥ १४॥ घनं निष्ठीवनं नेत्रं स्रावारोचकपीडितम्॥ अन्तर्दाहोऽसिता जिह्वा शीघ्रं नाशयति ज्वरः ॥१५ ॥

जिसकी खरखरी, पीली और नीली ऐसी जीभ हो जाय और अत्यंत गरम श्वास आवे और हर्षित हुए रोमोंकरके युक्त शरीर हो ॥ ६ ॥ नीले, लाल और पीले नेत्र हो जावें और कंठ घुर्घुर करे ऐसे लक्षण जिस ज्वररोगीके होवें उसका जीवना नहीं है ॥ ७ ॥ जिसके मुखमें शीघ्र श्वास आव और दंतोंकी पक्ति काली हो जावे और वरवस स्तंभित नेत्र हो जावें ऐसा ज्वरसे पीडित रोगी नहीं जीता है ॥ ८ ॥ बहुत मूत्रको करनेवाला और बहुत श्वासको लेनेवाला और कृश और अरुचिसे पीडित और नष्ट हुई इन्द्रियोंकी कांतिवाला ऐसा ज्वररोगी शीघ्र मर जाता है ॥ ९ ॥ जिसके मुखसे रक्त गिरे और जिसके शिरमें पीड़ा होवे और भीतर दाह और बाहर शीत लगे ऐसे ज्वरवाला मर जाता है ॥ १० ॥ जो मोहको प्राप्त होवे और संज्ञासे रहित हुआ सोवे अथवा निरंतर पतित हुआ करे और बाहर शीतसे और भीतर गर्मीसे पीडित होवे ऐसा मनुष्य ज्वरसे मर जाता है ॥ ११ ॥ जो हर्षित हुए रोमोंवाला हो और लालनेत्रोंवाला हो और हृदयमें दारुण शूलवाला हो और निरंतर मुखसे ऊंचे श्वासको लेता हो ऐसा ज्वररोगी मर जाता है ॥ १२ ॥ हिचकी और श्वाससे पीडित और मूढ़ और विशेष करके भ्रमते हुए नेत्रोंवाला और निरंतर ऊंचे श्वासको लेनेवाला और क्षीण ऐसे रोगीको ज्वर मार देता है ॥ १३ ॥ धूम्रवर्णवाले नेत्रोंवाला और मोहको प्राप्त हुआ और तंद्रासे अत्यंत युक्त हुआ, क्षीण हुए रक्त और मांसवाला ऐसे मनुष्यको ज्वर मार देता है ॥ १४ ॥ बहुत छर्दिवाला और नेत्रोंसे पानीको गिरानेवाला और अरोचकसे पीडित और भीतर दाह तथा काली जीमसे युक्त ऐसे मनुष्यको ज्वर शीघ्र मार देता है ॥ १५ ॥

१ 'इन्द्रियार्थेष्वसंवित्तिर्गौरवं जृम्भणं क्रमः। निद्रार्तस्येव यस्येहा तस्य तंद्रा विनिर्दिशेत् ॥'

अथ दारुण उपद्रवका अरिष्ट ।

यस्यैकोपद्रवस्यापि शाम्यता नोपदृश्यते ॥ दारुणोपद्रवाश्चान्ये भूयिष्ठं बहुरूपवान् ॥ १६ ॥ तेन मृत्योर्वशं याति सिद्धिं नेच्छति दारुणः ॥ १७ ॥

जिसके एक उपद्रव भी शांत नहीं होवे किंतु अन्य भी बहुतसे उपद्रव उपजते रहें और बहुतसे रूपोंको धारण करे ॥ १६ ॥ ऐसा मनुष्य मृत्युके वशको प्राप्त हो जाता है, अच्छा नहीं होता ॥ १७ ॥

अथ अतीसारका अरिष्ट ।

यस्यादौ दृश्यते चैवाप्यतीसारस्तथापरः ॥ श्वासः शोषश्च यस्य स्यात्सोऽपि शीघ्रं मृतिं व्रजेत् ॥ १८ ॥ श्वासशूलपिपासार्त्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम् ॥ विशेषेण नरं वृद्धमतीसारो विनाशयेत् ॥ १९ ॥ यस्यातिसारशोफाः स्युस्तथारोचकशूलवान् ॥ सोऽपि शीघ्रं मृतिं याति बहुभिः प्रतिकर्मभिः ॥ २० ॥

जिसके आदिमें अतीसार उपजे, पीछे श्वास और शोष उपजे वह मनुष्य शीघ्र मर जाता है ॥ १८ ॥ श्वास, शूल, तृष्णा इन करके पीडित, क्षीण और ज्वरसे त्रास पाया हुआ विशेष करके वृद्ध अतीसारसे नष्ट हो जाता है ॥ १९ ॥ जिसके अतीसार, शोजा, अरुचि, शूल ये उपजें उस मनुष्यकी बहुतसी चिकित्सा करनेसे भी मृत्यु हो जाती है ॥ २० ॥

अथ सूजनका अरिष्ट ।

बालस्य चातिवृद्धस्य विकलस्य नरस्य च ॥
सर्वाङ्गे जायते शोफः शोफी स म्रियते ध्रुवम् ॥ २१ ॥

बालक, अतिवृद्ध, विकल ऐसे मनुष्योंके संपूर्ण अंगमें शोजा उपजे तो वह निश्चय मर जाता है ॥ २१ ॥

अथ शूलका अरिष्ट ।

यस्याध्मानं च शूलं च श्वासस्तृष्णा विमूर्छना ॥
शिरोऽर्त्तिर्यस्य दृश्येत शूली मृत्युमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥

जिसके अफारा, शूल, श्वासरोग, तृषा, मूर्छा, शिरमें पीड़ा ये उपजें उसकी मृत्यु हो जाती है ॥ २२ ॥

पांडुरोगीका अरिष्ट।

पाण्डुदन्तनखो यश्च पाण्डुनेत्रश्च मानवः ॥ पाण्डुसङ्घातवांश्चैव पाण्डुरोगी विनश्यति ॥२३॥ पाण्डुत्वक्पाण्डुनेत्रे च मूत्रं वा पाण्डुरं भवेत्॥पाण्डुसंघातवांश्चैव पाण्डुरोगी विनश्यति॥२४॥

पीले दंत और नखोंवाला और पीले नेत्रोंवाला और पीलेपनको सब जगह देखे ऐसा पांडुरोगी नष्ट हो जाता है ॥ २३ ॥ पीली खाल होवे,पीले नेत्र होवें और मूत्र भी पीला हो होवे और पीलेपनको सब जगह देखे ऐसा पांडुरोगी मर जाता है ॥ २४ ॥

अथ क्षयरोगका अरिष्ट।

शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम् ॥ कृच्छ्रेण बहुमेहंतं यक्ष्मा हन्तीह मानवम् ॥२५॥ धातुहीनो भवेद्यस्तु शोफश्वासैर्निपीडितः॥बहुभोज्यो घृणावांश्च राजयक्ष्मी विनश्यति२६

सफेद नेत्रोंवाला और अन्नसे वैर करनेवाला और ऊंचे श्वाससे निरंतर पीडित हुआ और कष्टसे बहुतवार मूत्रको करता हुआ ऐसा राजरोगी मर जाता है ॥ २५ ॥ धातुओंसे हीन हुआ, शोजा और श्वाससे पीडित हुआ और बहुतसे भोजनको करता हुआ और दयावाला ऐसे राजरोगी मर जाता है॥ २६ ॥

अथ श्वासरोगका अरिष्ट।

हुंकारः शीतलो यस्य फूत्कारस्योष्णता भवेत्॥शीघ्रनाडी न निर्वाहः शीघ्रं याति यमालयम् ॥ २७ ॥ अंगकम्पो गतेर्भंगो मुखं वा कुङ्कुमप्रभम्॥ उच्चारे च भवेद्वायुः स च याति यमालयम् ॥ २८ ॥

जिसके मुखसे हुंकारी निकलनेमें शीतलता होवे और फूत्कारमें गरमाईपना होवे और नाडी शीघ्र चले, चलनेकी सामर्थ्य नहीं होवे ऐसा रोगी शीघ्र मरजाता है ॥ २७ ॥ जिसके अंग कांपे और चला जावे नहीं और केसरके समान मुख हो जावे और दस्त जानेके समय वायु निसरे वह मर जाता है ॥ २८ ॥

अथ बहुत दिनतकके रोगका अरिष्ट।

चिरं प्रवृद्धरोगस्तु भोजनेऽप्यसमर्थकम् ॥ भग्नगात्रमुपेक्षेत भेषजोऽप्यरहस्यकम् ॥ एतादृशं नरं ज्ञात्वोपचारः क्रियते बुधैः ॥ २९ ॥

---

१ 'घृणा जुगुप्साकृपयोः' इति मेदिनी।

बहुत दिनोंसे बढ़े हुए रोगवाला और भोजनको नहीं करनेवाला और भग्न हुए अंगोंको देखनेवाला और औषधको नहीं लेनेवाला ऐसे रोगीको जानकर उपचार करना ॥ २९ ॥

अथ उदररोगका अरिष्ट।

विध्वंसश्वासशोफाच्च तथा ज्वरनिपीडनात् ॥
गम्भीरं सघनं तस्य तदुरः क्षयते नरम् ॥ ३० ॥

विष्टाके क्षयसे, श्वास और शोजासे तथा ज्वरकी पीड़ासे गंभीर और कठिन हुई छाती उसको मार देती है ॥ ३० ॥

अथ गुल्मरोगका अरिष्ट।

श्वासशूलपिपासार्त्तिर्विद्वेषो ग्रन्थिमूढता ॥
दुर्बलत्वं च भवति गुल्मिनो मृत्युमेष्यतः ॥ ३१ ॥

श्वास, शूल, अत्यंत तृषा ये उपजें और अन्नमें वैर रहे और गाढ़ तथा मूढ़पना हो और दुर्बलपना हो ऐसा गुल्मरोगी मर जाता है ॥ ३१ ॥

अथ रक्तपित्तका अरिष्ट।

नेत्रे जिह्वाधरौ यस्य रक्तौ वा रुधिरं वमेत् ॥ रक्तमूत्री रक्तसारी रक्तपित्ती विनश्यति ॥ ३२ ॥ लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः ॥ रक्तानां च दिशां द्रष्टा रक्तपित्ती विनश्यति ॥ ३३ ॥

जिसके जीभ, दोनों ओष्ठ, नेत्र ये लाल हो जावें अथवा रक्तको गिरावे ऐसा रक्तमूत्रवाला और रक्तातीसारवाला और रक्तपित्तवाला मनुष्य मरजाता है ॥ ३२ ॥ जो लोहूकी छर्दि करे और बहुत करके लाल नेत्रोंवाला हो और लाल दिशाओंको देखे ऐसा रक्तपित्तरोगी मरजाता है ॥ ३३ ॥

अथ बवासीररोगका अरिष्ट।

मुखशोफो भवेद्यस्य भ्रमारोचकपीडितः ॥
विबन्धोदरशूली च उदयाच्च विनश्यति ॥ ३४ ॥

जिसके मुखपर शोजा हो, भ्रम और अरुचिसे जो पीड़ित हो, बंधा और उदरशूलसे संयुक्त हो ऐसा रोगी मर जाता है ॥ ३४ ॥

अथ विद्रधिरोगका अरिष्ट।

आध्मानबद्धनिष्पन्दं छर्दिहिक्कारुगन्वितम् ॥
रुजाश्वाससमाविष्टं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ ३५ ॥

जो अफारा हो, स्राव रुक जावे और छर्दि, हिचकी, शूल, इनसे समन्वित हो और श्वास-रोगसे संयुक्त हो ऐसे मनुष्यको विद्रधिरोग नाशता है ॥ ३५ ॥

अथ भ्रमरोगका अरिष्ट ।

यस्य तृष्णा भवेद्घोरा दाहो वापि वमिर्भवेत् ॥
भ्रमोपपन्नो भवति न स जीवति मानवः ॥ ३६ ॥

जिसके दारुण तृषा और दाह तथा छर्दि उपजे और भ्रमसे संपन्न हो वह रोगी जीवता नहीं है ॥ ३६ ॥

अथ आर्तवका अरिष्ट ।

अपूर्णे दिवसे नारी ज्वरार्त्ता पुष्पमाप्नुयात् ॥
सा न जीवेन्महाप्राज्ञ यस्या हि सारणो भवेत् ॥ ३७ ॥

जो ज्वरसे पीडित हुई नारी नहीं पूर्ण हुए दिनमें पुष्प अर्थात् योनिसे रक्तके वहनेको प्राप्त होवे हे महाप्राज्ञ ! जो वह रक्त गिरता ही रहे तो वह नारी जीवे नहीं ॥ ३७ ॥

अथ कामला और पांडुरोगका अरिष्ट ।

यः शोफश्वाससंयुक्तस्तृष्णायुक्तोऽथ शूलवान् ॥
कामलापाण्डुरोगार्त्तो नरश्च स विपद्यते ॥ ३८ ॥

जो शोजा और श्वाससे पीडित हो, तृषा और शूलसे संयुक्त हो, कामला और पांडुरोगसे संयुक्त हो वह मनुष्य जीवता नहीं है ॥ ३८ ॥

अथ भगंदरका अरिष्ट ।

वातमूत्रपुरीषाणि कृमयः शुक्रमेव च ॥
भगन्दरात्प्रस्रवन्ति यस्य तं परिवर्जयेत् ॥ ३९ ॥

जिसके भगंदरके घावसे अधोवात, मूत्र, विष्ठा, कीडे वीर्य ये गिरते हों उस रोगीको असाध्य जानो ॥ ३९ ॥

अथ अश्मरीरोगका अरिष्ट ।

प्रसूननाभिवृषणं रुद्धमूत्रं रुगन्वितम् ॥
अश्मरी क्षपयत्याशु सिकताशर्करान्विता ॥ ४० ॥

नाभि और पोतोंपर शोजासे संयुक्त हो, मूत्र रुक जावे, शूल चले ऐसे मनुष्यको पथरी, सिकता, शर्करा ये रोग मार देते हैं ॥ ४० ॥

अथ मूढगर्भका अरिष्ट ।

गर्भकोशसमापन्नो मकुष्ठो योनिसंगतः ॥
हन्ति स्त्रियं मूढगर्भे यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ ४१ ॥

गर्भकोशमें समापन्न हुआ बालक योनिके छिद्रको बंधकरे और यथोक्त सब उपद्रव भी उपजे तब मूढगर्भ स्त्रीको मार देता है ॥ ४१ ॥

अथ अपस्माररोगका अरिष्ट ।

पार्श्वभंगान्नविद्वेषशोफातीसारपीडितम् ॥ बहुशोऽपस्मरं तं तु क्षीणं च वलितभ्रुवम् ॥४२॥ नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥ ४३ ॥

पसलीका भंग, अन्नसे वैर, शोजा, अतीसार इनसे पीड़ित हुआ और बहुतवार विस्मरणको प्राप्त हुआ और क्षीण और टेढ़ी भ्रुकुटियोंवाला ॥ ४२॥ और नेत्रोंको फाड़कर देखनेवाले मनुष्योंको मृगीरोग मार देता है ॥ ४३ ॥

अथ वातव्याधिका अरिष्ट ।

शूलं सुप्तत्वचं भग्नमाध्मानेन निपीडितम् ॥
रुजार्तिमन्तं च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत् ॥ ४४ ॥

शूल और सोती हुई खालसे संयुक्त हो और भग्न हो और अफारासे निरंतर पीड़ित हो और पीड़ासे संयुक्त हो ऐसे मनुष्यको वातव्याधि नाशती है ॥ ४४ ॥

अथ प्रमेहका अरिष्ट ।

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रस्रुतमेव च ॥
पिडकापीडितं गाढं प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥ ४५ ॥

यथोक्त उपद्रवोंसे व्याप्त हो और अत्यंत गिरता हो और फुन्सियोंसे अत्यंत पीडित हो ऐसे मनुष्यको प्रमेहरोग नाशता है ॥ ४५ ॥

अथ कुष्ठरोगका अरिष्ट ।

प्रभिन्नं प्रस्रुतांगं च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ॥
पञ्चकर्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठिनम् ॥ ४६ ॥

प्रभिन्न हुआ और बहते अंगोंवाला और लाल नेत्रोंवाला और नष्ट हुए स्वरवाला और वमन, विरेचन, नस्य, निरूहबस्ति, अनुवासनबस्ति इन पंचकर्मोंके गुणोंसे वर्जित ऐसे कुष्ठीको कुष्ठरोग मार देता है ॥ ४६ ॥

अथ उन्मादरोगका आरिष्ट।

अवाङ्मुखस्तून्मुखो वा क्षीणमांसबलोत्तरः॥ जागरूकस्त्वसंदे-हमुन्मादेन विनश्यति ॥४७॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने व्याध्यरिष्टं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

नीचेको मुख रखनेवाला अथवा ऊपरको मुख रखनेवाला और क्षीण हुए मांसवाला और बलसे युक्त हुआ अथवा उत्तरोत्तर जिसका मांस और बल क्षीण होता जावे और दिन रात जागनेवाला ऐसा उन्मादरोगी निश्चय मर जाता है ॥ ४७ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां द्वितीयस्थाने व्याध्यरिष्टं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

पंचमोऽध्यायः ५.

अथ पञ्चेंद्रियविकार वर्णन।

आत्रेय उवाच॥ यः शीलवान्क्रोधनतामुपैति यः क्रोधवाञ्छी-लगुणं च धत्ते॥ द्वावेव मृत्युं तनुतो विधिज्ञ स्थूलो नरः शीघ्र-तरं कृशाङ्गः॥१॥

आत्रेयजी कहते हैं—जो शीलवान मनुष्य क्रोधपनेको प्राप्त होवे और जो क्रोधी मनुष्य शीलपनेको धारण करे हे विधिज्ञ! ये दोनों मनुष्य मृत्युको शीघ्र प्राप्त होते हैं और जो मोटा मनुष्य शीघ्र कृशाङ्ग हो जावे और कृशाङ्ग मनुष्य शीघ्र मोटा हो जावे ये भी दोनों मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं ॥ १ ॥

यो धर्मशीलो भवतीह पापी पापात्मको धर्मरतो यदि स्यात्॥
स मृत्युभाजी भवतीह शीघ्रं यश्च प्रकृत्या विकृतिं प्रयाति ॥२॥

जो धर्मशील मनुष्य पापी हो जावे और जो पापी धर्मको करने लगजावे और जो प्रकृति करके विकारको प्राप्त हो जावे ये मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

यो गौरवर्णो विदधाति कार्ष्ण्यं कृष्णोऽतिगौरत्वमुपैति यश्च॥
तथा मृतिं याति नरः प्रकृत्या शीघ्रं विकृत्या भजते वियोगम्॥३

जो गौरवर्णवाला मनुष्य काले वर्णको प्राप्त हो जावे और जो काले वर्णका मनुष्य गौर-पनेको प्राप्त हो जावे और जो अपनी प्रकृतिको शीघ्र त्याग देवे ऐसे मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

यो वैपरीतं श्रवणेऽपि शब्दं गृह्णाति वा न शृणुते स शीघ्रम् ॥ स वै मृतिं पश्यति यो न पश्येच्छायां स्वकीयां धरणीप्रपन्नाम् ॥४॥

जो शब्दको विपरीतपनेसे ग्रहण करे अथवा शब्दको नहीं सुने और जो पृथिवीमें प्राप्त हुई अपनी छायाको नहीं देखे वे मनुष्य मृत्युको शीघ्र प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

यो वेन्द्रियैः प्रतिहतः कृशतां प्रयाति स्थूलोऽतिनिष्प्रभवपुर्मरणं विपश्येत् ॥ यः क्वापि वेत्ति न कुगन्धिरसौ नरस्तु स वै मृतिं प्रियतमां भजते मनुष्यः ॥ ५ ॥

जो इन्द्रियोंसे प्रतिहत हुआ कृशपनेको प्राप्त होजावे और जो कृश मनुष्य अत्यंत मोटेपनको प्राप्त होवे व जिसका शरीर कृशपनेको प्राप्त होवे, जो दुर्गंधको और रसको कहीं भी नहीं जाने वह मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

यस्यास्यगन्धमाघ्राय भजन्ते नीलमक्षिकाः ॥ नासिकायां शरीरे वा स चैव यमलोकगः ॥६॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने पञ्चेन्द्रियविकारो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जिसके मुखके गन्धको सूंघके नीलमक्षिका अर्थात् भौंरे नासिकामें अथवा शरीरमें वास करने लग जावे उसकी मृत्यु होती है ॥ ६ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां द्वितीयस्थाने पंचेंद्रियविकारो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.



अथ नक्षत्रज्ञानवर्णन।

आत्रेय उवाच ॥ अथ नक्षत्रयोगेन व्याधिर्यस्य प्रजायते ॥ साध्यासाध्यञ्च याप्यं च वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—जिसके नक्षत्रके योगसे व्याधि उपजे उसको साध्य, असाध्य और याप्य इन भेदोंसे कहता हूँ। हे पुत्र! सुनो ॥ १ ॥

अथ मृत्युयोगोंका वर्णन।

आदित्ययोगेन मघा विशाखा चन्द्रेण युक्ता कुज आर्द्रया तु ॥ मूलं प्रबुद्धे गुरुकृत्तिका च शुक्रेण रोहिण्यसितेन हस्तः ॥ २ ॥ एतान्वदन्ति निपुणा यमघंटयोगान्व्याधिप्रपन्नमनुजो यदि

पुण्ययोगात्॥जीवेद्यदा कथमसौ घनदत्तयन्त्रघोरान्तरेण तप-नेन कथं सुखं स्यात्॥ ३ ॥ आदित्येनानुराधा वसति हिम-रुचिश्चोत्तरासंप्रयुक्तो भौमः पित्रीशयुक्तो बुध इति तुरगीयुक्त एतत्सुखं न॥तस्माज्जीवेन युक्तो मृगशिरसहितोऽश्लेषया भार्ग-सूनुर्युक्तोऽर्किर्हस्तसंज्ञैर्न तु वदति शुभं शास्त्रविद्योगयुक्तः ॥४॥

रविवारसे युक्त मवानक्षत्र और सोमवारसे युक्त विशाखा नक्षत्र और मंगलवारसे युक्त आर्द्रानक्षत्र और बुधवारसे युक्त मूलनक्षत्र और बृहस्पतिवारसे संयुक्त कृत्तिकानक्षत्र और शुक्र-वारसे युक्त रोहिणी और शनिवारसे युक्त हस्तनक्षत्र ॥२॥ इन्होंको पंडित यमघंटयोग कहते हैं, इसमें रोगको प्राप्त हुआ मनुष्य पुण्यके योगसे कदाचित् जीता है अन्यथा सुखकी प्राप्ति नहीं है; क्योंकि भयंकर वह यन्त्र जिसमें आग भी लगी हो उससे कैसे कोई वच सकता है ? ॥ ३ ॥ रविवारसे संयुक्त अनुराधा और चंद्रवारसे संयुक्त उत्तरानक्षत्र और मंगलवारसे युक्त मवा और बुधवारसे युक्त अश्विनी और बृहस्पतिवारसे युक्त मृगशिर और शुक्रवारसे युक्त आश्लेपा और शनिवारसे संयुक्त हस्तनक्षत्र ये मृत्युयोग हैं । इनमें रोगोंकी उत्पत्ति होवै तो शुभ नहीं होता है४॥

अथ अमृतयोगकथन ।

दिनकरकरयुक्तः सोमसौम्येन वापि तुरगसहितभौमः सोमपुत्रोऽनुराधा ॥ सुरगुरुरपि पुष्ये रेवती शुक्रवारे दिनकरसुतयुक्ता रोहिणी सौख्यहेतुः ॥ ५ ॥

रविवारसे युक्त हस्त और सोमवारसे युक्त मृगशिर और मंगलवारसे संयुक्त अश्विनी और बुधवारसे संयुक्त अनुराधा और बृहस्पतिवारसे युक्त पुष्य और शुक्रवारसे युक्त रेवती और शनिवारसे संयुक्त रोहिणी ये शुभयोग हैं इनमें रोग उपजे तो सुख होता है ॥ ५ ॥

अथ क्रूरयोगवर्णन ।

शूले वज्रेऽतिगण्डे वा व्याघाते व्यतिपातके॥ विष्कम्भयोगयुक्ते च नक्षत्रे क्रूरदैवते ॥ ६ ॥ एतैरसाध्या ज्वरिणस्तस्माद्योगान् परीक्षयेत् ॥ योगे ऋक्षे तथा वारे क्रूरे प्राप्ते न जीवति ॥ ७ ॥

शूल, वज्र, अतिगंड, व्याघात, व्यतीपात, निष्कंभ इन योगोंमें जब क्रूरदेवताओंवाले अर्थात् आश्लेषा मघाआदिनक्षत्र होवें उन्हें क्रूरयोग कहते हैं ॥ ६ ॥ इनमें ज्वर उपजे तो रोगी असाध्य होजाते हैं इस वास्ते योगोंकी परीक्षा करनी और यह क्रूर योग भी हो और उसमें क्रूरवार हो तब रोग उपजे तो रोगी जीता नहीं ॥ ७ ॥

अथ योगविज्ञान ।

सिद्धिः शुक्लः शुभः प्रीतिरायुष्मान्सौभगश्च वै ॥
धृतिर्वृद्धिर्ध्रुवो हर्षः सुखसाध्या इमे स्मृताः ॥ ८ ॥

सिद्धि, शुक्ल, शुभ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, धृति, वृद्धि, ध्रुव, हर्ष ये योग सुखसाध्य कहे हैं ॥ ८ ॥

अथ विशेष वर्णन ।

मघा विशाखा भरणी तथार्द्रा मूलं तथा कृत्तिकहस्तपुष्याः॥
एते न शस्ता मुनयो वदंति वारक्रमेणैव विचिन्तनीयाः ॥ ९ ॥

मघा, विशाखा, भरणी, आर्द्रा, मूल, कृत्तिका, हस्त, पुष्य ये रोगकी उत्पत्तिमें श्रेष्ट नहीं हैं। ये सब वारके क्रमसे चिंतवन करने चाहिये ॥ ९ ॥

अथ असाध्य नक्षत्र ।

मघाभरणिहस्तेषु मूले वा ज्वरितोऽपि वा ॥
मृत्युमापद्यते सोऽपि नात्र कार्य्या विचारणा ॥ १० ॥

मघा, भरणी, हस्त, मूल इन नक्षत्रोंमें ज्वरित हुआ मनुष्य मर जाता है इसमें विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं ॥ १० ॥

अथ साध्य नक्षत्र ।

अश्विनीरोहिणीपुष्यमृगज्येष्ठाः पुनर्वसुः ॥
एते साध्याश्च विज्ञेया ज्वरिणां च विशेषतः ॥ ११ ॥

अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, मृगशिर, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, इन नक्षत्रोंमें हुआ रोग साध्य कहा है और इनमें उपजा ज्वर विशेष करके साध्य है ॥ ११ ॥

अथ कष्टसाध्य नक्षत्र ।

पूर्वात्रयं स्वातिरथापि चित्रा तथा त्रयार्द्राश्रवणाधनिष्ठाः॥मूलं विशाखा सह कृत्तिकाभिः साप्योंऽनुराधा सह ज्येष्ठया च ॥ १२ ॥ एते सकष्टा रुजपीडितानां पुष्ये सुयाप्यः कुरुते नरस्य ॥ तस्मात्तु विज्ञाय बुधाश्च सम्यग्रुजां विनाशं प्रतिकर्मणा च ॥ १३ ॥

तीनों पूर्वा, स्वाती, चित्रा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, विशाखा, कृत्तिका

आश्लेषा, अनुराधा, ज्येष्ठा ॥ १२ ॥ इनमें उपजा रोग कष्टको देता है और इनमेंसे पुष्य नक्षत्रमें उपजा रोग कष्टसाध्य कहा है इसकारणसे जानकर चिकित्सासे रोगको दूर करना ॥ १३॥

अथ नक्षत्रोंके पीडाकी मर्यादा।

अश्विन्याश्चैकरात्रन्तु भरण्यां मृत्युमीक्षते॥ नवरात्रं कृत्तिकायां रोहिण्यांतु दिनत्रयम् ॥१४॥ मृगेण बहुपीडा स्यादार्द्रायां मृत्युरेव च॥पुनर्वसौ च पुष्ये च सप्तरात्रं तु पीड्यते ॥१५॥ नवरात्रं तथाश्लेषा मघा चेति यमालयम्॥पूर्वा मासत्रयं ज्ञेयमुत्तरा पञ्चकत्रयम् ॥१६॥ पूर्वात्रये त्रयोंऽशाश्च शुभा ज्ञेया मनीषिभिः ॥ एतेषां तुर्य्यगे चान्ते यदि रोगस्तदा मृतिः ॥ १७ ॥ हस्तेन प्राप्यते सौख्यं चित्रा पञ्चदशाहकम् ॥ स्वातिः षोडशरात्रन्तु विशाखा विंशरात्रकम् ॥ १८ ॥ अनुराधा पक्षमेकं ज्येष्ठा दशदिनानि तु ॥मूलेन मृत्युमाप्नोति आषाढासु त्रिपञ्चकम्॥१९॥ उत्तरा विंशरात्रेण श्रवणे मासकद्वयम् ॥ मासद्वयं धनिष्ठा स्याच्छतर्क्षे दिनविंशतिः ॥२०॥ नवरात्रं भवेत्पूर्वा उत्तरा पञ्चकत्रयम् ॥ दशाहं रेवती पीडा मुच्यते व्याधिभिस्ततः ॥ २१ ॥

अश्विनीमें रोग उपजे तो एकरात्रिमें आराम हो, भरणीमें रोग उपजे तो रोगी मर जाता है कृत्तिकामें रोग उपजे तो नवरात्रोंमें आराम होता है, रोहिणीमें रोग उपजे तो तीन दिनोंमें आराम होता है ॥ १४ ॥ मृगशिरमें रोग उपजे तो बहुतसी पीडा रहती है, आर्द्रामें रोग उपजे तो रोगी मर जाता है, पुनर्वसु और पुष्यमें रोग उपजे तो सातरात्रितक पीड़ा रहती है ॥ १५ ॥ आश्लेषामें रोग उपजे तो नवरात्रितक पीडा रहती है, मघामें रोग हो तो रोगी मर जाता है, पूर्वाफाल्गुनीमें रोग हो तो तीन महीनोंतक पीडा रहती है, उत्तराफाल्गुनीमें रोग हो तो पंदरह दिनोंतक पीड़ा रहती है ॥ १६ ॥ और तीनों पूर्वा अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्वाभाद्रपद इनके पहले तीनभाग शुभ हैं और अंतका एक भाग बुरा है उसमें रोग हो तो रोगी मर जाता है ॥ १७॥ हस्तमें रोग हो तो शीघ्र आराम होजाता है, चित्रामें रोग हो तो पन्द्रह दिनोंमें आराम हो जाता है, स्वातीमें रोग हो तो सोलहरात्रमें सुख होजाता है, विशाखामें रोग हो तो बीसरात्रिमें आराम होजाता है ॥ १८ ॥ अनुराधामें रोग हो तो पन्दरह दिनमें आराम होता है, ज्येष्ठामें रोग हो तो दशदिनमें आराम होजाता है, मूलमें रोग हो तो रोगी मरजाता है, पूर्वाषाढमें रोग हो तो पन्दरह दिनमें आराम होता है ॥१९ ॥ उत्तराषाढमें रोग उपजे तो बीस रात्रिमें आराम होता है,श्रवणमें रोग उपजे तो दो महीनोंमें आराम होता है

धनिष्ठामें रोग उपजे तो दो महीनोंमें आराम होता है, शतभिषामें रोग उपजे तो बीस दिनोंमें आराम होता है ॥ २० ॥ पूर्वाभाद्रपदमें रोग उपजे तो नव रात्रिमें आराम होता है, उत्तरा भाद्रपदमें रोग उपजे तो पन्दरह दिनोंमें आराम होता है, रेवतीमें रोग उपजे तो दश दिनमें आराम होता है । ऐसे रोगकी निवृत्ति कही है ॥ २१ ॥

अथ नक्षत्रोंके भागानुसार रोगोंकी मर्यादा ।

कृत्तिका नक्षत्र ।

कृत्तिकासु ज्वरस्तीव्रो व्याधिर्भवति पैत्तिकः ॥ दिनानि दश प्रथमे चरणे च विनिर्दिशेत् ॥ २२ ॥ दशैव द्वितीये भागे तृतीये दिनपञ्चकम् ॥

कृत्तिका नक्षत्रमें दारुण ज्वर और पित्तकी व्याधि उपजती है और कृत्तिकाके प्रथम भागमें रोग उपजे तो दशदिन पीड़ा रहती है ॥ २२ ॥ और दूसरे भागमें रोग उपजें तो भी दश दिन पीड़ा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजे तो पांच दिन पीड़ा रहती है ॥

अथ रोहिणी नक्षत्र ।

रोहिण्यां नवरात्रन्तु प्रथमेंऽशे प्रकीर्त्तितम् ॥ २३ ॥ द्वितीये द्विगुणं प्रोक्तं तृतीये दशरात्रकम् ॥

रोहिणीके प्रथम भागमें रोग उपजे तो नव रात्रि पीड़ा रहती है ॥ २३ ॥ और दूसरे भागमें अठारह दिन और तीसरे भागमें दशदिन पीड़ा रहती है ॥

अथ मृग नक्षत्र ।

नक्षत्रे चन्द्रदैवत्ये पीडा वै जायते ध्रुवम् ॥ २४ ॥ प्रथमांशे पञ्चरात्रं मध्ये द्वादशवासरान् ॥ तृतीयांशे तथा ज्ञेयं मृत्युर्मासादनन्तरम् ॥ २५ ॥

मृगशिरके प्रथमभागमें रोग उपजे तो पांच रात्रि पीड़ा रहती है ॥ २४ ॥ और दूसरे भागमें बारह दिन और तीसरे भागमें १ महीनातक पीड़ा रहके पीछे मृत्यु हो जाती है॥२५॥

अथ आर्द्रा नक्षत्र ।

नक्षत्रे रुद्रदैवत्ये पक्षं स्यात्प्रथमेंऽशके ॥
द्वादशाहं द्वितीये च तृतीयांशे न जीवति ॥ २६ ॥

अर्द्रानक्षत्रके प्रथम अंशमें रोग उपजे तो वह रोग एक पखवाडेतक रहता है, दूसरे अंशमें हुई व्याधि बारह दिनतक रहती है. तीसरे अंशमें रोग उत्पन्न हुआ हो तो वह मनुष्य जीता नहीं ॥ २६ ॥

अथ पुनर्वसु नक्षत्र ।

पुनर्वसौ ज्वरं विद्यात्प्रथमांशे त्रिपक्षकम् ॥
मध्यमे दिवसान्सप्त तृतीये पंचविंशतिम् ॥ २७ ॥

पुनर्वसु नक्षत्रके प्रथम अंशमें आया हुआ ज्वर तीन पखवाडेतक रहता है. दूसरे अंशमें सात दिन रहता है और तीसरे अंशमें आया हुआ ज्वर पच्चीस दिनतक रहता है ॥ २७ ॥

अथ पुष्य नक्षत्र ।

पुष्ये स्यात्प्रथमे सप्त द्विके विंशतिवासरान् ॥
तृतीयांशे तथा विद्याद्दिवसानेकविंशतिम् ॥ २८ ॥

पुष्य नक्षत्रके प्रथम अंशमें आया हुआ रोग सातदिनतक रहता है, दूसरे अंशमें बीस दिनतक रहता है और तीसरे अंशमें इक्कीस दिनतक रहता है ॥ २८ ॥

अथ आश्लेषा नक्षत्र ।

आश्लेषायां च नक्षत्रे यस्य संभवति ज्वरः ॥ मासत्रयेण प्रागंशे कष्टाज्जीवति मानवः ॥ २९ ॥ द्वितीये च तृतीये च मृत्युरेव न संशयः ॥

जिस मनुष्यके आश्लेषानक्षत्रमें ज्वर उत्पन्न होता है उसको प्रथम अंशमें ज्वर उत्पन्न होनेसे वह मनुष्य बडे कष्टसे जीता है ॥ २९ ॥ और दूसरे तथा तीसरे अंशमें ज्वर उत्पन्न होनेसे उस मनुष्यको मृत्यु ही प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं ॥

अथ मघा नक्षत्र ।

नक्षत्रे पितृदैवत्ये रोगो यस्य प्रवर्तते ॥ ३० ॥ प्रथमेंऽशे सप्तरात्रं द्वितीये धिष्ण्यतुल्यताम् ॥ विंशत्तृतीये दिवसान्पीड्यते कर्मणो बलात् ॥ ३१ ॥

मघा नक्षत्रमें जिस मनुष्यको रोग उत्पन्न होता है ॥ ३० ॥ उसका रोग प्रथम अंशमें सातरात्रितक रहता है, दूसरे अंशमें उत्पन्न होवे तो दश दिन रोग बना ही रहता है और तीसरे अंशमें होवे तौ वह मनुष्य अपने कर्मके बलसे बीस दिन तक बहुत पीड़ाको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥

अथ पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र ।

नक्षत्रे भगदैवत्ये यस्य संजायते ज्वरः ॥ ३२ ॥ प्रथमेंऽशे पंचरात्रं मध्ये द्वादश वासरान् ॥ तृतीयांशे तथा ज्ञेयं मृत्युर्मासादनंतरम् ॥ ३३ ॥

पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रमें जिसको ज्वर उत्पन्न होवे ॥ ३२ ॥ उस मनुष्यका ज्वर प्रथम अंशमें पांच रात्रितक रहता है, दूसरे अंशमें बारह दिनतक रहता है और तीसरे अंशमें ज्वर उत्पन्न होवे, उस मनुष्यका एक महीनेके पीछे मृत्यु होगा ऐसा जानना ॥ ३३ ॥

अथ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र।

उत्तराया आद्यभागे वासराणि चतुर्दश ॥
द्वितीये सप्तरात्रन्तु तृतीये दिवसा नव ॥ ३४ ॥

उत्तराके प्रथमभागमें रोग उपजे तो चौदह दिन पीड़ा रहती है और दूसरे भागमें सात रात्रि और तीसरे भागमें नव दिन पीड़ा रहती है ॥ ३४ ॥

अथ हस्त नक्षत्र।

यदि हस्ते भवेद्रोगः प्रथमे सप्तरात्रकम् ॥
चत्वार्य्यहानि द्वितीये तृतीये दिनपञ्चकम् ॥ ३५ ॥

हस्तके प्रथमभागमें रोग उपजे तो सात रात्री पीड़ा रहती है और दूसरे भागमें चार दिन और तीसरे भागमें पांच दिन पीड़ा रहती है ॥ ३५ ॥

अथ चित्रा नक्षत्र।

मृत्युं विद्यात्तथा पूर्वे त्वाष्ट्रो यस्य भवेज्ज्वरः॥त्रिभिर्मासैर्द्वितीयांशे रोगो भवति दारुणः ॥ ३६ ॥ तृतीयांशे तथा ज्ञेयं वासराणि त्रयोदश ॥

चित्राके प्रथम भागमें जिसके ज्वर उपजे उसका मृत्यु होजाता है और दूसरे भागमें रोग दारुणरूपी होके तीन महीनोंमें दूर होता है ॥ ३६ ॥ और तीसरे भागमें तेरह दिन पीड़ा रहती है ॥

अथ स्वाती नक्षत्र।

वायव्ये प्राक् सप्तदश द्वितीये चैकविंशतिः॥ ३७ ॥अस्यैव तु तृतीयांशे मृत्युमेव विनिर्दिशेत् ॥ ३८ ॥

स्वातीके प्रथम भागमें रोग उपजे तो सत्रह दिन पीड़ा रहती है और दूसरे भागमें रोग उपजे तो इकीस दिन पीड़ा रहती है ॥ ३७ ॥ और तीसरे भागमें रोग उपजे तो मृत्युही जानना ॥ ३८ ॥

अथ विशाखा नक्षत्र।

प्रथमांशे विशाखायां त्रिगुणाः षोडश स्मृताः ॥
द्वितीये द्वादश प्रोक्तास्तृतीयेऽपि तथैव च ॥३९॥

विशाखाके प्रथम भागमें रोग उपजे तो अडतालीस ४८ दिन पीड़ा रहती है और दूसरे भागमें रोग उपजे तो बारह दिन पीड़ा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजे तो भी बारह दिन पीड़ा रहती है ॥ ३९ ॥

अथ अनुराधा नक्षत्र ।

मैत्रांशे प्रथमे सप्त द्वितीये पक्षमादिशेत् ॥
तृतीयांशे चतुःषष्टिर्वासराणां महामुने ॥ ४० ॥

अनुराधाके प्रथम भागमें रोग उपजे तो सात दिन पीड़ा रहती है और दूसरे भागमें रोग उपजे तो पंद्रह दिन पीड़ा रहती है और तीसरे भागमें पीड़ा उपजे तो हे महामुने ! चौंसठ ६४ दिन पीड़ा रहती है ॥ ४० ॥

अथ ज्येष्ठा नक्षत्र ।

त्रिपक्षमैन्द्रे प्रथमे द्वित्रिभागे च षोडश ॥ ४१ ॥

ज्येष्ठाके प्रथम भागमें रोग उपजे तो ४५ दिन पीड़ा रहती है, द्वितीय और तृतीय इन भागोंमें रोग उपजे तो सोलह दिन पीड़ा रहती है ॥ ४१ ॥

अथ मूल नक्षत्र ।

मूलेंऽशे तृतीये ज्ञेयः पक्ष एव मनीषिभिः ॥
आद्ये पूर्वत्रयो मासा मध्यमेऽहानि षोडश ॥ ४२ ॥

और मूलके तीसरे भागमें रोग उपजे तो पंद्रह दिन पीड़ा रहती है और मूलके प्रथम भागमें रोग उपजे तो तीन महीने पीड़ा रहती है और मूलके दूसरे भागमें रोग उपजे तो सोलह दिन पीड़ा रहती हैं ॥ ४२ ॥

अथ पूर्वा नक्षत्र ।

पूर्वांशे द्वितये ज्ञेयः पक्ष एव मनीषिभिः ॥
तृतीयांशे पुनर्मृत्युरतीरात्रात्प्रजायते ॥ ४३ ॥

पूर्वाषाढके प्रथम और द्वितीयभागमें रोग उपजे तो पंदरह दिन पीड़ा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजे तो रोगी मर जाता है ॥ ४३ ॥

अथ उत्तराषाढा नक्षत्र ।

विश्वेशे प्रथमे पक्षे मध्ये द्वादशरात्रिकम् ॥
दिनानां विंशतिः प्रोक्ता तृतीयांशे महामुने ॥ ४४ ॥

उत्तराषाढाके प्रथम और द्वितीयभागमें रोग उपजे तो बारह रात्रि पीड़ा रहती है, हे महामुने ! उत्तराषाढाके तीसरे भागमें रोग उपजे तो २० दिन पीड़ा रहती है ॥ ४४ ॥

अथ श्रवण नक्षत्र।

सप्ताहमादौ श्रवणे विंशतिर्मध्यमे मता ॥
षोडशाहं तृतीयांशे सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४५ ॥

श्रवणके प्रथमभागमें रोग उपजे तो सात दिन पीडा रहती है और द्वितीयभागमें रोग उपजे तो बीसदिन पीडा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजे तो सोलह दिन पीडा रहती है यह मैं सत्य कहता हूं ॥ ४५ ॥

अथ धनिष्ठा नक्षत्र।

विंशतिर्वासवे पूर्वं मध्यमे मासयुग्मकम् ॥
मासस्तृतीये विज्ञेयो दैवज्ञैश्च निवेदितम् ॥ ४६ ॥

धनिष्ठाके प्रथमभागमें रोग उपजे तो बीस दिन पीडा रहती है और दूसरे भागमें रोग उपजे तो दो महीने पीडा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजे तो एक महीना पीडा रहती है ऐसा ज्योतिषियोंने कहा है ॥ ४६ ॥

अथ पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र।

वारुणे दारुणो रोगस्त्रिपक्षं प्रथमांशके ॥
द्वितीये मासषट्कं तु षोडशाहं तृतीयके ॥ ४७ ॥

पूर्वाभाद्रपदाके प्रथमभागमें दारुण रोग उपजे तो पैंतालिस दिन पीडा रहती है और दूसरे भागमें रोग उपजे तो छःमहीने और तीसरे भागमें रोग उपजे तो सोलह दिन पीडा रहती है ॥ ४७ ॥

अथ उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र।

अहिर्बुध्न्ये पक्षमादौ मध्ये मासं विनिर्दिशेत् ॥
अन्तेऽष्टाविंशतिर्ज्ञेया पीडा स्यात्पापकर्मणि ॥ ४८ ॥

उत्तराभाद्रपदाके प्रथमभागमें रोग उपजे तो पंदरह दिन पीडा रहती है और दूसरे भागमें रोग उपजे तो एक महीना पीडा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजे तो अट्ठाईस दिन पीडा रहती है ॥ ४८ ॥

अथ रेवती नक्षत्र।

रेवत्याः प्रथमे चाष्टौ द्विभागे तु च षोडश ॥
अन्ते त्रिंशद्दिनान्येवं प्रोक्तानि पूर्वसूरिभिः ॥ ४९ ॥

रेवतीके प्रथमभागमें रोग उपजे तो आठ दिन पीडा रहती है और दूसरे भागमें सोलह दिन पीडा रहती है और तीसरे भागमें तीस दिन पीडा रहती है ॥ ४९ ॥

अथ अश्विनी नक्षत्र ।

अश्विन्याः प्रथमे भागे दिनमेकं प्रकीर्तितम् ॥
द्वितीये पञ्चरात्रन्तु तृतीये सप्तकं तथा ॥ ९० ॥

अश्विनीके प्रथम भागमें एक दिन पीडा रहती है और दूसरे भागमें पांचरात्रि और तीसरे भागमें सात रात्रि पीडा रहती है ॥ ९० ॥

अथ भरणी नक्षत्र ।

भरण्याः प्रथमे चांशे सप्तवासरमेव च ॥
मध्ये मृत्युस्तथा चान्त रोगो मासत्रयावधि ॥ ९१ ॥

भरणीके प्रथमभागमें सातदिन पीडा रहती है और दूसरे भागमें मृत्यु और तीसरे भागमें तीन महीने पीडा रहती है ॥ ९१ ॥

अथ नक्षत्रारिष्टोंका उपसंहार ।

एवं ज्ञात्वा सुधीःसम्यक्कुर्य्यात्प्रशमनक्रियाम् ॥ नक्षत्रस्य त्रयो भागा आत्रेयेण प्रकाशिताः ॥ ९२ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने नक्षत्रज्ञानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ऐसे जानके कुशल वैद्य रोगको शांत करनेकी क्रियाको करे, नक्षत्रोंके तीन भाग आत्रेयजीने प्रकाशित किये हैं ॥ ९२ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां द्वितीयस्थाने नक्षत्रज्ञानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

अथ होमकी विधि ।

आत्रेय उवाच ॥ अर्कः खदिरपालाशबदर्य्यः पारिभद्रकः ॥ दूर्वा शमी कुशः काशः पिप्पलो वटभूरुहः ॥ १ ॥ जम्ब्वाम्रौ करहाटश्च सोमवृक्षः कलिद्रुमः ॥ रक्तसारश्चन्दनश्च जयन्ती गुरुवृक्षकम् ॥ २ ॥ सहचरी सितावर्षा सर्वौषधिनिशायुगम् ॥ समिद्वर्गः समस्तोऽपि समिद्धोमः प्रकाशितः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—आक, खैर, पलाश, बेरी, पारिभद्र, दूब, छीकुर, कुशा, कास, पीपलवृक्ष, बड़वृक्ष, ॥ १ ॥ जामुनवृक्ष, आंबवृक्ष, पद्मकंद, श्वेतखैर, बहेडा, लाल खैर, चन्दन,

अरनी, सीसमवृक्ष ॥ २ ॥ पीला कुरंटा, सफेद सांठी, सर्वौषधी, अर्थात् कूट, छलीरा, हलदी, वच, लोवान, मुरामांसी, चन्दन, कपूर, नागरमोथा और हलदी, दारुहलदी यह समिद्वर्ग है, इससे समिद्धोम होता है ॥ ३ ॥

अथ शांतिप्रकार ।

चन्दनं रक्तचन्दनं गोरोचना हरिद्रा गैरिकनिम्बबिल्वं कदम्बं कुंकुमसिश्रितकस्तूरिका घनसारं श्रीपर्णं सुरदारु हरिचन्दनं पद्मकं हरिद्राद्वयं कालीयकागुरुशिंशपा रक्तगोरोचना पलाश इति गन्धानि, पद्मबिल्वसुरसादूर्वाकुशजयन्तीशमीपत्रार्क- किंशुककर्णिकारगिरिकर्णिकासहचरालूपपुष्पाणि,जम्बाम्रपल्ल- वानि काञ्चनारपाटलवर्वरी अगस्तिः काककाह्वारी अशोकपु- ष्पमिति धूपदीपादिभिरलङ्कारैरलङ्कृतं वास्तुमण्डलं कृत्वा ईशा- नदिक्क्रमेण नक्षत्रमण्डलं चार्चयेत् ॥ तन्मण्डलकमध्ये आदि- त्यादीन् ग्रहान् समभ्यर्च्य क्रमेण समिद्भिर्होमं कुर्य्यात्॥तस्मा- त्पुनर्दधिमधुघृताक्ताभिः समिद्भिरश्विन्यादिक्रमेण जुहुयात् ॥ आकृष्णेति अर्कसमिद्भिरिदम्अश्विन्यै विष्णोरराटमसीतिपला- शेन इदं भरण्यै मधुमाध्वीति बदरीसमिद्भिरिदंकृत्तिकायै काण्डा- त्काण्डेति पारिभद्रकपूर्वकुशसमिद्भिः रोहिणीमृगशिरःपुनर्व- स्वादीन् काण्डेति होमयेत् ॥ इदं देव इति पिप्पलसमिद्भिरिदं पुष्याय सप्तत्यग्निमन्त्रेण चूतसमिद्भिरिदं साप्यैं अग्निर्मूर्द्धादि- व इति जम्बूसमिद्भिर्मघां होमयेत् ॥सद्योजाताभिः करहाटकस- मित्पूर्वसमिद्भिर्होमयेत् ॥ तत्पुरुषाय विद्महे इति सोमवल्ली- समिद्भिरुत्तरात्रयं,नमो घोराय विभीतकसमिद्भिर्हस्तं होमयेत् ॥ नमो ज्योतिष्पतये रक्तसारसमिद्भिश्चित्रां होमयेत् ॥ नमो देवाय नमो ज्येष्ठायेति चन्दनसमिद्भिः स्वात्यै होमं कुर्य्यात् ॥ उदुम्बरजयन्तीसमिद्भिर्विशाखां होमयेत् ॥ बृहते इति यदुपतये गुरुवृक्षकसमिद्भिरनुराधां होमयेत् ॥ एतज्ज्योतिः

सहचरीससिद्भिर्ज्येष्ठां काण्डात्काण्डेति शतावरीसमिद्भिर्मूलंमिदं स्तौति ॥ निशायुगसमिद्भिः पूर्वाषाढामुत्तराषाढां मधुवातेति उदुम्बरसमिद्भिःश्रवणं त्र्यम्बकमिति बिल्वसमिद्भिर्वासवप्रभृतीनि होमयेत् घृतेन पूर्णाहुतिं दद्यात्॥नवग्रहस्थापनं चतुरस्रेण होमकुण्डे होमयेत् ॥ तस्मादभिषकस्नानमाचरेत् ॥ शुक्लवस्रोपवीतं यज्ञोपवीतसहितं रोगिणं कृत्वा वेदादिभिराशिष्य गोभूवस्त्रहिरण्यादिदानं कुर्य्यात् ॥ इति विधाने कृते सम्यक् शान्तिर्भवति ॥४॥इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने होमविधिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

चंदन, लालचंदन, गोरोचन, हलदी, गेरू, नीमकी छाल, वेलगिरी, कदंब, केशर, कस्तूरी, कपूर, कमल, देवदार, हरिचंदन, पद्माख, हलदी, दारुहलदी, कालाअगर, अगर, शीसम, गोरोचन, पलाश अर्थात् ढाका ये सब गंध हैं। श्वेतकमल, वेलगिरी, तुलसी, दूब, कुशा, अरनी, जांटीके पत्ते, आक, टेसू, कनेर, विष्णुक्रांता, नीलाकरसैला, शतावरी इनके फूल, जामन और आंबके पत्ते और कचनार, पाडल, रानतुलसी, अगस्तिवृक्ष, काकजंघा, अशोक इनके फूल, धूपदीपआदिसे अलंकृतकिये वास्तुमलण्डको कर ईशानआदिके क्रमसे नक्षत्रमण्डलकी पूजा करनी तिस मण्डलके मध्यमें सूर्य्यआदिग्रहोंकी अच्छीतरह पूजाकर क्रमसे पूर्वोक्त समिधोंसे होमको करे उससे पीछे फिर दही, शहद, घृत इनसे भिगोई हुई पूर्वोक्त समिध अर्थात् लकड़ियोंसे अश्विनी आदिनक्षत्रोंके क्रमकरके होम करे 'आकृष्णेन रजसा' इसमंत्रसे और आककी लकड़ीसे अश्विनीके लिये होम करे, पीछे 'इदं अश्विन्यै' ऐसे कहे। 'विष्णोरराट' इसमन्त्रसे ढाककी लकडियों करके भरणीका होम करे अंतमें 'इदं भरण्यै' ऐसे कहे। 'मधुमाध्वी' इसमन्त्रसे और बडवेरीकी लकडियोंसे कृत्तिकाका होम करे। 'कांडात्कांडे' इस मन्त्रसे और पारिभद्र कुशा इन्होंकरके रोहिणी, मृगशिर, पुनर्वसु, आदिका होम करे। 'इदंदेव' इस मंत्रसे और पीपलकी लकडियोंकरके पुष्यका होम करे। 'सतत्यग्नि' इसमंत्रसे और आंबकी लकडियोंकरकै आश्लेषाका होम करे। 'अग्निर्मूर्द्धा' इस मंत्रसे और जामुनकी लकड़ियोंकरकै मघाका होम करे। 'सद्योजाताभि०' इसमन्त्रसे और श्वेतखैरकी लकडियोंसे पूर्वाका होम करे। 'तत्पुरुषाय विद्महे' इसमन्त्रस और लालखैरकी लकडियोंकरकै तीनों उत्तराओंका होम करे 'नमो घोराय' इस मंत्रस और बहेड़ाकी लकडीकरके हस्तका होम करे 'नमो ज्योतिष्पतये' इसमन्त्रसे और लालशीसमकी लकडियोंकरकै चित्राका होम करे 'नमो देवाय नमो ज्येष्ठाय' इसमन्त्रसें और चंदनकी लकडियों करके स्वातीका होम करे और इसीमंत्रसे तथा गूलर और अरनीकी लकडियों९ करकै विशाखाका होम करे, 'बृहते

'इति यदुपतये०' इसमन्त्रसे और शीशमकी लकड़ियोंकरके अनुराधाका होम करे, 'एतज्ज्योति०' इस मंत्रसे और पीला कुरंटाकी लकड़ियोंकरके ज्येष्ठाका होम करे, 'कांडात्काण्डे' इस मन्त्रसे और शतावरीकी लकड़ियोंकरके मूलका होम करे, नामरूपमन्त्रसे और हलदी तथा दारुहलदीकी लकड़ियोंसे पूर्वाषाढ और उत्तराषाढका होम करे, 'मधुवाता' इस मन्त्रसे और गूलरकी लकड़ियोंसे श्रवणका होम करे, त्र्यंबकमन्त्रसे और बेलपत्रकी लकड़ियोंसे धनिष्ठाआदि और रेवती तकके नक्षत्रोंका होम करे, घृतकरके पूर्णाहुतिको देवे, नवग्रहोंको चौकुँड़ीवेदीमें स्थापन कर पीछे होमके कुंडमें होमको करे, तिससे पीछे अभिषेकस्नानको करे, सफेद वस्त्रोंको पहने हुए और यज्ञोपवीत अर्थात् जनेऊको धारण किये ऐसे रोगीको बना और वेदआदिके मन्त्रोंसे आशीर्वाद दे पीछे रोगी गौ, पृथिवी, सोना, आदिको दान करे ऐसे विधान करनेसे अच्छीतरह शांति होतीहै ४१॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिता- भाषाटीकायां द्वितीयस्थाने होमविधिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.



अथ दूतकी परीक्षाका लक्षण।

आत्रेय उवाच॥ अथातो गदग्रस्तानां दूतारिष्टं भिषग्वर ॥ शुभं वाशुभमेवान्यत्समासेन प्रचक्ष्यते ॥ १ ॥ आतुरस्योपकारार्थं दूतो याति भिषग्गृहे॥ तस्य परीक्षणं कार्य्यं येन संलक्ष्यते गदः २॥

आत्रेयजी कहते हैं--हे वैद्यवर ! अब रोगोंसे ग्रस्तहुए मनुष्योंके दूतारिष्टको विस्तारसे कहताहूँ जो शुभ और अशुभ होता है ॥ १ ॥ रोगीके उपकारके लिये जो दूत वैद्यके घरको जाता है उसकी परिक्षा करनी चाहिये जिससे रोगका शुभाशुभ मालूम होवे ॥ २ ॥

अथ वर्ज्यदूतके लक्षण।

खञ्जान्धमूकबधिरं रुजपीडितं वा बालं स्त्रियश्च विकलं तृषितं विजीर्णम् ॥ श्रान्तं क्षुधातुरमपि भ्रमितश्च दीनं दूतं न शस्तमिह वेदविदो वदन्ति॥ ३ ॥ कषायकृष्णार्द्रकवाससा च तथैव वस्त्रावृतमस्तकेन ॥ अश्रुप्लुतैर्वा नयनैश्च युक्ताः केशैस्तथा मुण्डितमस्तकश्च ॥ ४ ॥ समर्कटाक्षोर्ध्वशिरोरुहश्च खर्वस्तथा

वानरकृत्तनासः॥एतान्न शसन्ति विदो मुनीन्द्रा दूतान्नराणां रुजनाशनाय॥५॥ यः कर्कशः क्रोधनपाशपाणिर्भिषग्विदूषी तमसावृतश्च॥एते न शस्ताः प्रवदन्ति धीरा दूता विकारञ्च प्रवर्द्धयन्ति॥६॥ यः काष्ठहस्तोद्धतपाशपाणिस्तथातुरो दीनवचो हि रोदिति॥प्रक्लिन्ननेत्रो गमनोत्सुकोऽपि वर्ज्यो रुगार्त्तोऽशुभकारिदूतः॥७॥यो रज्जुहस्तोद्धतपाशपाणिर्याम्यां दिशं च परिभूय तूणम्॥यो वावदीति प्रबलं सरोषस्तथा समागम्य वदेच्च दूतः॥ ८॥ हस्तेऽवष्टभ्य लगुडं वक्रपादेन तिष्ठति॥ तस्मादाकुलवादी यो न शस्तो वैद्यकर्मसु॥९॥ पथा गच्छति शीघ्रेण आविश्योत्थाय मुह्यति॥पादौ प्रसार्य्य विशति मस्तके विन्यसेत्करम्॥१०॥ भिनत्ति लोहकाष्ठञ्च तृणं वा स्फोटते क्वचित्॥एतानि स्पृशते नासां स्तनं वा स्पृशति पुनः॥११॥ भूमिं लिखति पादेन रेखां वापि करोति यः॥निद्रां वा कुरुते यस्तु स दूतोऽनिष्टकारकः॥१२॥

लंगड़ा, अंधा, गूंगा, बहिरा, रोगसे पीडित, बालक, स्त्री, विकल, तृषावाला, अतिवृद्ध, परिश्रमको प्राप्त हुआ, भूखसे पीडित और श्रमवाला और दीन ऐसे दूतको वैद्य श्रेष्ठ नहीं कहते हैं॥ ३॥ रंगा हुआ और काला और गीला ऐसे वस्त्रसे युक्त और वस्त्रसे आवृत हुए मस्तकवाला और आँसुओंसे भीजे हुए नेत्रोंवाला और जटाजूट हुआ और मुंडायें हुए शिरके बालोंवाला॥ ४॥ और वानरकेसे नेत्रोंवाला और ऊपरको खुले हुए बालोंवाला और ठींगना तथा कटी हुई नासिकावाला ऐसे दूतोंको मुनींद्र रोगका नाशके लिये श्रेष्ठ नहीं कहते हैं॥५॥ जो कठोर हो, क्रोधी हो और फांसीको हाथमें लेनेवाला और वैद्यको दोष लगानेवाला और तमोगुणसे संयुक्त ऐसे दूत अच्छे नहीं हैं, किंतु ये दूत विकारको बढ़ाते हैं॥ ६॥ जो काष्ठको हाथमें लिये हो और ऊपरको हाथ किये फांसीको ग्रहण करनेवाला हो, रोगी हो और दीनवचनको बोलके रोता हुआ है और भीजेहुए नेत्रोंवाला हो और गमन करनेकी इच्छावाला हो ऐसा अशुभको करनेवाला दूत वर्जना चाहिये॥ ७॥ जो रज्जुको हाथमें लेके ऊपरको लिये हुए हो और फांसीको हाथमें लिये हुए हो और जो दक्षिण दिशामें प्राप्त होके क्रोधसे वारंवार बोले और वैद्यसे भी दक्षिणदिशामें स्थित होके बोले ऐसा दूत श्रेष्ठ नहीं है॥ ८॥ जो लकड़ीको हाथमें लेके टेढेपैरसे स्थित होवे और बुरे वचनको बोले ऐसा दूत वैद्यकर्म्ममें

श्रेष्ठ नहीं है ॥ ९ ॥ जो मार्गमें शीघ्र गमन करे, बैठता और उठता हुआ मोहको प्राप्त और पैरोंको पसारके प्रवेश करे और मस्तकपै हाथको स्थापित करे ॥ १० ॥ लोहा, काठ, तृण, इनमेंसे किसी चीजको भेदित करे अथवा इन्हींको छुवै नासिका और चूचींको छुवै ॥ ११ ॥ पृथिवीको पैरसे खोदे अथवा पृथिवीमें रेखाको करे अथवा नींदको प्राप्त हुआ हो वह दूत बुरा कहा है ॥ १२ ॥

शुभदूतके लक्षण।

यः श्वेतवस्त्रावृतपूर्णपाणिः सम्पूर्णताम्बूलमुखः प्रशस्तः ॥ द्विजस्तथा माणवकः सुशीलः प्रज्ञाधिकश्चाह्वयते सुखाय १३॥ कुसुममुकुरवक्त्रं यस्य स्यात्सर्वदापि श्रमविकचसरोजं पद्मकिञ्जल्कपुष्पम् ॥ करतलवरवस्त्रं पुष्पपूगाङ्करागं करतलधृतमेतत्सौख्यकर्त्ता हि दूतः॥१४॥आगत्योदीच्यपूर्वामथवरुणदिशमैशीमाश्रित्य शान्तो दृष्ट्वा वैद्यं प्रहस्य प्रवदति निपुणं नातिनीचं न चोच्चम्॥उत्तिष्ठ त्वं प्रसादं कुरु पवन इदं सौख्यवाक्यं तनोति प्राज्ञैः स्वार्थं प्रकृष्टं सुखमगदकरं रोगिणां वैद्यलाभः ॥ १५॥ पूर्वां दिशं समासाद्य प्रशान्तः शान्तया गिरा ॥ वैद्यं वदति लाभाय रोगिणाञ्च सुखावहम् ॥१६॥ यश्चागत्योपविष्टोऽपि श्लोकं वाथ सुभाषितम् ॥ वदते शान्तया वाचा सोऽपि लाभाय शान्तये ॥१७॥ अभिवाद्यस्य वैद्यस्य क्षेमं पृच्छति यः पुनः॥ फलं ददाति पुष्पं वा रोगिणाञ्च सुखाहवम्[1] ॥ १८ ॥

जो सफेद वस्त्रोंको पहने हुये और किसी चीजको हाथमें लियेहुए और नागरपानको मुखमें धारण किये उत्तम देहवाला और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इन वर्णोंमें उपजा हुआ और बालक तथा शीलस्वभाववाला और बुद्धिमान् ऐसा दूत वैद्यको बुलानेमें सुखको देता है ॥ १३ ॥ जिसका मुख फूल तथा शीसाके समान स्वच्छ सब कालमें रहे और श्रमसे खिलेहुए कमलोंकी केसर और पुष्पोंवाला हो और हस्तोंके तलुओंपर भी वस्त्रको धारणकिये हो,अनेक प्रकारके फूल और सुपारीको हाथमें धारणकिये हो ऐसा दूत सुखको देनेवाला है ॥१४॥ जो आके उत्तरको व पूर्वको, पश्चिम व ईशान दिशामें बैठ और वैद्यको देख हँसता हुआ न ज्यादे ऊंचेप्रकारसे और न ज्यादे नीचेप्रकारसे बोले कि,हे वैद्यराज! उठके प्रसन्नता करो ऐसे शुभवचनको कहे ऐसा

[1] अत्र छन्दोभंगः।

दूत रोगियोंके रोगको नाशनेके लिये शुभ कहा है ॥ १५ ॥ जो पूर्वदिशामें आश्रित होके प्रशांत हुआ दूत शांतवाणीसे वैद्यको बोलता है वह दूत वैद्यको सुखका देनेवाला कहा है॥ १६॥ जो आर्ष श्लोकको अथवा सुन्दर वचनको शांतवाणीसे बोले वह भी दूत शुभ कहा है ॥ १७॥ जो दूत वैद्यको प्रणामकर फिर कुशलको पूँछ फलको अथवा फूलको देता है वह रोगियोंके सुखका देनेवाला है ॥ १८ ॥

अथ दूतलक्षणोंका उपसंहार ।

यस्य सौख्यं सुखं सिद्धिस्तस्य दूता इदं विदुः॥ किमत्र बहुनोक्तेन दूतो नरसुखावहः ॥ १९ ॥ न हितमस्त्रीपुरुषं तस्माच्च परिवर्जयेत्॥ एवं जानाति यो वैद्यस्तस्य सिद्धिः सुखं श्रियः ॥ २० ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने दूतपरीक्षणलक्षणं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

जिस रोगीको सुख और सिद्धिकी प्राप्ति होनेवाली है उसके दूत इस पूर्वोक्त वचनको बोलते हैं ज्यादे कहनेसे क्या है दूतही मनुष्योंको सुखका देनेवाला है ॥ १९ ॥ हीजडा दूत कर्ममें हित नहीं है इससे इसको वर्ज्जे ऐसा जो वैद्य जानता है उसको सिद्धि, सुख, लक्ष्मी इनकी प्राप्ति होती है ॥ २० ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां द्वितीयस्थाने दूतपरीक्षालक्षणं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.



अथ शाकुनवर्णन ।

आत्रेय उवाच ॥ इदानीं निर्गमे पुत्र प्रवेशे वा गृहस्य च ॥ शुभाशुभानि सर्वाणि वक्ष्यामि शकुनानि च ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे पुत्र ! अब वैद्यके चलनेमें और रोगीके घरमें प्रवेश करनेमें शुभ और अशुभ जो शकुन हैं उनको कहता हूं ॥ १ ॥

अथ शुभ शकुन ।

राजा गजो द्विजमयूरकखञ्जरीटाश्चाषः शकुन्तरजकः सितवस्त्रयुक्तः ॥ पुत्रान्विता च युवती गणिका च कन्या श्रेयः सुखाय यशसे प्रतिदर्शयन्ति॥२॥लङ्गा श्येनो भासहारीतचक्रो भार-

द्वाजश्छिक्करश्छागसंज्ञः ॥ एते श्रेष्ठा दक्षिणे सव्यवामे वैद्या-
वेशे निर्गमे श्रेयसे च ॥ ३ ॥

राजा, हस्ती, ब्राह्मण, मोर, खंजना, पपैया, सफेद वस्त्रोंवाला, धोबी, पुत्रसे युक्त हुई स्त्री, वेश्या, कन्या प्रथम देखे हुये ये शकुन यशको और सुखको देते हैं ॥ २ ॥ ग्राममें रहनेवाली चिडिया, शिकरा, भासपक्षी, हरीवां या हरदिहा, चकुवा, मुर्गाविशेष, छिकर, बकरा ये सब वैद्यके चलने और प्रवेश करनेमें दाहिने और बायें श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥

अथ दुष्ट शकुन ।

सर्पोलूको वानरःसूकरश्च गोधा ऋक्षो गिरगिटो वै शशश्च॥एते-
ऽरिष्टा निर्गमे वा प्रवेशे कार्य्ये निर्घातोपकारेषु शस्ताः ॥४॥

सर्प, उल्लू, वानर, शूकर, गोह, रीछ, गिरगिट, शशा ये सब वैद्यके गमन और प्रवेशमें अच्छे नहीं हैं और घात करनेके कार्य्यमें ये भी शकुन अच्छे हैं ॥ ४ ॥

अथ मृगादिकोंका शकुन ।

मृगो वा पिङ्गलो वापि प्रशस्तो दक्षिणे सदा ॥
निर्गमे वा प्रवेशे च दक्षिणे शुभदायकः ॥ ५ ॥

मृग अथवा उल्लू सबकालमें दाहिने श्रेष्ठ है और वैद्यके गमनमें तथा प्रवेशमें भी दाहिने ही शुभको देते हैं ॥ ५ ॥

अथ मृगोंके संख्याका शकुन ।

संख्ययैकस्त्रयः पञ्चनवसप्तसमाख्यया ॥
भाग्यकाले नराणां तु मृगा यान्ति प्रदक्षिणाः ॥ ६ ॥

एक अथवा तीन अथवा पांच अथवा सात अथवा नव ऐसी संख्याके मृग मनुष्योंके भाग्यकालमें दाहिने गमन करनेवाले होते हैं ॥ ६ ॥

अथ मोरआदिकोंका शकुन ।

शिखी च भवनगोधा रासभो भृङ्गराजः पिकभषणकपोताः
पोतकी सूकरी वा ॥ तदनु विहगराजो दीर्घकण्ठादयः स्युर्वदति
शकुनवेत्ता वामतो निर्गमे वा ॥ ७ ॥ तित्तिरः क्रकरः क्रौञ्चसा-
रसाभाससूकराः ॥ खगः किरीटी वामे तु सदा शुभतरा मताः
॥ ८ ॥ भवन्ति निर्गमे चैते सर्वकार्य्यसुसिद्धये ॥ ९ ॥

मोर, घरमें रहनेवाली गोह, गधा, धूम्याटपक्षी, कोयल, कुत्ता, कबूतर, काली चिडी,

---

१ छन्दोभंगः।

सुअरी, नीलटांच अथवा गीव, बगला इत्यादि वैद्यके गमनमें बायें श्रेष्ट हैं ऐसे शकुनको जाननेवाले कहते हैं ॥ ७ ॥ तीतर, करढौकपक्षी, कुंज, सारस, मास, शूकर, चील, किरीटी ये पक्षी सब कालमें बायें श्रेष्ठ हैं ॥८॥ये सब वैद्यके गमनमें सर्वकार्यसिद्धिके वास्ते श्रेष्ट हैं ॥९॥

अथ काकशकुन ।

काको दक्षिणतः श्रेष्ठो निर्गमे शुभदायकः ॥
प्रवेशे गदितः श्रेष्ठो वामतः कृष्णवायसः ॥ १० ॥

वैद्यके गमन करनेमें काक दाहिने श्रेष्ठ और शुभदायक है और वैद्यके प्रवेशमें काला काग बायें श्रेष्ठ कहा है ॥ १० ॥

अथ जाहशशाआदिकोंका शकुन ।

जाहकोऽपि शशकोऽपि मर्कटः कीर्त्तनश्च गदितं न सुखाय ॥ नाम चैव न च दर्शनमेषां सर्पगोधकृकलासबिडालाः ॥११॥ दर्शनं हितकरं प्रवदन्ति खञ्जरीटकमरालछिक्कराः ॥ नामतः शुभकराः प्रवदन्ति दार्वघाटवरटौ च शुकश्च ॥ १२ ॥

जहा, शशा, वानर और इनका कीर्तन करना, बोलना और सर्प, गोह, किरलिया, विलाव इनका नाम और देखना भी हित नहीं है ॥ ११ ॥ खंजना, राजहंस, खातीचिडा, गांधीलमाखी, तोता इन्होंके नाम और दर्शन वैद्यको श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥

अथ गमनसमयके विविधपदार्थदर्शनशकुन ।

निर्गमे विविधकार्य्यसिद्धये भृङ्गराजरजतं पयो जलम्॥मत्स्य-मांसरुधिरं मृतकं वा धौतवासमुकुरं पिधानकम् ॥१३॥ मार्गं छिन्दन्ति मार्जाराः सर्पा वा कृकलासकाः॥गोधा वापि प्रवेशे च पदमेकन्तु न व्रजेत् ॥ १४ ॥ प्रस्खलन्ति पादशिरसो वसनानि स्खलन्ति वा ॥ विक्रुष्टं वचनं श्रुत्वा पदमेकन्तु न व्रजेत् ॥१५॥ गृहाणां ज्वलनं दृष्ट्वा भिद्यते सजलं घटम् ॥ पतनं भूरुहाणां च दृष्ट्वा कुर्य्यान्न चङ्क्रमम् ॥१६॥ आक्रोशवचनं श्रुत्वा मार्जाराणां रुतं तथा ॥ कलहं गृहलोकस्य दृष्ट्वा चंक्रमणं न च ॥ १७ ॥ कनककङ्कणमेव विभूषणं सफलपुष्पमथासववारुणी॥ फलमशोककरं ज्वरिणां तदा शुभकरा भिषजां च शुभावहाः ॥ १८ ॥

वैद्यके गमनमें अनेक कार्य्योंकी सिद्धिके लिये मोरा, चांदी,दूध, पानी, मछली, मांस, रक्त, मुरदा, धोयाहुआ वस्त्र, आच्छादितहुआ शीशा इन्होंको देखना हित है ॥ १३ ॥ वैद्यके प्रवेश करनेमें बिलाव, सर्प, किरलिया, गोह ये मार्गको छेदित करें तब एक पैर भी नहीं चलना ॥ १४ ॥ पैर शिथिल होजावें अथवा कपडे ढीले होजावें और बुरावचन, सुनाजावे तब एक पद भी गमन नहीं करना ॥ १५ ॥ गमनकरनेमें जलताहुआ घर दीखे और पानीसे भराहुआ कलश फूटजावे और वृक्ष गिरपड़े इन्होंको देखकर गमन नहीं करना ॥ १६ ॥ क्रोधके वचनको और बिलावके रोदनको और मनुष्योंके कलह अर्थात् लड़ाईको देखकर गमन नहीं करना ॥ १७ ॥ सोनाका कंकणआदि गहना, फल, फूल, आसव, मदिरा, सुखको देनेवाला फल इनको जो वैद्य गमनमें देखे तो ज्वररोगियोंको सुख होता है ॥ १८ ॥

अथ शकुनाध्यायका उपसंहार।

एवं ज्ञात्वा परमनिपुणं पानमन्नादिकानां वीर्य्य चैषां गुणमपि तथा कोपनं कोपवेगम्॥आदानं वा पुनरपि चयं कोपनस्योपचारं वैद्यो विद्वान्भवति भवने पूजितो राजलोकैः॥ १९ ॥ इति आत्रेयभाषित हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने शकुनवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ द्वितीयं स्थानं समाप्तम् ॥ २ ॥

ऐसे परमनिपुण पानको और अन्नआदिके वीर्य तथा गुणको और कोपको और कोपके वेगको और आदान और चयको और कोपनके उपचारको जानके वैद्य अपने स्थानमें हो राजालोगोंसे पूजाके योग्य होता है ॥ १९ ॥ इति वेरीनिवासिवुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रयनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां द्वितीयस्थाने शकुनकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

यहां द्वितीयस्थान समाप्त हुआ ॥ २ ॥

अथ तृतीयस्थानम्।

अथ प्रथमोऽध्यायः १.

अथ औषधपरिज्ञानविधान।

आत्रेय उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि रोगसंकरकारणम्॥ श्रमाद्व्यायामरोधाद्वा चिन्ताशोकभयादपि ॥१॥क्रोधादौषधगन्धेन क्षयाद्धातोर्विशेषतः॥उदीर्य्य कोष्ठादग्निश्च रक्तपित्तं तथा बहिः॥ त्वचाश्रितश्च सम्भूय ज्वरं तस्मात्करोति हि ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-अब रोगोंके मिलापके कारणको कहता हूं, परिश्रमसे और कसरतको नहीं करनेसे और चिंता, शोक, भयसे ॥ १ ॥ क्रोधसे, ओषधीके गन्धसे और विशेष करके धातुके क्षयसे कोष्ठके अग्निको बढ़ाके और खालके वाहिर आश्रित हुए रक्तपित्त ज्वरको करते हैं ॥ २ ॥

अथ ज्वरसे उत्पन्न होनेवाले रोग।

उक्तहेतुर्ज्वरो वापि ज्वरान्मन्दज्वरो भवेत् ॥३॥ मन्दान्मन्दतमो ज्ञेयस्तस्मादम्लातिसेवनात्॥जायत कामलस्तस्मात्प्ररूढे स्याद्धलीमकम् ॥४॥ हलीमकाद्भवेत्पाण्डुस्तस्माद्यक्ष्मा प्रकीर्त्तितः ॥ यक्ष्मणो जायते शोफः शोफादुदरमेव च॥५॥तस्माद्गुल्मश्च वाताख्यं गुल्माच्छ्वासोऽथशूलिता॥मन्दाग्नित्वं भवेत्तस्मात्स्वरभेदोऽथ रोधनः॥६॥एतेषां सर्वरोगाणामुत्पत्तिः स्याज्ज्वरेण तु ॥ ज्वरेण मृत्युर्विज्ञेयो न मृत्युः स्याज्ज्वरं विना ॥ ७ ॥

ऐसे कहे हुए कारणवाला ज्वर है उस ज्वरसे मन्दज्वर भी होता है ॥ ३ ॥ और मन्दज्वरसे अतिमन्दज्वर होता है तब खट्टे पदार्थको अत्यंत सेवनेसे कामलारोग उपजता है और उससे हलीमकरोग उपजता है॥४॥और हलीमकसे पांडुरोग उपजता है और पांडुरोगसे यक्ष्मारोग उपजता है यक्ष्मारोगसे शोजारोग उपजता है और शोजारोगसे उदररोग उपजता है॥५॥उस उदररोगसे वातका गुल्मरोग उपजता है और गुल्मसे श्वासरोग और शूल उपजता है, उस शूलसे मन्दाग्निरोग और मन्दाग्निसे स्वरभेदरोग उपजता है ॥ ६ ॥ ज्वरसे सब रोगोंकी उत्पत्ति होती है ज्वरसे मृत्यु होता है, विशेष करके ज्वरके विना मरण नहीं होता ॥ ७ ॥

अथ ज्वरसे उत्पन्न होनेवाले अन्यप्रकारके रोग।

शृणु भेषजरोगज्ञ द्वितीयं रोगसंकरम् ॥ मन्दज्वरो भवेन्नृणामतीसारस्ततो ज्वरः ॥ ८ ॥ तेन चापि भवेद्धिक्का शोषो मोहो भ्रमोऽरुचिः ॥ एतेषां शोफतो मृत्युस्तृतीयः कथ्यतेऽधुना॥९॥

हे औषध और रोगको जाननेवाले! दूसरे रोगसंकरको सुनो, मनुष्योंके मन्दज्वर होता है उससे अतीसार उपजता है और अतीसारके पीछे ज्वर उपजता है ॥ ८ ॥ और उससे हिचकी, शोष, मोह, भ्रम, अरुचि ये रोग उपजते हैं इन सबोंकी शोजासे मृत्यु होती है। अब तीसरा रोगसंकर कहाजाता है ॥ ९ ॥

अथ दिनमें शयनकरनेसे होनेवाले रोग।

दिवास्वप्नादिदोषैर्वा प्रतिश्यायश्च जायते ॥ तस्मात्कासः समु-

दिवा स्वप्नादिभिः कासात्पीनस एव च ॥ १० ॥ तस्मात्क्षयः क्षयाच्छोफो शोफेनाऽपि मृतिं व्रजेत् ॥

दिनमें शयन करने आदिसे जुखाम उपजताहै उस जुखामसे खाँसी और खाँसीसे पीनस उपजता है॥१०॥ और पीनससे क्षय और क्षयसे शोजा उपजता है और शोजासे मरजाता है ॥

अथ महाभयंकर रोग ।

ज्वरः क्षयश्च यक्ष्मा च कुष्ठगुल्मार्शसंग्रहाः ॥११॥ शर्करा मेह उन्मादोऽपस्मारस्तु भगन्दरः॥ एते महाघोरतरा याप्यं कुर्वन्ति मानवम् ॥ १२ ॥

और ज्वर, क्षय, राजरोग, कुष्ट, गुल्म, बवासीर ॥ ११ ॥ शर्करा,प्रमेह, उन्माद,मृगीरोग, भगंदर ये अत्यंत महा घोर रोग हैं, ये मनुष्यको कष्टसाध्य कर देते हैं ॥ १२ ॥

अथ सर्वव्याधियोंका हेतु ।

वातपित्तादयो दोषास्तथा श्लेष्मसमुद्भवाः ॥
जायन्ते व्याधयः सर्वे तेषां वक्ष्याम्युपक्रमम् ॥ १३ ॥

वात और पित्तसे तथा कफसे उपजे सब रोग होते हैं उनके उपचारको कहता हूं ॥ १३॥

अथ वातादिदोषोंका पाचनकाल ।

वातः पचति सप्ताहात्त्रिरात्रात्पित्तमेव च॥श्लेष्मा सार्द्धदिनेनापि विपचेद्भिषजां वर ॥ १४ ॥ द्वन्द्वजं वातपित्तञ्च नवरात्रेण पच्यते ॥ श्लेष्मवातौ दशाहेन पञ्चाहात्पित्तश्लैष्मिकम् ॥१५॥ शमनाय च द्वन्द्वानां तुर्य्याहात्पाचनं तथा ॥ त्रिदोषस्य च घोरस्य पाचनं द्वादशे दिने ॥ १६ ॥ सन्निपातश्च पचति चतुर्दशदिनैरपि ॥

वातदोष सात दिनमें पकता है,पित्तदोष तीन दिनमें पकता है,हे वैद्यवर ! कफदोष डेढदिनमें पकजाता है ॥ १४ ॥ मिलेहुए वात पित्त ९ नव दिनोंमें पकते हैं, मिलेहुए कफ और वात दशदिनमें पकते हैं, मिलेहुए पित्त और कफ पांच दिनमें पकते हैं ॥ १५ ॥ मिलेहुए दो दोषोंकी शांतिके लिये चार दिनमें पाचन हित है और घोररूपत्रिदोषमें बारहवें दिन पाचन हित है ॥ १६ ॥ चौदहदिनोंकरके भी सन्निपात पकता है ॥

अथ पाचनादिक्रियाका समय ।

ज्ञात्वा दोषबलं पक्वं तस्माद्देयन्तु पाचनम् ॥ १७ ॥
युक्तं निदानलक्षैस्तु तस्मात्संशमनक्रिया ॥

सो दोषको पाकके बलको जान पीछे पाचन देना चाहिये ॥ १७ ॥ निदानके लक्षणोंसे युक्तहुएको जान पीछे संशमनक्रिया करनी ॥

अथ धातुगतदोषोंका पाचनकाल ।

सप्ताहेनापि पच्यन्ते सप्तधातुगता मलाः ॥१८॥ चिरादपि हि पच्यन्ते सन्निपातज्वरे मलाः॥विरामश्चाप्यतः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽष्टमेऽहनि ॥ भवेत्सप्तमेऽहनि विरामज्वरकारणम् ॥ १९ ॥

और सात धातुओंमें प्राप्त हुए दोष सात दिनोंमें पकजाते हैं ॥१८॥ किन्तु सन्निपात ज्वरम मल देरसे भी पकते हैं । इसी लिये ज्वरका विराम आठवें दिन कहा गया है । सातमें दिन ज्वरकी शांतिका कारण नहीं होता है ॥ १९ ॥

अथ अपक्वदोषमें औषधका निषेध ।

विचार्य्य भेषजं दद्यादजीर्णे मतिमान्भिषक् ॥
मन्दो हि सुतरामग्निर्भेषजं न विपाचयेत् ॥ २० ॥

तव विचार कर बुद्धिमान् वैद्य औषधको नवीनज्वरमें देवे क्योंकि,अतिमंदहुआ अग्नि औषधको नहीं पकाता है अर्थात् नवीनज्वरमें औषध विना विचारे नहीं देना ॥ २० ॥

अथ लंघनका उपचार ।

सर्वेषु दोषसामेषु पाचनं लङ्घनं स्मृतम् ॥

सम्पूर्ण कच्चे दोषोंके पचानेवाला लंघन ही कहा गया है ॥

अथ लंघनप्रकरण ।

लङ्घितं मध्यलंघितं स्यादतिलङ्घितमेव च॥ २१ ॥
लक्षणं वक्ष्यते चैषां मनुष्याणां शृणुष्व हि ॥ २२ ॥

मनुष्योंके लंघन, मध्यलंघन,अतिलंघन इन भेदोंसे लंघन, तीन प्रकारका है ॥ २१ ॥इन्होंके लक्षण कहेजाते हैं वे मुझसे सुनो ॥ २२ ॥

अथ शुद्धलंघितका लक्षण ।

गतक्लमोऽरुचिर्ग्लानिरिन्द्रियाणां प्रसन्नता ॥
लङ्घने दोषपाकस्तु शुद्धलङ्घितलक्षणम् ॥ २३ ॥

ग्लानि जातीरही है, रुचि उपजे और इन्द्रियोंकी प्रसन्नता रहे और लंघनमें दोष पकजावे ये शुद्धलंघनके लक्षण हैं ॥ २३ ॥

अथ मध्यमलंघितका लक्षण ।

किञ्चित्क्लमोऽरुचिर्ग्लानिरिन्द्रियाणां विवर्णता ॥ बहुतृष्णाल्प-

क्षुधापि श्रमश्चैव भिषग्वर ॥ २४ ॥ किञ्चित्संस्निग्धता गात्रे रुचिबाधातिवन्धता॥मध्यपाकी च दोषः स्यान्मध्यलंघितलक्षणम् ॥ २५ ॥

कुछ ग्लानि रहे, रुचि भी अल्प हो, इन्द्रियोंका वर्ण बदल जावे, बहुत तृषा लगे और भूख भी थोडी लगे. और परिश्रम उपजे ॥२४॥और शरीरमें कुछ चिकनाईपना उपजे,रुचिकी पीड़ा हो और बंधा पड़ जावे और दोष भी कुछ पके और कुछ नहीं पके ये मध्यलंघितके लक्षण हैं ॥ २५ ॥

अथ अतिलंघितका लक्षण।

वैकल्यं जायते तन्द्राविड्भेदश्च विनिद्रता॥वेपथुश्च शिरोऽर्तिश्च क्षुत्क्षामं शूलमेव च ॥२६॥ श्यामास्यं प्लावनं नेत्रे मूर्च्छामोहश्रमातुरम् ॥ अतिलंघितमेतैस्तु लक्षणं संविभावयेत् ॥२७॥

विकलपना, तंद्रा, विष्टाका पतलापन, ये उपजें और नींद आवे नहीं, शरीरमें कंपन और शिरमें दर्द हो, अल्प भूख लगे और शूल उपजे ॥ २६ ॥ कालामुख हो जावे और नेत्रोंसे पानी झिरे और मूर्छा, मोह, परिश्रम इन्होंसे पीडित हो ये सब लक्षण अतिलंघनके हैं ॥ २७ ॥

अथ लंघित करनेमें अयोग्य रोगी।

वेलाज्वरे भूतज्वरे तथा पित्तज्वरेऽपि च॥आयासे क्रोधज वापि भयकामज्वरेऽपि च ॥२८॥ एतेषां लंघनं नैव कारयेद्भिषगुत्तमः॥ २९ ॥ बालं वृद्धं कृशं क्षीणमतीसारव्रणातुरम्॥गुर्विणीं सुकुमारञ्च लंघयेन्न कदाचन ॥ ३० ॥

वेलाज्वर(समय बांधकर आनेवाला), भूतज्वर,पित्तज्वर,परिश्रमका ज्वर, क्रोधज्वर, भयज्वर और कामज्वर ॥२८॥ इनमें वैद्य लंघन नहीं करावे ॥ २९ ॥ बालक, वृद्ध,कृष,क्षीण, अतीसाररोगी, घावरोगी, गर्भवाली स्त्री, कोमल मनुष्य इनको कभी लंघन नहीं कराना ॥३०॥

अथ लंघन करनेयोग्य रोगी।

सामे मन्दज्वरे तीव्रे रुचिविड्बन्धकेऽपि च ॥
अजीर्णे तु प्रशस्तञ्च लंघनं मात्रयान्वितम् ॥ ३१ ॥

आमसहित मंदज्वर, तीक्ष्णज्वर, अरुचि, विष्ठाका बंधा, अजीर्ण इनमें भी मात्रासे लंघन कराना श्रेष्ठ है ॥ ३१ ॥

अथ आमज्वरके लक्षण।

स्निग्धत्वञ्चातिगात्राणामुदरं गर्जयेद्भृशम् ॥ शिरोऽर्तिर्जठराध्मानः प्रततं कण्ठकूजनम् ॥ ३२ ॥ अरुचिः पीतता मूत्रे निद्रातन्द्रातुरं नरम् ॥ आमज्वरं च विज्ञाय लंघयेद्भिषगुत्तमः ॥ ३३ ॥

शरीरके अंग अत्यंत चिकने हो जावे और पेट अत्यन्त बोले, शिरमें पीड़ा हो और पेटपै अफारा उपजे और निरंतर कंठ जलता और बोलता रहे ॥३२॥ और अरुचि हो,नेत्रोंमें पीलापन उपजे,नींद और तंद्रासे रोगी पीडित होवे ये आमज्वरके लक्षण हैं। इस रोगवालेको कुशल वैद्य लंघन करवावे ॥ ३३ ॥

अथ छःप्रकारके लंघन।

अनशनवमनविरेचनरक्तस्रुतितप्ततोयपानैः ॥
स्वेदनकर्मसहितैः षड्विधं लंघनं गदितम् ॥ ३४ ॥

नहीं खाना,वमन,जुलाब,रक्तका निकालना,गरम पानीको पीना,स्वेद अर्थात् पसीनाका देना इन भेदोंसे लंघन छः प्रकारका कहा है ॥ ३४ ॥

अथ विरतज्वरलक्षण।

क्षुत्क्षामं श्रमशैथिल्यं भ्रमवेगज्वरातुरम् ॥
अन्तर्दाहं रक्तमूत्रं विरामज्वरलक्षणम् ॥ ३५ ॥

भूख थोड़ी लगे हलकापन हो,श्रमसे शिथिलपना हो और भ्रम,वेग, ज्वर इनसे रोगी पीड़ित होवे और शरीरके भीतर दाह रहे और लाल मूत्र उतरे ये विरामज्वरके लक्षण हैं अर्थात् ये लक्षण उपजें तब जानना कि, ज्वर उतरनेवाला है ॥ ३५ ॥

अथ दोषपरत्वसे लंघनकी मर्यादा।

वातिको लंघनैः षड्भिः पैत्तिकस्तु दिनत्रयम् ॥ सप्तभिःपचते श्लेष्मा दृष्ट्वा लंघनमाचरेत् ॥ ३६ ॥ त्रिदोषो दशरात्राणि पचते लंघनैस्तु सः ॥ दिने पञ्चदशे प्राप्ते पचते सान्निपातिकः ॥३७॥ मुञ्चेद्वा आतुरं हन्ति भवेद्वा विषमज्वरः ॥

वातदोष छः लंघनोंसे पकता है,पित्तदोष तीन दिनमें पकता है,कफदोष सात लंघनोंसे पकता है ऐसे देखके लंघनका आचरण करे ॥ ३६ ॥ त्रिदोष लंघनोंसे दशदिनकरके पकता है और पंद्रहदिनोंकरके सन्निपातदोष पकता है ॥ ३७ ॥ इनकालोंमें ये दोष रोगीको छोड़ देते हैं अथवा मारते हैं,किंवा विषमज्वरको उपजाते हैं ॥

अथ वयपरत्वसे दोषोंके कोपका प्रकार।

बाल्य रक्तमया दोषाः कफपित्तादनंतरम् ॥ ३८ ॥ षोडशे तु समे प्राप्ते त्रिदोषप्रभवा गदाः ॥ पञ्चविंशतिमे प्राप्ते ज्वरो वै सान्निपातिकः ॥ ३९ ॥

मनुष्यकी बालकअवस्थामें रक्तकी प्रधानतावाले दोष रहते हैं, पीछे कफ और पित्तकी अधिकतावाले दोष हो जाते हैं ॥ ३८ ॥ सोलहवां वर्ष प्राप्त होते ही त्रिदोषसे रोग उपजते हैं और विशेषकरके पचीस वर्षतक सन्निपातसे ज्वररोग उपजता है ॥ ३९ ॥

अथ ज्वरवालेको क्काथ देनेका समय ।

वातपित्तकफैरेव रसरक्तसमुच्चयात् ॥
जायते यो ज्वरः सम्यक् पक्के क्वाथं तु दापयेत्॥४०॥

वात, पित्त, कफ, रस, रक्त इनके संचयसे जो ज्वर उपजे वह जब अच्छीतरह पकजावे तब काथको देवे ॥ ४० ॥

अथ काथका प्रकार ।

क्वाथः षड्विधः प्रोक्तः पाचनः शमनस्तथा ॥
दीपनः क्लेदनः शोषी सन्तर्पणो विशेषतः ॥ ४१ ॥

पाचन, शमन, दीपन, क्लेदन, शोषण, संतर्पण इनभेदोंसे काथ छःप्रकारका कहा है ॥४१॥

अथ छः प्रकारसे क्काथ देनेका समय ।

पाचनश्च नरे देयं निशासु प्रविजानता॥पूर्वाह्ने शमनो देयोऽपराह्ने दीपनः स्मृतः ॥४२॥ सन्तर्पणो भेदनश्च कल्ये पानाय दापयेत् ॥ शोषणोऽपि प्रभाते च क्वाथःपाने प्रकीर्तितः॥४३॥

वैद्यको पाचनकाथ रात्रिमें देना और शमनकाथ दिनके प्रथमकालमें देना और दुपहरीके पश्चात् दीपनकाथ देना ॥ ४२ ॥ संतर्पण और भेदनकाथ प्रभातमें देना और शोपणकाथ भी प्रभातमें ही देना ॥ ४३ ॥

अथ औषधादिक देनेके समयकी संज्ञा ।

रात्रौ यः प्रथमो यामो भूतवेला प्रकीर्तिता ॥ द्वितीयं निशि इत्याहुर्निशीथश्च ततः परम्॥ ४४॥ गणरात्रं ततो ज्ञेयं कालमप्रातराशिनम्॥पूर्वापराह्णमध्याह्नाःपरार्द्धदिनशेषकाः ॥४५॥ पूर्वे दिनावसाने च भेषजानामुपक्रमः ॥ ४६ ॥

रात्रिके प्रथम यामको भूतवेला कहते हैं और दूसरे यामको निशि कहते हैं और उससे परे निशीथ कहाता है ॥ ४४ ॥ उससे परे गणरात्र कहाता है और पूर्वाह्ण, मध्याह्न, अपराह्ण, परार्द्ध, दिनशेष ऐसी संज्ञा है ४५ ॥ प्रभातमें और सायंकालमें औषधियोंका उपचार है ॥ ४६ ॥

अथ सात प्रकारके क्काथ ।

पाचनो दीपनीयश्च शोधनः शमनस्तथा ॥
तर्पणः क्लेदनः शोषी क्काथः सप्तविधः स्मृतः ॥ ४७ ॥

पाचन, दीपन, शोधन ,शमन, तर्पण, क्लेदन,शोषण ऐसे सातप्रकारके क्काथ कहे हैं ॥ ४७ ॥

अथ सातप्रकारके क्काथोंका लक्षण ।

पाचनोऽर्द्धविशेषी स्याच्छोधनो द्वादशांशकः॥क्लेदनश्चतुरङ्गश्च शमनोऽष्टावशेषितः ॥ ४८ ॥ दीपनीयो दशांशस्तु तर्पणश्च समांशकः॥विशोषी षोडशांशश्च क्वाथभेदाः प्रकीर्त्तिताः४९॥

अग्निसे उबालनेमें आधा शेष रहा पानी पाचनक्काथ कहाता है और जिसमें बारहवाँ हिस्सा पानी शेष रहे वह शोधन काहाता हैं, जिसमें चौथा हिस्सा पानी शेष रहे वह क्लेदन कहाता है, जिसमें आठवां हिस्सा पानी शेष रहे, वह शमन कहाता है ॥ ४८॥ जिसमें दशवां हिस्सा पानी शेष रहे वह दीपन कहाता है, जो उबाला मात्र जावे वह तर्पण कहाता है जिसमें सोलहवां हिस्सा पानी शेष रहे वह शोषण कहाता है, ऐसे क्काथके भेद कहे हैं ॥४९ ॥

अथ सात प्रकारके क्काथोंका कार्य ।

पाचनः पचते दोषान्दीपनो दीप्यतेऽनलम्॥शोधनो मलशोधी स्याच्छमनः शमते गदान् ॥ ५० ॥ तर्पणस्तर्पत धातून्क्लेदी हृत्क्लेदकारकः॥विशोषी शोषमाधत्ते तस्मात्क्वाथं परीक्षयेत्॥ ॥ ५१ ॥ क्लेदी विशोषी विज्ञाय वामनं कारयेन्नरम् ॥

पाचनक्काथ दोषोंको पकाता है, दीपनक्काथ जठराग्निको प्रज्वलित करता है, शोधनक्काथ मलको शोधता है, शमनक्काथ रोगोंको शांत करता है ॥५० ॥ तर्पणक्काथ धातुओंको तृप्त करता है, क्लेदनक्काथ हृदयमें क्लेदको करता है, शोषणक्काथ शोषको करता है, इसवास्ते क्काथकी परीक्षा करनी ॥ ५१ ॥ मनुष्यको क्लेदवाला और विशेषकरके शोषवाला जानके वमन कराना चाहिये ।

अथ क्काथरक्षणका उपदेश ।

न लङ्घयेत्क्वाथकृतं नान्तराणि च चालयेत्॥५२॥न शोषये-त्पुनः स्थाप्यो नाशुचौ न चकासते॥ स च क्वाथो न शस्तः स्याद्रोगसङ्करकारणम् ॥ ५३ ॥ न शोषयेत्पुनः क्वाथं न च भमिगत पुनः ॥ दोषसंशमनेनैते प्रशस्ता गदकर्मणि ॥५४ ॥

और बनते हुए काथको लांघे नहीं और बीचमें चलावे किंतु यथायोग्य पकावे ॥ ९२ ॥ स्थापित किये काथको फिर शोषित करे नहीं और अशुद्ध जगहमें काथको बनावे नहीं और अंधेरेमें भी काथ न बनावे क्योंकि ऐसा काथ अच्छा नहीं होता किंतु रोगोंके मिलापका कारण होता है ॥ ९३ ॥ काथको फिर शोषित नहीं करे और पृथिवीमें प्राप्तहुए काथको फिर नहीं ग्रहण करे क्योंकि रोगके नाशमें दोषको शांत करनेमें काथ श्रेष्ट है इस लिये ओषधिके काममें काथ अच्छा है ॥ ९४ ॥

अथ काथसंबन्धी अनिष्ट लक्षण।

विदीर्य्यते पततेऽपि स्फुटते काथतो जनः ॥
एतेऽनिष्टकराः काथा न दोषशमनाय च ॥ ९५ ॥

बुरे काथसे रोगी विदीर्ण हो जाता है, गिरजाता है और फटजाता है। ये बुरे काथ दुःखको देते हैं और दोषको शांत नहीं करते ॥ ९५ ॥

अथ हीनकाथके लक्षण।

एतैर्हीनलक्षणैर्हीनक्वाथं दृष्ट्वा परीक्षयेत् ॥ ९६ ॥ कृष्णं नीलं घनं रक्तं पिच्छिलं शिथिलञ्च यत् ॥ दग्धं कुणपगन्धञ्च विस्रगन्धं विवर्जयेत् ॥९७॥ एतैरसाध्यं जानीयाद्रोगिणं नात्र संशयः ॥

इन पूर्वोक्तलक्षणोंसे हीनहुए काथकी परीक्षा करनी ॥ ९६ ॥ काला, नीला, कठिन, लाल झागोंवाला, शिथिल, दग्ध हुआ, मुर्दाकेसी गन्धवाला, कची गन्धवाला, ऐसे काथको वर्ज देवे ॥ ९७ ॥ इस तरहके काथसे रोगी असाध्य होजाता है इसमें संशय नहीं ॥

अथ उत्तम काथका लक्षण।

द्रव्यगुणानुवर्णेन द्रव्यगन्धं विनिर्दिशेत् ॥ ९८ ॥
तद्वद्विशुद्धं सच्छायं कषायममृतोपमम् ॥

द्रव्यके गुणके अनुबन्धसे द्रव्यके गन्धको कहे ॥ ९८ ॥ विशेषकरके शुद्ध और सुन्दर कांतिवाला काथ अमृतके समान होता है ॥

अथ वातज्वरमें पाचनका विधि।

वातज्वरे लङ्घनान्ते दत्त्वा चान्नं तथोपरि ॥
निशासु पाचनं देयं ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥ ९९ ॥

वातज्वरमें लंघनके अन्तमें अन्नको देकर रातको पाचन काथ देवे परन्तु दोषके बल और अबलको देखे ॥ ९९ ॥

अथ पित्तज्वर और कफज्वरमें पाचनका विधि।

त्रिरात्रे पैत्तिके देयं श्लैष्मिके प्रथमेऽहनि ॥

पित्तके ज्वरमें तीसरे दिन और कफज्वरमें प्रथम दिन पाचन देना ॥

अथ पाचनका निषेध ।

अविज्ञाते च दोषे च पाचनं न प्रदापयेत् ॥ ६० ॥

और विना जाने दोषमें पाचन नहीं देना ॥ ६० ॥

अथ ज्वरकी मर्यादा ।

सप्तरात्राद्धि मर्य्यादा ज्वरेणैवोपलक्ष्यत ॥
तस्मान्नवज्वरे पीतं दोषकृन्न च दोषहृत् ॥ ६१ ॥

ज्वरकी मर्यादा सातदिनकी प्रसिद्ध है इस वास्ते नवीन ज्वरमें पानक्रिया पाचनरूपी औषध दोषको करता है किंतु दोषको हरता नहीं है ॥ ६१ ॥

अथ ज्वरमें पाचनादि देनेकी मर्य्यादा ।

तस्मादादौ प्रदेयन्तु पाचनञ्च दिनत्रयम् ॥ शमनीयं प्रदेयन्तु पञ्चरात्रं ततः परम् ॥ ६२ ॥ शोधनं दीपनीयन्तु एकरात्रं प्रदापयेत् ॥ ६३ ॥

इसलिये आदिमें तीनदिन पाचनको देवे उसके पीछे पांचरात शमनक्राथको देवे ॥ ६२ ॥ शोधन और दीपनक्राथको एकदिन देवे ॥ ६३ ॥

अथ क्राथके विपत्तिका प्रकार ।

क्वाथपाने क्लमो मूर्छा वैक्लव्यञ्च प्रदृश्यते ॥
वमनञ्च तदा प्रोक्तं शमनं पथ्यकेऽपि वा ॥ ६४ ॥

जब क्राथके पीनेमें ग्लानि, मूर्छा, विकलपना ये उपजें तब वमनसंज्ञक औषध देना और पथ्यमें शमनक्राथ देना ॥ ६४ ॥

अथ पथ्यकी आवश्यकता ।

सदा पथ्यं प्रयोक्तव्यं नापथ्येन स सिध्यति ॥ औषधेन विना पथ्यैः सिद्धचते भिषगुत्तमैः ॥ ६५ ॥ विना पथ्यं न साध्यः स्यादौषधानां शतैरपि ॥

सब कालमें पथ्य देना चाहिये क्योंकि, अपथ्यसे कोई भी रोग सिद्ध नहीं होता किंतु औषधिके बिना भी पथ्योंकरके रोग शांत हो जाता है ॥ ६५ ॥ सैकड़ों औषधियोंको सेवतेहुए भी पथ्यके बिना रोग शांत नहीं होता ॥

अथ ज्वरितको पथ्यभोजनका उपदेश ।

ज्वरितो हितमश्नीयाद्यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत् ॥ ६६ ॥ अन्नकालेऽव्यभुञ्जानो हीयते म्रियतेऽपि वा ॥ स क्षीणः कृच्छ्रतां याति

यात्यसाध्यत्वमेव च ॥ ६७ ॥ तस्माद्रक्षेद्बलं पुंसां बलशान्तिर्हि जीवितम् ॥

और ज्वरवाला रोगी पथ्यको सेवे चाहे रोगीको अरुचि भी हो तब भी ॥ ६६ ॥ अन्नकालमें नहीं भोजन करता हुआ ज्वररोगी क्षीण हो जाता है अथवा मर जाता है और क्षीण हुआ वह कष्टपनेको प्राप्त होके पीछे असाध्यपनेको प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ इसकारणसे मनुष्योंके बलकी रक्षा करनी । क्योंकि, बलकी शांति ही जीवन कहा है ॥

लंघिते चैव दोषे च यवागूपानमाचरेत् ॥ ६८ ॥
शालिषष्टिकमुद्गं च यूषं शस्तं वदन्ति हि ॥ ६९ ॥

लंघनके करनेमें और दोषमें यवागूको पीता रहे ॥ ६८ ॥ सांठी चावल और मूंगका यूष ही लंघनमें श्रेष्ठ कहते हैं ॥ ६९ ॥

अथ मध्यलंघितको अन्नविधि ।

पञ्चकोलकसंसिद्धा यवागूर्मध्यलंघिते ॥
भवेत्प्रशस्ता सततं तस्य सन्तर्पणं हितम् ॥ ७० ॥

पीपल, पीपलामूल, चीता, चव्य और सोंठ इन पांचों मूलको कूटकर काथ बनावे इस काथमें तंदुलकी या मूंगकी यवागू बनावे और पकावे, फिर सिद्ध हुई यह यवागू मध्यलंघितको प्रशस्त है और रोगीको तृप्त रखती है ॥ ७० ॥

अथ क्लमशांतिकी विधि ।

आजं दुग्धं गुडोपेतं पानाय ज्वरशान्तये ॥
तेन क्लमविनाशः स्यात्सुखमाशु प्रपद्यते ॥ ७१ ॥

बकरीके दूधमें गुड मिला पीवे इसे ज्वरकी शांति होती है तब ग्लानिका नाश और तत्काल सुख उपजता है ॥ ७१ ॥

अथ काथपीनेकी विधि ।

उदीच्यां वा पूर्वस्यां वाऽभिमुखंचोपवेशयेत् ॥ पाययेत्काथपानं च कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥ ७२ ॥ पानपात्रमधः कृत्वा शयीत ज्ञानमेव च ॥ पीत्वा चैव तृषार्त्तोऽपि न जलं पाययेत्क्षणम् ॥ ७३ ॥ गतक्लमं नरं दृष्ट्वा तदा संपद्यते सुखम् ॥ ७४ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भेषजपरिज्ञानविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

उत्तरको अथवा पूर्वको या अपनी और मुख कराकर रोगीको बैठावे पीछे ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराके काथका पान करावे ॥ ७२ ॥ पीछे पीनेके पात्रको अधोमुख स्थापित कर जागता हुआ शयन करे और क्वाथका पान करके तृषवाला भी दो घडीतक पानीको नहीं पीवे ॥ ७३ ॥ जब रोगीकी ग्लानि दूर होजावे तब रोगी सुखको प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने औषधपरिज्ञानविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अथ ज्वरचिकित्सा।

आत्रेय उवाच॥अनभिज्ञश्चिकित्सायां शास्त्राणां पठनेन किम् ॥
यथा पलालं बीजस्तु रहितं निष्प्रयोजकम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—जो वैद्य चिकित्साकर्ममें कुशल नहीं हो और वैद्यशास्त्रके पठनमें कुशल हो तिसको क्या फल होता है अर्थात् कुछ नहीं अन्नसे रहित निष्प्रयोजन तुषसे क्या तत्त्व निकलता है? ॥ १ ॥

अथ कुवैद्यनिंदा।

वरमाशीविषविषं क्वथितं ताम्रमेव च॥ पीतमत्यग्निसन्तप्ता भक्षिता वाप्ययोगुडाः ॥२॥ न तु श्रुतवतां वेशं बिभ्रतां शरणागतात् ॥ अहीतुमन्नपानं वा वित्तं वा रोगपीडितात्॥ ३ ॥

सर्पआदिका विष, उबाला हुआ तांबा, अत्यंत अग्निमें तप्त किये लोहाके गोले इन सबोंको सेवना भी हित है ॥ २ ॥ परंतु वैद्योंके वेशको धारण करनेवाले और रोगियोंसे अन्न, पान, धन इनको हरनेवाले ऐसे वद्योंकी औषधको नहीं खावे ॥ ३ ॥

अथ वैद्यका लक्षण।

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय जायते ॥
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्योयो विमोक्षयेत् ॥ ४ ॥

जो आरोग्यको करता है वही योग्य औषध है और जो रोगोंसे छुडावे वह ही उत्तम वैद्य कहाता है ॥ ४ ॥

अथ वैद्यकशास्त्रपठनकी आवश्यकता।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रोगवारणहेतुना॥युक्ता निदानलक्षैस्तु संहि-

तोपायसंयुता ॥ ५ ॥ पठितव्या समासेन संहिताज्ञानहेतवे ॥
ज्ञात्वा रोगप्रतीकारं ततः कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ ६ ॥

इसलिये रोगके निवारण करनेवाले कारणसे संयुक्त सब उपाय करके निदानके लक्षण और रोगोंसे तथा रोगप्रतीकारकी चिकित्सासे अन्वित हुई वैद्यकसंहिता ॥ ५ ॥ विस्तार करके पठितकरनी योग्य है, संहिताके ज्ञानके लिये और रोगको दूर करनेके उपायको जानकर पीछे चिकित्साको करे ॥ ६ ॥

रोग नहीं जाननेसे हानि।

अविज्ञाय रुजं सम्यङ्मोहादारभते क्रियाः ॥
विधानज्ञोऽथ शास्त्रज्ञो न तत्सिद्धिः प्रजायते ॥ ७ ॥

जो वैद्य रोगको नहीं जानके क्रियाका आरंभ करता है वह विधानको और शास्त्रको जाननेवाला भी सिद्धिको प्राप्त नहीं होता ॥ ७ ॥

अथ वैद्यशास्त्रज्ञाताको फल।

निदानं रोगविज्ञानं भेषजानां गुणागुणम् ॥
विज्ञाय कुरुते यस्तु तस्य सिद्धिर्न दूरतः॥ ८ ॥

निदान और रोगको जानना, औषधियोंके गुण और दोष इनको जानके जो वैद्य क्रियाको दूर नहीं करता है उसको शीघ्र सिद्धि होती है ॥ ८ ॥

रोगादिक जाननेकी आवश्यकता।

आदावेव रुजां ज्ञानं साध्यासाध्यं विचक्षणः ॥
याप्यं सर्वरुजाश्चैव ततः कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ ९ ॥

आदिमें वैद्य रोगके ज्ञानको और साध्य और असाध्यरूपको तथा कष्टसाध्यपनेको जाने पीछे क्रियाको करे ॥ ९ ॥

अथ देशकालआदिक जाननेकी आवश्यकता।

देशं कालं वयो वह्निसात्म्यं प्रकृतिभेषजम् ॥
एवं विज्ञाय सद्वैद्यस्ततः कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ १० ॥

देश, काल, अवस्था, अग्नि, स्वभाव, प्रकृति इनको जानके कुशल वैद्य चिकित्साको करे ॥ १० ॥

अथ रोगहेतुवातादिदोष।

नास्ति रोगो विना दोषैर्दोषा वातादयः स्मृताः॥
ज्वरादयः स्मृता रोगास्तान्सम्यक्परिलक्षयेत् ॥ ११ ॥

दोषोंके विना राग नहीं होता और वे दोष वातआदि कहाते हैं और ज्वरआदि रोग हैं उन सबोंकी अच्छीतरह परीक्षा करे ॥ ११ ॥

अथ रोगपरीक्षाके प्रकार।

आप्तानाञ्चोपदेशेन प्रत्यक्षीकरणेन च॥आतुरादिदृशः स्पर्शाच्छीतादिप्रश्नतः परम्॥१२॥दर्शनस्पर्शनप्रश्नै रोगज्ञानं त्रिधा मतम्॥मुखाक्षिदर्शनात्स्पर्शाच्छीतादिप्रश्नतः परम् ॥ १३ ॥

वैद्योंके उपदेशसे और प्रत्यक्षीकरणसे और वैद्य आदिकी दृष्टिसे और स्पर्शसे और शीतआदिके पूछनेसे रोगका ज्ञान करे ॥ १२ ॥ दर्शन, स्पर्श और प्रश्न इन भेदोंसे रोगोंका तीन प्रकारका ज्ञान होता है, तहां मुख और नेत्र इन्होंके दर्शनसे, अंगके शीत उष्ण आदिक स्पर्शसे और कैसा है क्या क्या होता है इत्यादिक प्रश्नसे तीन प्रकारका रोग ज्ञान होता है ॥ १३ ॥

अथ साध्यासाध्यका लक्षण।

कृच्छ्रयाप्यसुखोपायो द्विविधः साध्य उच्यते ॥
असाध्यो द्विविधो ज्ञेयः कृच्छ्रः कृच्छ्रतमोऽपरः ॥१४॥

कष्टसाध्य और सुखसाध्य इन भेदोंसे साध्य दो प्रकारका है और कष्टसाध्य और अतिकष्टसाध्य इन भेदोंसे असाध्यभी दो प्रकारका है ॥ १४ ॥

अथ साध्यादिकहोनेका कारण।

याप्याःकेचित्प्रकृत्यैव याप्याःसाध्या उपेक्षया॥स्वभावाद्व्याधयः साध्याः केचित्साध्या उपेक्षिताः॥१५॥ साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्याश्चासाध्यतां तथा॥घ्नन्ति प्राणांश्च साध्यास्तुनराणामक्रियावताम् ॥ १६ ॥

कोई रोग स्वभावसे ही कष्टसाध्य होते हैं और कोई साध्यरोग चिकित्साके अभावसे कष्टसाध्य होते हैं और कितनेक रोग स्वभावसे साध्य होते हैं और कितनेक नहीं चिकित्सित किये रोग साध्य होते हैं ॥ १५ ॥ साध्यरोग कष्टसाध्यपनेको प्राप्त होते हैं और कष्टसाध्यरोग असाध्यपनेको प्राप्त होते हैं, इससे क्रियाको नहीं करनेवाले मनुष्योंको साध्यरोगभी मार देते हैं ॥ १६ ॥

उपद्रवका लक्षण।

व्याधेरुपरि यो व्याधिःसोपद्रव उदाहृतः॥सोपद्रवा न जीवन्ति

१ 'प्रत्यक्षीकरणेन च' इत्यत्र प्रत्यक्षादनुमानतः इति वा पाठान्तरम्। २ आतुरे आदिर्येषां तेषां भिषजां दृशा विचारणार्थात् पूर्ववैद्यैः किमात्ररितमित्यपि विचारणीयम्। अथवा तुरस्य रोगिण आदिदृशः प्रथमदृष्टेः दर्शनादितिभावात्तत्र पाठान्तरम् आतुरादिदृशः।

जीवन्ति निरुपद्रवाः ॥१७॥ ज्ञात्वाल्पकोऽपि भिषजा परिचिन्तनीयो नोपेक्षणीय इति रोगगणो ह्यसाध्यः ॥ स्वल्पोऽप्यरिर्विरलवह्निसमानरूप आप्तोबलो न शमतामुपयाति काले१८ शत्रुः स्थानबलं प्राप्य विक्रमं कुरुते बली॥तथा धात्वन्तरं प्राप्य विक्रमं कुरुते गदः ॥ १९ ॥

रोगके ऊपर जो रोग उपजे वह उपद्रवसहित रोग कहाता है उपद्रवसहित रोगवाले नहीं जीवते हैं और उपद्रवसे रहित रोगवाले जीवते हैं ॥ १७ ॥ अल्परोग भी वैद्योंको चिंतवन करना चाहिये किंतु असाध्य रोग छोड़ना नहीं चाहिये छोटासा भी वैरी विष और अग्निके समान है बलको पाकर फिर वह तत्काल ठंढा नहीं होता ॥ १८ ॥ जैसे बली शत्रु स्थान और बलको प्राप्तहोकर पराक्रमको करता है तैसे ही धातुओंके अंतरमें प्राप्तहुआ रोग पराक्रमको करता है१९

रोग निर्मूल करनेकी आज्ञा।

बहुविधपरिकार्येणापि नीतं शमं यत्कृशमपि हि न धार्य्यं रोगमूलं विधिज्ञ॥कथमपि बहुपथ्यैर्व्यावृतो वा बलिष्ठो न शमयति हि रोगं बाल्यमात्रेण सम्यक् ॥ २० ॥

हे विधिज्ञ ! बहुतसे भांतिके कर्मोंसे शान्त किया अलग भी रोग नहीं रहने देना चाहिये ! क्योंकि,बहुतसे अपथ्योंकरके व्यावृत हुआ अत्यंत बलवान् रोग शांतिको प्राप्त नहीं होता॥ २०॥

सूक्ष्म भी रोग शत्रुसमान है।

यथा स्वल्पं विषं तीव्रं यथा स्वल्पो भुजङ्गमः ॥
यथा स्वल्पतरश्चाग्निस्तथा सूक्ष्मोऽपि रुग्रिपुः ॥ २१ ॥

जैसे स्वल्प विष तीक्ष्ण होता है,जैसे छोटासा सर्प बुरा होता हैं,जैसे अत्यंत स्वल्प भी अग्नि बढ़ती है तैसे सूक्ष्म रोग भी वैरी होता है ॥ २१ ॥

रोगके फैलनके प्रथम ही प्रतीकार करना।

यावत्स्थानं समाश्रित्य विकारं कुरुते गदः ॥
तावत्तस्य प्रतीकारः स्थानत्यागाद्बलीयसः॥ २२ ॥

जबतक स्थानमें आश्रित होके रोग विकारको करता है,जबतक वह उस स्थानको नहीं त्यागे तबतक उस बलवाले रोगकी क्रिया करता रहे ॥ २२ ॥

व्याधियोंका प्रकार।

कर्मजा व्याधयः केचिद्दोषजाः सन्ति चापरे ॥
सहजाः कथिताश्चान्ये व्याधयस्त्रिविधा मताः॥ २३ ॥

कितनेक रोग कर्मसे उपजते हैं और कितनेक रोग दोषसे उपजते हैं और कितनेक रोग शरीरके साथ उपजते हैं ऐसे तीन प्रकारके रोग कहे हैं ॥ २३ ॥

तीन प्रकारके व्याधियोंका लक्षण ।

बहुभिरुपचारैस्तु ये न यान्ति शमं ततः ॥ ते कर्मजाः समुद्दिष्टा व्याधयो दारुणाः पुनः ॥२४॥ दोषजा वातपित्ताद्याः सहजाः क्षुत्तृषादयः ॥ २५ ॥

जो बहुतसी चिकित्साके करनेसे शांतिको प्राप्त नहीं होते उनको कर्मसे उपजे रोग जानना, ये दारुण हैं ॥ २४ ॥ वातपित्तआदिसे उपजे रोग दोषज कहाते हैं, भूख और तृषाआदिके साथ उपजनेवाले सहज कहलाते हैं ॥ २५ ॥

ज्वरकी व्यापकता ।

तस्माद्वक्ष्यामि चादौ ज्वरमतुलगदं वाजिनां कुञ्जराणां मानुष्याणां पशूनां मृगमहिषखरोष्ट्रादिवानस्पतीनाम् ॥ वल्लीनामोषधीनां क्षितिधरफणिनां पत्रिणां मूषिकाणामेषः प्राणापहारी ज्वर इति गदितो दुर्निवारो हि लोके ॥ २६ ॥

इस लिये आदिमें घोड़ा, हस्ती, मनुष्य, गाय आदि, पशु मृग, भैंसा, ऊंट आदि, जीव, वनस्पति, वेल, ओषधी, सर्प, पक्षी, मूषा इनके ज्वरको मैं कहता हूँ, यह ज्वर प्राणोंको हरता है और संसारमें दुःखसे दूर होता है ॥ २६ ॥

अथ जातिपरत्वमें ज्वरकी असाध्यता ।

असाध्योऽयं ज्वरो व्याधिर्गोमहिष्यश्वकुञ्जरे ॥
किञ्चित्कृच्छ्रतमो नृणामन्येषां जीवघातकः ॥ २७ ॥

गाय, भैंसा, हस्ती, इनमें ज्वर असाध्य कहा है और मनुष्योंका ज्वर कुछ कष्टसाध्य कहा है और शेष रहे जीवोंको ज्वर मारता है ॥ २७ ॥

अथ ज्वरकी बलिष्ठता ।

यथा मृगाणां मृगयुर्बलिष्ठस्तथा गदानां प्रबलो ज्वरोऽयम् ॥
नान्योऽपिशक्तो मनुजं विहाय सोढुं भुवि प्राणभृतं सुराद्यम् ॥२८॥

जैसे मृगोंमें सिंह बलवान् है वैसे ही रोगोंमें यह ज्वर प्रबल है । कोई भी अन्यजीव संसारमें प्राणको धारण करनेवाले पृथिवीमें देव मनुष्यके विना ज्वरको सह नहीं सकता है ॥ २८ ॥

अथ मनुष्य ज्वर सहसकता है इसका कारण ।

कर्मणालभते यस्माद्देवत्वं मानुषो दिवि॥ततश्चैवच्युतःस्वर्गा-न्मानुष्यमपि वर्त्तते ॥२९॥ तस्मात्स देवभावात्तु सहते मानुषो ज्वरम् ॥ शेषाः सर्वे विपद्यन्ते पशुवर्गा ज्वरार्दिताः ॥ ३० ॥

कर्मसे मनुष्य स्वर्गमें जाके देवताके शरीरको प्राप्त होता है. पीछे स्वर्गसे भ्रष्ट हुआ मनुष्य शरीरको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ इस कारणसे देवभावकरके मनुष्य ज्वरको सहते हैं शेष रहे पशुओंके समूह ज्वरसे मर जाते हैं ३० ॥

अथ सर्वरोगाम ज्वरकी श्रेष्ठता ।

रोगाणां रोगराजोऽयं यथा मृगपतिर्मृगे ॥ दाहात्मसु यथा वह्नि-स्तथा रोगे ज्वरोऽधिकः॥रुद्रक्रोधाग्निसम्भूतःसर्वभूतप्रतापनः३१

जैसे वनमें पशुओंका राजा सिंह है तसे शरीरमें रोगोंका राजा ज्वर है,जैसे दाह करनेवालोंमें अग्नि अधिक है तैसे ही ज्वर भी अधिक है, महादेवके क्रोधरूपी अग्निसे उपजनेवाला और सब जीवोंको तपानेवाला ऐसा ज्वर है ॥ ३१ ॥

अथ पृथक् प्राणिभेदसे ज्वरके नामांतर ।

पातकः स तु नागानामभितापस्तु वाजिनाम् ॥ गवामीश्वरसं-ज्ञस्तु मानवानां ज्वरो मतः ॥ ३२ ॥ दारिद्रो महिषीणां तु मृगरोगो मृगेषु च ॥ अजावीनां प्रलापाख्यः करभेष्वलसो भवेत् ॥३३॥ शुनोऽलर्कः समाख्यातो मत्स्येष्विन्द्रमतो मतः पक्षिणामभिघातस्तु व्यालेष्वेक्षितसंज्ञितः ॥ ३४ ॥ जलस्य नीलिका प्रायो भूमिपूषरनामतः ॥ वृक्षस्य कोटराक्षस्तु ज्वरः सर्वत्र दृश्यते ॥ ३५ ॥

हस्तियोंके पातकनामसे ज्वर होता है, घोड़ोंके अभितापनामसे ज्वर होता है, गायोंके ईश्वरनाम वाला ज्वर होता है, मनुष्योंके ज्वरनामसे ही प्रसिद्ध है॥३२॥भैंसोंके दारिद्र नामसे ज्वर होता है मृगोंमें ज्वर मृगरोगनामसे प्रसिद्ध है, बकरी और भेड़ोंके ज्वर प्रलापाख्यनामसे होता है, ऊंटोंमें ज्वर अलसनामसे होता है ॥३३॥ कुत्ताके ज्वर अलर्कनामसे और मछलियोंमें ज्वर इंद्रमतनामसे उपजता है, पक्षियोंके ज्वर अभिघातनामसे, सर्पोंमें केंचलीनामसे ज्वर उपजता है ॥३४॥और

जलमें ज्वर सिवालनामसे उपजता है पृथिवीमें ऊपरनामसे ज्वर उपजता है, वृक्षमें कोटराक्ष-नामसे ज्वर उपजता है ऐसे सब जगह ज्वर दीखता है ॥ ३५ ॥

अथ ज्वरका स्वरूप।

त्रिपाद्भस्मप्रहरणस्त्रिशिराः सुमहोदरः॥वैयाघ्रचर्मवसनः कपि-लोज्ज्वलविग्रहः ॥ ३६ ॥ पिङ्गेक्षणो ह्रस्वजङ्घो विमत्स्यो बल-वानयम्॥पुरुषो लोकनाशाय चासौ ज्वर इति स्मृतः ॥३७॥ दग्धेन्धनो यथावह्निर्धातून्हत्वा यथा विषम्॥कृतकृत्यो व्रजे-च्छांतिं देहं हत्वा तथा ज्वरः ॥ ३८ ॥

तीन पैरोंवाला,भस्मको धारण करनेवाला,तीन शिरोंवाला, सुंदर बड़ा पेटवाला,सिंहके चामके वस्त्रोंको पहननेवाला, पीलेवर्णवाला और प्रकाशित शरीरवाला॥ ३६ ॥ पीले नेत्रोंवाला, ठींगनी जांघोंवाला, विशेष्कर पुरुषोंमें रहनेवाला, बलवान् और पुरुष संज्ञक लोकका नाश करनेवाला, यह ज्वर कहाता है ॥ ३७ ॥ जैसे इंधनको दग्ध करके अग्नि और धातुओंको दग्ध करके विष कृतकृत्य होके शांत हो जाता है तैसे देहका नाश कर ज्वर शांत हो जाता है ॥ ३८ ॥

अथ ज्वरकी उत्पत्ति।

तस्मात्तस्य समुत्पत्तिं वक्ष्यामि शृणु पुत्रक॥ चतुर्विधो महा-घोरो जातो येन तु चाष्टधा॥ दक्षाध्वरप्रशमनः कुपितो हि महेश्वरः॥३९॥ श्वासं मुमोच दयिताविधुरश्च तीव्रं तेन ज्वरोऽष्ट-विधसम्भवतोऽष्टधा स्यात् ॥ ४० ॥

इस कारणसे हे पुत्र ! उसकी उत्पत्तिको कहता हूं सुनो। चारप्रकारका महाघोररूपी ज्वर है फिर उससे आठ प्रकारका हुआ है सो दक्षप्रजापतिसे कुपित हुए महेश्वर ॥ ३९ ॥ सतीजीके वास्ते आठ वार श्वासको छोडते भये उससे ज्वर आठ प्रकारका हुआ है ॥ ४० ॥

अथ ज्वरकी निदानसहित संप्राप्ति।

वातादिपित्तकफशोणितसन्निधानात्स्वेच्छान्नपाननिरतादृतुवैप-रीत्यात्॥दोषा मलाशयगता जठराग्निबाह्याःसंप्रेरयन्ति रुधिरा-श्रितवह्निपातम् ॥तेषां ततो हि दधते ज्वरनाम सिद्धम्॥४१॥

वात, पित्त, कफ, रक्त, इनके सन्निधानसे और अपनी इच्छापूर्वक अन्न और पानके सेवनसे और ऋतुके विपरीतपनेसे मलाशयमें प्राप्त हुए पेटके अग्निको बाहर हुए दोष रक्तसे आश्रित हुए अग्निके पातको प्रेरते हैं उसको ज्वर कहते हैं ॥ ४१ ॥

---

१ "मत्स्यो मीनेऽथ पुंभूम्नि देशे" इतिमेदिनी। २ लोकानां जनानां नाशमूअयतेऽसौ लोकनाशायः।

अथ ज्वरके हेतु ।

व्यायामक्रोधक्षुत्त्यादिजननाच्छीतसम्भवात् ॥ ४२ ॥ विरुद्धान्नविशेषेण पाननिर्झरवारिणा ॥ कूपोदकेन सन्तुष्टस्तिग्मतीव्रांशुरश्मिभिः ॥ ४३ ॥ गन्धवातेन दोषाणामभिघाताभिशापतः ॥ ज्वरोनाम महाघोरो जायते मनुजे भृशम् ॥ ४४ ॥

और कसरत, भोजनके ऊपर भोजन, क्रोध, इनके उपजनेसे और शीतके सम्भवसे भी ज्वर उपजता है ॥ ४२ ॥ विरुद्ध अन्नआदिके खानेसे, झरने अथवा कुवाके पानीसे और तेज सूर्यकी किरणोंकी गरमाईसे ॥ ४३ ॥ बुरे गन्धसे, वात आदि दोषोंसे, चोटके लगनेसे और ब्राह्मणके शापसे मनुष्यके देहमें महाघोररूपी ज्वरनाम उत्पन्न होता है ॥ ४४ ॥

अथ प्रकटहुए ज्वरका लक्षण ।

श्रमो जडत्वं नयनप्लवः स्याद्रोमोद्गमो घुर्घुरकश्च जृम्भा ॥ वैवर्णता द्वेषसशोषतास्ये ज्वरस्य च व्यक्तकलक्षणानि ॥ ४५ ॥

शरीरमें थकावट और जड़पना, नेत्रोंसे पानी गिरे, रोमावली खडी होवे, कंठमें घुर्घुरापना और जँभाई आवे, वर्ण बदलजावे, अन्नसे वैर होवे, मुखमें शोष उपजे ये प्रकट हुए ज्वरके लक्षण हैं ॥ ४५ ॥

अथ ज्वरकी विशेषता ।

समीरणेच वै जृम्भाकफादैन्यं निषीदति ॥ पित्तान्नयनसन्तापः सर्वं वै सान्निपातिके ॥ तस्माद्वक्ष्ये प्रतीकारं येन सम्पद्यते सुखम् ॥ ४६ ॥

वातकी अधिकतासे जंभाई आवे, कफसे दीनपना उपजे और शिथिल हो जावे, पित्तसे नेत्रोंमें संताप हो, सन्निपातमें सब लक्षण मिले इस वास्ते जिस करिके सुख उत्पन्न हो, ऐसा उपाय करना सो कहूंगा ॥ ४६ ॥

अथ वातज्वरमें पाचन ।

वचा यवानी धनिका सविश्वा पिबेत्कषायं निशि सोष्णमेवम् ॥ स वातिके वातरुजे ज्वराणां सम्पाचके स्यान्मनुजे सुखाय ॥ ४७ ॥

वच, अजवायन, धनियाँ, सोंठ इनके गरम क्वाथको रात्रिमें पीवे यह पाचन वातज्वरमें और वातकी पीडामें मनुष्यको सुख देता है ॥ ४७ ॥

अथ पित्तज्वरका पाचन ।

निशा सनिम्बा मृतवल्लिका च धान्यं च विश्वा सगुडः कषायः ॥

निशासु क्षीरेण सकोलमिश्रं पानं सपित्तज्वरपाचनाय ॥४८॥

हलदी, नीमकी छाल, गिलोय, धनियां, सोंठ इनका क्वाथ बनाकर उसमें गुड मिलाकर पीवे अथवा दूधमें गजपीपलके चूर्णको मिलाकर रातको पीवे यह पाचन पित्तज्वरमें मनुष्यको सुख देता है ॥ ४८ ॥

अथ कफज्वरमें पाचन ।

वचा यवानी त्रिफला सविश्वा क्वाथो निशायां कफजे ज्वरे वा॥
सपाचनं स्यान्मनुजस्य दोषे शूले प्रतिश्यायकपीनसेषु॥४९॥

वच, अजवायन, हरडे, बहेड़ा, आंवला, सोंठ इनका क्वाथ कफसे उपजे ज्वरमें और शूल, जुकाम, पीनस, इनमें रातको देना ॥ ४९ ॥

अथ सन्निपातज्वरमें पाचन ।

शटीवचानागरकाफलानां वत्सादनीधन्वयवासकानाम् ॥
क्वाथो हितः सर्वभवे ज्वरे च सम्पाचनं स्यान्मनुजत्रिदोषे५०॥

कचूर, वच, सोंठ, हरडें, बहेडा, आंवला, गिलोय, जवासा इनका क्वाथ सब प्रकारके ज्वरमें और मनुष्योंके त्रिदोषज ज्वरमें पाचन है ॥ ५० ॥

अथ ज्वरमें पथ्य ।

रात्रौ सुखोष्णतोयेन प्रचुरेण च धीमताम् ॥
अङ्गसंमर्दनं पथ्यं निद्राव्यायामवर्जितम् ॥ ५१ ॥

रात्रिमें सुखपूर्वक गरम पानी करके अतिशयसे मनुष्योंके अगोंका मर्दन पथ्य है परंतु नींद और कसरतको वर्ज्जना ॥ ५१ ॥

अथ वातज्वरका निदान और चिकित्सा ।

वेपथुर्विषमवेगशोषणं कण्ठतालुवदने विरस्यता॥रूक्षता वपुषि बन्धकुक्षयोर्जृम्भणं शिरसि रुग्विनिद्रता ॥ ५२ ॥ कृष्णता कररुहां प्रलापको[1] गात्रभङ्गबलवान् बिभत्स्यति ॥शीतवत्स्वपिति जाग्रतो नरो लक्षणैर्भवति वातकृज्ज्वरः ॥ ५३ ॥

शरीर कांपे, ज्वरका बिषमवेग हो, कंठ, ताल़ु, मुख इनमें शोष उपजे, मुखमें विरसपना हो, शरीरमें रूखापन हो, कुक्षिबन्ध हो जावें, जँभाई आवे और शिरमें शूल उपजे और नींद आवे नहीं ॥ ५२ ॥ नख काले हो जावें, बकवाद करे, शरीरका भंगहोवे और बल-

1 "प्रलापोऽनर्थकं वचः" इत्यमरः ।

ग्रान रहे और भयकी इच्छा करे और भयभीतकी तरह सोवे परन्तु जागता ही रहे ये लक्षण वातज्वरके हैं ॥ ५३ ॥

अथ वातज्वरका पाचन।

नागरं सुरतरुश्च धान्यकं कुण्डली बृहतिकायुग निशम् ॥
सप्तमे निशि प्रशस्यते ज्वरे चाष्टमांशगतको हि अष्टवान्॥५४॥

सोंठ, देवदारु, धनियां, गिलोय, दोनों कटेली, हलदी, दारुहलदी इन आठ औषधोंकी अष्टमांशका पाचन संज्ञक क्वाथ बना ज्वरमें सातवीं रात्रीको देना॥ ५४॥ यह शुंठयादि पाचन नव प्रकारके ज्वरोंमें देना चाहिये ॥

अथ अन्नहीन औषधका गुण।

वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं हन्यात्तदामयमसंशयमाशु चैव ॥ तद्बालवृद्धयुवतीमृदुभिश्च पीतंग्लानिं परां नयति चाशु बलक्षयं च ॥ ५५ ॥

अन्नसे हीन हुआ औषध अधिक वीर्यवाला हो जाता है और रोगको निश्चय शीघ्र नाशता है ॥ परन्तु बालक, वृद्ध, युवतीस्त्री, कोमल, इनकरके पिया हुआ वह अन्नरहित औषध परम-ग्लानिको और बलक्षयको करता है ॥ ५५ ॥

अथ पाचन हुए औषधका लक्षण।

इन्द्रियाणां लघुत्वञ्च नेत्रास्यस्य प्रसादता ॥
सोद्गारमुष्णता कोष्ठे जीर्णभेषजलक्षणम् ॥ ५६ ॥

इंद्रियोंका हलकापन हो नेत्र और मुखकी प्रसन्नता रहे, डकार आवे, कोष्ठमें गर्माई रहे ये पके हुए औषधके लक्षण हैं ॥ ५६ ॥

अथ अपक्व औषधका गुण।

क्लमहृल्लाससदनं शिरोरुग्भ्रंशमेव च
उत्क्लेदो जायते यस्य विद्यादुत्क्रामभौषधम् ॥ ५७ ॥

ग्लानि और थुकथुकी हो, शरीर शिथिल हो जावे, शिरमें शूल और फूटन उपजे और वमनसी आनेकी तरह होवे ये नहीं जीर्ण हुए औषधके लक्षण हैं ॥ ५७ ॥

अथ पाचन होनेमें कुछ शेषरहे औषधका लक्षण।

दाहाङ्गसदनं मूर्छा शिरोरुक्क्लमदीनता ॥ भ्रमोऽरतिविशेषेण सविशेषौषधाकृतिः ॥ ५८ ॥ तस्मादौषधशेषे तु न दोषशमनं क्वचित् ॥ कुप्यन्त्यनेकधा दोषा न देयं पाचनं विना ॥५९॥

१ सर्वज्वरेषु नागरादिपाचनं देयम्।

दाह हो, अंग शिथिल हो जावे, मूर्छा, शिरमें शूल, ग्लानि, दीनपना ये उपजे, भ्रम हो और विशेष करके अरति हो ये लक्षण कुछ कमपकी औषधके हैं ॥ ९८ ॥ इसकारणसे औषधिके शेषमें कहीं भी दोषका शमन नहीं है क्योंकि पाचनके विना दोष अनेक प्रकारसे कुपित होते हैं ॥ ९९ ॥

अथ भोजनके उपरांत देनेके औषधके गुण ।

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हन्यादन्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति ॥ प्राग्भुक्तसेवितमहौषधमेतदेव दद्याच्च वृद्धशिशुभीरुवराङ्गनाभ्यः ॥ ६० ॥

अन्नसे आवृत हुआ औषध शीघ्र पकजाता है और बलको नाशता नहीं है और वारंवार मुखसे नहीं निकलता है इसलिये प्रभातके भोजनके साथ सेवित किया औषध-वृद्ध, बालक, डरपोंक और स्त्री इनको सुख देता है ॥ ६० ॥

अथ वातज्वरमें पंचमूलका क्वाथ ।

बिल्वाग्निमन्थशुकनासकपाटलीनां कुम्भारिकाप्रयुतकं क्वथितं कषायम् ॥ दन्तान्विशोधयति वारयते समीरं नाशं करोति मरुतज्वरमाशु पुंसाम् ॥ ६१ ॥ मुस्ताकिरातसुरवह्लिकणासवित्र्यो गोकण्टको बृहतियुग्मसुदीच्यतिक्ताः ॥ स्याच्छालिपर्णिकलशीक्वथितः समन्तात्क्वाथः समीरणभवं ज्वरमाशु हन्ति ॥ ६२ ॥ गुडूची शतपुष्पा च प्लक्षी रास्ना पुनर्नवा ॥ त्रायमाणकक्वाथश्च गुडैर्वातज्वरापहः ॥ ६३ ॥

बेलगिरी, अरनी, सोनापाठा, पाडल, कोहला, कुंमेरन इनका क्वाथ बना पीवे यह दन्तोंको शोधता है और वातको दूर करता है मनुष्योंके वातज्वरको शीघ्र नाशता है ॥ ६१ ॥ चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, पीपल, लालआक, गोखरू, दोनोंकटेली, नेत्रवाला, कुटकी, पिठवन, चौलाई, इन्होंका क्वाथ वातज्वरको अच्छीतरह नाशता है ॥ ६२ ॥ गिलोय, सौंफ, पिठवन, रायसन, सांठी, त्रायमाण इनके क्वाथमें गुड़मिलाकर पीवे यह वातज्वरको हरता है ॥ ६३ ॥

अथ पित्तज्वरके निदान और चिकित्सा ।

मूर्च्छादाहो भ्रममदतृषावेगतीक्ष्णोऽतिसारस्तन्द्रालस्यं प्रलपनवमीपाकतापश्च वक्त्रे ॥ स्वेदः श्वासो भवति कटुकं विह्वलत्वं क्षुधा वा एतैर्लिङ्गैर्भवति मनुजे पैत्तिको वै ज्वरस्तु ॥ ६४ ॥

मूर्च्छा और दाह उपजे, भ्रम,मद, तृषा ये भी होवें और ज्वरका तीक्ष्ण वेग हो अतीसार हो तंद्रा और आलस्य हो और बकवाद करे और छर्दि आवे और मुखमें पाक और दाह हो,पसीना और श्वास उपजे मुख कडुआ हो जावे विह्लपना और भूख भी होवे, ये सब लक्षण होवें तब पित्तज्वर जानना ॥ ६४ ॥

अथ रोध्रादि क्काथ।

रोध्रोत्पलामृतलताकमलं सिताढ्यं तत्सारिवासहितमेव हि पाचनेषु॥निष्क्वाथ्य क्वाथसति चाशु निहन्ति पित्तं पित्तज्वरप्रशमनं प्रकरोति पुंसाम् ॥ ६५ ॥

लोध, नीलाकमल, गिलोय, श्वेतकमल, सपेद भटकटैया, सारिवा इन्होंका पाचन क्काथ बना तिसमें मिश्री डाल पीवे यह पित्तको शीघ्र शांत करता है और मनुष्योंके पित्तज्वरको भी नाशता है ॥ ६५ ॥

अथ शक्राह्वादि क्काथ।

क्वथितं तण्डुलपयसा शक्राह्वं कटुरोहिणीसहितम् ॥
क्काथं यष्टीमधुना विनाशनं पित्तज्वराणान्तु ॥ ६६ ॥

इन्द्रयव, कुटकी,मुलहटी इनका क्वाथ चावलोंके पानीमें बनाकर मधुके साथ पीवे यह पित्तज्वरको नाशता है ॥ ६६ ॥

दुरालभादि क्काथ।

दुरालभावासकपर्पटानां प्रियङ्गुनिम्बाकटुरोहिणीनाम्॥किराततिक्तं क्वथितं कषायं सशर्कराढ्यं क्वथितञ्च पाचनम् ॥ ६७ ॥
सदाहपित्तज्वरमाशु हन्ति तृष्णाभ्रमं शोषविकारयुक्तम् ॥६८॥

जवासा, वासा, पित्तपापडा, प्रियंगु[1], नींबकी छाल, कटुकी, चिरायता, इनोंका क्काथ बना खांडसे संयुक्तकर पीवे पाचन है ॥ ६७ ॥ यह दाह, पित्तज्वर, तृषा, भ्रम, शोषरोग, इनको नाशता है ॥ ६८ ॥

अथ पित्तपापडाका क्काथ।

एकोऽपि वै पर्पटको वरिष्ठः पित्तज्वराणां शमनाय योग्यः ॥
तस्मात्पुनर्नागरवालकाढ्यः सिंहो यथा कङ्कटकप्रवृत्तः॥६९॥

१-प्रियंगु गोंदींके समान फल है जिसे मालवेमें गेहुला कहते हैं इसमें सुगंधी भी होती है, यह गंध प्रियंगु है और प्रियंगु गोंदी फल ही समझिये।

अकेला पित्तपापडाका क्वाथ भी पित्तज्वरको शांत करनेके लिये योग्य और अति उत्तम है फिर सोंठ और नेत्रवालासे युक्तकिये पित्तपापडाका काथ पित्तज्वरको ऐसे नाशता है जैसे हींसके विडेमें प्राप्तहुआ सिंह वनके पशुको नाशता है ॥ ६९ ॥

अथ शुंठ्यादि क्वाथ ।

नागरोशीरमुस्ता च चन्दनं कटुरोहिणी ॥
धान्यकानां तु क्वाथश्च पित्तज्वरविनाशनः ॥ ७० ॥

सोंठ, खस, नागरमोथा, रक्तचंदन, कुटकी, धनियां इनका क्वाथ पित्तज्वरको नाशता है ॥ ७० ॥

अथ गुडूच्यादि क्वाथ ।

अमृतं पर्पटो धात्री क्वाथः पित्तज्वरं हरेत् ॥ ७१ ॥

गिलोय, पित्तपापडा, आंवला, इनका क्वाथ पित्तज्वरको नाशता है ॥ ७१ ॥

अथ द्राक्षादि क्वाथ ।

द्राक्षापर्पटिकातिक्तापथ्यारग्वधमुस्तकैः ॥
क्वाथो भ्रमस्तृषादाहयुक्तपित्तज्वरापहः ॥ ७२ ॥

दाख, पित्तपापडा, कुटकी, हरड़, अमलतास, नागरमोथा, इनका क्वाथ तृषा, भ्रम, दाह इनसे युक्तहुए पित्तज्वरको नाशता है ॥ ७२ ॥

अथ दाहतृषामूर्च्छाके ऊपर विदार्यादिकोंका उपचार ।

विदारिकारोध्रकपित्थकानां स्यान्मातुल ‌य च दाडिमानाम् ॥
यथानुलाभेन च तालुलेपो दाहं तृषामूर्च्छनमाशु हन्ति ॥ ७३ ॥

विदारीकद, लोध, कैथ, विजौरा, अनार, इनमेंसे जितने मिलें उनका लेप बनाकर तालुके ऊपर लगावे यह दाह, तृषा, मूर्च्छा, इनको नाशता है ॥ ७३ ॥

अथ दाहज्वरका उपाय ।

उत्तानस्य प्रसुप्तस्य कांस्ये वा ताम्रभाजने ॥
नाभौ निधाय धारां तु शीतां दाहं निवारयेत् ॥ ७४ ॥

रोगीको सीधा शयन कराके तिसकी नाभीपर कांसीके अथवा तांबाके पात्रमें पानीकी धारा देनी यह दाहको नाशती है ॥ ७४ ॥

रम्यारामाकुचभरनतालिङ्गनं चेष्टसङ्गाद्राक्षापानं निगदितमथो शीतलं सेवनं स्यात ॥ शभ्राम्भोजं मलयजजलासिक्तसंशीत-

वासो मुक्ताहारो विशदतुहिनं कौमुदी वा सुखाय ॥७५॥ एत
ध्नन्ति हुतवहनिभं मानुषाणां तु पित्तं दाहं शोषं क्लममपि तथा
तृड्भ्रमं मूर्च्छनाञ्च॥एतर्योगैर्भवति नितरां पित्तदाहस्य शान्ति-
र्योग्या चैवं भवति सततं तत्क्रिया श्रीमताञ्च ॥ ७६ ॥

सुंदर और रमणीक चूचियोंके भारसे नम्रहुई स्त्रीका आलिंगन करे परंतु मैथुनको नहीं करे और दाखके रस सेवन करे, शीतलपदार्थको सेवता रहे सफेद कमल और मलयागिरि चंदनके पानीसे भिगोयाहुआ शीतलवस्त्रको धारे और मोतियोंकी मालाको पहने और सुंदर शीतल हवा और चांदनी ये सब पित्तज्वरको सुख देते हैं ॥ ७५ ॥ यह सब मनुष्योंके पित्त, दाह, शोष, ग्लानि, तृषा, भ्रम और मूर्च्छाको शांत करते हैं और इन योगोंसे पित्तका दाह दूर होजाता है, धनवान् मनुष्योंके वास्ते यह क्रिया निरंतर योग्य है ॥ ७६ ॥

अथ ज्वरशोषका उपाय ।

यदि जिह्वागलतालुशोषश्चेन्मनुजस्य च ॥ केसरं मातुलुङ्गस्य
मधुसैन्धवसंयुतम् ॥ पेष्यमाणं तालुलेपे सद्यः पित्तज्व-
रापहम् ॥ ७७ ॥

और जो मनुष्यके जीभ, गल, तालु इनमें शोष उपजे तो बिजौराका केसर ले उसमें शहद और सेंधानमक मिला पीसकर तालुपे लेप करे यह शीघ्र पित्तज्वरको नाशता है ॥७७॥

अथ कफज्वरका निदान और चिकित्सा ।

स्तैमित्यं मधुरास्यता च जडता तन्द्रा भृशं स्यात्तथा गात्राणां
गुरुतारुचिर्विरमता रोमोद्गमः शीतता ॥ प्रस्वेदाः श्रुतिरोधनञ्च
भवते नेत्रे च पाण्डुच्छवी विष्टब्धं मलवृत्तिकासवमनं श्लेष्म-
ज्वरे ज्ञायताम् ॥ ७८ ॥

शरीरका गीलापन हो, मुख मीठा रहे, जडपना,अत्यंत तंद्रा हो, शरीरका भारीपन,अरुचि, ग्लानि, रोमोंका खडा होना, शीतलपना ये उपजे और पसीना आवे और कानोंका छिद्र रुक जावे और आधा पीला और आधा सफेद ऐसे वर्णकी कांतिसे संयुक्त नेत्र होजावें मलकी प्रवृत्ति बँधी हो, खांसी और छर्दि आवे ये सब लक्षण हों तब कफज्वर जानना ॥ ७८ ॥

अथ कफज्वरका पाचन पिप्पल्यादिकल्क ।

पिप्पलादिककल्कं[1] तु कफजे पाचनं हितम् ॥ ७९ ॥

१ "पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । वचासातिविषाजाजीपाठावत्सकरेणुकैः १ किराततिक्तकंमूर्वा सर्षपा मरिचानि च । कटुकं पुष्करं भार्ङ्गी विडङ्गं कर्कटाह्वयम् २ अर्कमूलं बृहत्यौसिंही श्रेयसी सुदुरालभा।दीपकं चाजमोदा च शुकनासादिहिङ्गुभिः ३ एतानि समभागानि गणोऽष्टाविंशको मतः।कषायमुपभुञ्जीत वातश्लेष्मज्वरापहम् ४ हन्ति वातं तथा शीतं स्वेदजं प्रबलं कफम्।प्रलापं चातिनिद्रां च रोमहर्षारुचीतथा ५ महावातेऽपतन्त्रे च सर्वगात्रेच शून्यताम् । अयं सर्वज्वरान् हन्ति सन्निपातांस्त्रयोदशति ॥ ६ ॥" इति शार्ङ्गधरे।

पिप्पलादि गुणके औषधोंका कल्क कफके ज्वरमें सुंदर पाचन है ॥ ७९ ॥

अथ व्याघ्र्यादिकल्क।

तद्वद्व्याघ्री च सिंही च रोध्रं कुष्ठपटोलकम् ॥
ज्वरे कफात्मजे चैतत्पाचनं स्यात्तदुत्तमम् ॥ ८० ॥

छोटी कटेली, वड़ी भटकटैया, लोध, कूट, परवल, इनका पाचन कफज्वरमें हित है॥८०॥

अथ वासादिक्काथ।

वासा गुडूची त्रिफला पटोली शटी च तिक्ता मधुनीकषायम्॥
श्लेष्मप्रभूतेषु रुजेषु सम्यग् ज्वरं निहन्यात्कफजञ्च शीघ्रम्॥८१॥

वांसा, गिलोय, हरड़, बहेड़ा, आंवला, परवल, कचूर, कुटकी, इनके क्काथमें शहद मिलाकर श्लेष्मासे उत्पन्न होनेवाले रोगोंमें पीवे यह कफके ज्वरको शीघ्र नाशता है ॥ ८१ ॥

अथ आमलक्यादिक्काथ।

आमलक्यभया कृष्णा षड्ग्रन्था त्रित्रिकन्तथा ॥
मलभेदी कफान्तको ज्वरनाशनदीपनः ॥ ८२ ॥

आमला, हरडै, पीपल, वच, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरडे, बहेडा, आंवला और दालचिनी, इलायची, तेजपात, इनका क्काथ मलको पतला करता है कफको हरता है ज्वरको नाशता है और अग्निको जगाता है ॥ ८२ ॥

अथ पिप्पल्यादिक्काथ।

पिप्पली शृङ्गवेरश्च षड्ग्रन्था वत्सकं फलम् ॥
क्काथो मधुप्रगाढः स्याच्छ्लेष्मज्वरविनाशनः ॥ ८३ ॥

पीपल, अदरख, वच, इंद्रयव, इन्होंका क्काथ बना तिसमें शहद मिला पीनेसे कफज्वरका नाश होता है ॥ ८३ ॥

अथ पिप्पलीका अवलेह।

क्षौद्रेण पिप्पलीचूर्णं लिह्याच्छ्लेष्मज्वरापहम् ॥
प्लीहानाहविषं हन्ति कासश्वासाममर्दनम् ॥ ८४ ॥

पीपलके चूर्णको शहदमें मिला चाटनेसे कफज्वर, तिल्लीरोग, अफारा, विष, खांसी, श्वासरोग, आम, इनका नाश होता है ॥ ८४ ॥

अथ वातपित्तज्वरका निदान और चिकित्सा।

तृष्णा मूर्च्छा वमन कटुता चानने रूक्षता स्यादन्तर्दाहो वपुषि

नयने रक्तता कण्ठशोषः॥निद्रानाशः श्वसनशिरसो रुग्भ्रमे-
लोऽङ्गभङ्गो रोमोद्धर्षस्तमकमितिचेद्वातपित्तज्वरःस्यात् ॥८५॥

तृषा, मूर्छा, छर्दि, ये उपजें और मुखमें कडुआपन हो और शरीर रूखा होजावे, शरीर-के भीतर दाह हो और लालनेत्र होजावें और कंठमें शोष होवे और नींदका नाश हो,श्वास और शिरमें शूल और फूटनहो और अँगडाई टूटे रोमावली खडी हो, और अँधेरी आवे ये सब लक्षण हों तब वातपित्तज्वर जानना ॥ ८५ ॥

अथ वातपित्तज्वरका पाचन त्रिफलादि क्काथ।

संसृष्टरूपोऽविहितश्च सम्यग्विपाचनं पित्तमरुज्ज्वरे च ॥
फलत्रिकं शाल्मलिसंप्रयुक्तं रास्नाकिरातस्य पिबेत्कषायम्॥८६॥

मिलेहुए दोनोंसे युक्त ज्वरमें योग्य पाचनको वातपित्तज्वरमें देवे और हरडे, बहेडा, आंवला, शमलकी छाल, रायसन, चिरायता, इनके क्काथको पीवे ॥ ८६ ॥

अथ शालिपर्ण्यादिकल्क।

द्विपञ्चमूली सह नागरेण गुडूचिभूनिम्बघनैः समेतः ॥
कल्कः प्रशस्तः सगुडो मरुत्सु स पित्तवातज्वरनाशहेतुः॥८७॥

दशमूल, सोंठ, गिलोय, चिरायता, नागरमोथा इनके कल्कमें गुड मिला खावे, यह वात-पित्तज्वरको नाशता है और वातसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंमें हित है ॥ ८७ ॥

अथ किरातादि क्काथ।

किराततिक्तामलकीशटीनां द्राक्षोषणानागरकामृतानाम् ॥
क्काथः सुशीतो गुडसंयुतः स्यात्स पित्तवातज्वरनाशहेतुः॥८८॥

चिरायता, कुटकी, आंवला, कचूर, मुनक्का, दाख, मिर्च, सोंठ, गिलोय, इनका क्काथ गुड़ मिलाकर ठंढा पीवे यह वातपित्तज्वरको नाशता है ॥ ८८ ॥

अथ पंचभद्रक्काथ।

अमृतमुस्तकवासापर्पटविश्वाजलेन क्वाथः ॥
पानं पित्तमरुत्सु ज्वरं निहन्याच्च भद्रपुञ्जः ॥८९ ॥

गिलोय, नागरमोथा, वांसा, पित्तपापडा, सोंठ इनका पानीमें क्काथ बनावे, यह पंचभद्र-क्काथ वातपित्तज्वरको नाशता है ॥ ८९ ॥

अथ पित्तकफज्वरका निदान और चिकित्सा।

निद्रागौरवकासससन्धिशिररुक्चार्तिस्तथा पर्वणां भेदो मध्य-
मवेगमत्र नयनेवातान्विते श्लेष्मणि॥सन्तापः श्वसनं रुचिःश्रु-

तिपथे कण्ठे च शुष्कावृतिस्तन्द्रामोहमरोचकभ्रममथ श्लेष्मज्वरे पित्तले ॥ ९० ॥

नींद बहुत आवे, शरीर गुरु रहे,संधि और शिरमें शूल और संधि टूटे और वेग मध्य होवे नेत्रोंमें संताप हो, श्वास हो, सुननेमें रुचि हो और कंठमें सूखापन हो और तंद्रा, मोह,अरोचक, भ्रम, ये भी उपजें, ये सब लक्षण होव तब पित्तकफज्वर जानना ॥ ९० ॥

अथ पित्तकफज्वरका पाचन शुंठचादि क्वाथ ।

नागरं भद्रमुस्ता वा गुडूच्यामलकाह्वयम् ॥ पाठामृणालोदीच्याश्च क्वाथः पित्तज्वरे कफे ॥ ९१ ॥ पाचनो दीपनीयः स्याद्रक्तशोषनिवारणः ॥ ९२ ॥

सोंठ, नागरमोथा, गिलोय, आंवला, पाठा, कमलकी डंडी, नेत्रवाला, इनका क्वाथ पित्तकफज्वरमें हित है ॥ ९१ ॥ और पाचन है, अग्निको जगाता है, रक्तको और शोषको दूर करता है ॥ ९२ ॥

अथ द्राक्षादि क्वाथ ।

द्राक्षामृतावासकरिष्टकाश्च भूनिम्बतिक्तेन्द्रयवाः पटोलम् ॥ मुस्तासभार्गा क्वथितः कषायःसश्लेष्मपित्तज्वरनाशनाय ९३॥

मुनक्का, दाख, गिलोय , बांसा, नींबकी छाल, चिरायता, कुटकी, इंद्रयव, परवल, नागरमोथा, भारंगी इनका क्वाथ पित्तकफज्वरको नाशता है ॥ ९३ ॥

गुडूच्यादि क्वाथ ।

गुडूचिका निम्बदलानि शुण्ठी मुस्तञ्च कुस्तुम्बुरुचन्दनानि ॥ क्वाथं विदध्यात्कफपित्तवातज्वरं निहन्याच्च गुडूचिकाद्यः॥९४ एष सर्वज्वरान्हन्ति हृल्लासाद्यानरोचकान् ॥ प्रतिश्यायपिपासाद्यः शोषदाहनिवारणः ॥ ९५ ॥

गिलोय, नींबके कोंपल, सोंठ, नागरमोथा, धनियां, रक्तचदन, यह गुडूच्यादि क्वाथ पित्तकफज्वरको हरता है ॥ ९४ ॥ और यही क्वाथ सब प्रकारके ज्वर, थुकथुकी, अरोचक, जुकाम, पिपासा, शोष, दाहको नाशता है ॥ ९५ ॥

अथ अन्यगुडूच्यादि क्वाथ ।

गुडूचिकानिम्बकचक्रवासकं शटी किरातं मगधाष्टहल्यौ ॥ दार्वीपटोलं क्वथितं कषायं पिबेन्नरः पित्तकफे ज्वरे च ॥९६॥

गिलोय, नींबकी छाल, तगर, बांसा, कचूर, चिरायता, पीपल, अष्टहली, दारुहलदी, परवल, इनके क्वाथको पीवे यह पित्तकफज्वरमें हित है ॥९६ ॥

अथ पटोलादि क्वाथ ।

पटोलं चन्दनं तिक्ता मूर्वा पाठामृतागणः ॥
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहकण्डूनिवारणः ॥ ९७ ॥

परवल, रक्तचंदन, कुटकी, मरोडफली, पाठा, गिलोय आदि गणके औषध, इन्होंका क्वाथ पित्तकफज्वर, छर्दि, दाह, खाज इनको दूर करता है ॥ ९७ ॥

अथ अन्यपटोलादि क्वाथ ।

पटोलवासापिचुमन्दकस्य मूलानि यष्टीमधुकं धना च ॥ कषायमेतत्प्रतिसाधितन्तु ज्वरे कफे पित्तभवे प्रशस्तः ॥ ९८ ॥
सन्दीपनो पित्तकफात्मके च तथैव पित्तासृजसंभवे च॥ ज्वरे मलानां प्रतिभेदनः स्यात्पटोलधान्याश्रितकः प्रशस्तः ॥९९॥

परवल, वांसा, नींबकी छाल, मुलहटी, धनियां इनका क्वाथ पित्तकफज्वरमें श्रेष्ठ है ॥९८॥ यह क्वाथ अग्निको जगाता है,पित्त कफज्वरमें हित है, पित्तरक्तके ज्वरमें हित है और मलोंको पतला करता है तथा परवल और धनियांका भी क्वाथ इन रोगोंमें ठीक है ॥ ९९ ॥

अथ वातकफज्वरका निदान और चिकित्सा ।

शीतं वेपथुपर्वभङ्गवमथुर्गात्रे जडत्वं चरुङ्मन्दोष्मारुचिबन्धनं परुषता कासस्तमःशूलवान् ॥ तन्द्रा कूजनमात्मलौल्यमथवा स्तैमित्यजृम्भारुचिःप्रस्वेदोमलमूत्ररोधसहितः स्याच्छ्लेष्मवातज्वरः ॥ १०० ॥

शीत लगे और शरीर कांपे और संधियें टूटैं,वमन हो और शरीरमें जडपना, शूल, मंदाग्नि, अरुचि,बंधना, कठोरपना,खाँसी,अन्धकारमें जैसे प्रवेश करनेका कष्ट ये उपजें,तंद्रा हो,शब्दको करे और शरीरमें चंचलपनाहो और शरीरका गीलापन, जंभाई,अरुचि,ये उपजें और पसीना आवे मल और मूत्र रुकजावे ये सब लक्षण होवें तब वातकफज्वर जानना ॥ १०० ॥

अथ आरग्वधपंचक ।

आरग्वधस्तिक्तकरोहिणी च हरीतकी पिप्पलिमूलमुस्ता ॥
निष्क्वाथ्य कल्कःकफवातयुक्ते ज्वरे सशूले हितपाचनोऽयम् १०१

आरग्वध, कुटकी, हरडा, पीपलामूल,नागरमोथा, इनका क्वाथ करके कल्क करे, यह कल्क कफवातमें उत्पन्न शूलकारिके युक्त ज्वरमें हितकारक और पाचन है ॥ १०१ ॥

---

१ हर्र, गिलोय, नागरमोथा, चित्रा, चिरायता, हल्दी, इन्द्रजौ, सोंठि ।

अथ क्षुद्रादिपाचन ।

क्षुद्रा गुडूची सह नागरेण वासाजलं पर्पटकश्च पथ्याः॥मुस्ता च दुःस्पर्शयुतः कषायः पीतो हितो वातकफज्वरस्य॥१०२॥

कटैली, गिलोय,सोंठ, वांसा, नेत्रवाला, पित्तपापड़ा, हरड़े,नागरमोथा, जवासा इनका काथ वातकफज्वरको नाशता है ॥ १०२ ॥

अथ पर्पटादि काथ ।

पर्पटनागाख्यवचातन्तुककट्फलैलाभयाविश्वभूतिका ॥ काथो हिङ्गुमधुयुतः कफवाते सहिक्कारोगे सगलग्रहे च ॥ १०३ ॥

पित्तपापड़ा, नागकेशर, वच, रोहिषतृण, कायफल, इलायची, हरड, सोंठ, करंजुवा, इनके काथमें हींग और शहद मिला पीवे यह कफवातज्वर,हिचकी रोग,गलग्रह इनमें हित है॥१०३॥

अथ दशमूल काथ ।

द्विपञ्चमूलकः काथः कणाचूर्णेन भावितः ॥
देयो वातकफे शूले ज्वरे श्वासे च पीनसे ॥ १०४ ॥

दशमूलके काथमें पीपलका चूर्ण मिला पीवे यह वातकफज्वर, शूल, श्वास, पीनस, इनमें हित है ॥ १०४ ॥

अथ त्रिदोषजज्वरका निदान और चिकित्सा ।

तन्द्रालस्यं मुखमधुरता ष्ठीवनं कण्ठशोषो निद्रानाशः श्वसनविकलो मूर्च्छना शोचना च ॥ जिह्वाजाड्यं परुषमथवा पृष्ठशीर्षव्यथा स्यादन्तर्दाहो भवति यदि वा विद्धि दोषं त्रिदोषम् १०५॥

तंद्रा और आलस्य आवे, मुखमें मधुरपना रहे और वारंवार थूके, कंठमें शोष उपजे, नींदका नाशहो,श्वाससे विकल होजावे,मूर्च्छा और शोच हो, जीभमें जडपनाहो अथवा करड़ी जीभ होजावे पृष्ठभागमें और शिरमें पीडा हो और शरीरके भीतर दाह हो ये सब लक्षण हों तब त्रिदोषजज्वर जानना ॥ १०५ ॥

त्रिदोषजज्वरकी यशःप्रापक चिकित्सा ।

दृष्ट्वा त्रिदोषजं घोरं ज्वरं प्राणापहारकम्॥तस्मादादौ कफस्यास्य शोषणं परिकीर्तितम् ॥१०६॥ न कुर्य्यात्पित्तशमनं यदीच्छेदात्मनो यशः॥कफवातैर्बलवतः सद्यो हन्ति रुजातुरम् ॥ ॥ १०७ ॥ लङ्घनं वमनं वापि ष्ठीवनं स्यात्त्रिदोषजे ॥ त्रिरात्रं

द्विपञ्चकगणैर्युक्तः कषायो हितः ॥ पीतः सर्वरुजां विनाशनकरः स्यात्सन्निपातज्वरं हन्ति श्वासविशोषवक्षसिरुजं तन्द्रां जघान द्रुतम् ॥१२९ ॥

चिरायता, देवदारु, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रयव, गजपीपल, दशमूल इन सात चीजोंके क्वाथ बना पीना । यह सब प्रकारके रोगोंको और सन्निपातज्वरको नाशता है और श्वासरोग, शोषरोग, छातीकी पीड़ा, तंद्रा इनको शीघ्र नाशता है ॥ १२९ ॥

अथ बृहद्रास्नादि क्वाथ ।

रास्ना गुडूचिघनपर्पटकं पटोली भूनिम्बवत्सकशटीयुतनागराणाम् ॥ तिक्तासुराह्वगजमागधिकायवासावासाबलागजबलाक्कथितः समांशः॥ १२६ ॥ क्काथो निहन्ति मरुतप्रभवामयानां सश्वासकासजठरार्तिविषूचिकानाम्॥ श्रेष्ठो नृणां भुवि च पाचनसन्निपाते रोगेऽथवा कफसमीरणके प्रदेयः ॥ १२७ ॥

रायसन, गिलोय, नागरमोथा, पित्तपापडा, परवल, चिरायता, इन्द्रयव, कचूर, सोंठ, कुटकी, देवदारु, गजपीपल, जवासा, वांसा, खरैहटी, बड़ी खरैहटी ये सब समानभाग ले क्वाथ बनावे ॥ १२६ ॥ यह क्वाथ वातसे उपजे रोग, श्वासरोग, खांसी, पेटरोग, विषूचिका, इनको नाशता है । यह पाचन मनुष्योंको संसारमें श्रेष्ठ है अथवा कफवातके रोगमें देना चाहिये ॥ १२७ ॥

अथ लघुरास्नादि ।

रास्नात्रिकण्टकघनाशतमोषधीनां भार्ङ्गी सपुष्करयुता सुरदारुधान्याः ॥ क्काथो हितः सकलमारुतजिज्ज्वरेषु स्यात्सन्निपातप्रभवेष्वतिदारुणेषु ॥ १२८ ॥

रायसन, गोखरू, नागरमोथा, शतावरी, भारंगी, पोहकरमूल, देवदारु, धनियां इनका क्वाथ दारुण सन्निपातज्वरोंमें हित है और वायुसे उत्पन्न रोगोंको जीतता है ॥ १२८ ॥

अथ त्रिवृतादि मलभेदन ।

त्रिवृद्विशाला च तथा सुराह्वमारग्वधस्तिक्तकरोहिणी च ॥ क्वाथोभवेद्भेदनको मलानां स्याद्वातशूले नयतो भयघ्नः॥१२९॥

निसोथ, इन्द्रायणकी जड़, देवदारु, अमलतास, कुटकी इनका क्वाथ मलको पतला करता है और वातशूलको करता है ॥ १२९ ॥

अथ सन्निपातस्वेदहर ।

वचा यवानी च महौषधश्च शुष्कश्च चूर्णं तनुलेपनाय ॥ शस्तं वदन्ति ज्वरघर्मशान्तिं करोति नूनं परिमर्दनश्च ॥ १३० ॥ मागधी च सुरदारु तथा च विश्वकं तिक्ता च दीप्यकयुतं तनुलेपनाय ॥ चूर्णं प्रशस्तमपि वारयते शरीरे स्वेदश्च शीतलतनुर्भवेदाशु नूनम् ॥ १३१ ॥

वच, अजमान, सोंठ इनका सूखा चूर्ण बना शरीरपै मालिस करे । यह ज्वरको और पसीनाको शांत करता है ॥ १३० ॥ पीपल, देवदारु, सोंठ, कुटकी, अजमान इनका चूर्ण बना शरीरपै मालिस करनेसे पसीने दूर होते हैं और शरीर शीतल होजाता है ॥ १३१ ॥

अथ नस्यविधान ।

मधूकसारं समहौषधेन वचोषणा सैन्धवसंयुता च ॥ मूत्रेण वा चोष्णजलेन पिष्टं प्रनष्टज्ञानप्रतिबोधनाय ॥ १३२ ॥ शोभाञ्जनकमूलस्य रसं समरिचान्वितम् ॥ विसंगितानां नस्यं स्याद्बोधनं चाशु रोगिणाम् ॥ १३३ ॥

महुआका सार, सोंठ, वच, मिर्च, सैंधानमक इनको गोमूत्रमें अथवा गरमपानीमें पीस नाकमें चढावे, यह नस्य मूर्च्छाको प्राप्तहुएको जगाता है ॥ १३२ ॥ सहिंजनाकी जड़के रसमें मिरचोंका चूर्ण मिला नासिकामें चढ़ानेसे संज्ञासे रहित मनुष्योंको शीघ्र ज्ञान होजाता है ॥ १३३ ॥

अथ प्रधमनविधि ।

एकं बृहत्याः फलपिप्पलीकं शुण्ठीयुतं चूर्णमिदं प्रशस्तम् ॥ प्रधामयेद्घ्राणपुटे तु संज्ञाचेष्टां करोति क्षवथुप्रबोधः ॥ १३४ ॥

बडी कटेलीका एक फल, पीपल, सोंठ इनका चूर्ण बना पुटलीके द्वारा नासिकामें चढानेसे छींक आती है और चेष्टा होजाती है ॥ १३४ ॥

अथ अंजनविधि ।

शिरीषबीजं मरिचोपकुल्यामूत्रेण घृष्टं सह सैन्धवेन ॥ नेत्राञ्जनं स्यान्नयने नराणां प्रनष्टसंज्ञां प्रकरोति बोधः ॥ १३५ ॥ त्रिकटु तथा च करञ्जबीजं त्रिफला सुरदारु सैन्धवम् ॥ तुलसी वर्तिनयनाञ्जनकं तन्द्रानाशं करोति नयनानाम् ॥ १३६ ॥

शिरसके वीज, मिर्च, पीपल, सैंधानमक इनको गोमूत्रमें पीस नेत्रोंमें आंजे । यह अंजन नष्टहुई संज्ञाको फिर उपजाता है ॥ १३५ ॥ सोंठ, मिर्च, पीपल, करंजुवाके वीज, हरडैं, वहेड़ा, आँवला, देवदार, सैंधानमक, तुलसी, इनको पीस वत्ती वना नेत्रोंमें आंजे । यह आंजन तंद्राको नाशता है ॥ १३६ ॥

अथ निष्ठीवनविधि ।

केसरं मातुलुङ्गस्य शृङ्गवेरं ससैन्धवम् ॥ त्रिकटुसंयुतं कृत्वा आकण्ठाद्धारयेन्मुखे ॥ १३७ ॥ दन्तजिह्वामुखं तालुघर्षणं कारयेद्बुधः ॥ कुर्य्यान्निष्ठीवनं सर्वं वारंवारं विधानतः ॥ १३८ ॥ तेन कण्ठविशुद्धिः स्याच्छ्लेष्माणं चापकर्षति ॥ जिह्वापटुत्वरुचिकृत्कासः श्वासश्च शाम्यति ॥ १३९ ॥ त्रिकटुचव्यकापथ्याचूर्णं सैन्धवसंयुतम् । तेन दन्तांस्तथा जिह्वां घर्षयेत्तालुकामलम् ॥ १४० ॥ निष्ठीवनं गलशुद्धिरुचिकृत्कफसूदनम् ॥ हृल्लासो नाशमाप्नोति पटुत्वं कुरुते भृशम् ॥ १४१ ॥

विजौराकी केसर, अदरख, सैंधानमक, सोंठ, मिरच, पीपल इनको मिला मुखमें धारे ॥ १३७ ॥ पीछे दंत, जीभ, मुख, तालु इन्होंको घिसे पीछे विधानसे वारंवार थूकता जावे ॥ १३८ ॥ इससे कंठकी शुद्धि होतीहै और कफ दूर होजाता है और जीभ साफ होजाती है और रुचि उपजती है, खांसी और श्वास शांत होजाता है ॥ १३९ ॥ सोंठ, मिरच, पीपल, चव्य, हरडै, सैंधानमक इन्होंके चूर्णसे दंत, जीभ, तालु, इन्होंको घिसे ॥ १४० ॥ यह निष्ठीवनकर्म गलकी शुद्धि और रुचिको करता है, कफको दूर करता है, थुकथुकीको नाशता है और अत्यन्त स्वादको उपजाता है ॥ १४१ ॥

अथ सन्निपातमें विशेषता ।

यदि वा शीतगात्रे च तदा स्वेदो विधीयते ॥ स्वेदास्त्रयोदश ज्ञेयाः स्वेदवारणकारणाः[1] ॥ १४२ ॥ सङ्करः प्रस्तुतो नाडीपरिषेकोऽवगाहनः ॥ आतङ्कोऽस्मयनः कर्षः कूटी भूकुम्भिरेव च ॥ १४३ ॥ कूपो होलाक इत्येते स्वेदयन्ति त्रयोदश ॥ १४४ ॥ कालस्वेदं घटीस्वेदं वालुकास्वेदमेव च ॥ कारयेद्धस्तपादाभ्यां

१ स्विद्यतेऽनेनेति स्वेदोऽग्निस्तस्य वारणे कारणाः ।

तथा शिरसि चातुरे॥ एवं नो शान्तिर्यदि वा दहेल्लोहशलाकया ॥१४५॥ पादौ दग्धे न चेच्छैत्यं दहेद्वाङ्गुष्ठमूलके ॥ तथा च मणिबन्धे च हृदि मूर्ध्नि तथापि वा ॥१४६॥ स्वेदो ललाटे सुहिमो नरस्य शीतार्दितस्यापि सपिच्छलस्य ॥ कण्ठस्थितो यस्य न याति वक्षो नूनं समभ्येति गृहं हि मृत्योः ॥१४७॥ सप्ताहे वा दशाहे वा द्वादशाहेऽथवा पुनः ॥ त्रयोदशे पञ्चदशे प्रशमं याति हन्ति वा ॥ १४८ ॥ अथ पञ्चादशाहे वा हन्ति रक्षति मानवम् ॥ सन्निपातो महाघोरो ज्वरः कालाग्निसन्निभः ॥१४९॥ एषा त्रिदोषमर्य्यादा मोक्षाय च वधाय च॥सन्निपातस्य दोषस्य नरस्यास्य भिषग्वर॥१५०॥सन्निपातेऽन्तर्दाहे मनुजं यः शीतवारिणा सिञ्चेत्॥आतुरः कथमपि जीवेद्वैद्यश्चासौ कथं पूज्यः॥१५१॥यः सन्निपातजलधौ पतितं मनुष्यं वैद्यः समुद्धरति किन्न कृतं नु तेन ॥ धर्मेण वाथ यशसा विनयेन युक्तः पूजां च कां भुवितले न लभेत्तु वैद्यः ॥१५२॥

जो शीतल शरीर हो तब पसीना देना चाहिये, अग्नि दूर करनके कारणरूपी स्वेद अर्थात् पसीने तेरह जानने ॥ १४२ ॥ संकर, नाड़ीपरिषेक, अपगाहन, आतंक, अस्मयन, कर्ष, कुटी, भूकुंभि ॥ १४३ ॥ कूप होलाक, कालस्वेद, घटीस्वेद, वालुकास्वेद ये तरह प्रकारके स्वेद मनुष्यके पसीनाको लाते हैं ॥ १४४ ॥ इनसे रोगीके हाथ, पैर, शिर इन्होंपै पसीनाको देवे। जो ऐसे शांति नहीं हो तव लोहाकी सलाईसे दाग देवे ॥१४५॥ जो पैरपै दाग दियेसे भी शीतलता नहीं उपजे तव अँगूठाके मूलमें दग्ध करे अथवा मणिवन्ध अर्थात् पहुँचा, हृदय, मस्तक, इन्होंमें दग्ध करे ॥ १४६ ॥ जिसके मस्तकपै ठण्ढा पसीना आवे और सब शरीर शीतल होवे, शीतसे पीड़ित और कफकी अधिकतावाला ऐसे मनुष्यके कण्ठतक पसीना आवे, छातीमें नहीं प्राप्त होवे वह मनुष्य निश्चय मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १४७॥ सातमा अथवा दशमां अथवा बारमां,तेरमां पन्दरमां इन दिनोंमें सन्निपात ज्वर शांत हो जाता है अथवा रोगीको मार देता है॥ १४८ ॥ और पन्द्रहवें दिन निश्चय सन्निपातज्वर शांत होता है अथवा रोगीको मारता है। यह सन्निपातज्वर महाघोररूप है, काल और अग्निके समान कांतिवाला है ॥ १४९ ॥ सन्निपातकी शांत होनेकी अथवा मारनेकी यह मर्यादा है॥१५०॥ सन्निपातमें जो शरीरमें दाह उपजे तब वैद्य शीतलपानीके छिड़के दिवाता है तव रोगी नहीं

जीवता और वह वैद्य पूजाको प्राप्त नहीं हो सकता ॥ १९१ ॥ सन्निपातरूपी समुद्रमें पड़े हुए रोगी मनुष्यको जो वैद्य उद्धार करता है उस मनुष्यने क्या नहीं किया और धर्म, यश, तथा विनय करके युक्त वह वैद्य इस भूतलमें कौनसी पूजाको नहीं पाता है ? अर्थात् सर्वत्र य होता है ॥ १९२ ॥

अथ कर्णमूल (शोजा) का निदान और चिकित्सा।

वातपित्तकफैस्त्रिभिर्युक्तस्तथा त्रिदोषजः॥ स च रक्तेन संयुक्तो ज्वरः स्यात्सान्निपातिकः ॥१९३॥ न रक्तेन विना विद्धि ज्वरं वै सान्निपातिकम्॥क्वाथैः पाचनकैर्दोषाः प्रशमं यान्ति मानवे ॥ १९४ ॥ तस्मात्प्रशमिते दोषे रक्तं नैव विलीयते ॥ तेनैव जायते शोफः[1] कर्णमूले तु दारुणः ॥१९५॥ तस्मात्तस्य प्रतीकारं कुर्य्याद्रक्तविरेचनम् ॥ जलौकालाबुभृंगैस्तु ततश्च लेपनं हितम् ॥ १९६ ॥

वात, पित्त, कफ इन तीनोंसे युक्त त्रिदोषज्वर होता है और रक्तसे संयुक्त हुआ यही ज्वर सन्निपात कहाता है ॥ १९३ ॥ रक्तके विना सन्निपात ज्वरको नहीं जानना । क्वाथ और पाचनसंज्ञक क्वाथोंसे मनुष्यके तीनों दोष शान्त हो जाते हैं ॥ १९४ ॥ इस कारणसे दोष शान्त भी हो जाते हैं परन्तु रक्त नहीं शान्त होता उसकरके कानके जड़में भयंकर शोजा उपजता है ॥ १९५ ॥ इससे उसकी चिकित्सा रक्तका निकासना है जोंक, तुंबी, शींगी, इनसे रक्तको निकासे पीछे लेप कराना ॥ १९६ ॥

अथ कर्णशोथके ऊपर लेप।

बीजपूरकमूलानि अग्निमन्थस्तथैव च ॥
आलेपनमिदं चास्य कर्णमूलस्य नाशनम् ॥ १९७ ॥

विजौराकी जड़, अरनी इनको पानीमें पीस लेप करना, यह लेप कर्णमूलको नाशता है ॥

अथ दूसरा लेप।

आगारधूपरजनीसुमहौषधेन सिद्धार्थसैन्धववचापयसा विमर्द्य॥
लेपोहितोरक्तविनाशकारी शोफव्रणस्य शमनो मनुजस्य कर्णे[2]॥

घरका धुआं (श्रीवेष्टधूप) हलदी, सोंठ, सरसों, सेंधानमक, वच, इनको दूधसे

---

1 "सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः। शोथःसजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते" । इति माधवः ।
२ आर्द्मेश्वरणे छन्दोभंगः ।

पीस कर्णमूलपर लेप करना। यह लेप रक्तके विकारको नाशता है, शोजा और घावको शान्त करता है ॥ १५८ ॥

अथ व्रणरोपण औषध।

यदा पाको भवेत्तस्य कार्या तत्र प्रतिक्रिया॥ धवार्जुनकदम्ब-त्वग्लेपनं व्रणरोहणम्॥१५९॥ निम्बारग्वधमूलानां निशायुक्तं प्रलेपनम्॥स्रावणं पूयगन्धानां रोहणं स्याद्व्रणेषु च ॥ १६०॥

जो कानकी जड़में शोजा पक जावे वहां जो क्रिया करनी चाहिये वहकही जाती है,धवकी छाल, अर्ज्जुनवृक्षकी छाल, कदंबकी छाल इनको पीस लेप करनेसे घावपै अंकुर आ जाता है ॥ १५९ ॥ नींबकी छाल, अमलतासकी छाल, हलदी इनका लेप राध और दुर्गंधको हटाता है और घावोंपर अंकुरको लाता है ॥ १६० ॥

अथ कर्णशोथवालेको पथ्य।

वर्जयेच्च दिवास्वप्नं योषित्सङ्गं बहूदकम्॥शीतांबु जागृतिं रात्रौ व्यायामं शोचनं तथा॥१६१॥माषांश्च यवगोधूमतिलपर्णीकमेव च ॥ मसूरत्रिपुटांश्चैतांस्तैलञ्च दूरतस्त्यजेत् ॥ १६२॥ मास-मेकं व्यवायं च पक्षैकं चातिभोजनम्॥वर्जयेत्कर्णमूलञ्च सुखं तेनोपपद्यते ॥१६३॥ षष्टिकान्नं पुराणं वा बाल्यं सूपस्तथा-ढकी ॥ कुलत्थमुद्गयूषं वा भोजने च प्रशस्यते ॥ १६४ ॥ वार्त्ताकञ्च पलाण्डुं च कन्दशाकान्परित्यजेत् ॥ एतेन सुखमा-प्नोति शीघ्रं रोगाद्विमुच्यते ॥ १६५ ॥

इस कर्णमूलमें दिनका सोना,स्त्रीसंग, पानीका बहुत पीना, शीतल पानी, रात्रिका जागना, कसरत, शोच ॥ १६१ ॥ उड़द, यव, गेहूं, तिलका पदार्थ,मसूर, त्रिपुंटा, तेल इनको दूरसे वर्ज्जे ॥ १६२ ॥ और एक महीनातक मैथुनको और पंद्रह दिनोंतक अत्यन्त भोजनको वर्ज्जेतब सुख होता है ॥ १६३ ॥ साठीचावल, पुरानाअन्न, अरहरकी दाल, कुलथी और मूंगोंकायूष ये सब भोजनमें श्रेष्ठ हैं ॥ १६४ ॥ वार्ताकु (वैंगन), प्याज, कंदशाक इनको त्यागे ऐसे कर-नेसे सुखको प्राप्त होता है और शीघ्र रोगसे छुटता है ॥ १६५ ॥

---

१ मल्लिका, सूक्ष्मैला, त्रिवृत, कर्णस्फोटा,स्थूलैला,कलायू, चमेली, छोटी इलायची,निशोथ, तिरवी कनफोडी, वडी इलायची, खेसारी, मटर। आयुर्वेदशब्दार्णव।

अथ अंतर्दाहका कारण ।

अन्ते पित्तं यदा तिष्ठेद्बाह्ये श्लेष्मसमीरणौ ॥
तदान्तर्दाहशोषः स्याद्बाह्ये सस्वेदशीतता ॥ १६६ ॥

जब शरीरके भीतर पित्त स्थित होजाता है और शरीरके बाहर कफ और वात स्थित होता हैं तब शरीरके भीतर दाह और शोष उपजता है और शरीरके बाहर पसीना और शीतलता होती है ॥ १६६ ॥

अथ अंतर्दाहकी चिकित्सा ।

तस्यामृतापयः क्वाथं मधुपिप्पलिसंयुतम्॥पाययेदाशु मुच्येत ज्वराद्वै सान्निपातिकात् ॥ १६७॥ अथवातिविषा वालं नागरं घनपर्पटम्॥ क्वाथो वा शर्करायुक्तश्चान्तर्दाहोपशान्तये॥१६८॥

उसको गिलोयके क्वाथमें शहद और पीपलका चूर्ण मिला पान करावे तब शीघ्र ही सन्निपात ज्वरसे छुट जाता है ॥ १६७ ॥ अथवा अतीश, नेत्रवाला, सूंठ, नागरमोथा, पित्तपापडा इनका क्वाथ बना उसमें खांड मिला पीवे तब शरीरके भीतरकी दाह शांत होती है ॥ १६८ ॥

अथ बाह्यदाहका कारण और चिकित्सा ।

बाह्ये पित्तं यदा तिष्ठेदन्ते वा कफमारुतौ ॥ तेनोष्णत्वं शरीरस्य अन्ते शैत्यं च जायते॥१६९॥ तस्य शट्यादिकं क्वाथं प्रयुञ्जीयात्कफापहम् ॥ १७० ॥

जब शरीरके बाहिर पित्त स्थित हो और शरीरके भीतर कफ और वात स्थित होवे तब शरीर गरम होता है, हाथ और पैरोंमें शीतलता होती है॥१६९॥ तिसको कचूर[1]आदि पूर्वोक्त क्वाथका पान कराना, यह कफको शांत करता है ॥ १७० ॥

अथ शरीर शीतल और अर्ध गर्म होनेका कारण और चिकित्सा ।

यस्योर्ध्वाङ्गे वातकफावधोगं पित्तमेव च ॥ तेनार्द्धं शीतलं गात्रमर्द्धं चोष्णं च जायते ॥ १७१ ॥ तस्य रास्नादिकं क्वाथं प्रयुञ्जीयात्तथोष्णकम् ॥ १७२ ॥ यस्योर्ध्वं रक्तपित्तञ्च मध्ये वातकफावुभौ॥तेनोर्ध्वं जायते चोष्णमधः शीतं प्रजायते ॥१७३॥ तस्य नागरादिक्वाथं युञ्जीयाद्भिषगुत्तमः ॥१७४ ॥

---

१ कचूर, चिरायता, कुटकी, इन्द्रायण, गिलोय, अतीस, दोनों कटेली, सोंठ, पुष्करमूल, जवासा, रायसन, देवदारु, गजपीपल ।

जिसके ऊपरके अंगोंमें वात और कफकी स्थिति हो और नीचेके अंगमें पित्तकी स्थितिहो तिसकरके आधा शरीर गरम रहता है और आधा शरीर शीतल रहता है ॥ १७१ ॥ तिसको पूर्वोक्त गर्मगर्म रास्नादि काथका पान कराना ॥ १७२ ॥ जिसके ऊपरले अंगोंमें रक्त और पित्तहो और मध्यमें वात और कफ हो तिससे ऊपरका शरीर गर्म रहता है और नीचेका शरीर शीतल रहता है ॥ १७३ ॥ उसको पूर्वोक्त शुंठ्यादि काथका पान कराना ॥ १७४ ॥

यस्योष्मा दृश्यते चापि मन्दस्तृष्णा च जायते॥ वाह्यवेगं विजानीयाज्ज्वरः साध्यो विजानता ॥ १७५ ॥ यस्यान्ते जायते चोष्मा तृष्णा दाहः शिरोव्यथा॥गम्भीरवेगं जानीयात्कृच्छ्रसाध्यो नृणामपि ॥ १७६ ॥ तस्य कुर्य्यात्प्रतीकारं योगोऽष्टादशको नृणाम् ॥ १७७ ॥

जिसके गरमाई हो और ज्वरका मन्दवेग हो उसको वाह्यवेगज्वर कहते हैं । यह ज्वर साध्य होता है ॥ १७५ ॥ जिसके हाथ और पैरमें गर्माई हो और तृषा, दाह, शिरमें पीड़ा ये उपजें तिसको गंभीरवेगज्वर कहते हैं यह मनुष्योंके कष्टसाध्य होता है ॥ १७६ ॥ उसके लिये अष्टादशांग काथ काफी है ॥ १७७ ॥

अथ शीतल अंगमें गरम करनेकी चिकित्सा ।

अन्ते पित्तं यदा तिष्ठेद्देहे वातकफावुभौ ॥ तेन शैत्यं शरीरस्य उष्णत्वं करपादयोः ॥ १७८ ॥ तस्य रास्नादिकः क्वाथः प्रदेयः पिप्पलीयुतः ॥ १७९ ॥

जब हाथ और पैरमें पित्तकी स्थिति हो, शरीरमें वात और कफकी स्थिति हो उस करके शरीर शीतल रहता है, हाथ और पैरोंमें गर्माई जाननी ॥ १७८ ॥ उसको रास्नादि काथमें पीपलका चूर्ण मिला पान कराना ॥ १७९ ॥

अथ गर्मीका उपचार ।

देहे पित्तं यदा तिष्ठदंते वातकफावुभौ ॥ तस्योष्मा जायते देहे शीतत्वं करपादयोः ॥ १८० ॥ तस्य द्राक्षादिकः क्वाथः प्रदेयो गुडकान्वितः ॥ १८१ ॥

जिसके देहमें पित्त स्थितहो, हाथ और पैरोंमें वायु कफ स्थित होवे तिसका देह गर्म रहताहै हाथ और पैर शीतल रहते हैं ॥ १८० ॥ उसको द्राक्षादिकाथमें गुड़मिला पान कराना १८१

---

१ हा. सं. १९४ पृ० ।

अथ शीतत्वका उपचार।

यत्र यत्र भवेच्छैत्यं तत्र स्वेदो विधीयते ॥
नात्युष्णे स्वेदनं कार्यं ज्वरस्यास्य विजानता ॥ १८२ ॥

और जहां जहां शीतलता होवे वहां२ पसीना देना चाहिये। इस सन्निपात ज्वरको जाननेवाले वैद्यको अत्यन्त गर्माईमें पसीना नहीं देना चाहिये ॥ १८२ ॥

ज्वरादिकोंका कारण वायु है।

कफपित्तेन निश्चेष्टो भवत्येवानिलः सदा ॥
तस्मादेवानिलाद्रोगाः सम्भवन्ति ज्वरादयः ॥ १८३ ॥

कफ और पित्तसे चेष्टा करके रहित हुआ वात सब कालमें रहता है उस कारण करके वातसे ही ज्वरआदि सब रोग उपजते हैं ॥ १८३ ॥

अथ ज्वरमुक्तिका लक्षण।

भ्रमः शैत्यं विह्वलता कम्पो विड्भेदनं क्लमः ॥
श्रमः स्वेदो जल्पनश्च ज्वरमोक्षे भवन्ति च ॥ १८४ ॥

भ्रम, शीतलता, विह्वलपना, कंप, विष्टाका पतलापन, थकानसी, परिश्रम, पसीना, बोलना ये सब ज्वरके दूर होनेके समय होते हैं ॥ १८४ ॥

अथ ज्वर उतरनेका लक्षण।

प्रस्वेदकण्डू च शिरा च पुष्टा तथा मुखेषु क्षवथुर्लघुत्वम् ॥
अन्नाभिलाषो विपुलेन्द्रियश्च गतक्लमो गतरुजो मनुष्यः॥१८५॥

पसीना आवे, खाज चले और नाड़ी पुष्ट हो जावे और मुखमें छींक आवे और शरीरका हलकापन हो और अन्नकी इच्छा हो और इन्द्रियें प्रसन्न हो जावें, ग्लानि और पीड़ा जाती रहे तब जानो ज्वर उतरा ॥ १८५ ॥

अथ ज्वर नहीं उतरनेका और लौटानेका लक्षण।

विमुक्तस्यापि हि शिरोगुरुत्वं नव मुञ्चति ॥
अविमुक्तं विजानीयाज्ज्वरः पुनरुपैति तम् ॥ १८६ ॥

ज्वरसे मुक्त हुआ मनुष्य शिरके भारीपनको नहीं छोड़े तब जानो कि अभी ज्वर नहीं छूटा और उस मनुष्यको फिर ज्वर उपजेगा ऐसा जान ले ॥ १८६ ॥

अथ विषमज्वरका लक्षण और चिकित्सा।

यदि धातुगतश्चैव ज्वरो देहे प्रपद्यते॥विषमज्वरं विजानीयात्स

च ज्ञेयश्चतुर्विधः ॥ १८७ ॥ एकाहिको द्व्याहिकश्च त्र्याहिकश्च तथापरः ॥ वेलाज्वरश्चतुर्थोऽपि विजानीयाद्विचक्षणः॥१८८॥

जो देहके धातुओंमें ज्वर प्राप्त हो उसको विषमज्वर जानना वह चार प्रकारका है ॥१८७॥ एकाहिक अर्थात् दिनमें एक बार आनेवाला, द्व्याहिक अर्थात् दूसरे दिन आनेवाला त्र्याहिक अर्थात् तीसरे दिन आनेवाला और समयपै चौथे दिन आनेवाला चातुर्थिक वैद्योंको जानना चाहिये ॥ १८८ ॥

अथ एकाहिकज्वरका लक्षण।

शीतश्च पूर्वं भवति पश्चादुष्णश्च जायते ॥ स साध्यो मनुजे प्रोक्तः शीघ्रं सिध्यति भेषजः ॥ १८९ ॥ पश्चाच्च दाहमाप्नोति ज्वरो भवति दारुणः ॥ सोऽपि न मुच्यते शीघ्रं ज्वरो धातुक्षयङ्करः ॥ १९०॥

जिसमें प्रथम शीत उपजे और पीछे गरमाई उपजे वह साध्यज्वर जानना। यह औषधोंसे शीघ्र जाता रहता है ॥ १८९ ॥ भयंकर ज्वर होके पीछे दाहसे संयुक्त हो वह शीघ्र नहीं जाता है। यह ज्वर धातुओंका क्षय करता है ॥ १९० ॥

अथ तृतीय ज्वर लक्षण।

त्रिकोरुकट्यां रुजवातपित्तं स्याच्च पित्तं मस्तके रुग्भ्रमश्च ॥ पृष्ठे तनुश्लेष्मरुजाकरं स्यात्त्रिधा तृतीयज्वरलक्षणं तत्॥१९१॥ कफपित्तात्त्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः ॥ वातपित्ताशिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥ १९२ ॥

कटिप्रांत, जांघ, कटि इन्होंसे वात और पित्तसे पीडा हो और मस्तकमें पित्तसे पीडा हो और भ्रम उपजे और पृष्ठभागमें सूक्ष्म कफ पीडाको करता हो ऐसे तृतीय ज्वरका लक्षण तीन प्रकारका है ॥ १९१ ॥ वात और कफसे उपजा तृतीयकज्वर प्रथम कटिप्रांतमें पीडाको उपजा पीछे आप उपजता है, वात और कफसे उपजा तृतीयकज्वर प्रथम पृष्ठ नितंब स्थानमें पीडाको उपजा पीछे आप उपजता है। वात और पित्तसे प्रथम शिरमें पीडाको उपजा पीछे आप उपजता है, ऐसे तृतीयकज्वर तीन प्रकारका है ॥ १९२ ॥

अथ चातुर्थिक ज्वरलक्षण।

चतुर्थो द्विविधो ज्ञेयो वातश्लेष्मात्मको ज्वरः ॥ जङ्घाभ्यां

श्लेष्मको ज्ञेयः शिरसोऽनिलसम्भवः ॥ १९३ ॥ एवं विज्ञाय सद्वैद्यः कुर्य्यात्तत्र प्रतिक्रियाम् ॥ १९४ ॥

वात और कफसे उपजा चातुर्थिकज्वर दो प्रकारका है । कफका चातुर्थिकज्वर प्रथम जंघाओंसे उपजता है और वातका चातुर्थिकज्वर प्रथम शिरसे उपजता है ॥ १९३ ॥ ऐसे जानके कुशल वैद्य वहां क्रियाको करे ॥ १९४ ॥

अथ वेलाज्वरादिकका लक्षण ।

वेलाज्वरो रसगते रक्ते चकाहिकस्तथा ॥ मांसगोऽपि तृतीयः स्याच्चतुर्थोऽस्थिसमाश्रितः ॥ सर्वधातुगतो ज्ञेयो जीर्णो धातुक्षयंकरः ॥ १९५ ॥

वेलाज्वरका स्थान रसमें होता है, एकाहिकज्वरका स्थान रक्तमें होता है, तृतीयकज्वरका थान मांसमें होता है और हड्डियोंमें चातुर्थिक ज्वरका स्थान होता है, सब धातुओंमें गमन करनेवाला जीर्णज्वर धातुओंको नष्ट करता है ॥ १९५ ॥

अथ भूतादिकसे उपजे रोग ।

भूतजे भूतविद्या स्याद्धाति शमताडनम् ॥ अभिशापाज्ज्वरो यस्य तस्य शान्तिः प्रतिक्रिया ॥ १९६ ॥ कामजे कामला पित्तैर्नयेच्च श्वसनं हितम् ॥ १९७ ॥ क्रोधजे पित्तजे वापि सद्वाक्यैरुपशामयत् ॥ ओषधीगन्धजैर्मूर्छा कारयेत्सेवनं हितम् ॥ १९८ ॥

भूतजज्वरमें भूतविद्यासे शांत करना, ताडना देनी ये हित हैं और ब्राह्मणके शापसे उपजे ज्वरमें शांति करानी हित है ॥ १९६ ॥ कामजज्वरमें कामला और पित्तकी चिकित्साकरके आश्वासन करना हित है ॥ १९७ ॥ क्रोधसे और पित्तसे उपजे ज्वरमें श्रेष्ठ वाक्योंसे शांति करना हित है । औषधीके गंधसे उपजे ज्वरमें मूर्छा होती है इसको दूर करनेके लिये हित पदार्थको सेवे ॥ १९८ ॥

अथ निदिग्धिकादि क्वाथ ।

निदिग्धिकानागरिकामृतानां क्वाथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् ॥ जीर्णज्वरारोचनकासशूलश्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु ॥ १९९ ॥

कटेली, सोंठ, गिलोय इन्होंके क्वाथमें पीपलका चूर्ण मिला पीवे । यह जीर्णज्वर, अरोचक, खांसी, शूल, श्वासरोग, मंदाग्नि, अर्दितरोग, पीनस इन्होंको नाशता है ॥ १९९ ॥

अथ गुडपिप्पली ।

कासाजीर्ण श्वासहृत्पाण्डुरोगे मन्दे वार्ग्नौ कामलारोचके च॥
तेषां शस्ता पिप्पली स्याद्गुडेन हन्ति नृणांजीर्णमाशु ज्वरंच२००

गुडमें संयुक्त करी पीपली खांसी, अजीर्ण, श्वासरोग, पांडुरोग, मंदाग्नि, कामला, अरोचक, जीर्णज्वर इन्होंको शीघ्र हरती है ॥ २०० ॥

अथ लघुपंचमूलक्वाथ ।

लघुपञ्चमूलीक्वथितः कषा.यश्छिन्नोद्भवायाः सह पिप्पलीभिः॥
जीर्णज्वरे श्वासकफामयघ्नो मन्दाग्निशूलारुचिपीनसानाम्॥२०१

शालपर्णी, पिठवन, छोटी कटेली, बड़ी कटेली,गोखरू इन्होंके क्वाथको अथवा गिलोयके क्वाथमें पीपलका चूर्ण मिला पीवे तो जीर्णज्वर, श्वास, कफका रोग, मंदाग्नि,शूल, अरुचि, पीनस इन्होंका नाश होता है ॥ २०१ ॥

अथ जीर्णज्वरपर पटोलादि क्वाथ ।

पटोलपाठाकटुरोहिणीनां फलत्रय वत्सकनिम्बमोक्षाः ॥
द्राक्षामृताचन्दननागराणां क्वाथः पुराणज्वरनाशनाय ॥२०२॥

परवल, श्योनापाठा, कुटकी, हरडै, बहेड़ा, आंवला, इंद्रजव, नींबकी छाल, मोखावृक्ष, दाख, गिलोय, चंदन और सोंठ, इनका क्वाथ पुराने ज्वरको नाशता है ॥ २०२ ॥

अथ विषमज्वरका औषध ।

सजीरकं गुडं भक्षेत्सगुडां वा हरीतकीम्॥सगुडान्वा तिलान्भ-
क्षेज्ज्वरे च विषमाशुगे ॥२०३॥ सगुडं त्रिफलाक्वाथं संभक्षेद्वा
गुडार्द्रकम्॥क्वाथोऽपि विषमाणान्तु ज्वराणां नाशकारकः२०४

गुडसहित जीराको अथवा गुडसहित हरडैको अथवा गुडहित तिलोंको खावे यह विषम ज्वरको नाशता है ॥२०३ ॥ गुडसहित अदरख अथवा गुडसहित त्रिफलाके क्वाथको पीवे यह विषमज्वरोंको नाशता है ॥ २०४ ॥

अथ चातुर्थिकज्वरका उपाय ।

वासाधात्रीफलं दारुपथ्यानागरसाधितः ॥
मधुना संयुतः क्वाथश्चातुर्थिकनिवारणः ॥ २०५ ॥

वांसा, आंवला, देवदार, हरडै, सूंठके क्वाथमें शहद डाल पीवे । यह चातुर्थिकज्वरको नाशता है ॥ २०५ ॥

अथ चातुर्थिकपर नस्य ।

अगस्तिपत्रं स्वरसैर्निहन्ति नस्ये च चातुर्थिकरोगमुग्रम् ॥
कासं भ्रमं चापि शिरोरुजाञ्च नाशञ्च नस्यं च हितं नराणाम् २०६

अगस्तिवृक्षके स्वरसको नाकमें चढ़ानेसे भयंकर भी चातुर्थिकज्वर नाशको प्राप्त होता है और खांसी, भ्रम, शिरकी पीडा इनका भी नाश होता है ॥ २०६ ॥

अथ विषमज्वरपर लशुनकल्क ।

रसोनकल्कं तिलतैलमिश्रं योऽश्नाति नित्यं विषमज्वरार्त्तः ॥
विमुच्यतेऽसौ विषमज्वरेभ्यो वातामयैश्चाप्यतिघोररूपैः २०७॥

जो विषमज्वरसे पीडितहुआ मनुष्य तिलोंके तेलसे युक्त किये लहसनके कल्कको नित्य खाता रहता है वह विषमज्वर और अत्यंत भयंकर वातके रोगोंसे मुक्त होताहै ॥ २०७ ॥

अथ विषमज्वरपर अष्टांगधूप ।

पलञ्च निम्बस्य दलानि कुष्ठं वचा गुडं गुग्गुलुसर्षपाणाम् ॥
हरीतकी सर्पिर्युतं च धूपं विनाशनं वै विषमज्वराणाम् ॥२०८॥

नींबके पत्ते ४ तोले और कूट, वच, गुड, सरसों, हरड़ै, गूगल ये सब उन मानसे मिला महीन पीस घृतसे युक्तकर धूप देनेसे विषमज्वरोंका नाश होता है ॥ २०८ ॥

अथ वेलाज्वरआदिकोंका उपाय ।

सुरसामूलमावृत्य हस्ते बद्धः शुभ दिने ॥ वेलाज्वरादिकान् हन्ति भूतज्वरनिवारणः ॥ २०९ ॥ मुस्तामृतामलक्यश्च नागरं कण्टकारिका ॥ कणाचूर्णान्वितः क्वाथस्तथा मधुसमन्वितः ॥ ॥२१०॥ एकाहिकं वा वेलाद्यं ज्वरं जातं व्यपोहति ॥२११॥ रसोनबीजं विहाय खण्डं कृत्वा निशासु च॥तक्रमध्ये विनिक्षिप्य प्रभाते घृतसंयुतम् ॥ २१२ ॥ सेवितश्च ज्वरान्हन्ति वेलाद्यान्देहधातुगान् ॥२१३॥ पिप्पलीवर्द्धमानश्च पिबेत्क्षीरं रसायनम्॥महौषधं नागरञ्च धान्यं चन्दनवालुकम् ॥२१४॥ गुडूचिकापयः पिबत्तृतीयकज्वरापहम् ॥ अपामार्गस्य मूलञ्च नीलीमूलमथापि वा ॥ २१५॥ लोहितेन तु सूत्रेण आमस्तकप्रमाणतः॥वामकर्णे कटौ बद्धा ज्वरं हन्ति तृतीयकम्॥२१६॥

वानरेन्द्रमुखं दिव्यं तरुणादित्यतेजसम् ॥ ज्वरमेकाहिकं घोरं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ २१७ ॥

तुलसीकी जड़को शुभदिनमें लाके हाथपर बांधे तब वेलाज्वर और भूतज्वरआदि नाशको प्राप्त होते हैं ॥ २०९ ॥ नागरमोथा, गिलोय, आंवला, सूंट, कटेली इनका काथ पीपलका चूर्ण और शहद मिला पीवे ॥ २१० ॥ इससे एकाहिकज्वर, वेलाआदिज्वर दूर होता है ॥ २११ ॥ लहसनके बीजोंको निकास और रात्रिमें टुकड़े बना तक्रके बीचमें स्थापित कर पीछे प्रभातमें घृतसे संयुक्त कर ॥ २१२ ॥ सेवे । यह वेलाआदि और देहके धातुगत आदि ज्वरोंको नाशता है ॥ २१३ ॥ वर्द्धमान पीपल, दूध, रसायन औषध, इनको पीवे और सूठ, सफेद लहसन, धनियां, चदन, नेत्रवाला इनको अलग अलग सेवे ये विषमज्वरको नाशते हैं ॥ २१४ ॥ गिलोयका रस तृतीयकज्वरको नाशता है, ऊंगाकी जड़को अथवा नीलकी जड़को ॥ २१५ ॥ शिरके प्रमाण लालसूत्रमें बांध पीछे वामे कानमें और कटीपर बांधनेसे तृतीयकज्वरका नाश होता है ॥ २१६ ॥तरुणसूर्यके तेजके समान तेजवाला सुग्रीव नामक वानरोंका राजा उसके दिव्यमुखको देख घोररूपी एकाहिकज्वर शीघ्र नष्ट होजाता है ॥ २१७ ॥

अथ ज्वरनाशक हनुमान्‌का पूजन।

वानराकृतिमालिख्य खटिकायाः पुनः शृणु ॥ गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैरर्चयन्ति भिषग्वराः ॥ २१८ ॥

खड़ियासे वानरकी आकृतिको लिख गंध, पुष्प, चावलोंके अक्षत इनसे ज्वर हटानेके लिये वैद्यवर पूजा करते हैं ॥ २१८ ॥

अथ ज्वरनाशक मन्त्र।

ओं ह्रां ह्रीं क्लीं सुग्रीवाय महाबलपराक्रमाय सूर्य्यपुत्रायामितत-जसे ऐकाहिकद्व्याहिकत्र्याहिकचातुर्थिकमहाज्वरभूतज्वरभय-ज्वरक्रोधज्वरवेलाज्वरप्रभृतिज्वराणां दह दह पच पच अवत अवत वानरराज ज्वराणां बन्ध बन्ध ह्रां ह्रीं ह्रूं फट् स्वाहा। नास्ति ज्वरः । ज्वरापगमनसमर्थज्वरस्त्रास्यते ॥२१९॥

(मंत्र) "ओंह्रांह्रींक्लीं सुग्रीवाय महाबलपराक्रमाय सूर्यपुत्रायामिततेजसे ऐकाहिकद्याहिक-त्र्याहिक चातुर्थिक महाज्वर भूतज्वर भयज्वर क्रोधज्वरवेलाप्रभृतिज्वराणां दहदह पचपच अवत अवत वानरराज ज्वराणां बंधबंध ह्रांह्रींह्रूं फट्स्वाहा । नास्ति ज्वरः । ज्वरापगमनसमर्थज्वर-स्त्रास्यते" इसमंत्रसे विषमज्वर दूर होजाता है ॥ २१९ ॥

अथ चार वर्णवाले ज्वरोंके चिह्न।

पुनश्चात्र प्रवक्ष्यामि ज्वराणां रूपलक्षणम्॥ २२० ॥

ज्वरोंके रूप और लक्षणको फिर कहता हूं॥ २२० ॥

अथ ब्राह्मणज्वर।

संतप्तकाञ्चनाभासो हुताशनसमप्रभः॥
उड्डीनयज्ञोपवीती च रौद्रो ब्राह्मणरूपकः॥ २२१ ॥

अच्छी तरह तपाये हुए सोनाके समान कांतिवाला, अग्निके समान प्रकाशित और भयंकर यज्ञोपवीत अर्थात् जनेऊवाला ऐसा रौद्रसंज्ञक ब्राह्मणवर्णवाला ज्वर होता है२२१॥

अथ क्षत्रियज्वर।

जपाकुसुमसङ्काशो रौद्रदंष्ट्रान्वितस्तथा॥
खड्गहस्तो महारौद्रो माहेन्द्रः क्षत्रियो मतः॥२२२॥

जपाके फूलके समान प्रकाशवाला, भयंकर डाढ़ोंसे अन्वित और तलवारको हाथमें लिये हुए और महादारुण ऐसा माहेंद्रसंज्ञक ज्वर क्षत्रियवर्णवाला होता है॥ २२२ ॥

अथ वैश्य ज्वर।

पञ्चकप्रसवाभासतप्तकाञ्चनभूषितः॥
दण्डहस्तो मध्यवेगी वैश्यो ज्वरेश्वरो मतः॥ २२३ ॥

पांच प्रकारके फूलोंके समान आकृतिवाला और तपायेहुये सोनासे भूषित हुआ, दंडको हाथमें लेनेवाला और मध्यमवेगवाला ऐसा ज्वरेश्वरसंज्ञक ज्वर वैश्यवर्णवाला कहाता है॥ २२३ ॥

अथ शूद्र ज्वर।

कृष्णमेघाञ्जनाकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रोज्वलाननः॥
त्रिनेत्रो ज्वलनप्रभः कालः शूद्रो मतस्तथा॥ २२४ ॥

काले मेघ और पर्वतके समान आकृतिवाला, तीक्ष्ण डाढ़ोंसे प्रकाशित मुखवाला, तीन नेत्रोंवाला, अग्निके समान कांतिवाला और कालरूप ऐसा ज्वर शूद्रवर्णवाला होता है॥ २२४ ॥

अथ ब्राह्मणज्वरका लक्षण और शांति।

तीक्ष्णवेगः क्षुधायुक्तः शुचिर्द्वेष्टा व्रतप्रियः॥ मूत्रञ्च किंशुकाभासं पाठशीलोऽतिजल्पकः॥ २२५॥ बहुश्वासी तृषाक्रान्तो

रौद्रब्राह्मणपीडितः ॥ तस्य स्नानं जपं होमं कृत्वा शान्तिः प्रपद्यते ॥ २२६ ॥

तीक्ष्ण वेगवाला, भूखसे युक्त, पवित्र, वैरको करनेवाला, व्रतमें प्यार करनेवाला, केशूके रंगके समान मूत्रको उतरनेवाला, पाठमें अभ्यासवाला और अत्यंत बोलनेवाला ॥ २२५ ॥ बहुत श्वासोंको लेनेवाला, तृषासे आक्रांत हुआ ऐसा मनुष्य रौद्रसंज्ञक ब्राह्मणवर्णवाले ज्वरसे पीड़ित जानना। उसकी शांति स्नान, जप, होमादिसे करे ॥ २२६ ॥

अथ क्षत्रियज्वरका लक्षण और शांति।

तीक्ष्णज्वरोऽतितृष्णश्च रक्तमूत्रश्च मूत्र्यते ॥ कुरुते युद्धवार्त्तांश्च उत्तिष्ठति बलातुरः ॥ २२७ ॥ ततनेत्रो महाश्वासः क्षुधया पीडितस्तथा ॥ मधुगन्धो मुखे स्वेदो माहेन्द्रक्षत्रियार्दितः ॥ २२८ ॥ तस्यादौ ग्रहहोमं तु देवतास्तवनं शुचिः ॥ दानैर्जपादिभिः कार्य्यैः प्राप्यते सिद्धिसङ्गमः ॥ २२९ ॥

तीक्ष्णज्वर हो, अत्यंत तृषा लगे, लालमूत्र उतरे, युद्धकी बातको करे, बलसे पीड़ितहुआ भी उठ खडा हो ॥ २२७ ॥ गर्वितनेत्रोंवाला हो, महाश्वाससे संयुक्त हो, सबकालमें क्षुधासे पीड़ित हो, मधुसरीखे गंधसे युक्त हो और मुखपर पसीनेसे संयुक्त हो ऐसा मनुष्य माहेंद्रसंज्ञक क्षत्रियवर्णवाले ज्वरसे पीड़ित जानना ॥ २२८ ॥ इसकी शांतिके लिये आदिमें ग्रहोंका होम, देवताकी स्तुति, दान, जप इन्होंका होना जरुरी है ॥ २२९ ॥

अथ वैश्यज्वरका लक्षण और शांति।

मध्यवेगः पीतगात्रः स्वप्नशीलोऽरुचिस्तथा ॥ शीतपवनहृद्दुष्णः कण्ठस्वेदोऽतिविह्वलः ॥ २३० ॥ बहुमूत्री भक्तियुक्तो मौनी पीतान्तलोचनः ॥ नातितृष्णातुरः स्निग्धः स विज्ञेयो ज्वरेश्वरः ॥ २३१ ॥ तत्र स्वस्त्ययनातिथ्यं द्विजदैवतपूजनम् ॥ जपहोमादिकं सर्वं कर्त्तव्यं शान्तिहेतुना ॥ २३२ ॥

मध्यमवेगवाला, पीले शरीरवाला, शयनको करनेवाला और अरुचिसे युत हुआ, शीतलपवनको वर्जनेवाला, गरमस्वभाववाला, कंठमें पसीनासे संयुक्तहुआ और अत्यंत विह्वल हुआ ॥ २३० ॥ बहुतसे मूत्रको उतारनेवाला, भक्तिसे युक्त और मौनी और नेत्रोंके अंतमें पीलेपनसे संयुक्त और अत्यंत तृषासे नहीं पीडित हुआ, चिकना शरीरवाला ऐसा

मनुष्य ज्वरेश्वरसंज्ञक वैश्यवर्णवाले ज्वरसे पीडित जानना ॥ २३१ ॥ इसमें शांतिके लिये कल्याणके कर्म, अतिथिकी सेवा, ब्राह्मण और देवतोंकी पूजा, जप, होम, इन सबोंका करना जरूरी है ॥ २३२ ॥

अथ शूद्रज्वरका लक्षण और शांति ।

हृच्छूलश्चातिसारी वा मत्स्यगन्धाङ्गलेपनः ॥ उन्मादी चातितृप्ताक्षो रतेषु विकलेन्द्रियः ॥ २३३ ॥ प्रणयी त्वध्वनौ भीरुर्श्वासं नैवाभिकाङ्क्षया ॥ कालभृङ्गारकेणापि शूद्रे सिद्धिर्न जायते ॥ २३४ ॥

हृदयमें शूलवाला, अतीसारसे संयुक्त हुआ, मछलीके गंधके समान गंधवाला और अंगोंपर लेप करनेवाला, उन्मादसे संयुक्त और अतितृप्तहुए नेत्रोंवाला और भोगमें विकलहुई इंद्रियोंवाला ॥ २३३ ॥ नम्रतासे युक्त हुआ और रस्तेमें चलनेसे डरनेवाला और इच्छासे श्वासको नहीं लेनेवाला और भंगरा सरीखे रूपवाला ऐसा मनुष्य शूद्रज्वरसे पीड़ित होता है इसमें सिद्धि होती नहीं ॥ २३४ ॥

अथ सर्वरोगोंपर उपचार ।

स्नानं दानजपं सुरार्चनविधिर्होमादयः प्रीतता भूतानाञ्च विशेषणेन बहुधा तृप्तिं च कुर्य्यात्ततः ॥ गोभूमिं कनकान्नपानविधिना दानेन शान्तिर्भवेत्सर्वेषां च रुजां विनाशनमिदं शंसन्ति सत्यव्रताः ॥ २३५ ॥

इस ज्वरकी शांतिके लिये स्नान,दान, जप, देवतोंकी पूजा, होम आदिको करना और मनुष्योंको प्रसन्नता और भोजनसे तृप्त करना, गाय, पृथिवी, सोना, अन्न, पानी इनका दान करना, ऐसे करनेसे सब रोगोंकी शांति होती है ऐसे सत्यव्रतवाले मुनि कहते हैं ॥ २३५ ॥

अथ ज्वरवालेको पथ्यआहारादि ।

वेगं कृत्वा विषं यद्वदाशये लीयते बलम् ॥ कुप्यते प्रबलं भूयः काले दोषो विषं तथा ॥२३६॥ शालिषष्टिकभक्तानां यूषं मुद्गाढकीषु च ॥ पूर्वोक्तानि च शाकानि वातघ्नानि भवन्ति हि ॥ ॥२३७॥ शतपुष्पा च जीवन्ती तण्डुलीयकवास्तुकम् ॥ घृतेन भाजिका सिद्धा शाकपत्राण्यमूनि च ॥ २३८॥ लावतित्तिरमांसादिवार्त्ताकानां तथातुरे॥मृगछिक्करिकाद्यानि जाङ्ग-

लानि प्रयोजयेत् ॥२३९॥ कोशातकी पटोलं च शुण्ठीकं च हितं भवेत् ॥

जैसे विषवेगको करके आशयमें लीन होके फिर समयपर अत्यंत कुपित होता है तैसे ही दोष भी समयपर फिर कुपित होता है ॥ २३६ ॥ शालिचावल, सांठीचावल, मूंग और अरहरका यूष और पूर्वोक्त शाक ये सब वातको नाशते हैं ॥२३७॥ सौंफ, जीवंती, चौंलाई, बथुवा, इन्होंकी भाजीको घृतमें सिद्धकर प्रयुक्त करे ॥ २३८ ॥ लावा, तीतर, बत्तक, मृग, छिंकर इन आदि जांगलदेशके जीवोंके मांसोंको भी रोगीको देवे ॥ २३९ ॥ तोरी, परवल, सूंठ ये भी हित हैं ॥

अथ ज्वरवालेकूं अपथ्य ।

वर्जयेद्द्विदलान्नानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ २४० ॥ न पिच्छलानि तैलानि तथाम्लानि च वर्जयेत् ॥ दधिमस्तुविशालानि क्षुद्रान्नानि भिषग्वरः ॥ २४१ ॥ बहूदकञ्च ताम्बूलं घृतं वापि सुरामपि ॥ २४२ ॥ क्रोधं शोकञ्च त्यक्त्वा वै सदा सौख्यं विभुञ्जते ॥ न कुर्य्याज्जागरं रात्रौ दिवास्वप्नञ्च वर्जयेत् ॥२४३॥ शकटवाजिकरिद्विपिवाहनं प्रबलं परिवर्जयेत्तु सततम् ॥ ज्वरिणमाशु सुखं बुभुजे सुधीः शुभविधाननिधान उपस्थितः॥२४४॥

विदलसंज्ञक और दाहको करनेवाले और भारी ऐसे अन्नोंको त्यागे ॥ २४० ॥ कफकारी तेल सेवने हुए और खट्टे ऐसे शाकोंको भी वर्जे, दही,दहीका पानी, रसाला, क्षुद्रअन्न ॥२४१॥ बहुत पानी, नागरपान, घृत, मदिरा ॥ २४२ ॥ क्रोध, शोक इन्होंको त्यागके रोगी सवकालमें सुखको प्राप्त होता है, रात्रिमें जागे नहीं और दिनमें सोवे नहीं ॥ २४३ ॥ गाडी, घोड़ा, हस्ती, गेंड़ा इन्होंकी सवारीको रोगी निरंतर त्यागे एसे त्यागनेसे ज्वरवालेको सुख उपजता है ॥२४४ ॥

अथ ज्वरमुक्तोंका वर्तना ।

व्यायामं च व्यवायं च अशनं रात्रिजागरम् ॥ ज्वरमुक्तो न सेवेत तदा सम्पद्यते सुखम् ॥२४५॥इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने ज्वरचिकित्सानाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

ज्वरसे मुक्त हुआ मनुष्य कसरत, स्त्रीसंग, अति भोजन, रात्रिको जागना इन्होंको नहीं सेवे

तब सुखको प्राप्त होता है ॥ २४९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने ज्वरचिकित्सानाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अथातिसारचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ अथातीसारविज्ञानं भेषजं शृणु पुत्रक ॥ ज्वरजो वातिसारश्च भेषजं चोपदिश्यते॥१॥ दोषसंशमनं किञ्चित् किञ्चिच्च धातुदूषणम्॥स्वस्थवृत्तौ मतं किञ्चिद्द्रव्यंत्रिविधमुच्यते ॥ २ ॥तच्च दैवपथाश्रयं युक्तिपथाश्रयं सत्त्वावजयश्च॥ मन्त्रौषधमणिमंगलबल्युपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिधानादीति दैवपथाश्रयम् ॥ आहारव्यवहारौषधद्रव्याणां योजनेति युक्तिपथाश्रयम् ॥ अहितेभ्योऽर्थेभ्यो मनोनिग्रह इति सत्त्वावजयश्च ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं--हे पुत्र!अतीसारविज्ञान और औषधको सुन--ज्वरातिसार हो अथवा अतीसार हो तहां औषधका उपदेश कियाजाता है ॥ १ ॥ दोषको शमन करनेवाला कोई औषध है और धातुको दूपित करनेवाला कोई औषध है और स्वस्थवृत्तिमें कोई औषध माना है ऐसे औषध तीन प्रकारके हैं ॥ २ ॥ दैवपथाश्रय, युक्तिपथाश्रय, सत्वावजय ऐसे औषध तीन प्रकारके हैं। मन्त्र, औषध, मणि, मंगल, बलि, भेट, होम, नियम, प्रायश्चित्त, व्रत, स्वस्त्ययन, प्राणिधान आदि दैवपथाश्रय अर्थात् देवके मार्गसे आश्रित हुआ औषध कहाता है. आहार, व्यवहार, औषध इन्होंकी योजना की जावे वह युक्तिपथाश्रय अर्थात् युक्तिके मार्गसे आश्रित हुआ औषध कहाता है. अहित अर्थोंसे मनका निग्रह होना यह सत्त्वावजय औषध कहाता है ॥ ३ ॥

अथ अतिसारका लक्षण ।

स्निग्धातिशीतगुरुशीतलपिच्छलान्नं दुष्टाशनातिविषमाशनपानभक्ष्यम्।अद्यादजीर्णमथ शोकविषैर्भयैर्वा शोकार्त्तिदुष्टपयसा तु विपर्य्ययेषु ॥४॥ दौर्बल्यतां विषमभोजनकेन चाप्सु संभिद्यते मलमजीर्णं निहन्ति चाग्निः॥सञ्जायते हि मनुजस्य तदातिसारो हत्वोदराग्निं मनुजस्य तदातिसारः ॥ ५ ॥ सञ्जायते

स तु पुनर्बहलो मलेन स्यात्पञ्चधा निगदितो मुनिभिर्विधिज्ञैः॥ रक्ष्ये समासत उदीर्णरुजस्य नाशः क्राथादिकैर्भवति पाचनकैश्च पूर्वम् ॥ ६ ॥

चिकना, अत्यन्त शीतल, भारी, शीतल, कफकारी, दुष्ट ऐसे भोजन और अत्यन्त भोजन, विषम भोजन और विषमपान और अजीर्णमें भोजन इन्होंसे और शोक, विष, भय इन्होंसे और शोककारिके दुष्ट हुए दूधसे अथवा शयनादिके विपरीतपनेसे॥४॥ दुर्बल मनुष्यका विषम भोजनसे अपक्व मल जलमें फैलकर अग्निको शांत कर देता है उसी समय मनुष्यके अतीसार होता है५॥ वह मलसे अत्यंत बढ़ा होता है और विधिको जाननेवाले मुनियोंने वह पांच प्रकारका कहा है। बढ़े हुए रोगके नाशको प्रथम क्वाथ आदि और पाचनकरके रक्षित करना ॥ ६ ॥

अथ ज्वरातिसार ।

युगपज्जायते यस्य ज्वरश्चैवातिसारकैः॥ज्वरातिसारो घोरोऽसौ कष्टसाध्यो मनीषिणाम् ॥ ७॥ न पित्तेन विना सोऽपि जायते शृणु पुत्रक ॥ तस्य नो लंघनं प्रोक्तं ज्वरे चैवातिसारके ॥८॥

जिस रोगीके एककालमें ज्वर और अतीसार उपजे वह घोररूप ज्वरातिसार कहाता है। यह बुद्धिमानोंको भी कष्टसाध्य है ॥७ ॥ हे पुत्र! सुन पित्तके विना ज्वरातीसार नहीं होता है इसवात ज्वरातीसारमें लंघन नहीं कहा है ॥ ८ ॥

अथ अतीसारकी चिकित्सा ।

सुवर्चलमतिविषाहिंगुपथ्याकलिङ्गकैः॥ शुण्ठी वामातिसारघ्नी शूलघ्नी ग्राहिपाचनी ॥९॥पथ्यादारुवचामुस्तानागरातिविषा-युतैः॥ आमातिसारनाशाय क्वाथमेभिः पिबेन्नरः ॥ १० ॥

काला नमक, अतीस, हींग, हरड़े, इंद्रजव,सोंठ इन्होंकी गोली आमातीसार, शूल, इनको नाशती है पाचन है और कब्जको करती है ॥ ९ ॥ हरड़े, देवदार, वच, नागरमोथा, सोंठ, अतीस इन्होंका क्वाथ आमातीसारको नाशता है ॥ १० ॥

अथ ज्वरातिसारके ऊपर उत्पलषट्क ।

उत्पलं धान्यकं शुण्ठी पृश्निपर्णी बलायुतम्॥बालबिल्वं गवां तक्रेणात्युष्णेन च पेषयेत् ॥११॥ तेन लाजाकृतं मण्डं देय-मानीय शीतलम्॥ ज्वरातिसारशमनं हुताशनबलप्रदम् ॥१२॥

नीला कमल, धनियां, सोंठ, पिठवन, खरैंहटी, बेलगिरीका गूदा इनको गायके तक्रसे पीसे

॥ ११ ॥ पीछे उसमें धानकी खीलोंका मंड बना शीतल कर पीवे । यह ज्वरातीसारको शांत करता है और जठराग्निको बल देता है ॥ १२ ॥

अथ शुण्ठ्यादि काथ ।

शुण्ठीविषातलधरामृतवत्सकानां तिक्ताह्वयं कनकशीतलकः कषायः ॥ पाने विधेयमधुना प्रतिसाधितस्तु ज्वरातिसारशमनाय सदा प्रदेयः ॥ १३ ॥

सोंठ, अतीस, कलौंजी, जीरा, गिलोय, इन्द्रजव, कुटकी, पीला कमल, चन्दन इन्होंका काथ पीना । यह सब कालमें ज्वरातीसारको नाशता है ॥ १३ ॥

अथ पाठादि काथ ।

पाठेन्द्रभूनिम्बघनामृतानां सपर्प्पटः काथ इह प्रशस्तः ॥
आमातिसारं च जयेद्द्रुतं वा ज्वरेण युक्तं सहजं च तीव्रम् ॥ १४ ॥

स्योनापाठा, इन्द्रजव, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, पित्तपापडा, इन्होंका काथ आमातीसारको और ज्वरातीसारको जीतता है इसवास्ते श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

अथ शुंठ्यादि पाचन ।

शुण्ठी बालकमुस्ता बिल्वं पाठा विषा च धान्यानि ॥
पाचनमरुचौ छर्दिज्वरातिसारं विनाशयति ॥ १५ ॥

सोंठ, नेत्रवाला, नागरमोथा, वेलगिरी, स्योनापाठा, अतीस, धनियां इन्होंका काथ पाचन है। अरुचि, छर्दि और ज्वरातीसारको नाशता है ॥ १५ ॥

अथ वत्सकादि काथ ।

वत्सकश्च सुरदारुरोहिणीधान्यबिल्वमगधात्रिकण्टकम् ॥
निम्बबीजगजपिप्पलीवृकीक्वाथ एवमतिसारभेषजम् ॥ १६ ॥

इन्द्रजव, देवदार, हरडे, धनियां, बेलगिरी, पीपल, गोखुरू, गल्ला, गजपीपल, काश्मीरी पाठा इन्होंका काथ अतिसारमें अति उत्तम औषध है ॥ १६ ॥

अथ पञ्चमूली काथ ।

पञ्चमूलीबलाबिल्वगुडूचीमुस्तनागरैः ॥ पाठाभूनिम्बह्रीबेरकुटजत्वक्फलैर्भृतः ॥ १७ ॥ इति सर्वानतीसारान्वमिश्वासज्वरार्दितान् ॥ सशूलोपद्रवांश्चासौ हन्याच्चासुरदारुणम् ॥ १८ ॥ पञ्च-

सूल्यतिसामान्या योज्या पित्ते कनीयसी ॥ महती पञ्चमूली तु वातश्लेष्मज्वरे हिता ॥ १९ ॥

पञ्चमूल, खरैंहटी, बेलगिरी, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ, श्योनापाठा, चिरायता, नेत्रवाला, कूडे-की छाल, इन्द्रजव इन्होंका काथ ॥ १७ ॥ सबप्रकारके अतीसार, छर्दि, श्वासरोग, ज्वर शूल, इन्होंको नाशता है ॥ १८ ॥ पित्तदोषमें लघुपञ्चमूल वर्तना। वात और कफदोषमें बृहत्प-ञ्चमूल वर्तना ॥ १९ ॥

अथ उत्पलादिपाचन ।

उत्पलं दाडिमत्वक्च केशरं तथा मधु पद्मकम् ॥
धात्री पिष्टा तण्डुलतोयैः पाचनं ज्वरातिसारघ्नम् ॥ २० ॥

नीला कमल, अनारकी छाल, केशर, कमल, मौरेठी आंवला इन्होंको चावलोंके पानीसे पीस शहद मिला पीवे । यह पाचन ज्वरातीसारको नाशता है ॥ २० ॥

अथ उशीरादि क्वाथ ।

उशीरं धान्यकं मुस्तं सबिल्वं बालकं बला ॥ तथा च धातकी-पुष्पं कषायस्य प्रशस्यते ॥ २१ ॥ ज्वरातिसारशमनं सहशो-णितपैत्तिकम् ॥ निहन्ति शोफं सकलं रुचिप्रदविपाचनम् ॥ २२ ॥

खश, धनियां, नागरमोथा, बेलगिरी, नेत्रवाला, खरैंहटी, धवके फूल इन्होंका काथ श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥ ज्वरातिसार, रक्तातिसार, पित्तातिसार, सब प्रकारका शोजा इन्होंको शांत करता है और रुचिको देता है और पाचन है ॥ २२ ॥

विगतामातिसारं चिरोत्थितं रक्तसहितमतिवृद्धम् ॥
मधुना सहितः शमयत्यरलुः पुटपाकनिर्य्यासितः ॥ २३ ॥

श्योनापाठाको पुटपाककी विधिसे पकाके रसको निचोड़ उसमें शहद मिला पीवे यह पक्कातिसार और पुराना अतीसार और वढे हुए रक्तातिसारको भी नाशता है ॥ २३ ॥

जम्ब्वादिस्वरस ।

जम्बूवटोदुम्बरप्लक्षको हि नागश्च प्रपौण्डरिकं शमी च ॥ गुन्द्रः सचूतोऽम्बुदजीविकाया आसां हि पुञ्जञ्च सदा विदध्यात् २४ ॥ प्रस्थद्वयेन प्रपिबेद्धि तावद्यावद्विशेषांशमिदं प्रजायते ॥ पुनः कटाहे विपचेच्च सम्यग्दार्वीप्रलेपः स्वरसश्च यावत् ॥ २५ ॥ उत्तार्य्य नूनं भिषगुत्तमेन क्षौद्रेण मिश्रं हरतेऽतिसारम् ॥ २६ ॥

जामुन, वड़, गूलर, पकरिया, नागकेशर, कमल, जाठी, मोथा, तृण, आंब, नागरमोथा, जीवंती इन्होंके फूलोंको सबकालमें लेवे ॥ २४ ॥ पीछे १२८ तोले पानीमें पकावे । जब चौथाईभाग शेष रहे तब छानके फिर कढ़ाईमें घालि फिर पकावे जब कड़छीपर चेपनेलगे ॥ ॥ २५ ॥ तब उतार उत्तमवैद्यको निश्चय शहद मिला रोगीको देना चाहिये यह अतिसारको हरता है ॥ २६ ॥

काकमाचीका प्रयोग ।

हारीतेन तथा प्रोक्ता काकमाची सुपूजिता ॥
आलोक्यानेकशास्त्राणि आत्रेयेणापि पूजिता ॥ २७ ॥

जैसे अनेक शास्त्रोंको देख आत्रेयजीने काकमाची अर्थात् भोलणीनामसे प्रसिद्ध मकोह-विशेष ओषधी पूजित की है तैसे ही हारीतने भी यही ओषधी पूजी है अर्थात् अतिसारमें श्रेष्ठ समझी है ॥ २७ ॥

जंबूत्वगादिका अवलेह ।

जम्बूत्वचं वत्सकवल्कलं च निष्क्वाथ्य नूनं सलिले समीरणम् ॥
चतुर्विभागेष्वपि शेषितेषु उत्तार्य्य वस्त्रेष्वथ गालयेच्च ॥ २८ ॥
पुनः कटाहे विपचेच्च सम्यग्दार्वीप्रलेपः स्वरसस्तु यावत् ॥
उत्तार्य्य शीते मधुना विमिश्रं लीढं हरेदप्यतिसारमुग्रम् ॥ २९ ॥

जामनकी छल, कुड़ाकी छाल, इनका पानीमें क्वाथ बना जब चौथाई भाग शेष रहे तब उतारि वस्त्रसे ॥ २८ ॥ छान फिर कड़ाहीमें घाल अच्छीतरह पकावे । जब कड़छीपै चिपकने लगे और स्वरसरूप रहे तब अग्निसे उतार शीतलकर शहद मिला चाटे । यह दारुण अतीसारको हरता है ॥ २९ ॥

अतिसारका पूर्वरूप ।

कुक्षौ दरे वक्षसि नाभिदेशे पायुप्रदेशे सततं निरुद्धे ॥
वातस्य रोधश्च शकृद्विभङ्गो भवन्ति सर्वेष्वतिसारकेषु ॥ ३० ॥

सर्व अतिसाररोगमें कुक्षि, उदर, छाति, नाभिदेश, गुदामण्डल, ये सब स्थान रुककर अधोवायुका रोध और विष्ठाका भंग होता है ॥ ३० ॥

अथ वातातिसारका लक्षण और चिकित्सा ।

सफेनिलं पिच्छलमेव रूक्षमल्पं शकृदामसशब्दशूलम् ॥ कृष्णं
भवेद्गात्रविचेष्टनञ्च वातातिसारे प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३१ ॥

तस्यादौ लङ्घनं चैकमल्पे वा नैव लंघनम्॥ तस्मादेयं कषायं तु पानभोजनमेव च ॥ ३२ ॥

झागोंसे मिलाहुआ गाढा और रूखा मल उतरे और थोडा वारवार आमसहित आवे और दिशाजानेके समय शब्द और शूलको उपजावे और शरीर आदि कृष्णवर्ण होजावे उसको वातातीसार कहते हैं ॥ ३१ ॥ उसके आदिमें एक लंघन करना और अल्परूप वातातिसारमें लंघन नहीं करना उससे क्काथ, पान, भोजन ये देने चाहिये ॥ ३२ ॥

अतिसारका पाचक कल्क ।

उदीच्यधान्यस्य जलेन कल्कं पाने हितं पाचयतेऽतिसारम्॥ तृष्णापहं दाहविनाशनञ्च सशूलहिक्कासु विनाशनं स्यात्३३॥

नेत्रवाला, धनियां इनको पानीमें पीस कल्क वना खानेसे अतिसारको पकाता है और तृषा, दाह, शूल, हिचकी इनको नाशता है ॥ ३३ ॥

वालकादि कल्क ।

वालकद्वयमोचहरीतकीपर्पटेन सहितं जलेन च ॥ क्काथपानमिदमेवातिसारे नाशमाशु कुरुते च विट्छान्तिम् ॥ ३४ ॥

नेत्रवाला, खश, मोचरस, हरडै, पित्तपापडा, इनका पानीमें क्वाथ वना अतीसार रोगी पीवे । यह विष्टाको शांत करता है ॥ ३४ ॥

शालिपर्ण्यादिपानक ।

शालिपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिका॥वालाश्वदंष्ट्रा बिल्वानि पाठा नागरधान्यकम् ॥३५॥एतदाहारसंयोगे हितं सर्वातिसारिणाम् ॥

शालवन, पिठवन, वडी कटेहली, छोटी कटेहली, नेत्रवाला, गोखरू, बेलगिरी, श्योनापाठा, सोंठ, धनियां ॥ ३५ ॥ यह द्रव्य भोजनके संयोगमें अतीसार रोगियोंको हित हैं ॥

तिंदुकादिरसपानक ।

तिन्दुकत्वचमाहृत्य काश्मरीपत्रवेष्टिताम्॥३६॥मृदा विलिप्य विधिवद्दहेन्मृद्वग्निना भिषक् ॥ रसं गृहीत्वा मधुसंयुतं पानं सर्वातिसारघ्नञ्च ॥ ३७ ॥

और तेंदुआवृक्षकी छालको ले कंभारीके पत्तोंसे वेष्टित करे ॥ ३६॥ पीछे माटीसे विधिपूर्वक लीपा कोमल अग्निसे दग्ध करे पीछे रस निकाल शहदसे संयुक्त कर पीवे यह सवप्रकारके अतीसारोंको नाशता है ॥ ३७ ॥

कुटजपुटपाक ।

तुलामथार्द्रां गिरिमल्लिकायाः संकुट्य कर्षञ्च समादधीत ॥ तस्मिन्नसपूते पलसंसितञ्च देयञ्च पिष्ट्वा सह शाल्मलेन ॥ ३८ ॥ पाठा समङ्गातिविषा समुस्ता बिल्वञ्च पुष्पाणि च धातकीनाम् ॥ प्रक्षिप्य भूयो विपचेच्च तावद्दार्वीप्रलेपः स्वरसस्तु यावत् ॥ ३९ ॥ पीतस्त्वसौ कालविदा जलेन मण्डेन वाजापयसाऽथवापि ॥ निहन्ति सर्वमतिसारमुग्रं कृष्णं सितं लोहितपीतकञ्च ॥ ४० ॥ दोषं ग्रहण्यां विविधं च रक्तपित्तं तथार्शांसि सशोणितानि ॥ असृग्दरं चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम् ॥ ४१ ॥

कूड़ाकी गीली छालको ४०० तोलेभर ले और कूट पानीमें अग्निपै पकावे जब चौथाई-भाग शेष रहे तब वस्त्रमें छान फिर अग्निपै धर मोचरस ॥ ३८ ॥ श्योनापाठा, मँजीठ, अतीश, नागरमोथा, वेलगिरी, धवके फूल, ये सब चारचार तोले भर ले पूर्वोक्तमें मिलाके पकावे जब कड़छीपै चिपने लगे और स्वरस ही हो तब उतारे ॥ ३९ ॥ पीछे कालको जाननेवाले रोगीने मंड, बकरीका दूध, इनके संग पीनी । यह-कृष्ण, सफेद, लाल, पीला, ऐसे वर्णके सब अतिसारोंको नाशता है ॥ ४० ॥ और ग्रहणी दोष, अनेक प्रकारकी रक्तकी बवासीर और असाध्यरूप प्रदर रोग इनको निश्चय हरता है । इसको 'कुटजाष्टक' कहते हैं ॥ ४१ ॥

अथ पित्तातिसारका लक्षण और चिकित्सा ।

घर्मेण चोष्णान्नविभोजनेन घर्मेण तप्तोदकसेवनेन ॥ शोकेन तापेन रुषा कटुत्वे क्षारेण पित्तासृक्सारकः स्यात् ॥ ४२ ॥ तेनारुणं पीतमथातिनीलं दुर्गन्धशोषज्वरपाण्डुयुक्तम् ॥ भ्रमार्तिमूर्च्छा च तृषाङ्गदाहः पित्तातिसारस्य च लक्षणानि ॥ ४३ ॥

घामसे और गरम अन्नके भोजनसे और घामसे तप्तहुए जलके सेवनेसे शोक और तापसे क्रोधसे कडुआ और खारारस सेवनेसे पित्तातिसार उपजता है ॥ ४२ ॥ लाल, पीला, अत्यंतनीला, ऐसा मल उतरे और दुर्गंध, शोष, ज्वर, पांडुरोग, भ्रम, मूर्च्छा, तृषा, ये उपजें और अंगोंमें दाह हो उसको पित्तातीसार जानिये ॥ ४३ ॥

---

१ यही हा० सं० पृ० २२२ में कुटजाष्टकके नामसे है। वहां "संकुट्य पक्त्वा रसमाददीत" का पाठभेद है।

अथ शालिपर्ण्यादिपान।

शालिपर्णीपृश्निपर्णीबलाबिल्वैस्तु साधितः ॥
दाडिमाम्लो हितः पेयः पित्तातीसारशान्तये॥ ४४ ॥

शालवन, पिठवन, खरेहटी, बेलगिरी, इनसे बनायी अनारकी कांजीको पीना यह पित्तातीसारकी शांतिमें हित है ॥ ४४ ॥

अथ तृणमूलका काथ।

कुशकाशेक्षुमूलानां शालीनलभवैर्जलैः ॥
मूलानां क्काथमाहृत्य शस्तं पित्तातिसारिणाम् ॥४५॥

कुश, काश, ईख, इनकी जडोंका चावल और कमलके पानीमें काथ बना पीवे यह पित्तातीसारियोंको श्रेष्ठ है ॥ ४५ ॥

अथ धान्यपञ्चकादिक्काथ।

धान्यपञ्चकमूलानां क्काथः पित्तातिसारिणाम् ॥४६॥

धनियां और पंचमूलका काथ पित्तातिसारियोंको हित है ॥ ४६ ॥

अथ शाल्मलीमूलकल्क।

शाल्मलीमूलत्वग्गुडदुग्धपेषितं च ॥
पानं पित्तातिशमनं सरक्तदाहशोषहरम् ॥ ४७ ॥

सभलकी जड और छाल, गुड़ इनको दूधमें पीस पीवे। यह पित्तातिसार, रक्त, दाह, शोष इनको हरता है ॥ ४७ ॥

अथ कफातिसारलक्षण।

दुःस्वप्नादिश्रमाद्वै सहजजडतया शीतसंसेवनेन स्निग्धाहारातिभोज्यात्सतिलपलगुडैश्चेक्षुखण्डैर्गुरूणाम् ॥ शीतातिस्नानलौल्यात्पयसि दधियुताहारसंसेवनाच्च जातः श्लेष्मातिसारो जठरहुतभुजं हंति पुंसामपाकः ॥ ४८॥ तेन श्लेष्मा शुष्कभेदारुचिः स्यात्सान्द्रं विस्रं जाड्यता रोमहर्षः ॥ मन्दाग्नित्वं मन्दवेगो विशिष्टः सालस्योऽपि विद्धि सारः कफोत्थः ॥ ४९ ॥

दुःस्वप्न अर्थात् बुरीतरह शयन आदिसे, परिश्रमसे, स्वाभाविक जड़पनेसे, शीतलपदार्थके सेवनेसे चिकने भोजनको और अत्यन्तभोजनके करनेसे और तिल, गुड़, मांस, ईखका गांड़ा, भारीपदार्थ इनके सेवनेसे और शीतलपानीमें अत्यंत स्नान और चंचलता करनेसे और

दहीसे युक्तहुये भोजनके सेवनेसे कफातीसार उपजता है और जो आप नहीं पक्ता है पेटकी अग्निको नाशता है ॥ ४८ ॥ जिसका मल चिकना और सफेद गाढ़ा दुर्गंधिलिये शीतल,थोडी पीड़ासहित उतरे और शरीर भारी रहे और भोजनमें अरुचि हो उसको कफातिसार कहते हैं ॥ ४९ ॥

अथ कफातिसारकी चिकित्सा।

तस्यादौ लंघनं प्रोक्तं ज्ञात्वा देहबलाबलम् ॥
पाचनं च विधातव्यं त्र्यूषणाद्यं भिषग्वर ॥ ५० ॥

तिसकी आदिमें देहके बल और अबलको जानके वक्ष्यमाण पाचनको देवे ॥ ५० ॥

अथ त्र्यूषणादिक पाचन।

त्र्यूषणमभया हिङ्गु चातिविषा रुचकं वचायुक्तम् ॥
मधुसहितं लेहनं नृणां गङ्गामपि वाहिनीं रुन्ध्यात् ॥ ५१ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़ै, हींग, अतीश, कालानमक, वच इन्होंके चूर्णमें शहद मिला चाटे यह मनुष्योंके गंगाके समान बहतेहुये अतीसारको रोकता है ॥ ५१ ॥

अथ कालिंगादि कल्क।

कालिङ्गपाठातिविषा बला च सोदीच्यमुस्तामरिचानि शुण्ठी ॥
गुडेन क्षौद्रेण प्रशस्तकल्को रक्तातिसारे कफजे शमाय ॥ ५२ ॥

इन्द्रयव, श्योनापाठा, अतीश, खरैहटी, नेत्रवाला, नागरमोथा, मिर्च, सोंठ इन्होंके कल्कमें गुड़ और शहद मिला खावे,यह रक्तानिसारमें और कफातिसारमें हित है ॥ ५२ ॥

अथ वत्सकादि क्वाथ।

वत्सकातिविषबिल्वमुस्तकं वालकेन सहितं जले न तु ॥
क्वाथपानमतिशूलरक्तपूयनाशं ज्वरयुतेऽतिसारके ॥ ५३ ॥

कूड़ा, अतीश, वेलगिरी, नागरमोथा, नेत्रवाला, इन्होंका पानीमें क्वाथ बना पीवे यह अत्यंतशूल, राद, ज्वर, कफ, इनसे युक्त हुए अतिसारमें हित है ॥ ५३ ॥

अथ रक्तातिसारका लक्षण।

यस्तु रक्तं च शुद्धं विरेचने शोषदाहमतिरिञ्चेत् ॥
रक्तातिसार इति ज्ञेयो वैद्यैर्महामतिभिः ॥ ५४ ॥

जो रोगी मल उतरनेके समय शुद्ध रक्त शोष और दाहसे युक्त छोड़े वह रक्तातिसारी है ऐसे समझदार वैद्योंको जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

अथ धान्यादि क्वाथ।

धान्यनागरमुस्ता च वालकं वालबिल्वकम् ॥
बला नागबला चेति क्वाथो रक्तातिसारिणाम् ॥ ९५ ॥

धनियां, सोंठ, नागरमोथा, नेत्रवाला, कच्ची बेलगिरी, खरैंहटी, बडी खरैंहटी इनका क्वाथ रक्तातिसारवालोंको हित है ॥ ९५ ॥

अथ दाडिमादिक्वाथ।

दाडिमं च कपित्थं च पथ्याजंब्वाम्रपल्लवान् ॥
पिष्ट्वा देया मस्तुयुक्ता रक्तातीसारवारणाः ॥ ९६ ॥

अनार, कैथ, हरडैं, जामुन और आंबके पत्तोंको पीसकर दहींके पानीमें देवे। यह क्वाथ रक्तातिसारको नाशता है ॥ ९६ ॥

अथ गुडबिल्वादियोग।

गुडेन पक्वं दातव्यं बिल्वं रक्तातिसारिणे ॥
दध्ना वा मधुना पथ्या रक्तातीसारनाशिनी ॥ ९७ ॥

पकाहुआ बेलगिरीका फल गुडके साथ रक्तातिसारवालेको देना अथवा हर्र शहदके अथवा दहींके साथ देना इससे रक्तातिसारका नाश होता है ॥ ९७ ॥

अथ वत्सकावलेह।

वत्सकातिविषानागराभयामस्तुसंयुतः ॥
लेहः शस्तोऽस्ति मधुना रक्तातीसारनाशनः ॥ ९८ ॥

कूडा, अतिश, सोंठ, हरडैं इन्होंको पीस शहद और दहींके पानीमें मिला पीवे यह रक्तातिसारको दूर करता है ॥ ९८ ॥

अथ कुटजादिचूर्ण।

कुटजत्वक्च पाठा च विश्वं बिल्वं च धातकी ॥
मधुना सहितं चूर्णं देयं रक्तातिसारनुत् ॥ ९९ ॥

कूडाकी छाल, पाठा, सूंठ, बेलगिरी, धवके फूल, इनके चूर्णको शहदमें मिला देवे। यह रक्तातिसारको हरता है ॥ ९९ ॥

अथ सन्निपातके अतिसारका लक्षण और चिकित्सा।

वराहवासासदृशं तिलाभं मांसधावनाभासम् ॥
पक्वजम्बूफलसदृशं सन्निपातः प्रवहताम् ॥ ६० ॥

शूकरकी वसाके समान और तिलोंके समान कांतिवाला और मांसके धोवनके समान प्रकाशित और पके हुए जामनके फलके समान ऐसा मल उतरे तिसको सन्निपातका अतीसार जानिये ॥ ६० ॥

अथ कुटजाष्टक ।

तुलामथार्द्रां गिरिमल्लिकायाः संकुट्य पक्का रसमाददीत ॥ तस्मिन्सुपूते पलसंमिते च देयं च पिष्ट्वा सह शाल्मलेन ॥ ६१ ॥ पाठा समंगातिविषा समुस्ता बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनाम् ॥ प्रक्षिप्य भूयो विपचेच्च तावद्दार्वीप्रलेपः सरसस्तु यावत् ॥ ६२ ॥ पीतस्ततः कालविदा जलेन मण्डेन च क्षौद्रयुतेन वापि ॥ निहन्ति सर्वमतिसारमुग्रं कृष्णं सितं लोहितपीतकं च ॥ ६३ ॥ दोषं ग्रहण्यां विविधं च रक्तं पित्तस्य चार्शांसि सशोणितानि ॥ असृग्दरं चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम् ॥ ६४ ॥

सपेद कूड़ाका गीला फूल अथवा छाल, एक तुलाभर ले कूटकर उसका रस निकाल कर छान ले फिर उसमें मोचरस ॥ ६१ ॥ सोनापाठा, मँजीठ, अतीश, नागरमोथा, बेलगिरी, धायका फूल, इन औषधोंको डारके चुल्हेपर पकावे, जब कड़छाको लेप होनेलगे, तब उतार रक्खे ॥ ६२ ॥ जब पीनेका समय आवे, तब पानीके साथ अथवा मंडके साथ किंवा शहदके साथ पिलावे यह कुटजावलेह भयंकर काला, सपेद, लाल, पीला ऐसे अतिसारको नष्ट करता है ॥ ६३ ॥ तथा ग्रहणीके अनेक दोष, रक्त, पित्त, रक्तके बवासीर और असाध्य असृग्दर इन रोगोंको अवश्य नष्ट करदेता है ॥ ६४ ॥

अथ अमृतवटक ।

पथ्यापञ्चमूलक्काथश्चतुर्भागावशेषतः ॥ तत्र क्काथे पुनश्चूर्णमिमानि चौषधानि तु ॥ ६५ ॥ शृङ्गवेरं तथा लाक्षा पिप्पली कटुरोहिणी ॥ दाडिमफलत्वक्चूर्णं दार्वी सवत्सकं विषम् ॥ ६६ ॥ आटरूषकचूर्णानि संक्षिप्यात्र निघट्टयेत् ॥ आजं दुग्धं तदर्द्धेन घृतं चाष्टांशकं क्षिपेत् ॥ ६७ ॥ दार्व्यां विलेपितं ज्ञात्वा गुडस्य षोडशानि तु ॥ पलानि मिश्रितं तत्र देयमप्रातराशने ॥ ६८ ॥

त्रिदोषसन्निपातोत्थश्चातिसारश्च दारुणः॥ शूलमूर्च्छाभ्रमानाहकामलानां विपाचनः॥६९॥ क्षतक्षीणक्षयाणां तु हितोऽयममृतो वटः॥ ७० ॥

करेंड़, शालपन, पिठवन, छोटी कटेहली, बड़ी कटेहली, गोखरू इनको पानीमें उबाल चौथा हिस्सा शेष रहे ऐसा क्वाथ बनावे ॥ ६५ ॥ पीछे अदरख, लाख, पीपल, कुटकी, अनारदाना, अनारकी छाल, दारुहल्दी, कूडाकी छाल, अतीश ॥ ६६ ॥ वांसा, इन सबोंका चूर्ण बना पूर्वोक्तमें मिलावे और क्वाथसे आधा हिस्सा बकरीका दूध और आठवां हिस्सा घृतको मिला पकावे ॥ ६७ ॥ जब कड़छीपै चिपकने लगे तब जान १६ तोले गुड़ मिलाय सायंकालके भोजनमें देवे ॥ ६८ ॥ इससे सन्निपातका दारुण अतिसार, शूल, मूर्च्छा, भ्रम अफारा, कामला, ये शांत होते हैं ॥ ६९ ॥ क्षतक्षीण और क्षयरोगी इनको यह अमृतवटक हित है ॥ ७० ॥

अथ बिल्वादिचूर्ण।

एकबिल्वागुरुरोध्रचूर्णं मध्वादियोजितम् ॥
रक्तातिसारशमनं बालानां क्षीणधातुकम् ॥ ७१ ॥

एक १ बेलगिरी, अगर, लोध, इनके चूर्णमें शहद मिला बालकको चटावे यह धातुओंको क्षीण करनेवाले रक्तातिसारको नाशता है ॥ ७१ ॥

अथ गुदाके निकसनेको (काँच) बन्द करनेकी चिकित्सा।

यदा गुदं निरस्येत्तु तदा कुर्य्यात्क्रियामिमाम् ॥ सहचर्य्याबलानां च रसो ग्राह्यो घृतं पुनः॥७२॥ पक्वघृतेन लेपः स्यात्तस्य चेदं प्रशस्यते ॥ अरणीपल्लवक्काथो वाप्यं लोष्टं सचन्दनम् ॥७३॥ प्रतप्तमथवाग्निनिभं तथा नरस्य निर्वाप्य काञ्जिकमथ विदधीत तद्वत् ॥ सौख्यं च सम्यग्गुदसेचनकं प्रशस्त संवेश्य मध्यतो गुदं दृढबन्धनं स्यात् ॥ ७४ ॥

जब गुदाकी कांच निकसे तब यह क्रिया करनी, पीला कुरंटा और खरैहटीके रसमें घृतको पका लेप करना श्रेष्ठ है ॥ ७२ ॥ अरनीके पत्तोंके क्वाथमें चुल्हाकी माटी और चन्दनको गरमकर बुझावे अथवा इसीरीतिसे कांजीको बनावे इनसे अच्छीतरह गुदाको सेचे ॥७३॥ और कांचको गुदाके बीचमें प्रवेश कर दृढबन्धन करना ॥ ७४ ॥

अथ अतिसारविशेषता।

लशुनकुणपगन्धं पूयगन्धं घनं वा पललजलसमानं पक्वजम्बूनिभं वा ॥ घृतमधुपयसाभं तैलशैवालनीलं सघनदधिसवर्णं वर्जयेच्चातिसारसम् ॥७५॥ भ्रममदनमथार्शः शूलमूर्च्छाविदाहं श्वसनमतिविवर्णं छर्दिमूर्च्छातृडार्त्तम् ॥ विकलमतिशयेन सौख्यशोफज्वरार्त्तिः स परिहरतु दूरं सद्विधाता न दृष्टः ॥ ७६ ॥ शोफं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम्॥ छर्दिं मूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वातीसारिणं त्यजेत् ॥ ७७ ॥ दृष्ट्वा शोफं तथाध्मानं हिक्कां छर्दिमरोचकम् ॥ तथा च पाण्डुरोगार्त्तमतिसारयुतं त्यजेत् ॥ ७८ ॥

लहसनकी गन्धके समान गन्धवाला और मुरदाके समान गन्धवाला और रादके गन्धकके समान गंधवाला, कठिन और मांसके पानीके समान तेल और शिवालके समान नीला और करड़ी दहीके समान वर्णवाला ऐसे अतिसारको वर्जे ॥ ७५ ॥ भ्रम, उन्माद, बवासीर, शूल, मूर्च्छा, दाह, श्वास, इनसे संयुक्त छर्दि और तृषासे पीड़ित अतिशय करके विकल शोजा और ज्वरसे पीड़ित ऐसा अतिसार वर्ज देना ॥ ७६ ॥ शोजा, शूल, ज्वर, तृषा, श्वास, खांसी, अरुचि, छर्दि, मूर्च्छा, हिचकी इनसे संयुक्त हुए अतिसाररोगीको त्यागे ॥ ७७ ॥ और शोजा, अफारा, हिचकी, छर्दि, अरुचि, पांडुरोग इनसे पीडित हुए अतिसाररोगीको त्यागे ॥ ७८ ॥

अथ अतिसारके भेद संग्रहणीरोगका निदान और चिकित्सा।

यदल्पमल्पं क्रमशो निषेवितं मलं भगाधारगतं च नित्यम् ॥ हत्वान्तराग्निं कुरुते नरस्य विकारमाहुर्ग्रहणीति संज्ञाम्॥७९॥ निर्वृत्ते चातिसारे शमयति दहनं भूयसा दोषितोऽपि भुक्त्वा नाश्य मलांशं बहुदिनमनिशं सञ्चयित्वा निसर्त्ति॥ वारं वारं विगृह्य सहजमसरलं पक्वमानं घनं वा दुर्व्याधिर्घोररूपो मनुजरुजकरः स्यात्तथा ग्रहणीति ॥ ८० ॥

जो अल्प अल्प मल नीचेकी अंत्रोंमें प्राप्त हो नित्यप्रति उतरे और दोष शरीरकी अग्निको नष्टकर विकारको उपजावे उसको ग्रहणीरोग कहते हैं ॥ ७९ ॥ अतिसारके निवृत्त होनेके

पश्चात् दोषोंसे युक्त हुई ग्रहणी पेटकी अग्निको शांत करे और भोजन करके संचित हुआ मलका अंश बहुत दिनोंतक नित्यप्रति निसरे और वारंवार कब्ज करके पका हुआ और कठिन मल उतरे तिसको ग्रहणीदोष कहते हैं। यह घोररूप दुष्ट रोग मनुष्योंको पीडा देता है ॥ ८० ॥

अथ ग्रहणीके प्रकार।

लक्षयेच्चातिसारे च विज्ञेयं ग्रहणीगदम् ॥ वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्॥८१॥ नैव चैकेन दोषेण जायते ग्रहणीगदः ॥ तेन संक्षीयते देहमन्तर्दाहो विपाकता ॥ ८२ ॥

अतिसारमें ग्रहणीरोगको जानना, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज ऐसे ग्रहणीरोग होता है ॥ ८१॥ एक दोष करके ग्रहणीरोग नहीं उपजता। उसकरके मनुष्यका शरीर छीजता है और शरीरके भीतर दाह होती है और अन्न नहीं पचता ॥ ८२ ॥

अथ ग्रहणीका उपद्रव तथा गुल्मादिकोंकी संप्राप्ति।

तिक्तः कषायकटुकाम्लविदाहिरूक्षः शीताल्पभोजनपरैः श्रममैथुनैश्च॥भाराध्वहस्तिरथवाहनधावनेन संक्रुद्धवायुहननेऽनलवेगमेनम् ॥ ८३ ॥

कडुआ, कसैला, चर्चरा, खट्टा, दाह करनेवाला, रूखा, शीतल, थोडा, ऐसे भोजनोंको नित्यप्रति सेवनेसे, परिश्रम और मैथुनके अत्यंत सेवनेसे और बोझ, मार्गमें ज्यादे चलनेसे, हस्ती, रथ, घोडा इनमें बैठके भागनेसे क्रुद्ध हुआ वायु अधोवातके वेगको नाशता है ॥ ८३ ॥

तस्मात्तदग्रमनिलेन च छिद्यमानं रक्तेन युक्तमनिले परिपाकमेति॥ संजायतेऽपि मनुजस्य तथा तृतीयं गुल्मेति नाम स च पञ्चविधो बभूव ॥ ८४ ॥ प्लीहा यकृज्जठरकण्डुमलस्य बन्धोऽष्ठीला क्रिमिर्जठररोगभवोऽथ षष्ठः ॥ एते भवंति ग्रहणीपरिवर्त्तमाना घोरास्तथा दुःखदाश्च मनुजस्य चित्ते ॥ ८५ ॥

उससे रुके हुए वायु करके छिद्यमान हुआ रक्त परिपाकको प्राप्त होता है तब मनुष्यके एक गोला उपजता है, ऐसे पांच प्रकारका ग्रहणी दोष जानना ॥ ८४ ॥ तिल्लीरोग, यकृद्रोग, उदररोग, खाज, मलबन्ध, कृमिरोग इनसे संयुक्त ग्रहणीरोग छठा भी होता है। ये सब घोररूप रोग मनुष्यको दुःखके देनेवाले ग्रहणीके ही विकारसे होते हैं ॥ ८५ ॥

अथ गुल्मसंज्ञक ग्रहणीरोगका लक्षण।

शोषो गलस्य तिमिरं किल पार्श्वशूलं नाभौ तथातिकृशताति-विषूचिका च॥कर्णे स्वनोऽतिवमनं क्लमशूलमोहःश्वासेन गुल्म-मिति लक्षणमेव विद्धि॥८६॥यस्यैतानि च लिङ्गानि गुल्मिनं तं विदुर्बुधाः॥ग्रहणी नाम साध्यो यस्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम्८७

कण्ठका शोष हो, अंधेरी आवे, पसली और नाभिमें शूल हो, शरीर अत्यन्त कृश हो जावे और अत्यन्त विषूचिका रोग उपजे, कानमें शब्द हो, अत्यन्त छर्दि आवे और ग्लानि, शूल, मोह, श्वास, गुल्मरोग ये उपजें ॥ ८६ ॥ ये जिसके लक्षण हों उसके गुल्मसंज्ञक ग्रहणीरोग जानना, ग्रहणीरोग साध्य है उसके लक्षण कहता हूँ ॥ ८७ ॥

अथ वातकी संग्रहणीका लक्षण।

चित्रं सशब्दं सृजतेऽत्र वर्चःशोफोऽनिलो वर्चमतीव रूक्षम्॥
श्वासार्त्तियुक्तं तनुशैथिलं च स्रावो ग्रहण्यानिलकोपतःस्यात्८८

चित्र और शब्दसहित मल उतरे, वह मल अत्यन्त रूखा हो, वातसे शोजा उपजे, श्वासरोग और शरीरमें शिथिलपना और स्राव हो ये लक्षण हों तब वातकी संग्रहणी जानिये ॥ ८८ ॥

अथ पित्तकी संग्रहणीका लक्षण।

विदाहि शीर्णं सरुजं तृषार्त्तं दुर्गन्धपीतारुणनीलकालम्॥
संसृज्यते यस्य मलो विमिश्रः पित्तोद्भवा सा ग्रहणीति संज्ञा८९

दाह, शूल, तृषा, दुःख इन्होंसे युक्त रोगी होवे, दुर्गंधसे मिला हुआ और पीला, लाल, नीला, काला इन रंगोंसे मिला हुआ मल उतरे ये लक्षण होवें तब पित्तकी संग्रहणी जाननी८९

अथ कफकी संग्रहणीका लक्षण।

हृल्लासछर्दी श्वसनं च शोफः कासो जडत्वं च सशीतता च॥
वैरस्यमास्ये गुरुगात्रता स्यादरोचकं शंखशकृद्ग्रहस्तु॥९०॥

थुकथुकी हो, छर्दि आवे और श्वास, शोजा, खांसी, जडपना, शीतलता ये उपजें और मुखमें विरसपना हो, शरीरका भारीपना हो, अरुचि हो और गुदाकी आंठीमें मलकी कब्ज हो उसको कफकी संग्रहणी जानना ॥ ९० ॥

अथ सन्निपातकी संग्रहणीका लक्षण।

त्रिभिः समेतं गदितं च चिह्नमेतस्य कोपो मधुरास्यता वा॥
दाहोऽथ मूर्च्छा श्वसनं जडत्वं स सन्निपातग्रहणीगदः स्यात्९१

ये पूर्वोक्त तीनों प्रकारकी संग्रहणियोंके लक्षण मिलें और मुखमें मधुर स्वाद आवे और दाह, मूर्छा, श्वास, जड़पना ये उपजें उसको सन्निपातकी ग्रहणी जानिये ॥ ९१ ॥

अथ वातग्रहणीका पाचन ।

दारुनागरनिशा सवासका कुण्डली मगधजा शटी घनम् ॥
रास्त्रा सभार्ङ्गी सरलाह्वपुष्करं पाचनं भवति वातिकग्रहे ॥९२

देवदारु, सोंठ, हलदी, वांसा, गिलोय,पीपल, कचूर, नागरमोथा, रास्ना, भारंगी, सालवृक्ष, पोहकरमूल इन्होंका पाचन वातकी संग्रहणीमें हित है ॥ ९२ ॥

अथ पित्तग्रहणीका पाचन ।

नलवेणुकुशानां च काशेक्षूणां च मूलकम् ॥
क्वाथपानं हितं वास्य पाचनं पैत्तिके ग्रहे ॥ ९३ ॥

नरशल, वांस, डाभ, कांस, ईख इन्होंकी जड़को पानीमें औटावे । यह पाचन पित्तकी संग्रहणीमें हित है॥ ९३ ॥

अथ कफग्रहणीकी औषध ।

व्याघ्रीग्रन्थिकचव्यसुरसा शुण्ठी दाडिमम् ॥
रजनी घनचित्रकमेवं हिक्कामथ कफग्रहणीं हन्ति॥९४॥

कटेहली, पीपलामूल, चव्य, तुलसी, सोंठ, अनारकी छाल, हलदी, नागरमोथा, चीता इन्होंका क्वाथ हिचकी और कफकी संग्रहणीको हरता है ॥ ९४ ॥

अथ शुण्ठयाद्यमृतप्राशन ।

शुण्ठी कणा द्विरजनी च घनं तथा च योज्यः पुनः प्रतिविषं त्रिफला विडङ्गः ॥ सिन्धूत्थवह्नित्रिकटु त्रिसुगन्धियुक्तं चूर्णं पुनर्गुडयुतं घृतमिश्रितं च ॥ ९५ ॥ कृत्वा बिडालपदमात्रकमोदकांश्च भक्षेद्यथा जलमपि ग्रहणीगदे च॥ अर्शोभगन्दरसरोचकगुल्ममेहाञ्छूलाश्मरीकृमिजरोगहरं च पाण्डुम् ॥९६॥ श्रेष्ठं रसायनमिदं बलिनाशनं स्याद्वृष्यं बलं विदधतेऽतिकृशत्वदोषम् वर्णेन्द्रियसकलदीप्तिकरं रुजोघ्नं कुष्ठभ्रमापहरणं कुरुते सदैव९७

सूंठ, पीपल, हलदी, दारुहलदी, नागरमोथा, अतीश, हरडे, बहेडा, आंवला, वायविडंग, सेंधानमक, चीता, सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात इनके चूर्णमें घृत और गुड़ मिला ॥९५॥ एक एक तोलेभरकी गोलियां बनाके पानीके साथ खावें ये गोलिय

ग्रहणीरोग, बवासीर, भगंदर, अरोचक, गुल्मरोग, प्रमेह, शूल, पथरी, कृमिरोग, पांडुरोग, इनको हरती हैं ॥ ९६ ॥ श्रेष्ठ रसायन हैं, वलियोंको नाशती हैं, वीर्य और बलको देती हैं, वर्ण और इंद्रियोंको प्रकाशित करती हैं, दुःखको नाशती हैं, और सबकालमें कुष्ठको और श्रमको नाशती हैं ॥ ९७ ॥

अथ अभयाद्यवलेह ।

हरीतकीपञ्चशतानि धीमान् द्रोणेन गोमूत्रशतेन पाच्यम् ॥ मृद्वग्निना यावदशेषमेव मूत्रं विजीर्णे विधिवद्विधिज्ञः ॥ ९८ ॥ निर्वाप्य चूर्णं प्रतिशोष्यशीतं छायाविशुष्कान् प्रविदार्य्य चाष्टीः ॥ चूर्णं चशुण्ठीमगधाविषाश्च सुगन्धिमूर्वा चविकान्विताश्च ॥ ९९ ॥ निष्क्वाथ्य कल्कः कुटजस्य तावद्दर्व्योपलेपी भवतीति यावत् ॥ तस्यार्द्धभागेन गुडं विमथ्यात्क्षीरं तदर्द्धेन गवाजकं वा ॥ १०० ॥ निर्वापितं तं घृतभाजने च संस्थापितं प्राङ्मुदितेन तेन ॥ सिन्धूत्थवह्नित्रिकटुं त्रिसुगन्धियुक्तं चूर्णं पुनर्गुडयुतं घृतमिश्रितं च ॥ १०१ ॥ चूर्णेन तेन सकलग्रहणीयपाण्डुशोषाश्मरीं कृमिजगुल्मसथातिसारान् ॥ प्लीहायकृच्छ्वासिषु मानवेषु विषूचिका पीनसमस्तकार्त्तिम् ॥ १०२ ॥ विनाशनःसद्यस्तथा ज्वराणामध्वश्रमक्षीणबलोदराणाम् ॥ ऐकाहिकादिज्वरनाशनःस्याल्लेहोऽभयाद्योऽमृतवन्नराणाम् ॥ १०३ ॥ इत्यभयाद्योऽवलेहः ॥

५०० बड़ी हरड़ोंको १०० द्रोण गोमूत्रमें पकावे,कोमल अग्निसे पकनेमें जब चौथाई भाग शेष रहे ॥ ९८ ॥ तब अग्निसे उतार उन हरड़ोंको छायामें सुखाके चीर गुठलियोंको दूर करे, पीछे सूंठ, पीपल, अतीश, सफेद चंदन, मरोडफली, चव्य इनके चूर्णको यथायोग्य मिला ॥ ९९ ॥ फिर अग्निपै पकावे और कडछीसे चलावे, जब कड़छीपे चिपने लगे तब उस संपूर्ण औषधके समान गायका अथवा बकरीका दूध मिला ॥ १०० ॥ अग्निसे उतार घीके चिकने वर्तनमें स्थापन करे, फिर सेंधानमक, चीता सूंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, गुड़, घृत इन्होंको मिलाके खावे ॥ १०१ ॥ यह सब प्रकारकी संग्रहणी, पांडुरोग, शोषरोग, पथरीरोग, कृमिरोग, पेटका गोला, सबप्रकारके अतिसार, तिल्लीरोग, जिगररोग, श्वास, हैजा, जुखाम, पीनस, मस्तकरोग इनको नाशता है ॥ १०२ ॥ और सबप्रकारके ज्वरवाले मार्गमें गमन करनेसे क्षीण बलवाले और उदररोगियोंको हित है और ऐकाहिकआदि ज्वरोंको नाशता है । यह अभयाद्यवलेह मनुष्योंको अमृतके समान है ॥ १०३ ॥

अथ द्राक्षादिपिंडी।

द्राक्षाक्षीरेण पक्त्वा यावद्धनं दर्व्युपलेपि च ॥ दृष्ट्वा पश्चात्तैः समालोड्य चेमान्यौषधानि मतिमान् ॥ १०४॥ पर्पटातिविषा मूर्वा पटोल घनवालकम् ॥ तथाभयानां चूर्णं तु समशर्करया युतम् ॥१०५॥ तेन क्षीरेण संयोज्य विदार्य्याः कन्दमेव च ॥ घृतेन नवनीतेन पिण्डं कृत्वाऽथ भक्षयेत् ॥१०६॥ सपित्तग्रहणीपाण्डुकामलार्तितृषापहम् ॥ भ्रमं मूर्छां तथा हिक्कां तमकोन्मादमश्मरीम् ॥ १०७॥ मेहपित्तासृजं कुष्ठं नाशयत्याशु निश्चितम् ॥ १०८॥ इति द्राक्षादिक्षीरम् ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अतीसारचिकित्सानाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दाखोंको दूधमें मिला पकावे जब कड़ा होके कडछीपे चिपकने लगे तब बुद्धिमान् वैद्य इन औषधोंको डाले ॥ १०४ ॥ पित्तपापड़ा, अतीश, मरोडफली, परवल, नागरमोथा, नेत्रवाला, हरडे इनके चूर्णको और बराबरकी खांडको मिलावे ॥ १०५ ॥ पीछे उस दूधमें विदारीकंद और नौनीघृत मिला गोली बनाके खावे ॥ १०६ ॥ यह पित्तकी संग्रहणी पांडुरोग, कामला, तृषारोग, भ्रम, मूर्छा, हिचकी, तमक, श्वास, उन्माद, पथरी ॥ १०७ ॥ प्रमेह, रक्तपित्त, कुष्ट इनको शीघ्र नाशता है ॥ १०८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने अतिसारचिकित्सानाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अथ गुल्मचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि गुल्मानां चैव लक्षणम् ॥ तस्मात्तेषां प्रतीकारमौषधानि विशेषतः ॥ १॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे पुत्र ! सुन, गुल्मोंके लक्षणको कहता हूं और उनकी चिकित्सा और औषधको भी विशेषकर कहता हूं ॥ १ ॥

अथ गुल्मके भेद ।

पञ्चधा संभवंत्येते गुल्मा जठरसंसृताः॥हृत्कुक्षौ नाभिबस्तौ च मध्ये च पञ्चमः स्मृतः॥२॥हृदयस्थो यकृन्नाम कुक्षौ साष्ठीलकोच्यते॥मध्ये प्लीहा समाख्यातो बस्तौ चण्डविवृद्धकः॥३॥ नाभौ संलक्ष्यते ग्रन्थी नामान्येषां पृथक् पृथक् ॥

उदरमें फैले हुए गुल्म पांच प्रकारके हैं । हृदयमें एक, कुक्षिमें दूसरा, नाभिमें तीसरा, वस्तिस्थानमें चौथा, मध्यभागमें पांचवाँ ऐसे गुल्म होते हैं ॥ २ ॥ हृदयमें उपजनेवाले गुल्मका यकृत् नाम है, कुक्षिमें होनेवाले गुल्मका अष्ठीला नाम है, मध्यभागमें प्लीहानामसे विख्यात है, बस्तिस्थानमें चण्डविवृद्धकनामवाला होता है ॥ ३ ॥ नाभिमें ग्रंथिनामसे लक्षित है। इनके नाम अलग अलग हैं ॥

अथ गुल्मके निदान ।

अतः प्रकोपं वक्ष्यामि येन कुर्वन्ति बाधकम् ॥४॥ स्वभावात्पित्तरक्तोत्थे सेविताम्लविदाहिनम् ॥ उष्णं च क्षारमद्यं वा चोष्णपानातिसेवनात् ॥५॥ तथा शोकः श्रमोऽध्वानां शोषात्संक्षोभनादपि ॥ उच्चभाषणगानेन धनुर्ज्याकरणेन च ॥ ६॥ पृष्ठे मुष्ट्यभिघातेन हृदयात्ताडनेन वा ॥भारणोद्धारणाद्वापि रक्तं शोषयते हृदि ॥ ७ ॥ तेन गुल्मेति नाम तु जायते रक्तपित्तकम्॥ कदाचित्त्रिषु दोषेषु सम्भवश्चास्य दृश्यते ॥८॥ वातेनोदीरितं चैव कफेन च घनीकृतम् ॥ पित्तेन पाकतां प्राप्तं त्रिदोषसंसृतं यकृत् ॥ ९ ॥

अब इनके प्रकोपको कहता हूं, जिसकरके पीड़ाको करते हैं ॥ ४ ॥ स्वभावसे रक्तपित्तके विगड़ने पर अम्ल और विदाही पदार्थको सेवनेसे और गरम पदार्थ खार, मदिरा इनको सेवनेसे और गर्मपानके अतिसेवनेसे ॥ ५ ॥ शोक, श्रम, मार्गमें अत्यंत चलना, शोष, क्षोभ, ऊंचा बोलना, ऊंचे प्रकारसे गाना और धनुषकी टंकोरके करनेसे ॥६॥ पृष्ठभागमें मुक्केके लगनेसे और हृदयमें चोट आदिके लगनेसे, बोझके उठानेसे मनुष्यके हृदयमें रक्त सूख जाता है ॥ ७ ॥ इससे रक्तपित्त करके गुल्मरोग उपजता है और कभी तीनों दोषोंसे भी गुल्म उपजता है॥८॥ वातसे बढ़ा हुआ और कफसे कठिन हुआ और पित्तसे पाकभावको प्राप्त हुआ यकृत् त्रिदोषसे फैलता है ॥ ९ ॥

अथ यकृद्गुल्मका लक्षण।

लक्षणं तस्य वक्ष्यामि येन तच्चापि लक्ष्यते॥क्षीयते यन मनुजो मृत्युमाशु प्रपद्यते॥१०॥वमिः क्लमस्तथोद्गारो हृल्लासः श्वसनं भ्रमः॥दाहोऽरुचिस्तृषा मूर्च्छा कण्ठे दाहः शिरोव्यथा॥११॥ हृच्छूलं च प्रतिश्यायःष्ठीवनं कटुकैः सह ॥ सशल्यं हृदि शूलं च निद्रानाशः प्रलापतः ॥ १२ ॥ हृदये मन्यते दार्ढ्यमुदरं गर्जति भृशम्॥एतैर्लिङ्गैर्विजानीयाद्यकृत्कोष्ठान्तवक्षसि ॥१३॥

उस गुल्मके लक्षणको कहूंगा,जिस करके वह भी लक्षित हो सकता है। इस रोगसे मनुष्य सूख जाता है और शीघ्र ही मृत्युको प्राप्त हो जाता है ॥ १० ॥ छर्दि आवे, ग्लानि उपजे, डकार आवे, थुकथुकी हो, श्वास और भ्रम उपजे और दाह, अरुचि, तृषा, मूर्च्छा, ये भी उपजें, कंठमें दाह हो और शिरमें पीड़ा हो ॥ ११ ॥ हृदयमें शूल हो, जुखाम कडुआईके साथ थूके, शल्यसहित शूल हृदयमें होवे नींदका नाश होवे, बकवाद करनेसे ॥ १२ ॥ और हृदयमें दृढ़ता माने और उदर अत्यंत गर्जे इन लक्षणोंसे कोष्ठके समीप छातीमें यकृत्संज्ञक गुल्म जानना ॥ १३ ॥

अथ शुण्ठ्यादि चूर्ण।

शुण्ठ्यादिचूर्णं कटुकत्रयं च कुष्ठं तथा पञ्चमकं यवानीम्॥ षष्ठं च सिन्धूत्थविमिश्रितं च सूक्ष्मं च चूर्णं सह रामठेन॥ भक्षेच्च तस्योपरि तक्रपानं निष्क्वाथ्य तोयं च पिबेच्च वाम्लम्॥१४॥ सौवीरकं वा विनिहन्ति शीघ्रं यकृत्समानोदरशूलकासान् ॥ विषूचिकाजीर्णकफामयघ्नं पांड्वामयार्त्तिग्रहणीं सगुल्माम् ॥१५॥ शुण्ठ्यादिचूर्णं त्वरितं निहन्ति ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, कूठ, अजवायन, सेंधानमक, हींग, इनका महीन चूर्ण बना खावे ऊपर तक्र पीवे अथवा खट्टा जल क्वाथ बनाकर पीवे ॥ १४ ॥ अथवा कांजीका अनुपान करे। यह शुंठ्यादि चूर्ण यकृत्रोग, उदरशूल, खांसी, विषूचिका (हैजा) अजीर्ण, कफरोग, पांडु, संग्रहणी, गुल्मरोग इनको शीघ्र नाशता है ॥ १५ ॥

अथ क्षारामृत।

क्षारं मुष्ककिंशुकार्जुनधवापामार्गरम्भातिला जीवन्तीकनकाह्वयश्चरजनी कूष्माण्डवल्ली तथा॥ वासासूरणमेव तीव्रदहने

प्रज्वाल्य भस्मीकृतं तोयेन प्रतिसेव्य संभृतपयःपानं विधेयं यकृत् ॥ १६ ॥ शूलानाहविबन्धनांश्च कफजान्रोगाञ्जयेत् कामलां शूलं पाण्डुसुविद्रधींश्च ग्रहणीशोफार्शसां पीनसान् ॥ अग्नेर्मांद्यमजीर्णकृम्यलसता मोहो गुदभ्रंशता कासोद्गार-वमिक्षतोद्गतगदावृद्धिस्तथा नश्यति ॥ १७ ॥ पूयाभः पतते श्लेष्मा पूतिगन्धोऽतिविस्रकः ॥ रक्ताभस्तत्र सङ्काशः ष्ठीवते स मुहुर्मुहुः ॥ तथातिसार्य्यते रक्तं श्रमः संक्षीयते वपुः ॥ १८॥ क्षतजाः संसृता गात्रे यकृद्वक्षसि संसृतः ॥ १९ ॥

"असाध्ययकृद्रोगलक्षणम्"

श्वासस्तृषा वमिर्मोहः शोफः स्यात्करपादयोः॥रुचिबन्धोऽति-सारश्च यकृद्दूरं परित्यजेत् ॥ २० ॥ अतो वक्ष्यामि भैषज्यं येन संपद्यते सुखम् ॥

यकृद्रोगपर पाचन ।

तस्यादौ लङ्घनं चैकं पाचनं तदनन्तरम् ॥२१॥ शुण्ठ्योपकुल्या तिमिरं शठीनां यवानिकाभीरुहरीतकीनाम् ॥ क्वाथोऽथकल्क-पाचनके प्रशस्त आनाहगुल्मार्त्तिविषूचिकानाम् ॥ २२ ॥ भद्रोपकुल्याभयशृङ्गवेरं पथ्या त्रिभागा च कणाचतुर्था॥२३॥

मोखावृक्ष[1], अण्डकोष या कठपाढरिबूटी, टेसू, अर्जुनवृक्ष, धव, लटजीरा, केला, तिल, महुआ, धतूरा, हलदी, लालतुबी, बांसा, जमीकंद, इनको तेजअग्निसे जला, भस्म बना, पानीमें मिला खार बनावे, इसको लेनेसे यकृतरोग ॥ १६ ॥ शूल, अफारा, बंधा, कफका रोग, कामला, विद्रधि, हृदयशूल, पांडु, संग्रहणी, शोजा, बवासीर, पीनस, मन्दाग्नि, अजीर्ण, कृमि, आलस्य, गुदभ्रंश, मोह, क्षतजरोग, वृद्धिरोग, दाह, शूल, खांसी, डकार, छर्दि इनका नाश होता है ॥ १७ ॥ राधके समान कफ पड़े दुर्गंधसे और कच्चे गन्धसे संयुक्त और रक्तके समान वारंवार थूके और रक्तका ही अतीसार जावे शरीरमें परिश्रम होवे शरीर सूखता जावे॥ १८॥ और क्षतसे उपजे रोग होवें ये लक्षण होवें तब छातीमें फैला हुआ यकृतरोग जानना ॥ १९॥ श्वास, तृषा, छर्दि, मोह, ये उपजें हाथ और पैरोंमें शोजा होवे, रुचिबन्ध होवे और अतिसार होवें,

1 मोक्षवृक्ष पर्वतोंमें पलाशके सदृश होता है । आ० श० ।

ऐसे यकृत्‌रोगको दूरसे त्यागे ॥ २० ॥ अब औषधको कहता हूँ-जिसकरके सुखकी प्राप्ति हो इस रोगकी आदिमें एक लंघन कर पीछे पाचन देना हित है ॥ २१ ॥ सोंठ, पीपल, लोहाका मैल, कचूर, अजवायन, शतावरी, हरडा इन्होंका काथ अथवा कल्करूपी पाचन हित है। यह अफारा, गुल्म, विपूचिका (हैजा) इन्होंको नाशता है ॥ २२ ॥ नागरमोथा, पीपल, हरडै, अदरख ये ले परंतु इनमें तीन भाग हरड़ेके ले और पीपल इनका पाचनइस रोगको नाशता है॥ २३ ॥

अथ यकृद्गुल्मपथ्य।

क्षतक्षये यकृत्पूर्वे तूपवासं च पाचनम् ॥
न देयं हिङ्गुसंयुक्तं चूर्णं नैव हितं यतः ॥ २४ ॥

क्षतक्षय रोगसे संयुक्त हुए यकृत् रोगमें लंघन और पाचन हित नहीं है और इस रोगवालेको हींगसे संयुक्त किया चूरन नहीं देना, क्योंकि वह हित नहीं है॥ २४ ॥

अथ निंबादि काथ।

निम्बनीपधरवेतसं निशा काश्मरी च तुलसी च सिंहिका ॥
काथ एष हृदयामयापहः शूलमाशु यकृतश्च नाशकृत्॥२५॥

नींबकी छाल, कदम्बकी छाल, बिनोलाकी गिरी, मन नामक वनकी ओषधि विशेष, हलदी, कंभारी, तुलसी, कटेहली इनका काथ हृदयरोग, कफ, शूल, मुखका रोग और यकृत्‌को नाशता है ॥ २५ ॥

अथ सौराष्ट्रिकादि काथ।

सौराष्ट्रिकासीसमहौषधानि दुरालभाजातिप्रवालकं च ॥
दार्वी यवानी ककुभं समङ्गा काथः ससर्पिर्यकृदाशु हन्ति॥२६॥

फिटकरी, कसीस , सोंठ, जवासा, चमेलीकी कोंपल, दारुहलदी, अजवायन, अर्जुनवृक्षकी छाल, मंजीठ इनका काथ घृत मिलाकर पीनेसे यकृत्‌रोगका नाश होता है ॥ २६ ॥

अथ धवादि काथ।

धवार्जुनकदम्बानां शिरीषबदरीषु च ॥
निष्काथ्य पानमामघ्नं विषूच्या शूलवारणम् ॥ २७ ॥

धवके फूल, अर्जुन और कदंबवृक्षकी छाल, मौलशिरी और बेरकी छाल, इनका काथ बना पीवे। यह आमदोष, विषूचिका (हैजा) शूल इनको दूर करता है ॥ २७ ॥

अथ कदलीजलपानक।

कदलीक्षारमादाय शंखक्षारमथापि वा ॥ प्रस्राव्य जलपानं तु

हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् ॥ २८ ॥ आमं हरति विसृष्टं शूलं चाशु नियच्छति॥विषूचिकानां शमनमजीर्णं जरयत्यपि ॥ २९ ॥

केलाका खार, शखका खार, हींग, कालानमक इनको पानीमें मिलाकर पीवे ॥ २८ ॥ यह आमको हरता है और शूलको हरता है और विषूचिका (हैजा)को शांत करता है और अजीर्णको जराता है ॥ २९ ॥

अथ विजोरा आदिक पान।

मातुलुङ्गरसं ग्राह्यं द्विगुणं तत्र काञ्जिकम् ॥
हिङ्गुसौवर्चलयुतं पानं हन्ति विषूचिकाम् ॥ ३० ॥

बिजौराके रसमें दूनी कांजी मिलावे, हींग और कालानमकसे संयुक्त कर पीवे। यह विषूचिकाको हरता है ॥ ३० ॥

अथ खारका सेवन।

क्षारं तोयं च पानाय दाहस्योपरि पाचयेत् ॥
शूलाध्मानं निहन्त्याशु कुरुते चाग्निदीपनम् ॥ ३१ ॥

खारके पानीको अग्निपै पकाके पीवे। यह शूल और अफाराको हरता है और अग्निको शीघ्र जगाता है ॥ ३१ ॥

अथ आमाजीर्णका उपाय।

आमेषु वमनं कुर्य्याद्विपक्के चैव लंघनम् ॥
विशिष्टस्वेदनं निद्रा रसशेषे विरेचनम् ॥ ३२ ॥

आमसंज्ञक अजीर्णमें वमन कराना और पके हुए अजीर्णमें लंघन, पसीना, नींद इनको सेवे। रस शेष अजीर्णमें विरेचन हित है ॥ ३२ ॥

अथ दिवास्वापविधान।

उन्मत्ते चातिसारे च वमिक्रोधातुरेषु च ॥ अजीर्णे तु विषूच्यां च दिवास्वप्नं हितं भवेत् ॥ ३३ ॥ न हितं श्लेष्मणि चैव हृद्रोगे तु शिरोरुजि ॥ हृल्लासे च प्रतिश्याये दिवास्वप्नं च वर्जयेत् ॥ ३४ ॥

उन्माद, अतीसार, छर्दि, क्रोध, अजीर्ण, विषूचिका (हैजा) इनमें दिनका सोना हित है ॥ ३३ ॥ कफरोग, हृद्रोग, शिरकी पीड़ा थुकथुकी, जुखाम इन रोगोंमें दिनके शयनको वर्जे ॥ ३४ ॥

अथ विपूचिकापर हरीतक्यादि अञ्जन ।

फलत्रयं त्र्यूषकरञ्जबीजं रसं तथा दाडिममातुलुंग्यः ॥
निशायुतं पेष्यकृता च वर्त्तिस्तदञ्जने हन्ति विपूचिकां च॥३५॥

हरडा, वहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, करंजुआके वीज, अनार, विजौराका रस और हलदी, इनको पीस वत्ती वना नेत्रोंमें आंजे । यह विपूचिका (हैजा) को हरता है ॥ ३५ ॥

अथ रास्नादि भक्षण ।

रास्ना विशाला च सुराव्दशिग्रुकुष्ठं वचा नागरकं शताह्वम् ॥
आग्नेयपिष्टाहपुषाविदार्य्यः खल्लीं विषूचीं च निवारयन्ति३६॥

रास्ना, इन्द्रायण, देवदारु, नागरमोथा, सहिंजना, कूट, वच, सोंठ, शतावरी, हाउवेर, विदारीकन्द इन सबोंको चीताके रसमें पीस खानेसे खल्लीरोग और विपूचिका (हैजा) दूर होती है ॥ ३६ ॥

अथ स्वेदका उपयोग ।

स्वेदो विधेयो घटकस्य बाष्पमेकैर्घटाभिर्वसनेन चोष्णः ॥
तथोष्णपाणिं प्रतिसेक एवं जयेद्विषूचीं जठरामयानाम् ॥३७॥

कलशेमें अग्निको छोड़कर उसकी भापोंसे अथवा गरम किये वस्त्रसे अथवा गरम किये हाथसे पसीना देवे तो विषूचिका (हैजा) और पेटका रोग दूर होता है ॥ ३७ ॥

अथ गन्धकादिभक्षण ।

गन्धकं सैन्धवं त्र्यूषं निम्बूरसविमर्दितम्॥आतुरो भक्षयेच्छीघ्रं विषूचीनां निवारणम् ॥ ३८॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गुल्मचिकित्सा नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

गन्धक, सेंधानमक, सोंठ, मिर्च, पीपल इनको निंवूके रसमें खरलकर प्रमाणसे रोगी खावें यह विषूचिका (हैजा) को जलदी दूर करता है ॥ ३८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसुनूवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने गुल्मचिकित्सा नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

अथ कृमिरोगके प्रकार और उन्होंके भेद ।

आत्रेय उवाच॥ क्रिमयो द्विविधाः प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरसम्भवाः॥

बाह्ययूकाः प्रसिद्धाः स्युराभ्यन्तराश्च किञ्चकाः ॥ १ ॥ सप्तविधो भवेद्बाह्यः षड्विधोऽन्तःसमुद्भवः ॥ तेषां वक्ष्यामि सम्भूतिं बाह्याभ्यन्तरे नृणाम् ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—बाह्य और आभ्यंतरभेदसे कृमि दो प्रकारके कहे हैं । जूमआदि बाह्यकृमि कहाते हैं, चुन्नाआदि आभ्यंतर कृमि कहाते हैं ॥ १ ॥ बाह्यकृमि सात प्रकारके हैं, आभ्यंतर कृमि छःप्रकारके हैं, अब उनकी उत्पत्तिको कहता हूं ॥ २ ॥

अथ जूमकी उत्पत्ति ।

रौक्ष्यादतिमलात्स्वेदाच्चिन्तया शोचनादपि ॥ कफधातुसमुद्भूतास्तीक्ष्णा यूका भवन्ति हि ॥ ३ ॥ यूकाः कृष्णाः पराः श्वेतास्तृतीया चर्मणि स्थिता ॥ सूक्ष्मातिविकटा रूक्षा चर्मभा चर्मयूकिका ॥ ४ ॥ चतुर्थी बिन्दुकी नाम वर्त्तुला मूत्रसम्भवा ॥ पञ्चमी मत्कुणा स्याच्च बाह्योपद्रवकारिणी ॥५॥ यूकामस्तकसंस्थाने श्वेता शिरोनिवासिनी॥चर्मयूका नेत्रचर्मे सूक्ष्मे रोमणि यष्टिका ॥ ६ ॥

रौक्ष्यसे, अत्यंत मलसे, पसीनासे, चिंता और शोचसे, कफ और धातु करके उपजी हुई तीक्ष्ण जूम होती हैं ॥ ३ ॥ पहली कृष्णा, दूसरी श्वेता और तीसरी चर्ममें स्थित, सूक्ष्म, अतिविकट, रूखी, चर्मसरीखी कांतिवाली होती है ॥ ४ ॥ चर्मयूकिकानामवाली चौथी और बिंदुकी नामवाली पांचमी है और मूत्रसे उपजी वर्तुलानामवाली छठी है और शरीरके बाहर उपद्रव करनेवाली मत्कुणा सातमी है ॥ ५ ॥ मस्तकके स्थानमें यूका जूम होती है और सूक्ष्मरोमोंमें भी जूम होती है और नेत्रके चाममें चर्मयूका जूम होती है (इसे कुटकी कहते हैं) और सूक्ष्मरोमोंमें चर्ममें भी जूम होती है । उसे यष्टिका कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ कृमि उत्पन्न होनेका कारण ।

रूक्षान्नगोधूमयवान्नपिष्टैर्गुडेन वा क्षीरविपर्य्ययेण ॥ दिवाशयानेन सपिच्छलेन घर्मेण तापोदकसेवनेन ॥ ७ ॥ संजायते तेन मलाशयेषु क्रिमिव्रजं कोष्ठविकारकारि ॥ ८ ॥

रूखा अन्न, गेहूँ, जव, पीठी, गुड़, दूधका पदार्थ, दिनका सोना, कफकारी पदार्थ, घाम और गरमपानीके सेवनेसे ॥ ७ ॥ मलाशयमें कृमियोंका समूह उपजता है । यह कोष्ठमें विकारको करता है ॥ ८ ॥

अथ छः प्रकारके अंतर्गत कृमि।

षड्विधास्ते समुद्दिष्टास्तेषां वक्ष्यामि लक्षणम्॥कफकोष्ठे मलाधाराः विसर्पन्ति सुसर्पवत्॥९॥पृथुसुण्डा भवंत्येके केचित्किञ्चुकसन्निभाः॥धान्याङ्कुरनिभाःकेचित्केचित्सूक्ष्मास्तथाणवः॥१०॥ सूचीमुखाःपरिज्ञेयाश्चान्त्राणि सीदयन्ति ते॥वक्ष्यामि लक्षणं तेषां चिकित्साञ्च शृणुष्व मे ॥ ११ ॥

जो छः प्रकारके बाह्यकृमि कहे हैं उनके लक्षणोंको कहता हूं, मलके आधारवाले कफके कोष्टमें कृमि सर्पकी तरह चलते हैं ॥ ९ ॥ कितनेक पृथुमुंडनामसे विख्यात हैं और कितनेक केचुवोंके समान कांतिवाले होते हैं, कितनेक अन्नके अंकुरके समान कांतिवाले होते हैं, कितनेक सूक्ष्म होते हैं, कितनेक अत्यंत सूक्ष्म होते हैं ॥ १० ॥ कितनेक सूचीमुख नामसे विख्यात हैं ये आंत्रोंको शिथिल करते हैं, उनके लक्षण और चिकित्साको कहता हूं सुनो ॥ ११ ॥

अथ कृमिरोगका लक्षण।

ज्वरो हृद्रोगशूलं वा वमिहृत्क्लेदनं भ्रमः ॥ रुचिबन्धो विवर्णत्वमतीसारः सफेनिलः॥१२॥ गर्जनं जठरे चैव मन्दाग्नित्वं च जायते॥ पिपासा पीतता नेत्रे किञ्चुकैः पीडितस्य च ॥१३॥

ज्वर हो, हृदयरोग, शूल, छार्दि, हृदयमें ग्लानि, भ्रम ये उपजें और रुचिबंध हो जावे, वर्ण बदल जावे, झागोंवाले मलसे सहित अतिसार उपजे ॥ १२ ॥ पेटमें शब्द होवे, मंदाग्नि उपजे और अत्यंत तृषा होवे और नेत्रोंमें पीलापन हो ये सब लक्षण हों तब समझना कि पेटमें केंचुवे हो गये ॥ १३ ॥

अथ सूचीमुखकृमिका लक्षण।

सूचीवत्तुद्यतेऽन्त्राणि रक्तं चैवातिसार्य्यते ॥ यकृद्वा भक्षयन्त्यन्ये रक्तं वा वमते भृशम् ॥१४॥ क्लेदो मुखेऽरुचिर्जाड्यं मन्दाग्नित्वं च वेपथुः॥ क्षुत्तृष्णा च ज्वरो ज्ञेयाः सूचीमुखक्रिमीरुजः ॥ १५ ॥

सूईकी तरह आंत्रोंको पीडित करे और रक्तको अत्यंत गुदाके द्वारा निकासे और यकृत् स्थानको भक्षण करे और रक्तकी अत्यंत छर्दि आवे ॥ १४ ॥ मुखमें ग्लानि हो, अरुचि और जड़पना उपजे ।मंदाग्नि और कंप उपजे और भूख,तृषा,ज्वर ये भी उपजें ये सब लक्षण हों तब सूचीमुखकृमिरोगके लक्षण जानिये ॥ १५ ॥

अथ धान्यांकुरकृमिका लक्षण ।

ये च धान्याङ्कुरास्तेषां वक्ष्याम्यथ च लक्षणम्॥मलाशयस्थाः क्रिमयो मलं जग्धन्ति ते भृशम् ॥१६॥ तैस्तु संजायते देहे विद्रधिर्भेदनं तथा ॥ पारुष्यं कार्श्यमङ्गानां रुजत्वं हृत्क्रिमोद्भवः ॥ १७ ॥

धान्यके अंकुरके समान कृमिके लक्षणको कहता हूँ । मलाशयमें स्थित हुए ये कृमि मलको खाते हैं ॥१६॥उनसे देहमें कृशपना, विद्रधि,हड़फोड़,कठोरपना, शूल ये उपजते हैं ॥ १७ ॥

हारीतका प्रश्न ।

हारीतः संशयापन्नः पादौ संगृह्य पृच्छति॥कथं देहे मनुष्यस्य मलमूत्ररसाशये ॥१८॥ संभवन्ति कथं चादौ वर्द्धयन्ति कथं पुनः॥ कथं च शीर्णेऽन्नरसे नानाहारविभक्षणे ॥१९॥ जायन्ते केन क्रिमयःसूक्ष्मा वाप्यधोगामिनः॥नानासमपक्वभक्ष्यान्नं दहते वा हुताशनः ॥ २० ॥ कथं ते क्रिमयश्चान्ते न दह्यन्तेऽन्तराग्निना ॥ एवं पृष्टो महाचार्य्यः प्रोवाच मुनिपुङ्गवः ॥ २१ ॥

संशयको प्राप्त हुआ हारीतमुनि आत्रेयजीके पैरोंको ग्रहण कर पूछता है,हे भगवन् ! मनुष्यके मल मूत्र और रस आशयमें किस भांति पहिले कृमि उपजते हैं और फिर कैसे बढ़जाते हैं तथा अनेक विधिके आहारोंके खाने और अन्नके रसके पकनेपर सूक्ष्म और अधोगामी कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं ? अनेक अन्नोंको अग्नि जला देता है ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ परंतु वे कृमि समीपमें स्थित हुए भी उसी अग्निसे क्यों नहीं दग्ध होते ? ऐसे पूछे हुए महा आचार्य्य और मुनियोंमें श्रेष्ठ आत्रेयजी कहने लगे ॥ २१ ॥

अथ आत्रेयजीका उत्तर ।

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र महाबाहो क्रिमिसम्भवकारणम् ॥ विरुद्धान्नरसैः पुत्र रक्तं चैवास्य कुप्यति ॥ २२॥ कफेनैकदिनं याति शुक्रेण कारणं व्रजेत्॥पञ्चभूतात्मके काये ते तु जाताः सचेतनाः ॥२३॥ कोष्ठाग्निना न दह्यन्ते न जीर्य्यन्ते रसैस्तथा॥ विषे जातो यथा कीटो न विषेण मृतिं व्रजेत् ॥ २४ ॥ तथा हुताशनोद्भूतं न हुताशेन जीर्य्यते॥ २५ ॥भेषजं संप्रवक्ष्यामि

येन तेऽपि तरन्ति वै ॥ पतन्ति वा शमं यान्ति भेषजानि शृणुष्व मे ॥ २६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-हे पुत्र ! हे महाबाहो ! कृमिकी उत्पत्तिके कारणको सुनो, हे पुत्र! विरुद्ध अन्न और रसोंकरके मनुष्यका रक्त कुपित होता है ॥ २२ ॥ कफ और शुक्रके कारणसे एक ही दिनमें उत्पन्न होकर फिर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इनसे संयुक्त हुए शरीरमें चैतन्यरूप होके उपजते हैं ॥२३॥ कोष्ठकी अग्निसे नहीं दग्ध होते हैं और रसोंके साथ जीर्ण नहीं होते। जैसे विषसे उपजा कीड़ा विषकरके मृत्युको प्राप्त नहीं होता ॥ २४ ॥ वैसे अग्निकरके उपजे कृमि अग्निसे दग्ध नहीं होते हैं ॥ २५ ॥ अब औषधको मैं कहता हूँ जिस करके ये कीड़े नहीं उपजते हैं अथवा गिर पड़ते हैं अथवा शांत होजाते हैं मुझसे सो सुनो ॥२६॥

अथ कृमिपातनका औषध।

वचाजमोदा क्रिमिजित्पलाशबीजं शटी रामठकं त्रिविश्याः ॥ उष्णोदके तत्परिपेष्य पेयं पतन्ति शीघ्रं शतधामलौकाः॥२७॥

वच, अजमोद, वायविडंग, टेसूके बीज, कचूर, हींग ये सब एक एक भाग और सोंठ ३ भाग इनको गर्मपानीसे पीस पीवे। यह सौ १०० प्रकारसे कृमियोंको निकालता है ॥२७॥

अथ कृमि नष्ट करनेकी औषध।

शटीयवानीपिचुमन्दपुत्रान् विडङ्गकृष्णातिविषारसानाम् ॥ सपेष्य मूत्रेण त्रिवृत्प्रयुक्तं विनाशनं सर्वकृमीरुजानाम् ॥ २८ ॥ मरिचं पिप्पलिमूलं विडङ्गशिग्रुजवानिकात्रिवृतः ॥ गोमूत्रेण तु पेष्यं पानं शीघ्रं क्रिमीन् हन्ति ॥२९॥ मुस्ताविशालात्रिफलासुपर्णाशिग्रूसुराह्वं सलिलेन कल्कः ॥ पानं सकृष्णाक्रिमिशत्रुचूर्णं विनाशनं सर्वकृमीरुजां च ॥ ३० ॥ सुदेवकाष्ठं सुरसा च मागधी विडङ्गकं पिप्पलिका च दन्तिनी। त्रिवृद्रसोनं सलिलेन सेवितं जयेच्च कम्पिल्लकताडकैः कृमीन् ॥ ३१ ॥ मातुलुङ्गस्य मूलानि रसोनःक्रिमिजित्त्रिवृत्॥ अजमोदानिम्बपत्रं गोमूत्रेण तु पेषयेत् ॥३२॥ पानमेतत्प्रशंसन्ति क्रिमिदोष-

निवारणम् ॥ ज्वरप्रोक्तानि पथ्यानि क्रिमिदोषे प्रदापयेत् ३३
इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने क्रिमिचिकित्सा नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

कचूर, अजवायन, नींबकी कोंप, वायविड़ंग, पीपल, अतीश, शोधा पारा, निशोत, इनको गोमूत्रमें पीसकर सेवनेसे, सबप्रकारके कृमिरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २८ ॥ मिर्च, पीपलामूल वायविड़ंग, सहींजना, अजवायन, निशोत, इनको गोमूत्रमें पीस पीवे यह कृमिरोगको शीघ्र नाशता है ॥ २९ ॥ नागरमोथा, इंद्रायन, हरड़ें, वहेड़ा, आंवला, सांतविण, सहींजना, देवदार इनका कल्क अथवा पीपल और वायविड़ंगका चूर्ण खानेसे उसप्रकारके कृमिरोगको नाशता है ॥ ३० ॥ वनतुलसी, देवदार, पीपल, वायविडंग, कपिला ओषध, जमालगोटेकी जड़, निशोत, ताड़, लहसुन इनके चूर्णको पानीके साथ सेवे यह कृमिरोगको नाशता है ॥ ३१ ॥ विजोराकी जड़, लहसुन, निशोत, अजमोद, नींबके पत्ते इनको गोमूत्रसे पीसे ॥ ३२ ॥ कृमिदोषको दूर करनेवाले इस पानको वैद्य सराहते हैं। ज्वरमें कहे हुए पथ्योंको कृमिदोषमें प्रयुक्त करे ॥३३॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने कृमिचिकित्सानाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अथ मंदाग्निआदि अग्नियोंके निदान और चिकित्सा ।

आत्रेय उवाच॥अग्निश्चतुर्विधः प्रोक्तः समो विषमतीक्ष्णकः ॥ मन्दस्तदपरः प्रोक्तः शृणु चिह्नानि साम्प्रतम् ॥१॥ वातपित्तकफसाम्यात्समःसंजायतेऽनलः॥तैरेवं विषमं प्राप्ते विषमो जायतेऽनलः ॥२॥ तीक्ष्णः पित्ताधिकत्वेन जायते जठराग्निकः ॥

आत्रेयजी कहते हैं—सम, विषम, तीक्ष्ण, मंद इन भेदोंसे अग्नि चार प्रकारका कहा है अब उनके लक्षणोंको सुन ॥ १ ॥ वात, पित्त, कफ, ये समान होवें तब सम अग्नि होता है और ये ही वातआदिक दोष विषम हो जावें तब विषम अग्नि होता है ॥ २ ॥ पित्त अधिक होवे तब तीक्ष्ण अग्नि होता है ॥

अथ चार प्रकारके अग्निका लक्षण ।

वातश्लेष्माधिकत्वेन जायते मन्दसंज्ञकः ॥ ३ ॥ यद्युक्तं प्रकृतिस्थं तु पाचयत्यन्नसंचयम् ॥ स समो नाम निर्दोषः सर्वधातु-

विवर्द्धनः॥ ४॥ किञ्चित्पाचयते भक्ष्यं कदाचिदविपक्कक॥ वातेन वा न विषमं करोत्यपि विषूचिकाम्॥ ५॥ अश्नात्यधिकं प्रकृत्यापि तृप्तिं न लभतेऽपि च॥ सदाहपीतता नेत्रे तीक्ष्णो वै क्षयकृद्बले॥६॥यद्भोक्तुं नैव शक्नोति यत्तु श्लेष्मबलाधिकात्॥ सोऽपि मन्दानलो नाम गुल्मोदरपरो मतः॥ ७॥

वात कफ ये अधिक हो जावें तब मंदाग्नि होता है॥ ३॥ और जो स्वभावके योग्य अन्नका भोजन किये हुएको पका देता है वह सम अग्नि कहाता है, सब दोषोंसे रहित है और सब धातुओंको बढ़ाता है॥ ४॥ विषम अग्नि भोजन किये हुएको कछुक पकाता है और कभी नहीं पकाता हैं और वातसे विषम हुआ अग्नि विषूचिका अर्थात् हैजाविशेषको करता है॥ ५॥ अपनी प्रकृतिसे अधिक भोजन करे तब भी तृप्ति नहीं होवे और सदा पीले नेत्र रहें, दाह हो, बलका नाश हो वह तीक्ष्ण अग्नि कहाता है॥ ६॥ कफके आधिक बली होनेसे जो भोजन करनेको समर्थ न रहे वह मंदाग्नि कहाता है और गुल्मोदररोगको करता है॥ ७॥

अथ चार प्रकारके अग्निका परिणामविशेष।

समेन समता देहे देहधातुबलेन्द्रियैः॥ हृष्टःसंपूर्णगात्रस्तु सचेष्टो वर्त्तते नरः॥ ८॥ विषमे वानिलाद्याश्च ग्रहणी चातिसारकाः॥ प्लीहा गुल्मो विषूची च शूलोदावर्त्तसंज्ञकः॥९॥ आनाहो मन्दचेष्टत्वं जायते विषमाग्निना॥वातकफावुभौ क्षीणौ तीव्रो भवति पित्तकः॥१०॥ भोजने लभते प्रीतिं भुक्त्वा चैव च जीर्य्यते॥ तेन भस्मकसंज्ञस्तु जायते जठरानलः॥ ११॥ पाण्डुः पित्तातिसारस्तु राजयक्ष्मा हलीमकः॥भ्रमः क्लमोऽतिवैकल्यं यकृद्वापि प्रमेहकाः॥ १२॥ शूलमूर्च्छा रक्तपित्तं पित्ताम्लं मूत्रकृच्छ्रकम्॥ तेन संक्षीयते गात्रं जायतेऽन्नस्य लौल्यता॥ १३॥ भक्षिताः काष्ठपाषाणा जीर्य्यन्ते तस्य देहिनः॥ इति प्रोक्तं निदानं च नरस्याग्निप्रकोपनम्॥ १४॥ बहुधापि न वोक्तं तु ग्रन्थविस्तारशङ्कया॥ १५॥

समान अग्नि होवे तब शरीरमें धातु, बल, इंद्रिय इनकी समानता रहे और सदा प्रसन्न रहे और शरीर हृष्टपुष्टहो ऐसा मनुष्य श्रेष्ठ होता है और कान्तियुक्त होता है॥

॥ ८ ॥ विषम अग्नि होवे तो वातआदिकरोग और ग्रहणीरोग, अतिसार, प्लीहा, गुल्मरोग, विषूचिका, शूल, उदावर्त ॥ ९ ॥ अफारा और मन्द चेष्टा रहती है और वात कफ ये दोनों क्षीण और पित्त तीक्ष्ण होता है ॥ १० ॥ भोजनमें प्रीति रहे, भोजन किया हुआ जर जावे वह जठरानल भस्मक रोग कहाता है ॥ ११ ॥ उस भस्मक रोगसे, पांडुरोग, पित्तका अतिसार, राजयक्ष्मा, हलीमक, भ्रम, ग्लानि, अतिविकलपना, यकृत्‌रोग, प्रमेह ॥ १२ ॥ शूल, मूर्च्छा, रक्तपित्त, अम्लपित्त, मूत्रकृच्छ्र ये उपद्रव और शरीर क्षीण हो जाता है, अन्नमें अत्यन्त इच्छा रहती है ॥ १३ ॥ और उस भस्मरोगवाले मनुष्यके भक्षण किये हुए काष्ठ, पत्थर भी जल जाते हैं। इस प्रकार मनुष्यके अग्निकोप होनेके लक्षण कहे हैं ॥ १४ ॥ ग्रन्थके विस्तार होनेकी शंकासे यहां बहुतसा विस्तार नहीं कहा है ॥ १५ ॥

अथ जठराग्निकी चिकित्सा।

अतो वक्ष्ये समासेन भेषजानि पृथक्पृथक् ॥
पाचनं शमनं चैव दीपनञ्च तथोपरि ॥ १६ ॥

अब विस्तारसे जुदी २ औषधोंको कहते हैं। पाचन अर्थात् पकानेवाली, शमन और दीपन अर्थात् अग्निको दीप्त करनेवाली ऐसी औषधोंको कहते हैं ॥ १६ ॥

अथ विषमाग्निकी चिकित्सा।

रास्ना शटी प्रतिविषा सुरसा च शुण्ठी सिन्धूत्थहिङ्गु मगधा च सुवर्चलं च ॥ चूर्णं कृतं सगुडमोदकभक्ष्यमाणं वातात्मकन्तु विषमाग्निसमीकरञ्च ॥ १७ ॥ शूलानजीर्णविषमाग्निविषूचिकासु वातादयः सकलगुल्मविनाशनं स्यात् ॥ भुक्तोपरि कथितमेव पिबेत्सुखोष्णं श्रेष्ठं तथोपरि समस्तरसानुभोज्यम् ॥ १८ ॥

रास्ना, कचूर, काला अतीश, सौंफ, सोंठ, सेंधानमक, कालानमक, हींग, पीपल इनका चूर्ण बना उसमें गुड़ मिला गोली बना खानेसे वातसे उपजा हुआ विषमाग्निरोग दूर होता है ॥ १७ ॥ शूल, अजीर्ण, विषमाग्नि, विषूचिका इन रोगोंको तथा वातसे उपजे हुए रोगोंको और गुल्म रोगको नाशती है और इसके खानेके ऊपर औटाया हुआ सुखसे सुहाता हुआ गरम जलको पीवे और इसके ऊपर सब प्रकारके रस खाने श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥

अथ तीक्ष्णाग्निकी चिकित्सा।

द्राक्षाभया तिक्तकरोहिणी च विदारिका चन्दनवासकं च ॥
मुस्ता पटोलं च किरातकानां कृष्णा बला च विकचावि-

षाणा ॥ १९ ॥ पलालवङ्गालसपञ्चकं च योज्या च भृंगी धनिका समांशा ॥ चूर्णं सखर्जूरसितासमेतं घृतेन तद्वार्द्धबलप्रमाणम् ॥ २० ॥ भक्षेत्प्रभाते पयसा मनुष्यो निष्क्वाथ्य पानं सघृतं विधेयम् ॥ करोति तीव्राग्निसमं प्रकृष्टं कृशस्य पुष्टिं तनुतेऽपि नूनम् ॥ २१ ॥ क्लमभ्रमशोषविनाशनं स्यात्तृष्णातिलोत्यप्रशमं करोति ॥ सरक्तपित्तं क्षयपाण्डुरोगं हलीमकं कामलमाशु नश्येत् ॥ २२ ॥

दाख, हरड़े, कुटकी, विदारीकंद, चन्दन, वासा, नागरमोथा, परवल, चिरायता, पीपल, खरेहटी, गोरखमुंडी, अतीस ॥१९॥ वालछड़, लौंग, पत्राख, भंगरा, धनियां, खजूरिया इनको समान भागसे चूर्ण बना उसमें मिश्री मिला पीछे घृतके संग इस चूर्णको आधी मात्रा प्रमाण ॥ २० ॥ प्रातःकालमें खावे और इसके ऊपर औटाया हुआ दूधको घृतके संग पीवे. यह तीक्ष्ण अग्निको समान करता है और कृश शरीरको अत्यंत पुष्ट करता है ॥ २१ ॥ ग्लानि, भ्रम, शोष इनको दूर करता है और अत्यंत दाहको शांत करता है। रक्तपित्त, क्षयरोग, पांडुरोग, हलीमक, कामला इनको शीघ्र ही नाशता है ॥ २२ ॥

तण्डुलारक्तशालीनां भागद्वयेन धीमताम् ॥ भृष्टा तिलांश्च संकुट्य तदर्द्धेन विमिश्रितान् ॥ २३ ॥ भृष्टा तत्समसुद्गांश्च चक्रीकृत्य तु साधयेत् ॥ सिद्धां च कृशरां सम्यग्घृतेन सह भोजयेत् ॥ २४ ॥ एकाहान्तरितो यस्तु तीव्राग्निस्तस्य नश्यति ॥ २५ ॥

लाल चावल २ भाग, भूने हुए तिल १ भाग इनको कूटके फिर इनके बराबर भूने हुए मूंग मिला ॥ २३ ॥ इनको पकाके खिचड़ी बनावे पीछे इसको घृतके संग भोजन करे ॥ ॥ २४ ॥ इसको एकदिन खावे और एक दिन नहीं खावे इस क्रमसे खानेसे तीक्ष्ण अग्नि शांत होती है ॥ २५ ॥

अथ हरीतक्यादिवटी ।

हरीतकी हरिहरतुल्यषड्गुणा चतुर्गुणा चतुर्विशालपिप्पली ॥ हुताशनं संयुतहिङ्गुसैन्धवं रसायनं कुरुनृप वह्निदीपनम् ॥ २६ ॥

हरड़े ६ भाग, चार भाग पीपल, चार भाग गजपीपल, चीता, हींग, सेंधानमक इनको एक जगह पानीमें खरलकर गोली बांध लेवें यह अग्निको दीप्त करनेमें रसायन कहाता है ॥ २६ ॥

अथ यवानीखांडवचूर्ण ।

जवानिकाग्निश्च हरीतकी तथा यथोत्तरं वृद्धिमवाप्य चूर्णयेत् ॥ सतिंतिडीकं च सकोलदाडिमं तथाम्लवेतं रुचिरं च मेलयेत् ॥ २७ ॥ समानि चेमानि च कर्षमात्रं कर्षाद्विभागेष्वितरे बलानि ॥ जाजी वराङ्गं च सुवर्चलं च कणाशतैकं मरिचं तदर्द्धे॥२८॥पलानि चत्वार्य्यपि शर्करायाः समं विचूर्ण्योदरगान् प्रमार्ष्टि॥ भक्षेद्यदेदं रुचिकृद्विबन्धं प्लीहं सशूलं जयते सकासम् ॥ २९ ॥ श्वासं विनश्येद्धृदयामयघ्नं जिह्वागदं कण्ठगदं निहन्ति॥ग्राहग्रहण्यार्शविकारमन्दानलस्य सन्दीपनमेव चूर्णम् ॥ ३० ॥ यवानिकाखंडविकाभिधानमरोचकानां शमने प्रशस्तम् ॥३१ ॥

अजवायन १ भाग, चीता २ भाग, हरड ३ भाग ऐसे इनके यथोत्तर वृद्धि भाग लेके चूर्ण बनावे और अम्लवेत, बेर, अनारदाना, अमली ॥ २७ ॥ इन सब औषधोंको समान भाग एक एक तोला प्रमाण लेवे और जीरा, दालचीनी, कालानमक ये सब दो तोला प्रमाण लेवे और पीपल १०० सौ, काली मिर्च ५० ले ॥ २८ ॥ मिश्री १६ तोले ऐसे इन सब औषधोंको ले एक जगह चूर्ण बनावे इस चूर्णके खानेसे उदररोगोंका नाश होता है और यह रुचिको करनेवाला है, मलका बंधन, तिल्ली, शूल, खांसी ॥ २९ ॥ श्वासरोग, हृदयरोग, जिह्वारोग, कंठरोग इनको दूर करता है और संग्रहणी, बवासीर इनको दूर करता है, मंदाग्निको दीप्त करता है ॥ ३० ॥ यह यवानीखांडवनामवाला चूर्ण अरोचकरोगको दूर करनेमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ३१ ॥

अथ अरोचक चिकित्सा ।

यवागूः पञ्चकोलस्य कुलत्थाढ्ययूषकम्॥मुद्गयूषेण वा सम्यग्भक्तानां भोजनं हितम् ॥३२॥ सहिङ्गु त्र्यूषणाढ्यं च व्यञ्जनं संप्रशस्यते ॥ अगस्तिघृतवच्छ्रेष्ठं भोजनारोचकेष्वपि॥ ३३ ॥ कारवेल्लं पटोलश्च पलाण्डुः सूरणं शटी ॥ लवणं धान्यकं श्रेष्ठं प्रलेहश्च कटुत्रिकम् ॥ ३४ ॥ शटी सर्षपवास्तूकं शतपुष्पा च माचिका ॥ तुण्डीरकस्य मूलानां शाकं श्रेष्ठं प्रशस्यते ॥

॥ ३५ ॥ गोधूमपोलिकाः श्रेष्ठा भृष्टाङ्गारैररोचके ॥जाङ्गलानि च मांसानि भोजयेद्भिषगुत्तमः ॥३६॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मन्दाग्निचिकित्सा नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

पंचकोल अर्थात् पीपली, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंट इनकी यवागूको तथा कुलथी, अरहरकी दाल इनके यूषको भोजन करे, अथवा मूंगोंके यूषके संग चावलोंका भोजन करना हित है ॥ ३२ ॥ हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल इनसे संयुक्त किया हुआ शाक भोजनकी अरुचिमें अगनिसंज्ञक घृतकी तरह श्रेष्ट कहा है ॥३३॥ करेला, परवल, प्याज, जमीकंद, कचूर, इनका शाक श्रेष्ठ कहा है और नमक, धनियां, सोंठ, मिर्च, पीपल इनकी चटनी श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥ कचूर, सिरसम, बथुआ, नौंफ, मकोह, मीठीतोरी मूली, इनका शाक अरोचक रोगमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ३५ ॥ अंगारोंपै सेकी हुई गेहूंकी रोटी जांगलदेशके जीवोंका मांस इनको वैद्यजन अरोचकरोगवालेको भोजन करवावे ॥ ३६ ॥ इति वेरीनिवासीवुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने मंदाग्निचिकित्सानाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७

अथ शूलनिदान।

आत्रेय उवाच ॥ व्यायामपाननिशिजागरणव्यवायशोकातिभाररगतिधावनकश्रमेण ॥ वैषम्यपानशयनेन च भोजनेन शीतेन वायुकुपितः प्रकरोति शूलम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–कसरत, पान, रात्रिमें जागना, मैथुन, शोक, अतिबोझ, गमन, भागने और श्रमसे तथा विषम पान, विपरीत शयन, विपरीत भोजन और शीतल वस्तुके सेवनेसे कुपित हुआ वायु शूलको करता है ॥ १ ॥

अथ वातशूलकी उत्पत्ति।

विष्टम्भिरूक्षयवमाषकलायमुद्गनिष्पावकात्रिपुटकोद्रवको मसूरः गोधूमक्षुद्रकफरूक्षविभोजनेन चैतच्च पानमलरोधनमूत्ररोधैः॥२॥ वायुस्त्वधोगतपथं प्रविरुद्ध्य शूलं वातात्मको भवति चान्तरव-

ह्निर्माश्च ॥ तस्मादिति प्रबलताकुपितः प्रकोष्ठे शूलं करोति गुद-मार्गनिरोधितेऽपि ॥ ३ ॥ गात्रेऽपि तोदविरतिर्मलिनातिदीना वातार्तिपीडितनरस्य महामते स्यात् ॥ ४ ॥

विष्टंभी अर्थात् मलको बंद करनेवाला, सूखा भोजन, जव, उड़द, मोठ, मूंग, मटर, कोदूधान्य, चौला, मसूर, गेहूं, कफको पैदा करनेवाला और रूखा अन्नके भोजनोंसे और जलपान, मल, मूत्र, इनके रोकनेसे ॥ २ ॥ वायु अधोमार्गके मूलमार्गको रोक देता है। यह वातसे उत्पन्न हुआ शूल कहाता है और उदरके भीतर अग्नि दाह कर देता है। कोष्ठ-स्थानमें प्रबल होके कुपित हुआ शूलको उपजाता है और गुदाके मार्गको रोक देता है ॥ ३ ॥ शरीरमें भी पीड़ा, ग्लानि, मलीनता, दीनपना ये उपद्रव वातसे पीड़ित हुए मनुष्यके उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥

अथ पित्तशूलनिदान ।

क्रोधातपादनलसेवनहेतुना च शोकाद्भयार्त्तिगतिधावनधर्मयो-गात् ॥ क्षाराम्लमद्यकटुकोष्णविदाहिरूक्षसौवीरशुष्कपललेख-नराजिकाभिः ॥ ५ ॥ वातः प्रकोपमयते किल तत्तु पित्तं शूलं करोति जठरे मनुजस्य तीव्रम् ॥ तेनाङ्गदाहारतिघर्मतृषार्ति-मूर्च्छा नाभ्यन्तरे दहति शोषणतास्य पैत्त्यम् ॥ ६ ॥

क्रोधसे, घाम और अग्निके सेवनेसे, शोक, भय, पीड़ा, गमन करना, भागना और पसीना-के योगसे, खारा, खट्टा, मदिरा, चर्चरा, कुछ गरम, विदाही, रूक्ष पदार्थ, बेर, कांजी, सूखा पदार्थ, मांस, लेखन पदार्थ, राई ॥ ५ ॥ इनके खानेसे वायु कुपित होके पित्तको कुपित करता है, फिर वह पित्त मनुष्यके उदरमें दारुणशूल उत्पन्न करता है उससे अंगमें दाह, ग्लानि, पसीना, तृषा और मूर्च्छा ये उपद्रव होते हैं और नाभिके समीपमें दाह, शरीरमें शोष होता है और मुख पीला रहता है ॥ ६ ॥

अथ कफशूलकी उत्पत्ति ।

अव्यायामेऽस्निग्धसंसेवनेन लौल्याहारे चेक्षुतैलैः पयोभिः ॥ अल्पाहारे निद्रया सेवनैस्तु योगैरेतैः कुप्यते श्लेष्मकस्तु ॥ ७ ॥ माषातिशीतलपयोदधिभिः सुशीतैर्मत्स्यैस्त्वनूपपललैरतिसे-वितैस्तु ॥ श्लेष्मा भृशं शमयतेऽनलमाशु शूलं कोष्ठे करोति मनु-

---

१ 'सौवीरं बदरं घोंटाप्यथ स्यात् स्वादुकंटकः' इत्यमरः ।

जस्य विकारमुग्रम् ॥ ८ ॥ हृल्लासकासवमिजाड्यशिरोगुरुत्वं स्तैमित्यशीतलतनूरुचिबन्धनं च ॥ भुक्तप्रसेकमधुरास्यमथाभिरासं स्निग्धं मुखं भवति यस्य कफात्मकोऽसौ ॥ ९ ॥ चिह्नानि चैतानि भवन्ति यस्य कफात्मकं शूलमवेहि तस्य ॥ सपैत्तिकानीव भवन्ति यस्य वदन्त्यजीर्णेन च शूलमस्य ॥ १० ॥

कसरत नहीं करना, चिकना नहीं खाना, पिच्छल भोजन करना, ईखका रस, तेल, दूध इन्होंका भोजन करना, अल्प भोजन करना, निद्राका सेवन करना इन योगों करके कफ कुपित होता है ॥७॥ उड़द, अत्यंत शीतल पदार्थ, शीतल दूध, दही, मच्छी और अनूपदेशके जीवोंका मांस इनके सेवन करनेसे कफ जठराग्निको शांत कर देता है और शीघ्रही शूलको उत्पन्न कर देता है, मनुष्यके कोष्टस्थानमें अति उग्र विकार करता है ॥ ८ ॥ हृल्लास अर्थात् थुकथुकी, खाँसी, वमन, जड़ता, शिर भारी, गीलापन, शीतल शरीर होना, रुचिबंध होनी, भोजन करे पीछे थूक आना, मीठा मुख रहे, आलस्य रहे, चिकना मुख रहे जिसके ये उपद्रव हों वह कफसे उपजा शूल जानना ॥९॥ जिसके ये लक्षण हों वह कफका शूल होता है और जिसके पित्तके लक्षण मिलते हों उसको वैद्यजन अजीर्णसे उपजा हुआ भी शूल कहते हैं ॥ १० ॥

अथ द्विदोषजशूलकी उत्पत्ति ।

हृत्कण्ठपार्श्वे सकफः सपित्तः हृन्नाभिमध्ये कफपित्तशूलः ॥ बस्तौ च नाभौ प्रकरोति पीडां देहेऽखिले यः स तु वातपित्तात् ११

कफसे उपजा शूल, हृदय, कंठ, पसली, इनमें पीड़ा करता है और पित्तसे उपजा शूल हृदय, नाभि इनमें पीड़ा करता है और कफपित्तसे उपजा शूल बस्तिस्थान और नाभिमें पीड़ा करता है और जो सब शरीरमें पीड़ा हो वह वातपित्तसे उपजा शूल जानना ॥ ११ ॥

अथ दशप्रकारके शूल ।

अथ शूलोंकी साध्यासाध्य परीक्षा ।

एकोऽपि सुखसाध्योऽसौ द्वन्द्वः कष्टेन सिध्यति ॥
त्रिदोषजस्त्वसाध्यस्तु बहूपद्रवसंयुतः ॥ १२ ॥

एक दोषसे उत्पन्न हुआ शूल सुखसाध्य होता है, दो दोषोंसे उपजा हुआ शूल कष्टसाध्य कहाता है, त्रिदोषसे उपजा और बहुत उपद्रवोंसे संयुक्त शूल असाध्य होता है ॥१२ ॥

अथ शूलोंकी संख्या और पृथक्करण ।

निदानैः कुपितो वायुर्वर्त्तते जठरान्तरे ॥ तेन शूला हि दशधा भिषग्भिः परिगीयते ॥१३॥ त्रयो वातादिका ज्ञेया द्वन्द्वजास्तु

पुनस्त्रयः॥सामानिरामकौ द्वौ च शूलाश्चाष्टाविमे स्मृताः॥१४॥ अजीर्णान्नवमः प्रोक्तो दशमः परिणामजः ॥ एवं दशप्रकारेण शूलं संभवते नृणाम् ॥१५॥ भुक्तोपरि भवेद्यस्तु सोऽपि ज्ञेयः कफात्मकः॥ जीर्णेऽन्ने च भवेद्यस्तु स ज्ञेयःपरिणामजः॥१६॥

कारणोंसे कुपित हुआ वायु उदरके भीतर वर्तता है फिर उसके किये हुए दश प्रकारके शूल उत्पन्न होजाते हैं ॥१३॥ तीन शूल वात आदिक दोषोंके और तीन दो दोषोंसे मिले हुए शूल और १ साम अर्थात् आमसहित शूल और १ निरामशूल ऐसे आठ प्रकारके तो ये हैं ॥ १४ ॥ और नवमा९ अजीर्णसे उपजा शूल और दशमा परिणामजशूल ऐसे मनुष्योंके दश प्रकारके शूल कहे हैं ॥ १५ ॥ जो भोजन करनेसे पीछे शूल होता है वह कफका शूल कहाता है और भोजन किया हुआ अन्न जर जावे तब शूल उपजे यह परिणाम-शूल कहाता है ॥ १६ ॥

अथ वातशूलका लक्षण ।

आध्मानमूर्ध्वं च विबन्धनं च जृम्भा तथा वेपथुमार्जनं च ॥ उद्गीरणं स्निग्धमुखातिजिह्वा वातेन शूलं भजते विधिज्ञः॥१७॥

ऊपरले अंगोंमें अफारा हो और मलका बंधा हो, जंभाई आवे,अत्यंत कांपैं,वमन और डकार आवें, मुख और जिह्वा चिकनी हो, ये लक्षण वातकी शूलके हैं ॥ १७ ॥

अथ पित्तशूलका लक्षण ।

तृष्णा विदाहोऽतिररतिर्विमोहः कृच्छ्रेण मूत्रं कटुकास्यता च ॥ स्वेदातिशोषो वदनं च पीतं पित्तात्मकं तं प्रवदन्ति धीराः १८॥

दाह हो, ग्लानि हो, मोह हो, तृषा हो, कष्टसे मूत्र उतरे,मुख कडुआ रहे,पसीना आवे,अत्यन्त शोष हो,मुख पीला रहे ये लक्षण हों उसको वैद्यजन पित्तका शूल कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ कफशूलका लक्षण ।

छर्दिस्तथा कासबलाससमोह आलस्यतन्द्रा जडतातिशैत्यम् ॥

छर्दि हो, खांसी, जुखाम , मोह, आलस्य, तन्द्रा, जडपना और अत्यन्त शीतलता ये कफसे उपजे शूलमें कहते हैं ॥

अथ द्वन्द्वजशूलका लक्षण ।

कफात्मकं तद्भिषजां वरिष्ठ शूलं भवेद्द्वन्द्वजरोगसंज्ञम्॥ १९ ॥ त्रिभिस्तु दोषैस्तु त्रिदोषजःस्याद्रक्तेन चैकादश एवमुक्तः॥पित्ता-

त्मकानि प्रभवन्ति यस्य चिह्नानि रक्तस्य च छर्दनं स्यात् ॥२०॥ शोषस्तृषाश्वासविदाहकासा भवन्ति रक्तप्रभवेऽतिशूलः॥२१॥ विना वातेन नो शूलं विना पित्तेन नो भ्रमः ॥ न कफेन विना छर्दिर्न रक्तेन विना तमः ॥ २२ ॥

जो दो दोषोंसे उपजा हो,कफप्रधान वह द्वन्द्वज शूल कहाता है॥१९॥ तीन दोषोंसे उपजा हुआ त्रिदोषज शूल कहाता है और रक्तसे उत्पन्न हुआ ग्यारहवां शूल होता है,जिसके पित्तके लक्षण हों और रुधिरकी छर्दि करे ॥ २० ॥ शोष हो, तृषा हो, दाह हो,खांसी हो, श्वास हो, वह रक्तसे उपजा हुआ शूल कहाता है ॥ २१ ॥ वातके विना शूल नहीं होता है और पित्तके विना भ्रम नहीं होता है, कफके विना छर्दि नहीं होती है और रक्तके विना अन्धेरी नहीं होती है ॥ २२ ॥

अथ सब प्रकारके शूलोंकी चिकित्सा ।

इति शूलपरिज्ञानमतो वक्ष्यामि भेषजम्॥ येन शूलार्तिशमनं शूली संपद्यते सुखम् ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा शूलं लङ्घनं पाचनं च वान्तिं चैव स्वेदनं रेचनं वा॥ क्षारं चूर्णं चार्पयेच्छूलशान्त्यै पानाभ्यङ्गान्कासमाने मनुष्ये ॥ २४ ॥

इस प्रकार शूलका निदान तो कह दिया है । अब इनकी औषधोंको कहेंगे जिससे शूलकी पीडा शांत होती है और शूलरोगवाला पुरुष सुखी होता है ॥ २३ ॥ वैद्यजन शूलको देखि लंघन , पाचन, विरेचन, वमन, संस्वेदन इन कर्मोंको करवावे और शूलकी शांतिके लिये क्षारचूर्णको देवे और जो मनुष्यके खांसीसहित शूल हो तो पान, अभ्यंग अर्थात् मालिस करवावे ॥ २४ ॥

अथ शूल तथा गुल्मपर हिंग्वादि क्वाथ ।

हिङ्गु नागरशटीसुवर्चलं दारुपौष्करघनापुनर्नवाः ॥ क्वाथपानमिति शूलिनां हितं पाचनं जठरगुल्मिनामपि ॥२५॥

हींग, सोंठ, कचूर, कालानमक, देवदार, पोहकरमूल, नागरमोथा, सांठी, इनके क्वाथका पान शूलरोगवालोंको हित है और उदरगुल्मरोगवालोंको यह क्वाथ पाचन है॥ २५ ॥

अथ वातशूलपर हिंग्वादिक्वाथ ।

हिङ्गु पौष्करशटीसुवर्चलं क्वाथमेवमपि शूलिनां हितम् ॥ वातशूलशमनाय शस्यते पाचनं निगदितं च वर्तते ॥ २६ ॥

हींग, पोहकरमूल, कचूर, कालानमक, इनका क्वाथ भी शूलरोगवालोंको हित है। यहक्वाथ वातशूलको शांत करनेके लिये श्रेष्ठ कहा है और यही क्वाथ पाचन भी कहा है ॥ २६ ॥

अथ सैंधवादि चूर्ण।

सिन्धूत्थहिंगू रुचकं यवानी पथ्यायवक्षारशटीविचूर्णम् ॥ देयं सुखोष्णेन निहन्ति शूलं वातात्मकं वाप्यचिरेण शूलम् ॥ २७ ॥

सेंधानमक, हींग, कालानमक, अजवायन, हरड़ें, जवाखार और कचूरको समान भाग ले चूर्ण बना सुखसे सुहाते हुए गरम २ जलके संग देनेसे वातसे उपजा हुआ शूल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ २७ ॥

अथ हिंग्वादि चूर्ण।

हिङ्गु सौवर्चलं पथ्या यवानी सपुनर्नवा ॥ बालैरण्डो बृहत्यौ द्वे तुवरं त्र्यूषणान्वितम् ॥ २८ ॥ क्षारसौवर्चलोपेतं क्वाथो वा चूर्णितस्तथा॥सद्यो वातात्मकं शूलं हन्ति सद्योविषूचिकाम्२९

हींग, कालानमक, हरड़ें, अजवायन, सांठी, नेत्रवाला, अरंड, दोनों कटेहली, सफेद शिरस, सोंठ, मिर्च पीपल, ॥ २८ ॥ जवाखार, कालानमक, इनका क्वाथ अथवा चूर्ण वातसे उपजे शूलको और विषूचिकाको शीघ्र ही नाश देता है ॥ २९ ॥

अथ तुंबुरुआदि चूर्ण।

तुम्बुरुपौष्करहिङ्गु यवानी त्र्यूषश्च वा त्रिबृहतीलवणेन॥ युक्तमिदं लवणाष्टकचूर्णं भवति शूलनिवारणक्षमम् ॥ ३० ॥

धनियां, पोहकरमूल, हींग, अजवायन, सोंठ, मिर्च, पीपल, तीनों प्रकारकी कटेहली, नमक इन सबोंको युक्तकर चूर्ण बनावे यह लवणाष्टकचूर्ण कहाता है, शूलको शीघ्र ही निवारण कर देता है ॥ ३० ॥

अथ एरंडादिक्वाथ।

क्वाथो निहन्ति मरुतोद्भवशूलसंघानेरण्डनागरसुवर्चलरामठेन ॥ पथ्यावचेन्द्रयवनागरतोययुक्तं हिङ्गु सुवर्चलयुतं च निहन्ति शूलम् ॥ ३१ ॥

अरंड, सोंठ, कालानमक, हींग अथवा हरड़ें, बच, इंद्रजव, सोंठ, हींग, कालानमक इनका क्वाथ बना देनेसे वातसे उपजे शूलोंके समूहोंका नाश होता है॥ ३१ ॥

अथ बृहद्धिंगुचूर्ण।

हिङ्गु नागरषड्ग्रन्था यवानी अभया त्रिवृत् ॥ विडङ्गं दारु चव्यञ्च तुम्बरुकुष्ठमुस्तकाः॥३२॥हपुषा कलशी रास्ना वत्सका सदुरालभा ॥ सितारवी बृहत्यौ च लांगली पञ्चजीरकम् ॥३३॥ पुष्करं तिन्तिडीकं च वृक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ॥ द्वौ क्षारौ पञ्चलवणं समं चैकत्र मिश्रयेत् ॥३४॥ मूत्रेण भावनाञ्चैकां दत्त्वा छायाविशोषिताम्॥बीजपूरकतोयेन भावयेच्च दिनत्रयम् ॥ ३५ ॥ बिडालपदिकां मात्रां भुञ्जीत शूलशान्तये ॥ वातेनोष्णोदकेनापि सितशर्करयान्वितः ॥ ३६ ॥ त्रिफलाक्वाथो मद्येन श्लेष्मरोगे प्रशस्यते॥शूलानाहविबन्धानां मन्दाग्नौ गुल्मविद्रधीन् ॥ ३७ ॥ प्लीहोदराणाञ्च पाण्डुज्वरिणां च विशेषतः ॥ निहन्ति देहसंघातं मेघवृन्दं मरुद्यथा ॥ ३८ ॥

हींग, सोंठ, वच, अजवायन, हरडैं, निशोत, वायविडंग, देवदार, चव्य, धनियाँ, कूट, नागरमोथा ॥३२॥ हाउवेर, पिठवण, रास्ना, कूडा, जवासा, सफेद गोकर्णी, दोनों कटेहली, कलहारी, पांचों जीरे ॥३३॥ पोहकरमूल, इमली, विजौरा, अम्लवेत, जवाखार, सज्जीखार, पांचोंनमक इन सबोंको समानभाग ले एक जगह चूर्ण बना ॥ ३४ ॥ गोमूत्रमें भावना दे छायामें सुखालेवे पीछे विजौराके रसमें तीन दिनतक भावना देवे ॥ ३५ ॥ पीछे एक तोला प्रमाण इस चूर्णको देनेसे शूलरोग शांत होता है, वातसे उपजे शूलमें गरमजलके सङ्ग देवे ॥ ३६ ॥ और कफसे उपजे शूलमें सफेद खांड़में अथवा त्रिफलाके काथके सङ्ग अथवा मदिराके संग देना हित है और शूल, अफारा, मलका बन्धा, मन्दाग्नि, गुलमरोग, विद्रधि ॥ ३७ ॥ तिल्ली, उदररोग, पांडुरोग, ज्वर, देहका मुटावा इन सब रोगोंको यह चूर्ण नाशता है जैसे मेघोंके समूहको वायु ॥ ३८ ॥

अथ पित्तशूलचिकित्सा।

धात्रीफलं लोहरजश्च पथ्या त्र्यूषं समांशेन विभाव्य तु ॥ रसेन वा दाडिममातुलुङ्ग्याश्चूर्णं सिताढ्यं च सपित्तशूले३९॥

धात्रीफलादि चूर्ण, आंवला, लोहका चूर्ण, हरड़ैं, सोंठ, मिर्च, पीपली इन सबोंको समान भाग ले अनारके रसमें अथवा विजौराके रसमें भावना देवे पीछे इस मिसरी मिला देनेसे पित्तशूल शांत होता है ॥ ३९ ॥

अथ दाडिमादिचूर्ण ।

विडालकं दाडिमपूतनां च धात्रीसमेतं विदधीत चूर्णम् ॥
तन्मातुलुंगस्य रसेन भावितं सपित्तशूलप्रशमाय भक्षेत् ॥४०॥

अनारदाना, हरडै, आंवला, इन सबोंका एक २ तोला प्रमाण ले चूर्ण बना फिर बिजौराके रसमें भावना देवे । यह चूर्ण पित्तशूलको शांत करता है ॥ ४० ॥

अथ जीवंत्यादि घृत ।

जीवन्त्याद्यं घृतं पाने क्षीरं वापि सितान्वितम् ॥
कर्त्तव्यं रेचनं नित्य पित्तशूलनिवारणम् ॥ ४१ ॥

जीवंतीआदि औषधगणमें सिद्ध किया हुआ घृत अथवा मिश्रीसे युक्त दूध इनके जुलावसे निश्चय पित्तशूलका निवारण होता है ॥ ४१ ॥

अथ पित्तशूलका दूसरा उपचार ।

शिशिरसरसतोयागाहन चन्दनानि विशदघुटितमध्ये स्वापनं वै निशासु ॥ कनकरजतकांस्याम्भोजहैमं तुषारं कृतमिति विधिना वै पैत्तिके शूलहेतोः ॥ ४२ ॥

सरोवरके ठंढे जलसे स्नान करना, चंदन लगाना, उत्तम चौगरदे घेरवाले मकानमें रात्रिमें शयन करना और सुवर्ण, चांदी, कांशी, कमल, इनकी ठंढकसे शीतलता करनी ये विधि पित्तशूलमें करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

अथ पित्तशूलमें भोजन ।

सितशाल्योद्भवा लाजाः सितामधुयुतं पयः ॥ दाहं पित्तज्वरं छर्दिं सद्यः शूलं निहन्ति च ॥४३॥ जाङ्गलानि च मांसानि भोजनार्थं प्रशस्यते॥घृतं क्षीरं समधुरं प्रशस्तं पित्तशूलिनाम्॥४४

सपेद सांठी चावलोंकी खील, मिश्री, शहद इनसे युक्त दूध ये दाहको, पित्तज्वरको, छर्दिको और पित्तशूलको नाशती हैं ॥ ४३ ॥ और जांगलदेशके जीवोंका मांस भोजनके वास्ते श्रेष्ठ कहा है और घृत, दूध, शहद ये पित्तशूलवालोंको हित हैं ॥ ४४ ॥

अथ कफशूलचिकित्सा ।

लङ्घनं वमनं चैव पाचनं श्लेष्मशूलिनाम् ॥
न घनातिमधुराणि शयनं च विधेयकम् ॥ ४५ ॥

कफशूलवालोंको लंघन कराना, वमन कराना, पाचन औषध देना हित है, और कडे पदार्थ, अत्यंत मीठा पदार्थ नहीं देवे और शयन नहीं करावे ॥ ४५ ॥

अथ बिल्वादिक्काथ।

बिल्वाग्निमन्थवृषचित्रकनागराश्च एरण्डहिङ्गु सहसैन्धवकं समांशम् ॥ क्वाथः सदैव कफजं विनिहन्ति शूलं सद्यःकरोति जठरानलवर्द्धनं च ॥ ४६ ॥

बेलगिरी, अरणी, बांसा, चीता, सोंठ, अरंड, हींग, सेंधानमक इनको समान भाग ले क्वाथ बना देनेसे शीघ्र ही कफसे उपजे शूलको दूर करता है और जठराग्निको बढ़ाता है ॥ ४६ ॥

अथ मातुलुंगादिरस।

मातुलुङ्गरसं धात्रीरसं सैन्धवसंयुतम्॥ शोभाञ्जनकमूलस्य रसं च मरिचान्वितम् ॥४७॥ सक्षारमधुनोपेतं श्लेष्मशूलनिवारणम् ॥ कृतक्षयोद्भवं कासं नाशयत्याश्वसंशयम् ॥ ४८ ॥

बिजौरेका रस, आंवलेका रस इनमें सैंधानमक मिला और सहींजनेकी जड़के रसमें काली मिर्च मिला ॥ ४७ ॥ फिर जवाखार, शहद, इनसे युक्त कर इनके देनेसे कफका शूल दूर होता है और क्षयरोगसे उपजीहुई खांसीको शीघ्रही नाशता है ॥ ४८ ॥

अथ तुवरादिचूर्ण।

तुवरं ग्रन्थिकैरण्डा व्योषं पथ्याजमोदकम् ॥
सक्षारलवणोपेतं चूर्णं शूले कफात्मके ॥ ४९ ॥

सफेद शिरस, पीपलमूल, अरंड, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़ै, अजमोद, जवाखार, नमक इनका चूर्ण कफसे उपजे शूलको दूर करता है ॥ ४९ ॥

अथ एरंडादि काथ।

एरण्डबिल्वबृहतीद्वयमातुलुङ्गपाषाणभित्त्रिकटुमूलकृते कषाये॥ सक्षारहिङ्गुलवणाश्च सुतैलमिश्राः श्रोण्यंसमेढ्रहृदयस्तनकुक्षिदेयम् ॥ ५० ॥

अरंड, बेलगिरी, दोनोंकटेहली, बिजौरा, पाषाणभेद, त्रिकुटु, सोंठ, मिर्च, पीपल, इनसे कियेहुए क्वाथमें जवाखार, हींग, नमक, तेल इनको मिला फिर, कटि, कंधे, लिंग, हृदय, कुक्षी, चूंची, इन स्थानोंमें इसकी मालिस करनी चाहिये ॥ ५० ॥

अथ वातपित्तशूलचिकित्सा ।

पटोलारिष्टपत्राणि त्रिफलासंयुतानि च ॥ क्वाथं मधुयुतं पानं शूले पैत्ते समीरणे ॥ ९१ ॥ पित्तज्वरतृषादाहरक्तपित्तनिवारणम् ॥ ९२ ॥

(पटोलादि क्वाथ) परवल, नींब इनके पत्ते, त्रिफला इनका क्वाथ बना तिसमें शहद-मिला पान कराना वातपित्तशूलको शांत करता है ॥ ९१ ॥ पित्तज्वर, तृषा, दाह और रक्तपित्त इनको निवारण करता है ॥ ९२ ॥

अथ दुरालभादिकल्क ।

दुरालभा पर्पटकं च विश्वा पटोलनिम्बाम्बुदतिन्तिडीकम् ॥ सशर्करं कल्कमिदं प्रयोज्यं सपित्तवातोद्भवशूलशान्त्यै॥९३॥

जवासा, पित्तपापडा, सोंठ, परवल,नींब, नागरमोथा, अमली इनका कल्क बना खांड मिला देनेसे पित्तवातसे उपजा शूल शांत होता है ॥ ९३ ॥

अथ वातकफशूलचिकित्सा ।

सौवर्चलं समशटी सहनागरा च शुण्ठीयुतेन क्वथितेन जलेन चूर्णम्॥पीतं निहन्ति मरुतायुतश्लैष्मिकाणां पार्श्वार्तिशूलजठरानलहृत्प्रशस्तम् ॥ ९४ ॥

"सौवर्चलादि चूर्ण" कालानमक, कचूर, नागरमोथा, सोंठ इनका चूर्ण बना औटाया हुआ जलके संग लेनेसे वात कफसे उपजाहुआ शूल शांत होता है और पसली, शूल, मन्दाग्नि इन रोगोंके हरनेमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ९४ ॥

अथ दार्वादि क्वाथ ।

दारु नागरकं वासा हिङ्गु सौवर्चलान्वितम् ॥
क्वाथो वातकफे शूले आमेऽजीर्णे विबन्धके ॥ ९५ ॥

देवदार, सोंठ, बांसा, हींग, कालानमक, इनका क्वाथ वातकफसे उपजे शूल, आमरोग, अजीर्ण और मलके बन्धमें देना श्रेष्ठ है ॥ ९५ ॥

अथ त्रिदोषशूल चिकित्सा ।

पलाशकदलीवासापामार्गकोकिलाह्वयम्॥ गोमूत्रेण श्रितं तत्तु हिङ्गुनागरसंयुतम् ॥९६॥ हितं त्रिदोषजे शूले कामलाविड्विबन्धके॥ गुल्मोदराणां शमनं मंदाग्नीनां नियच्छति ॥ ९७ ॥

"पलाशादिघृत" टेसू, केला, वांसा, लटजीरा, तालमखाना, हींग, सोंठ, इनको गोमूत्रमें पक्व काथ बना देनेसे ॥ ५६ ॥ त्रिदोषसे उपजा शूल, कामला, मलका बँधा, गुल्मरोग, उदररोग, मन्दाग्नि दूर होता है ॥ ५७ ॥

अथ सर्वशूलपर उपाय ।

एक एव कुबेराक्षः सर्वशूलापहारकः ॥
किं पुनः स त्रिभिर्युक्तः पथ्यारुचकरामठैः ॥ ५८ ॥

अकेली पाड़रि ही सर्वशूलोंको दूर करती है, फिर उसके साथ हरड़ै, सोंचर और हींग होवे तो क्या कहना अर्थात् अवश्यही शूलको दूर करती है ॥ ५८ ॥

अथ शंखक्षार ।

शङ्खक्षारं च लवणं हिङ्गुव्योषसमन्वितम् ॥
उष्णोदकेन तत्पीतं हन्ति शूलं त्रिदोषजम् ॥ ५९ ॥

शंखका खार, नमक, हींग, व्योष, (सुंठ, मिर्च, पीपल,)इनका चूर्ण गरमजलके संग पीनेसे त्रिदोषसे उपजा शूल नाश होता है ॥ ५९ ॥

अथ सामान्यसें सब शूलोंकी चिकित्सा ।

लङ्घनं वमनं चैव विरेकश्चानुवासनम् ॥
निरूहो बस्तिकर्माणि परिणामे त्रिदोषजे ॥ ६० ॥

त्रिदोषसे उपजे परिणामशूलमें लंघन, वमन, जुलाव, अनुवासनबस्ति, इन कर्मोंको करावें ॥ ६० ॥

अथ चित्रकादिमोदक ।

चित्रकं त्रिवृता दन्ती विडङ्गं कटुकत्रयम् ॥ समं चूर्ण गुडेनाथ कारयेन्मोदकान्सुधीः ॥६१॥ भक्षयेत्प्रातरुत्थाय पश्चादुष्णोदकं पिबेत्॥ परिणामोद्भवं शूलं हन्ति शूलं नरस्य च ॥ ६२ ॥

चीता, निशोत, जमालगोटेकी जड, वायविडंग, सोंठ, मिर्च, पीपल इनको समान भाग ले चूर्ण बना फिर वैद्यजन उसको गुड़में गोली बांधलेवे ॥ ६१ ॥ प्रातःकाल उठके इसका भक्षण करे और ऊपरसे गरमजल पीवे । यह परिणामशूलको नाशता है ॥ ६२ ॥

---

१ कृष्णवृन्ता कुबेराक्षीत्यमरः । कृष्णवृन्ता कुबेराक्षी सितपाटलायाः "पाडली" इति ख्यातायाः इत्यमरविवेके ।

अथ यवान्यादिचूर्ण ।

यवानीहिङ्गुसिन्धूत्थं क्षारं सौवर्चलाभया ॥
सुराभाण्डेन पातव्या परिणामे त्रिदोषजे ॥ ६२ ॥

अजवायन, हींग, सधानमक, जवाखार, कालानमक, हरड़े, इनको मदिराके संग पीनेसे त्रिदोषसे उपजा परिणामशूल शांत होता है ॥ ६२ ॥

अथ हिंग्वादिगुटी ।

हिङ्गुव्योषवचाजमोदहपुषा पथ्या यवानी शटी जाजीपिप्पलिमूलदाडिमवृकीचव्याग्निकं तिन्तिडी॥तस्माच्चाम्लसुवर्चलोऽपि च यवक्षारं तथा सर्जिका सिन्धूत्थं विडचूर्णकं समकृतं स्याद्बीजपूरे रसे ॥६४॥ कुर्य्याच्चूर्णगुटीं समक्षफलदाम क्षप्रमाणामिमां कल्को वातविकारिणां प्रददतः शूलार्शसत्प्लीहकान् ॥ कासानाहविबन्धमेहहृदयशूलं निहन्त्याशु वै कर्त्तव्यं किल संशयं न भिषजां वृन्दैः सदा धार्यते ॥६५॥ एष हिंग्वादिको नाम सर्वशूलार्त्तिनाशनः ॥ सर्ववातविकारघ्नः सर्वक्षयनिवारणः ॥ ६६ ॥

हींग, सूंठ मिर्च, पीपल, वच, अजमोद,हाउबेर हरड़े,अजवायन,कचूर, जीरा, पीपला मूल, अनारदाना, कश्मीरीपाठा, चव्य, चीता, आमलकी, निंबू, जवाखार, कालानमक, साजी, सेंधानमक, मनियारीनमक इनको समान भाग ले चूर्ण बना बिजौराके रसमें ॥ ६४ ॥ इसचूर्णकी तोला प्रमाण गोली बनावे अथवा इन्होंका कल्क बना देनेसे वातके विकार,शूल,बवासीर,तिल्ली, खाँसी, अफारा, मलका बंधा, प्रमेह और हृदयशूल शीघ्र ही नाशता है इसमें संशय न करे श्रेष्ठ वैद्य इसे धारण करते हैं॥६५॥यह हिंगुआदिकनामवाला औषध सम्पूर्ण शूलकी पीड़ाओंको नाश करता है और सब प्रकारके वातविकारोंको नाशता है, सब प्रकारके क्षयरोगोंको निवारण करता है ॥ ६६ ॥

अथ शूलरोगके उपद्रव ।

अतीसारतृषा मूर्च्छा अनाहो गौरवोऽरुचिः ॥ श्वासकासौ वमिर्हिक्का शूलस्योपद्रवा दश ॥ ६७ ॥ शूलं सोपद्रवं तृष्णां भिषग्दूरे परित्यजेत् ॥ अनुपद्रवे क्रिया प्रोक्ता भिषजां सिद्धिमिच्छता ॥ ६८ ॥

अतिसार, तृषा, मूर्च्छा, अफारा, भारीपन, अरुचि, श्वास, खांसी, वमन, हिचकी, ये दश शूलके उपद्रव हैं ॥ ६७ ॥ उपद्रवोंसे युक्त और तृषासे संयुक्त शूलको वैद्यजन दूरसे त्यागे और उपद्रव रहित शूलमें सिद्धिकी इच्छा करनेवाले वैद्यको चिकित्सा करनी कही है ॥ ६८ ॥

शूलमें पथ्यापथ्य।

वर्जयेद्विदलं शूली तथा सघनशीतलम् ॥ पिच्छलं च दधि चैव दिवानिद्रां च वर्जयेत् ॥ ६९ ॥ शालिषष्टिकसिन्धूत्थहिङ्गुसौवीरकं तथा ॥ सुरा वा गुडशुण्ठी वा पाने श्रेष्ठा भिषग्वर ॥७०॥ शतपुष्पावास्तुकं च हितं प्रोक्तं प्रशस्यते॥७१॥ एणतित्तिरिलावाश्च क्रौञ्चाः शशकसारसाः ॥ एषां मांसानि शस्तानि कथितानि भिषग्वर ॥ ७२ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने शूलचिकित्सानाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

शूलरोगवाला पुरुष दालको वर्जे देवे और घना, शीतल और झागोंवाला ऐसा दहीत्याग देवे और दिनमें सोना वर्ज देवे ॥ ६९ ॥ शालीसंज्ञक चावल, सांठी चावल, सैंधानमक, हींग, कांजी इनका सेवना हित है और मदिरा अथवा गुड़,सोंठ इनका पान करना वैद्यजनोंने हित कहा है ॥७०॥ सौंफ और वथुवेका शाक शूलरोगमें हित कहे हैं ॥ ७१ ॥ मृग, तीतर,लावापक्षी, कूंजीपक्षी,चौगड़ा,सारसपक्षी इनका मांस श्रेष्ठ कहा है ॥७२॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने शूलचिकित्सानाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

अथ पांडुरोगचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि पांडुरोगं महागदम् ॥ पञ्चैव पाण्डुरोगास्ते सम्भवन्तीह मानुषे॥ १॥वातिकः पैत्तिकश्चैव श्लैष्मिकः सान्निपातिकः ॥ पञ्चमो रूक्षणः प्रोक्तो वक्ष्ये चैषां तु सम्भवम् ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र ! सुनो पांडुरोगकी चिकित्साको कहते हैं, मनुष्यके पांच प्रकारके पांडुरोग होते हैं ॥ १ ॥ वातसे उपजा १, पित्तसे उपजा २, कफसे उपजा ३, सन्निपातसे उपजा ४, रूक्षणसंज्ञक ५ पांचवा ऐसे ५ हैं इनके उत्पत्तिको कहते हैं ॥ २ ॥

अथ पांडुरोगका निदान ।

दीर्घाध्वन्ये पीडितो वा ज्वरेण रक्तस्रावे पीडितो वा व्रणेन ॥
चिन्तायासाद्रोधनाद्वा मनुष्यस्यायं पाण्डुर्जायते सेवते यः ॥
॥३॥क्षारं चाम्लं कल्यमैरेयसेवा अव्यायामान्मैथुनातिश्रमेण॥
निद्रानाशेनातिनिद्रा दिवापि योगैश्चैतैर्मृत्तिकाभक्षणेन ॥ ४ ॥
पथि शिथिलशरीरे रोगसंपीडिते वा लवणकटुकषायासेवना-
म्लेन मृद्भिः॥अतिसुरसमजस्रं सेवनातिक्रमेण नयतिरुधिरशोषं
तेन वै पाण्डुरोगम् ॥ ५ ॥

अत्यंत मार्गके चलनेसे अथवा ज्वरसे पीडित होनेसे, रक्तस्रावसे और व्रणसे पीडित होनेसे, चिंता होनेसे और परिश्रम होनेसे, मलआदिकके रोकनेसे मनुष्यके यह पांडुरोग हो जाता है ॥ ३ ॥ क्षार, अम्ल अर्थात् खट्टा पदार्थ और प्रभातमें मैरेयसंज्ञक मदिराके सेवन करनेसे, कसरत नहीं करनेसे, मैथुन करनेसे और अत्यंत परिश्रम करनेसे और निद्राके नाश होनेसे, दिनमें अत्यंत सोनेसे इन योगोंकरके और मृत्तिकाके भक्षण करनेसे ॥ ४ ॥ रोग-पीडित शिथिल शरीर होनेपर, मार्ग चलनेसे, नमक, चर्चरा, कसैला, खट्टा, मृत्तिका इनके सेवनेसे और निरंतर मैथुनके सेवनेका अतिक्रम होनेसे रुधिरका शोष हो जाता है उससे पांडु-रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ ५ ॥

अथ पांडुरोगका पूर्वरूप ।

तेनाक्षकूटे श्वयथुः शरीरे पाण्डुत्वमायाति च पीतमूत्रः ॥
निष्ठीवते त्वक् प्रविदीर्य्यते च संजायते तस्य पुरःसराणि ॥६॥

उस पांडुरोगसे आंखोंके कोणमें सोजा हो, शरीर पीला हो, मूत्र पीला हो थुकथुकी हो त्वचा फट जावे ये पांडुरोगके पूर्व होने लगते हैं ॥ ६ ॥

अथ वातपांडुका लक्षण ।

तोदः परुषत्वशिरोगुरुत्वं त्वङ् मूत्रनेत्रे च नखे च पैत्यम् ॥
वातात्मकं तं मनुजस्य विद्धि लिङ्गैरुपेतोऽनिलपाण्डुरोगः॥७॥

व्यथा हो, कठोरपना हो, शिर भारी हो, त्वचा, मूत्र, नेत्र, नख ये पीले रहें ये लक्षण हों जिसके उसके वातसे उपजा हुआ पांडुरोग जानना ॥ ७ ॥

अथ पित्तपांडुका लक्षण ।

आमत्वपीतत्वकरो हि लोके बिभर्ति शोषं कटुतास्यतां च ॥
शोफस्तृषा मन्दज्वरश्च मोहः पीतच्छविः पित्तभवो हिपाण्डुः८

आमपना और शरीरका पीलापन, शोष, कडुआ मुख रहना, मंदज्वर, तृषा, मोह, शोफ, पीलीछवि रहे ये लक्षण हों यह पित्तसे उपजा पांडुरोग जानना ॥ ८ ॥

अथ कफपांडुका लक्षण ।

तन्द्रालुशोफं कफकासयुक्तमालस्यप्रस्वेदगुरुत्वमेवम् ॥
संजायते तस्य कफात्मकोऽसौ नरस्य पाण्डुत्वभवो विकारः ॥९॥

तंद्रा हो, कफ, खांसी, शोजा ये हों, आलस्य हो, पसीना हो, भारीपन हो उस मनुष्यके कफसे उपजा पांडुरोग जानना ॥ ९ ॥

अथ त्रिदोषजपांडुका लक्षण ।

तन्द्रालस्यं श्वयथुवमथू कासहल्लासशोषा विष्ठाभेदः परुषनयने सज्वरो वै क्षुधार्त्तः॥मोहस्तृष्णाक्लममथ नरस्याशु पश्येत्सुदूरं त्याज्यो वैद्यैर्निपुणमतिभिः सन्निपातोत्थपाण्डुः ॥१०॥

तंद्रा, आलस्य, शोजा, वमन, खांसी, थुकथुकी, शोष और मल पतला हो, कठोर नेत्र हों, ज्वर हो, क्षुधाकी पीडा हो, मोह हो, तृषा हो, ग्लानि हो, जिस मनुष्यके ये लक्षण हों वह सन्निपातसे उपजा पांडुरोगवाला मनुष्य उत्तम बुद्धिवाले मनुष्योंको दूरसे ही त्याग देना चाहिये ॥ १० ॥

अथ मट्टी खानेसे हुआ पांडुका लक्षण ।

मृत्तिकाभक्षणेनाथ शृणु पुत्र गदो महान्॥पाण्डुरोगो गरिष्ठोऽपि भवेद्धातुक्षयङ्करः॥११॥ मृद्भक्षणाच्चैव मलं प्रकीर्य्य स्रोतांसि पूर्य्यन्ति तु मृत्तिकाभिः॥तेनैव नासृक् परिवर्त्तयन्ति न तर्पयन्ति वपुषं रसेन॥१२॥ क्षारात्कषायान्मधुरस्य पानात्स कोपयत्याशु नरस्य मृत्सा॥श्लेष्मप्रकोपान्मधुरान्करोति मृत्सा न जग्धा हितकारिणी स्यात् ॥ १३ ॥ विकृतिमुपगतास्ते मारुताद्यास्त्रयस्तु, द्युतिबलमभिहत्वा जीवनाशां निहन्ति भवति विकलमेवं पाण्डुरोगे शरीरं हरति जठरवह्निर्मृत्तिकाभक्षणेन ॥ १४ ॥

हे पुत्र ! मृत्तिकाके भक्षण करनेसे महान् पांडुरोग होता है उसको सुनो, यह बडा क्लिष्टरोग है और धातुओंका क्षय करनेवाला है ॥ ११ ॥ मृत्तिकाके भक्षण करनेसे मल बिखर जाता है और उस मृत्तिकासे स्रोत भर जाते हैं फिर इसी कारणसे रुधिर नहीं प्रवृत्त होता है

और रससे शरीर पुष्ट नहीं होता है ॥१२॥ खारा, कसैला, मीठा इनका पान करनेसे मनुष्यके भक्षण की हुई मृत्तिका शीघ्र ही कुपित हो जाती है,मधुर पदार्थ सेवनेसे वह मृत्तिका कफको कोप करती है इसवास्ते भक्षण की हुई मृत्तिका हितको करनेवाली नहीं है ॥ १३ ॥ वात आदिक दोष विकारको प्राप्त हुए कांति, वल, जीवनेकी आशा इनको शीघ्र ही नाश देते हैं और मट्टी खानेसे हुआ पांडुरोग जठराग्निका नाश करता है ॥ १४ ॥

अथ लोहचूर्णवटी ।

गोमूत्रे लोहं मतिमान्स्थापयेत्सप्तरात्रकम् ॥
तस्माच्चूर्णं तु मधुना देयं पाण्ड्वामयापहम् ॥ १५ ॥

बुद्धिमान् वैद्य लोहाको सात दिनतक गोमूत्रमें स्थापित करावे फिर उसका चूर्ण बना शहदके संग देनेसे पांडुरोगका नाश होता है ॥ १५ ॥

शुंठ्यादिमिश्रितलोहचूर्ण ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्ता विडङ्गं चित्रकं समम् ॥१६॥ भागमेकं लोहचूर्णं रसेनेक्षोर्विभावयेत्॥सप्ताहं खलितं लौहमलमस्मिन्पुनर्वरम्॥१७॥शीलितं तु मधुना घृतेन वा पाण्डुरोगहृदयामयापहम्॥अर्शसामपहरं हलीमकं कामलां च किल नाशयत्यहो१८॥

सूंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, चीता इनको समान भाग ले ॥ १६ ॥ एकभाग लोहाका चूर्ण इनको ईखके रसमें भावना देवे अथवा इसमें लोहेके मैलको सात दिनतक खरल कर मिलावे तो अतिश्रेष्ठ है ॥ १७ ॥ इस चूर्णको शहदमें अथवा घृतमें मिला खानेसे पांडुरोग, हृदयरोग, कामला, बवासीर, हलीमक रोगोंका नाश होता है ॥ १८ ॥

अथ मंडूकवटी ।

त्र्यूषणं चत्रिफलं सचित्रकं मेघचव्यसुरदारुमाक्षिकम् ॥
ग्रन्थिकं च शिखिभृङ्गराजकं योजयेत्पलिकभागिकानिमान्
॥ १९ ॥ चूर्णिताद्द्विगुणमेव योजयेल्लोहचूर्णमपि कज्जलप्रभम् ॥
अष्टभागसममूत्रकल्पितं पाचितं पुनरहो बलप्रदम् ॥ २० ॥
सेवयेद्बलमुपक्रमं तथा तत्र संयुतमिहास्ति शोभनम्॥नाशयेच्च
कफकामलान्क्रमीन्पाण्डुकुष्ठगुदजान्हलीमकम् ॥ २१ ॥

सूंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, चीता, नागरमोथा, चव्य, देवदारु, सोनामाखी, पीपलामूल,

मेथी और भंगरा इनको चार चार तोला प्रमाण लेवे ॥ १९ ॥ और इस चूर्णसे दूना २ भाग कज्जलके समान वारीक लोहेका चूर्ण मिलावे इस सब चूर्णसे आठ ८ भाग गोमूत्रमें इस चूर्णको पकावे फिर पकाया हुआ यह चूर्ण बलको देनेवाला है ॥ २० ॥ पांडुरोगमें बलके अनुसार सेवन किया हुआ यह चूर्ण उत्तम है और कफरोग, कामला, क्रिमिरोग, पांडु, कुष्ठ, गुदाके रोग, हलीमक इनको नाशता है ॥ २१ ॥

अथ वज्रमंडूकवटक।

पुनर्नवाव्योषत्रिवृत्सुराह्वयं निशाह्वयं चव्यफलत्रयं तथा॥घनां यवां तिक्तकरोहिणीं समां द्विभागिकं लोहरजो विमिश्रयेत् ॥ २२ ॥ गवां पयो वा द्विगुणं वियोज्यं दार्व्यां प्रलेपं प्रणिधाय धीमान्॥ छायाविशुष्का गुटिका विधेया क्षौद्रेण मूत्रेण गवां च भक्षयेत् ॥२३॥ ज्ञात्वा बलं रोगबलं नरस्य पाण्डामये कामलसर्वमेहे ॥ गुल्मोदराजीर्णविषूचिकानां शोफातिसारग्रहणीविबन्धान् ॥ शूलक्रिमीनर्शविकारहेतोर्वज्रोऽयमस्तीति विचिन्तनीयम् ॥ २४ ॥

सांठी, सूंठ, मिर्च, पीपल, निशोथ, देवदार, हलदी, चव्य, त्रिफला, नागरमोथा, इन्द्रजव, कुटकी, हरीतकी इनको समान भाग ले और दो भाग लोहेका चूर्ण मिला॥२२॥फिर इस सब चूर्णसे दूने गौके दूधमें इस चूर्णको पकावे जब चलानेकी कडछीमें चपकने लग जावे तब उतार, छायामें सुखा गोली बना लेवे फिर शहदके संग अथवा गोमूत्रके संग भक्षण करे ॥ २३ ॥ मनुष्यके बलको और रोगके बलको जानके पांडुरोगमें, कामलामें, सम्पूर्ण प्रमेहरोगोंमें इसको भक्षण करे और गुल्मोदर, अजीर्ण, विषूचिका, शोजा, अतीसार, ग्रहणी, मलका बन्ध, शूल, क्रिमिरोग और बवासीरके विकारके लिये यह वज्र है इसमें चिन्ता न करनी चाहिये ॥ २४ ॥

अथ दूसरा वज्रमंडूकवटक।

पञ्चकोलककटुत्रिकं घना देवदारुकृमिशत्रुकोलकम्॥एष भागसहितो वियोजितो मिश्रयेत्तदनु चायसं रजः ॥ २५ ॥ तत्र चाष्टगुणमूत्रमध्यतः पाचयेद्भवति येनलेपिका॥कारयेद्बदरमात्रया पुनश्छाययापि पिषितश्च शोषणम् ॥ २६ ॥ कारयेत्सुरभिमंथितेन च पानकञ्च शमयेत्सकामलम् ॥ पाण्डुमर्शमतिसारमन्दभुक् शोषमेहगुदजान् क्रिमीनपि ॥ २७ ॥

(पंचकोल) पीपल १ पीपलामूल २ चव्य ३ चीता ४ सूंठ ५, कटुत्रिक अर्थात् सूंठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, देवदार, वायविडंग, कंकोल इनको समानभाग ले मिलावे, पीछे इनके समान लोहेका चूर्ण मिलावे ॥२५॥ फिर सब चूर्णसे आठगुने गोमूत्रमें इस चूर्णको पकावे जब पकजावे कड़छीमें चपके तब उतार बेरके समान गुटी बना छायामें सुखा फिर पीस लेवे ॥ २६ ॥ पीछे गायके मथे तक्रमें इसका पना बना सेवन करनेसे कामला, पांडुरोग, बवासीर, अतीसार, मन्दाग्नि, शोथ, प्रमेह, गुदाके रोग, कृमि इनका नाश होता है ॥ २७ ॥

अथ अमृतवटक ।

धात्रीफलानां रसप्रस्थमेकं प्रस्थं तथा चेक्षुरसं विदध्यात् ॥ प्रस्थं तु कूष्माण्डरसप्रदिष्टमार्करसं प्रस्थविमिश्रमेकम्॥२८॥ एकीकृतं मन्दहुताशनेन पाच्यं भवेद्व्यापदशेषमेति ॥ विमिश्रयेदौषधसंघमेतत्पलैकमात्रं विपचेच्च पश्चात् ॥ २९ ॥ भृङ्गी सुराह्वं शतपुष्पधान्यं सुगन्धशुण्ठी मधुकं विशाला॥सपिप्पलीकं सकटुत्रयं च विडङ्गमुस्ताहपुषादलानि॥३०॥दीर्वाहरिद्राकटुरोहिणीनां दुरालभापौष्करवत्सकानाम् ॥कुष्ठाजमोदासुरसादलानि चूर्णं त्वमीषां विनियोजनीयम् ॥ ३१ ॥ गुडं पुराणं द्विगुणं तथा गो-घृतेन रम्यं वटकं विदध्यात् ॥ तद्भक्षणं कामलमर्शसं च पाण्डुं ज्वरं घोरतरं निहन्ति ॥ ३२॥ तच्छोफशोषग्रहणीविकारान्वातातिसारक्षयकासगुल्मान् ॥ ३३॥

आंवलोंका रस ६४ तोले और ईखका रस ६४ तोले, कोहलाका रस ६४ तोले, आकका रस ६४ तोले ॥ २८ ॥ इनको एक जगह मिला मंद २ अग्निसे पकावे जब चतुर्थांश बाकी रहे तब इन आगे कहीहुई औषधोंको चार २ तोले प्रमाण मिलाके फिर पकावे ॥ २९ ॥ भंगरा, देवदार, सौंफ, धनियां, रास्ना, सूंठ, मुलहठी, इंद्रायण, पीपली, कटुत्रय अर्थात् सूंठ, मिर्च, पीपल, वायविड़ंग, नागरमोथा, हाऊबेर ॥ ३० ॥ दारुहलदी, कुटकी, हरीतकी, जवासा, पोहकरमूल, कूडा इनके पत्ते इन सबोंको पहले कहे हुए प्रमाणके अनुसार ले चूर्ण बना मिला देवे ॥ ३१ ॥ इस चूर्णसे दूना पुराणा गुड़ मिलावे, फिर घृतमें गोली बांधलेवे

---

१ "सुगन्धा गन्धनाकुली" इत्यमरः । गन्धनाकुली रास्नाभेद। नाई। कन्द विशेष अथवा "इष्टगन्धः सुगन्धिः स्यादित्यमरः" । सुगन्धवर्ग-स्याहजीरा, कुंदुरु, गन्धतृण, नीलोत्पल, खश, चन्दन, गठिवन, सुखं, सहिंजन, गंधक, चना, भूतृण, कचूर, रुद्रजटा, वन्वककौंटिकी, खेखसा, मालती, दूब, वच कुलींजन, रास्ना, कृष्णाशारिवा ।

इसके भक्षण करनेसे कामला, बवासीर पांडुरोग, अतिदारुणज्वर ॥ ३२ ॥ शोक, शोष, संग्रहणी इन रोगोंका नाश होता है और वातरोग, अतीसार, क्षयी, खांसी, गुल्मरोग इनको नाशता है ॥ ३३ ॥

अथ पांडुरोगका पथ्यापथ्य।

गोधूमशालियवषष्टिकमुद्गकानां श्यामाढकीघृतयुतं पयसा सतक्रम् ॥ गाण्डीववास्तुकमथो शतपुष्पवर्त्ताापथ्यं हितं निगदितं मनुजस्य पाण्डौ ॥ ३४॥ जाङ्गलानि च मांसानि भोजने च प्रशस्यते ॥३५॥ तिलं च रूक्षं कटुकं च तीव्रं दाहात्मकं काञ्जिकभेदकं च ॥ सुराम्लसौवीरकबीजपूरास्तैलानि वर्ज्यानि च पाण्डुरोगे ॥३६॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने पाण्डुरोगचिकित्सा नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

गेहूं, शालीसंज्ञक चावल, जव, सांठी चावल, मूंग, शामक, अरहर इन अन्नोंको घृतके संग अथवा दूधके संग अथवा तक्रके संग भोजन करना हित है और अर्जुनवृक्षके पत्ते, बथुवा, शोफा, वार्त्ताकु इनका शाक पांडुरोगवाले मनुष्यको हित है, पथ्य है॥ ३४ ॥ जांगलदेशके जीवोंका मांस भोजनमें हित है ॥३५ ॥ पांडुरोगमें कडुए, रूखे,चर्चरे दाह करनेवाले ऐसे कांजीके भेद, मदिरा, खटाई, कांजी, विजौरा, तेल इन पदार्थोंको वर्ज देवे ॥ ३६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने पांडुरोगचिकित्सानामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

अथ क्षयरोगकी चिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ शृणु वरभिषजां त्वं व्याधिभीमं नराणां भवति विहतचेष्टो वातलप्राणिनां वै ॥ चिरनिचयकरोऽयं प्राकृतैः कर्मपाकैरिह परिभवकारी मानुषस्य क्षयोऽयम् ॥१॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे वैद्योंमें उत्तम!जो मनुष्योंको घोर व्याधि होता है उसको सुनो, वातके स्वभाववाले प्राणियोंके यह रोग होता है, चेष्टाको हत कर देता है और पूर्वजन्मके कर्मविपाकसे नरकको करनेवाला है और इस संसारमें दुःखको करनेवाला यह क्षयरोग होता है ॥ १ ॥

अथ क्षयरोगमें पापरूपी कारण ।

देवानां प्रकरोति भङ्गमथवा भ्रूणस्य सन्तापनं गोपृथ्वीधरविप्रबालहननं चा रामविध्वंसनम् ॥सोऽयं स्थानविनाशनं च कुरुते स्त्रीणां वधं यो नरस्तस्यैतैर्गुरुकर्मभिः क्षयगदो देहार्थहारी महान् ॥२॥ देवानां दहतो धनं च दहतो भ्रूणप्रपातेऽपि च देवत्वं हरतो विषं च ददतश्चारामकं निघ्नतः॥तेनासौ नियमेन सम्भवति वै नृणां च तीव्रा रुजा धातूनां क्षयकारिणी च मनुजस्यात्मापहा दारुणा ॥ ३ ॥ क्षयो दशविधश्चैव विज्ञातव्यो भिषग्वरैः ॥ ४ ॥

जो पुरुष देवताओंकी मूर्तिको तोड़देता है और गर्भगत जीवको सन्ताप देता है,गौ, राजा, ब्राह्मण, बालक इनकी हत्या करता है और बगीचाका विध्वंस करता है, किसीके स्थानका विनाश करता है और जो स्त्रियोंका वध करता है उसके इन कर्मोंसे देहको नाशकरनेवाला महान् क्षयीरोग होता है ॥ २ ॥ जो पुरुष देवताओंको दग्ध करे, किसीके धनको दग्ध करे और गर्भको गिरावे, देवताके द्रव्यको हरे, विष देवे, वाग बगीचेका नाश करे इन विपरीतकर्मोंसे मनुष्यके अतितीव्र पीडा होती है, धातुओंको क्षय करनेवाली और आत्माको नाश करनेवाली दारुण क्षयव्याधि होजाती है ॥ ३॥ वैद्यजनोंको दशप्रकारका क्षयरोग जानना चाहिये ॥ ४ ॥

अथ क्षयरोगके हेतु ।

श्रमाद्वा भाराद्वा विषमशयनैर्दीर्घचलनैरजीर्ण भोज्याद्वा सुरतरतिसेवापरतया ॥ ज्वरेणातिक्रान्ताद्विषमशयनाच्छीतलतरैः क्षयं याति श्लेष्मा पवनमथ पित्तश्च तनुषु ॥ ५॥ रोगाक्रान्ताद्विषमशयनात्तस्य मन्दज्वराद्वा श्लेष्मापित्तश्च मरुदथवा याति देहक्षयं वा ॥

श्रम, भार, विषमशयन, दीर्घमार्गमें गमन, अजीर्णमें भोजन, मैथुनमें अतिरमण करनेसे और ज्वरसे आक्रांत होनेसे, [1]विषमशयन, अतिशीतल पदार्थका सेवन करनेसे कफकोपको प्राप्त होता है, फिर शरीरमें वायुको और पित्तको भी कुपित कर देता

---

१ विषमशयन दोवार है इससे एक जगह कालपरत्व विषमशयन अर्थात् दिनको सोना रातको जागना समझे और दूसरी जगह क्रमपरत्वसे अर्थात् औंधासोना आदि समझें ।

हैं ॥ ५ ॥ रोगसे आक्रांत होनेसे अथवा विषमशयन करनेमें अथवा मन्द ज्वरसे यह क्षयरोग होजाता है और कफसे, पित्तसे अथवा वायुसे इन तीन प्रकारोंसे देहमें क्षयरोग होता है ॥

अथ क्षयरोगके प्रकार।

रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रगतस्तथा ॥ एवं दशविधा नृणां क्षया देहे भवन्ति वै ॥६॥ पुनश्चैषां लक्षणानि सावधानतया शृणु ॥ ७ ॥

और रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य इन सात धातुओंमें होता है, ऐसे मनुष्यके शरीरमें दश प्रकारके क्षयरोग कहे हैं ॥ ६ ॥ अब फिर भी इनके लक्षणोंको कहते हैं सुनो ॥ ७ ॥

अथ वातक्षयका निदान।

अतिस्वेदातिघर्षेण चिन्ताशोषभयादिना ॥
वाताद्यः सेवितैश्चापि जायते मारुतक्षयः ॥ ८ ॥

अत्यंत पसीना, अति घाम, चिंता, शोष, भय इत्यादिकोंसे और वायुको करनेवाले पदार्थोंके सेवनेसे वायुका क्षय होजाता है ॥ ८ ॥

अथ वातक्षयका लक्षण।

तेन तन्द्राङ्गदाहश्च पिपासारुचिवेपथुः ॥
तमः क्लमो भ्रमश्चैव भवेच्च मारुतक्षये ॥ ९ ॥

उससे तन्द्रा, अंगमें दाह, तृषा,अरुचि, कंपना, अंधेरी, ग्लानि, भ्रम ये उपद्रव वातके क्षयरोगमें होते हैं ॥ ९॥

वातक्षयमें सेव्यपदार्थ।

तस्मादनूपानि सेव्यानि रसानि पललानि च ॥
रसोनादिककल्कश्च सेवयेद्वातनाशने ॥ १० ॥

इसलिये वातको नाश करनेवाले रस और अनूपदेशके मांसोंका सेवन करे और लहसुनआदिक औषधोंके कल्कके सेवनेसे भी वातका नाश होता है ॥ १० ॥

अथ पित्तक्षयके हेतु।

पित्तक्षयेऽग्निमान्द्यं च जायतेऽरुचिजाड्यता ॥
कासहृल्लासशोफश्च जायते मन्दचेष्टता ॥ ११ ॥

पित्तके क्षयरोगमें मंदाग्नि, अरुचि, जड़ता ये रोग होते हैं और खांसी, श्वास, थुकथुकी, शोफ, मन्दचेष्टा ये उपद्रव होते हैं ॥ ११ ॥

अथ पित्तक्षयकी चिकित्सा ।

स्वेदाभ्यङ्गान्नपानानि दीपनानि प्रयोजयेत् ॥
जाङ्गलानि रसान्नानि सेवयेत्पित्तकृत्क्षये ॥ १२ ॥

स्वेद, मालिस, दीपन अर्थात् जठराग्निको दीप्त करनेवाले अन्नपान, इनको प्रयुक्त करे और पित्तसे उपजे क्षयरोगमें जांगल देशके जीवोंके मांसका रस हित है ॥ १२ ॥

अथ कफक्षयका कारण ।

व्यायामे च व्यवाये च रूक्षान्नाहारसेवनैः ॥
सन्तापक्रोधनश्चैव जायते कफसम्भवः ॥ १३ ॥

कसरत करनेसे, मैथुन, रूखा अन्नका भोजन, क्रोध, इनके सेवनसे कफका क्षयरोग बढता है ॥ १३ ॥

अथ कफक्षयका लक्षण ।

तन दाहोऽथवा पाण्डुः शोफो निःश्वसन भ्रमः ॥
विनिद्रता क्षुत्तृषा च स्त्रीसङ्गेनापि नन्दति ॥ १४ ॥

उससे दाह अथवा पांडुरोग, शोजा, श्वासरोग, भ्रम, निद्राका नाश, क्षुधा, स्त्रीसंगसे प्रसन्नता ये लक्षण होते हैं ॥ १४ ॥

अथ कफक्षयकी चिकित्सा ।

तस्य शीतान्नपानानि कन्दशाकादिकै रसैः ॥
अनूपदधिदुग्धैर्वा सेवनं च समीहितम् ॥ १५ ॥

उसके शीतल अन्नपान, कंदशाकआदिकोंके रस, अनूपदेशके जीवोंका मांस, दही, दूध, इनका सेवन हित है ॥ १५ ॥

अथ त्रिदोषजक्षयकी चिकित्सा ।

त्रिभिर्दोषैः क्षयं प्राप्तैस्तदा हि मरणं ध्रुवम् ॥
साधारणा क्रिया तस्य प्रयोक्तव्या महामते ॥ १६ ॥

जब त्रिदोषसे उपजा हुआ क्षयरोग होता है तब निश्चय मरण होजाता है । हे हारीत महामते ! उसकी साधारण चिकित्सा कही है ॥ १६ ॥

अथ धातु--रस-आदि सात ७ प्रकारके क्षयरोगके लक्षण ।

अथ धातुक्षयं वक्ष्ये हारीत शृणु साम्प्रतम् ॥
रसरक्तमेदमांसानां प्रत्येकं क्षयलक्षणम् ॥ १७ ॥

हे हारीत ! अब धातुके क्षयरोगको कहते हैं सुन । रस, रक्त, मांस, मेद, इन सबोंके एक २ के लक्षणको कहते हैं ॥ १७ ॥

अथ रसक्षयका लक्षण ।

रसक्षयेऽतिशोषश्च मन्दाग्नित्वं च वेपथुः॥ शिरोरुग्मन्दचेष्टत्वं जायते च क्लमभ्रमौ ॥ १८ ॥ रक्तक्षये क्षयः पाण्डुर्मन्दचेष्टो भवेन्नरः ॥श्वासो निष्ठीवनं शोषो मन्दाग्नित्वं च जायते॥१९॥

रसके क्षय होनेमें अत्यंत शोष हो, मंद अग्नि हो, कंपना हो,शिरमें पीडा हो,मंदचेष्टा हो, ग्लानि हो, भ्रम हो ॥ १८ ॥ रक्तक्षय होनेमें क्षयरोग होवे तो पांडुरोग हो जावे, मंद-चेष्टा हो जावे, श्वास हो, थुकथुकी हो, शोष हो, मंदाग्नि हो ॥ १९ ॥

मांसक्षयका लक्षण ।

मांसक्षयेऽतिकृशता चेष्टनं चाङ्गभङ्गता ॥
निद्रानाशोऽतिनिद्रास्य विसंज्ञो लघुविक्रमः ॥ २० ॥

मांसके क्षय होनेमें दुबलापन हो,देह चमकने लगे,देहमें दर्द हो,निद्राका नाश हो अथवा इसको अत्यंत निद्रा आवे और संज्ञा नहीं रहे, अल्पबल रहे ॥ २० ॥

अथ मेदःक्षयका लक्षण ।

मेदःक्षये मन्दबलो विसंज्ञता पारुष्यमङ्गस्य च भङ्गता स्यात्॥ श्वासातिकासारुचिताग्निमान्द्यं गतिर्विशोषश्च तथैव जायते२१

मेदके क्षय होनेमें मंदबल रहे, संज्ञा नहीं रहे, अंगभंग हो, कठोरता रहे और श्वास, अत्यन्त खांसी, अरुचि, मन्दाग्नि,गमन और शरीरमें शोष हो ये उपद्रव होते हैं ॥२१॥

अथ अस्थिक्षयका लक्षण ।

अस्थिक्षये स्यादतिमन्दचेष्टा वीर्यस्य मान्द्यं किल मेदसः क्षयः॥विसंज्ञता कम्पनता च कार्श्यता तथाङ्गभंगो वमनं कठोरता ॥२२॥दोषस्य शैथिल्यमथापि शोफिता विकम्पनं शोषरुजश्च जायते ॥ लिङ्गैरथैभिः परिवेदमज्जाक्षयोऽधिका कम्पनतैव चात्र ॥ २३ ॥

अस्थिक्षयमें अतिमन्द चेष्टा हो,वीर्यमन्द हो जावे,मुटापा नाश हो जावे,संज्ञा नहीं रहे,साडापन हो, कंपना रहे, अंगभंग हो, वमन हो, कठोरता हो ॥ २२ ॥ और शोष हो वातआदिक दोषोंकी शिथिलता हो,शोजा हो,कंपना हो,रूक्षता हो और मज्जाके क्षयमें भी यही अस्थिक्षयके लक्षण होते हैं, केवल इसमें कंपनता अधिक होती है ॥२३ ॥

अथ वीर्यक्षयका लक्षण ।

श्रमः क्लमः स्याद‌तिमन्दचेष्टः शोफो निशाजागरणं च तन्द्रा॥ मन्दज्वरः शोषसमो मनुष्ये शुक्रक्षये चाङ्गविचेष्टितानि॥२४॥ रौक्ष्यं रमणीद्वेषः रोषः शोफो श्रमिश्च कम्पनता ॥ विरूपता वैकल्यं सन्धिषु शोषस्तथा याति ॥ २५ ॥

श्रम हो,ग्लानि हो, मन्दचेष्टा हो,शोजा हो, रात्रिमें निद्रा नहीं आवे,तन्द्रा रहे, मन्दज्वर हो, शोष हो ये लक्षण हैं,और मनुष्यके वीर्यक्षय होनेमें अंग वेचैनीसे हिला करें ॥ २४ ॥ रूखापन, स्त्रियोंसे द्वेष, क्रोध, सूजन, श्रम और कँपकपी, कुरूपता, विकलता और सन्धियोंमें सूजन वीर्यके क्षयमें होती है ॥ २५ ॥

अथ रसरक्तवृद्धिकारक औषध ।

इदानीं संप्रवक्ष्यामि भेषजानि यथाक्रमम् ॥ स्नेहनं रूक्षणं चैव तथा विम्लापनं हितम् ॥२६॥ जाङ्गलानि च मांसानि भोजनानि च सेवयेत् ॥ गुडूची शृङ्गवेरश्च यवानीक्वथितं जलम् ॥ २७ ॥ मरिचैः क्वथितं दुग्धं पाने रात्रौ प्रशस्यते ॥ तेन रसानां वृद्धिः स्याच्छीघ्रं तस्माद्विमुच्यते ॥ २८ ॥ रसानां वृद्धिकरणं गोधूमयवशालिनाम् ॥ कथितानि भिषक्छ्रेष्ठैर्जाङ्गलानि विशेषतः ॥ २९ ॥

अब यथाक्रमसे औषधोंको कहते हैं कि स्नेहन, रूक्षण, विम्लापन ये कर्म करने हित हैं॥२६॥ और जांगलदेशके जीवोंका मांस भोजनमें हित है और गिलोय,अदरख,अजवायन इनके क्वाथका जल हित है ॥२७॥ मिरचोंमें पकाया हुआ दूध रात्रिमें पीना हित है इससे रसोंकी वृद्धि होती है और शीघ्रही क्षयरोगसे छूट जाते हैं ॥ २८ ॥ गेहूँ, जव, शालिसंज्ञक चावल, जांगलदेशके जीवोंका मांस ये रसके बढ़ानेवाले और वैद्योंकरके श्रेष्ठ कहे गये हैं ॥ २९ ॥

अथ रक्तवृद्धिकारक औषध।

घृतदुग्धसिताक्षौद्रमरीचानि च पिप्पली ॥
पानं शस्तं मनुष्याणां रक्तवृद्धिकरं परम् ॥ ३० ॥

घृत, दूध, मिश्री, शहद, मिर्च और पीपल इनका पीना हित है। मनुष्योंके रक्तकी वृद्धि करनेवाला है ॥ ३० ॥

अथ मेदोवृद्धिकारक औषध।

अनूपानि च धान्यानि लघुनामानि कल्पयेत्॥कल्यांश्च घृतदुग्धादीन्सेवयेन्मधुराणि च ॥ ३१ ॥ रसाश्च जाङ्गलानि स्युः सेवनार्थे भिषग्वर ॥३२॥ सितोपलादिकं चूर्णमजाक्षीरं सकोलकम् ॥ हितं पानं क्षये चैव कल्यमप्रातराशनम्[1] ॥ ३३ ॥

अनूपदेशके जीवोंका मांस, हलके अन्न, घृत, दूध, कल्यसंज्ञक मदिरा, मधुरपदार्थ इनका सेवन हित है ॥ ३१ ॥ और हे वैद्योंमें श्रेष्ठ ! जांगलदेशके जीवोंका रस सेवना हित है ॥३२॥और सितोपला आदि चूर्ण और पीपलीसे संयुक्त किया हुआ बकरीका दूध पीना हित है। सायंकालमें भोजनके समय और कल्य कहिये प्रभातकालमें करे ॥ ३३ ॥

अथ अस्थिवृद्धिकारक औषध।

पक्वानि घृतशस्तानि क्षीराणि विविधानि च ॥ चन्दनानि च द्राक्षादिचूर्णानि च भिषग्वर ॥ ३४ ॥ जांगलानि च सर्वाणि सेवनीयानि पुत्रक ॥ अन्नानि च मधुराणि सर्वाणि च प्रयोजयेत् ॥ ३५ ॥

पके हुए घृत और अनेकप्रकारके दूध ये श्रेष्ठ हैंऔर हे उत्तम वैद्य ! चन्दन और द्राक्षादिक चूर्ण हित है ॥ ३४ ॥ और हे पुत्र ! सब प्रकारके जांगलदेशके जीवोंके मांस सेवनेमें हित हैं. सब प्रकारके मीठे अन्न सेवनेमें हित हैं ॥ ३५ ॥

अथ शुक्रवृद्धिकारक औषध।

शुक्रक्षये प्रपाकानि रसानि च विशेषतः ॥ नवनीतं तथा क्षीरं मधुराणि च सेवयेत् ॥ ३६ ॥ कर्कटीमूलपयसा विदारीकन्दशाल्मली ॥ सिताढ्यपानं च हितं शस्यन्ते मधुराणि च ॥३७॥ अग्रे चूर्णानि वक्ष्यन्ते शुक्रवृद्धिकराण्यथ ॥ ३८ ॥

---

1 कल्यमप्रातराशनं कल्यं मधु अप्रातराशने प्राःकालातिरिक्तसमये अशनंभोजनमित्यर्थः। आङ्पूर्वकमशनम् आशनम्।

शुक्रके क्षयमें अच्छीतरह पकाये हुए रस देने हित हैं और नौंनीघृत, दूध, मधुर पदार्थ, इनका सेवन करे ॥ ३६ ॥ काकडीकी जड़ विदारीकंद, शालवन, इनको दूधके संग मिश्री मिला पान करना हित है और मीठे पदार्थ हित हैं॥ ३७॥ अब आगे वीर्यकी वृद्धि करनेवाले चूर्णोंको कहेंगे ॥ ३८ ॥

अथ बलादि चूर्ण।

बला विदारी लघुपञ्चमूली पञ्चव क्षीरद्रुमत्वक् प्रयोज्या ॥ पुनर्नवामेघतुगायुतं स्यात्सञ्जीवनीयैर्मधुकैः समांशैः ॥ ३९ ॥ अक्षप्रमाणानि समानि तानि सर्वाणि चैतानि विचूर्णयित्वा ॥ विमिश्रयेत्तत्र कणाशतानि यवान्नगोधूमयवांश्च पिष्ट्वा ॥ ४० ॥ तुगासमांशं सिततण्डुलानां सेयं सुभृङ्गारकमिश्रितं तु॥प्राकर्ण-कार्द्धेन वियोजनीयं सर्वांशकेनापि सिता प्रयोज्या ॥ ४१ ॥ विभावयेच्चामलकीरसेन वारत्रयं गोपयसा विभाव्य॥ततोऽस्य सर्वैश्च सशर्करैर्वा घृतेन चैवं पुनरेव भाव्यम्॥४२॥ तं भक्षये-त्क्षौद्रयुतं पलार्द्धं जीर्णे च भोज्यं कटुकाम्लवर्जम्॥ क्षीरं घृतं वा सितशर्करां वा यवान्नगोधूमकशालिभक्ष्यान् ॥ ४३ ॥ ज्ञात्वाग्निपाकं जठरे नरस्य देयो विधिज्ञैः क्षयरोगशान्त्यै ॥ पथ्यक्षये श्रान्तचिराभितापसंपीडितानां च तथा शिरोऽर्तौ ॥४४॥ पित्तातुराणां रुधिरक्षयाणां श्रमाध्वसंपीडितकामला-नाम्॥श्वासातुराणां मधुमेहिनां च क्षीणेन्द्रियाणां बलकारि शस्तम्॥४५॥ गर्भो गृहीतश्च यया स्त्रिया च तस्याः प्रशस्तं तु बलादिचूर्णम् ॥ ४६ ॥ इति बलादिचूर्णम् ॥

खरैंहटी, विदारीकंद, लघुपंचमूल अर्थात् सालवन, पिठवन, कटेहली, बडी कटेहली, गोखरू पीपल, वड, गूलर, पिलखन, आंब इन पांच वृक्षोंकी छाल प्रयुक्त करनी चाहिये और सूंठ, नागरमोथा, वंशलोचन और जीवनीआदिक गण औषध मुलहटी इन सबोंको समान भाग ॥ ३९ ॥ एक २ तोला प्रमाण ले फिर इन सबोंका चूर्ण बना उसमें सौ १०० पीपली मिला और जव, गेहूं ॥ ४० ॥ उत्तम सफ़ेद चावल इनको वंशलोचनके समान

भाग ले पीसके मिलादेवे और पीछे कहीहुई प्रकरणकी सब औषधोंसे आधाभाग भंगरा और इन सबोंके समान मिश्री मिला ॥ ४१ ॥ फिर इस चूर्णको आंवलेके रसमें भावना दे पीछे तीनवार गौके दूधमें भावना दे फिर इस सबचूर्णके समान खांड मिला फिर घृतमें भावनादे ॥ ४२ ॥ २ तोला प्रमाण उस चूर्णको शहदके संग खावे और यह चूर्ण जरजावे तब भोजन करे और चर्चरा तथा खट्टा भोजन नहीं करे और दूध, घृत, सफेद खांड, जव, गेहूं, शालिसंज्ञकचावल इनका भोजन करे ॥ ४३ ॥ मनुष्यके जठराग्निपाकको जानके विधिके जाननेवाले वैद्योंको क्षयरोगकी शांतिके वास्ते देना कहा है और मार्गमें क्षीणहुआ, हाराहुआ, बहुतकालते संतापवाला इनोंसे पीड़ित हुए पुरुषोंको और शिरकी पीड़ामें ॥ ४४ ॥ और पित्तसे आतुर, रुधिरक्षयवाले, श्रम, मार्ग इनसे पीड़ित, कामलारोगवाले, श्वासरोगवाले, मधुप्रमेहवाले, क्षीणइंद्रियवाले इन पुरुषोंको यह चूर्ण श्रेष्ठ कहा है ॥ ४५ ॥ और जिस स्त्रीके गर्भ ठहररहा हो उसको यह बलादिचूर्ण श्रेष्ठ कहा है ॥ ४६ ॥

अथ च्यवनप्राशननामक अवलेह।

बिल्वाग्निमन्थस्योनाकाः काश्मरी पाटली तथा ॥ शालिपर्णी पृश्निपर्णी श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥४७॥ भृङ्गी शीता चामलकी जयन्ती पुष्कराह्वयम्॥द्राक्षाभयामृता मेदा चन्दनागुरुपद्म-कम् ॥ ४८ ॥ बलाह्वयास्तु कर्णे द्वे जीवकर्षभकावुभौ ॥ काकोली क्षीरकाकोली विदार्य्याः कन्दमांसकम् ॥ ४९ ॥ सर्वेषां पलिका मात्रा योजयेद्भिषजां वरः॥धात्रीफलं पञ्चशतं सुपक्वरससंयुतम् ॥ ५० ॥ जलद्रोणे विपक्तव्यं चतुर्भागे च शोषितम् ॥ तथा निर्वाप्य मतिमान्कल्कानि समुद्धरेत् ॥५१॥ तत्क्वाथं कल्कयेत्तावद्यावद्दर्वीप्रलेपकः ॥ पुनस्तैलेन वाज्येन पक्त्वा चामलकीफलान् ॥५२॥पाचितान्चूर्णितान्सर्वान्समश-र्करया युतान्॥चतुष्पलातुगाक्षीरैर्योजयेद्भिषजांवरः॥ ५३ ॥ पिप्पलीनां सहस्रैकं त्वगेलापत्रकं तथा॥एषां द्विपलिकां मात्रां विदध्यात्तत्रसत्तमः॥५४॥सव प्राक्कथिते लेहे योजयेच्च विचू-र्णितम्॥आदरेण समं लिह्यान्नराणां च रसायनम् ॥ ५५ ॥ श्वासकासक्षयपाण्डुकामलानां विशोषणम् ॥ क्षीणक्षतानां बालानां वृद्धानां देहलक्षणम् ॥५६॥ स्वरभङ्गपिपासानां हृद्रोगे

पित्तशोणितम्॥शुक्रदोषं शिरोरोगं पीनसं चापकर्षति ॥५७॥ जीर्णज्वरञ्च मन्दाग्निं कुष्ठं दुष्टं भगन्दरम्॥मेहं कृच्छ्राश्मरीं हन्ति तथा रोचनवारणम्॥५८॥हृद्रोगशूलमानाहं नाशयत्य-विसंशयम्॥वन्ध्यानां पुत्रजननं वृद्धानामल्परेतसाम् ॥५९॥ षण्ढोऽपि जायते चैव सदा ऋतुकरः परः॥मेधा स्मृती तथा तेजो वर्द्धयत्याशु निश्चितम् ॥६०॥ सौख्यसौभाग्यदर्शी च वृद्धोऽपि तरुणायते॥क्षयरोगविनाशाय कथितं चात्रिणा महत् ॥६१॥ च्यवनप्राशनं नाम कृष्णात्रेयविभाषितम् ॥६२॥इति च्यवनप्राशननामावलेहः ॥

बेलगिरी, अरणी, सोनापाठा, खंभारी, शालवन, पिठवन, गोखरू, छोटी कटेहली, बड़ी कटेहली ॥ ४७ ॥ भांग, गंगेरन, भूमि आंवला, जयंती अर्थात् अरणीभेद, बड़ीअरणी, पोहकरमूल, दाख, हरडैं, गिलोय, मेदा, चंदन, अगर, पद्माक ॥ ४८ ॥ खरैंटी, दोभाग दालचीनी, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, विदारीकंद ॥ ४९ ॥ इन सबोंको वैद्यजन चार २ तोला प्रमाण लेवे और पकेहुए रसके आंवले पांचसौ लेके ॥ ५० ॥ पीछे इन सब औषधोंको एकहजार चौसठ १०६४ तोले जलमें पकावे फिर चतुर्थांश बाकी रहे तब बुद्धिमान् पुरुष उन औषधोंको निकाल आँवलोंकी गुठली निकालके उनकी कली करलेवे और पीसके पीठीसी करले ॥ ५१ ॥ फिर पूर्वोक्त क्वाथ डालके पकावे फिर कडछी चपकने लगे तब उतारे और तेलमें अथवा घृतमें तिन आंवलोंकी पीठीको सेंकले ॥ ५२ ॥ पीछे पकाये हुए तिस चूर्णमें बराबरकी खांड मिलावे और १६ सोलह तोले वंशलोचन मिलावे ॥ ५३ ॥ उत्तम वैद्य इसी कहेहुए अवलेहमें हजार पीपली, दालचीनी ८ तोले, तेजपात ८ तोले, इनका चूर्ण मिलादेवे ॥ ५४ ॥ पीछे यह लेह मनुष्योंको आदरसे चाटना चाहिये । यह मनुष्योंको रसायन कहा है ॥ ५५ ॥ और श्वास, खांसी, पांडुरोग, कामला, इन रोगोंको नाशता है और क्षीणरोगसे क्षत हुए बालक, वृद्धजन, इनके देहकी रक्षा करने-वाला है ॥ ५६ ॥ स्वरभंग, पिपासा, हृदयरोग, पित्तरक्त, शुक्रदोष, शिरोरोग, पीनस इन रो-गोंको दूर करता है ॥ ५७ ॥ जीर्णज्वर, मंदाग्नि, दुष्ट कुष्ठ, भगंदर, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, अरुचि इन रोगोंको दूर करता है ॥ ५८ ॥ हृदयरोग, शूल, अफारा इनको नाशता है इसमें सन्देह नहीं । यह चूर्ण वंध्यास्त्रियोंको पुत्रको देनेवाला और अल्पवीर्यवाले वृद्ध ॥५९॥ नपुंसक इनके वीर्यको बढानेवाला है और बुद्धि, स्मृति, तेज इनको शीघ्र ही निश्चय बढ़ाता है ॥६०॥

इसके खानेसे वृद्धपुरुष भी सुख सौभाग्यको देखता है और जवानकी तरह आचरण करता है । यह महान् चूर्ण क्षयरोगोंके विनाशके वास्ते कृष्णात्रेयजी महाराजने कहा है॥६१॥ यह कृष्णात्रेयमुनिने च्यवनप्राशननामक अवलेह कहा है ॥ ६२ ॥

अथ अगस्तिहरीतकीपाक ।

भार्ङ्गीपुष्करमूलचित्रककणामूलं गजाह्वा शटी शङ्खाह्वादशमूल-चित्रकबलायासात्मगुप्तास्तथा॥ एतेषां द्विपलांशकी वरभिषक्[1] भोक्ता च पञ्चाढके पथ्यानां शतकं विपाच्य बहुधा मन्दाग्निना संततम् ॥६३॥ निर्वाप्यं पुनरेव पूतसरसं चोद्धृत्य पथ्याशतं संशुष्यामतिशीतले सुभवनक्राथः प्रशस्तः पुनः॥दत्त्वा जीर्ण-गुडस्य चैकतुलया कुडवञ्च क्षौद्रं घृतं स्नेहस्यार्द्धमथाक्षकेण मगधा योज्यं शतं पञ्चकम् ॥६४॥ चूर्णं तत्र निधापयेत्पुनरपि संघट्टयेदुच्चकं पथ्ये द्वे मधुना सहातिहितकृत्सर्वामयच्छेदनः ॥ पाण्डुंकासहलीमकंगुदरुजो हृद्रोगहिक्काभ्रमान् हन्यात्पीनसमेहपित्तमसृजं कुष्ठं ग्रहण्यामयम् ॥६५॥ पुष्पं चैव तनोति शोफ-मरुचिगुल्मार्त्तिराजक्षयमेहानाहविबंधरोगशमनं क्षीणेन्द्रियाणां हितम् ॥ मन्दाग्नेः प्रशमं करोति वडवातुल्योऽरुचिबन्धकं नाशं वा विदधाति देहसुखदागस्तिप्रणीताभया ॥६६ ॥

भारंगी, पोहकरमूल, चीता, पीपलामूल, गजपीपली, कचूर, शंखपुष्पी, दशमूल, चीता, खरैंहटी, जवासा, कौंच इनको आठ आठ तोला प्रमाण लेवे और सौ १०० हरडैं लेवे पीछे इनको १२८० तोले जलमें मंद २ अग्निसे अच्छे प्रकारसे पकावे ॥ ६३ ॥ फिर पकजावे तब पूर्णरसवाली पहले कही हुई सौ १०० हरडोंको निकासलेवे और शीतलहुए काथसे उनहरडोंको निकाल फिर ४०० चारसौ तोले पुराणा गुड, १६ तोले शहद और १६ तोले अथवा ८ तोले घृत मिलावे और चतुरवैद्यको पांचसौ ५०० पीपली मिलानी चाहिये ॥ ६४ ॥ इन सब औषधोंके चूर्णको एकजगह कूटके मिलादेवे फिर शहदके संग दोहरडे खानेसे सबरोगोंका नाश होता है । पांडुरोग, खांसी, हलीमक, गुदाका रोग, हृदयरोग, हिचकी, भ्रम इन रोगोंका नाश होता है और पीनस, प्रमेह, रक्तपित्त, कुष्ठ, संग्रहणी इन रोगों को नाशता है ॥ ६५ ॥ स्त्रीके पुष्पको बढ़ाता है, शोजा, अरुचि, गुल्म, राजयक्ष्मा,

[1] वरश्चासौ भिषक् तत् सम्बुद्धौ ।

मूत्ररोग, आनाह, मलका वंधा इन रोगोंको नाशता है और क्षीणइंद्रियवालोंको यह हरीतकीपाक हित है और मन्दाग्निको शांत करता है और अरुचिरोगके नाशके वास्ते अग्निके समान कहा है और अगस्तिऋषिसे कहाहुआ यह हरीतकीपाक देहको सुख देनेवाला है ॥ ६६ ॥

अथ बलाक्वाथ ।

बलाद्वयं गोक्षुरको बृहत्यौ निष्क्वाथ्य दुग्धेन कणासमेतम् ॥
पानं हितं स्यान्मधुना सिताढ्यं विनाशनं कामलकं क्षयं वा॥
मेहस्य तृष्णाशयनाशकारिक्षीणेन्द्रियाणां बलमातनोति॥६७॥

खरैंहटी, गोखरू, छोटी कटेहली, वड़ी कटेहली, पीपली, इनका दुग्धमें क्वाथवना फिर शहद और मिश्री मिला पीना पथ्य है। कामला, क्षयरोग, प्रमेह, तृषा,इन रोगोंका नाश होता हैं और क्षीणइन्द्रियवाले पुरुषोंके वलको वढ़ानेवाला है ॥ ६७ ॥

अथ पिप्पलीवर्द्धमानम् ।

पिप्पलीं वर्द्धमानं वा कारयेद्दुग्धसर्पिषा॥आद्यः पञ्च पुनः सप्त पुनरेव नव क्रमात् ॥६८॥ एकादशस्त्रयोदशः पञ्चदशस्तथा सप्तदशः स्मृतः॥एकोनविंश एकविंशः पृथक्पृथग्यथाक्रमम् ॥ ॥ ६९ ॥ एवं क्रमेण वृद्धिः स्यात्कारयेच्छतमात्रया ॥ ततः क्रमेण पुनः पश्चाद्यावच्छेषं च पञ्चकम् ॥ ७० ॥ भोजयेत्षष्टिकान्नं तु मुद्गेन सर्पिषा युतम्॥एवं बालश्च वृद्धश्च नरो नागबलो भवेत् ॥ ७१ ॥ पिप्पली वर्द्धमाना तु ज्वरे जीर्णे प्रशस्यते ॥ मन्दाग्नौ पीतमेवाथ गुदजे वा तथा पुनः ॥ ७२ ॥ इति पिप्पलीवर्द्धमानम् ॥

दुग्ध और घृतके संग पिप्पली वर्द्धमान वनाया जाताहै उसको कहते हैं, क्रमसे पहले पांच फिर सात फिर नव पीपलोंको दूधमें पका घृत मिला पान करना चाहिये ॥६८॥ और पीछले दिन ग्यारह फिर १३ पीछे १५ पीछे १७ पीछे १९ पीछे २१ ऐसे बढ़ती हुई ॥ ६९ ॥ ऐसे दिन दिन प्रति दो बढ़ती हुई सौ पीपलोंतक बढ़ा लेनी चाहिये पीछे क्रमसे घटती हुई जबतक पांच शेष रहें तबतक सेवन करे ॥७०॥ इसपै सांठी चावलोंको मूंग और घृतके संग भोजन करे। बालक अथवा वृद्धजन इस प्रकार इसका पान करताहुआ हस्तीके समान पराक्रमवाला हो जाता है ॥ ७१ ॥ यह पीपली वर्द्धमान जीर्णज्वरमें श्रेष्ठ कहा है और मन्दाग्निमें तथा गुदाके रोगमें पीना हित है ॥ ७२ ॥

अथ शिलाजतुचूर्ण।

द्वे पले मार्कवं धातु माक्षिकं च पुनर्नवा॥ तुगा पृक्का शालिपर्णी वासकं च दुरालभा ॥ ७३ ॥ चूर्णार्द्धेन समं योज्यं त्रिगन्धं मरिचानि च ॥ तालीसं मगधा चैव तदर्द्धेन शिलोद्भवम् ॥७४॥ शिलाभेदं तदर्द्धेन सर्वं चैकत्र मिश्रयेत् ॥समेन तिलचूर्णं तु शर्करायाः समायुतम् ॥ ७५ ॥ भक्षयेत्क्षीरपानं वा शस्यते घृतसंयुतम् ॥ तेन क्षयो राजयक्ष्मा कामला च विनश्यति ॥ ७६ ॥ अपस्मारं जयत्याशु बलवीर्याधिको भवेत् ॥ शाम्यन्ति च महारोगाः शुक्राढ्यो जायते नरः ॥ ७७ ॥ इति शिलाजतुचूर्णम् ॥

भंगरा ९ तोले, सोनामांखी ९ तोले, सांठी ९ तोले, वंशलोचन ९ तोले, पृक्कासंज्ञक वृक्षकी छाल ८ तोले, वांसा ८ तोले, शालपर्णी ८ तोले, जवासा ८ तोले ॥७३॥ ४ तोले त्रिगन्ध अर्थात् इलायची, दालचीनी, तेजपात, मिरच ४ तोले और तालीसपत्र, पीपली, शिलाजीत ये दो दो तोले ॥ ७४ ॥ पाषाणभेद २ तोला ऐसे इन औषधोंको मिला चूर्ण बना लेवे और इस चूर्णके समान तिलोंका चूर्ण और खांड मिलावे ॥ ७५ ॥ पीछे इस चूर्णको घृतके संग भोजन करे अथवा इसके ऊपर दूधको पीवे। इस चूर्णसे क्षयीका रोग, राजयक्ष्मा, कामला इन रोगोंका नाश होता है ॥ ७६ ॥ और मृगीरोगको शीघ्र ही दूर करता है, बल, वीर्य, इनको बढ़ाता है और महारोग शांत हो जाते हैं और इसके खानेसे मनुष्य वीर्यसे युक्त होजाता है ॥ ७७ ॥

अथ जीवंत्यादि घृत।

जीवन्तिकावत्सकयष्टिकानां सपौष्करं गोक्षुरकं बले द्वे॥नीलोत्पलं चामलकी यवासं सत्रायमाणा मगधा च कुष्ठम् ॥७८॥ द्राक्षामलक्या रसप्रस्थमेकं प्रस्थद्वयं छागलकं पयश्च॥ दध्नश्च प्रस्थं च घृतस्य प्रस्थं पाने प्रशस्तं पचितं शुभाग्नौ॥७९॥ नस्ये

१ 'मरुन्माला तु पिशुना स्पृक्का देवी लता लघुः। समुद्रांता वधूः कोटिवर्षा लंकोपिकेत्यपि' इत्यमरः कोशगतस्पृक्कायां हारीतपृक्कायां च कोऽपि न भेदो यतः पृषोदरादित्वात् सलोपे पृक्का भवति। वाचस्पतिरप्यत्राह। स्पृक्का तु ब्राह्मणी देवी मरुन्माला लता लघुः। समुद्रान्ता वधूः कोटिवर्षा लंकोपिका मरुत् ॥ मुनिमाल्यवती माला मोहना कुटिला लता॥ केचित् पिंडकापि स्पृक्का।

च वस्तावपि योजयेत्तद्विनाशमेत्याशु च राजयक्ष्मा ॥ हलीमकः कामलपांडुरोगो मूर्च्छा भ्रमः कम्पशिरोऽर्तिशूलम् ॥८०॥ महाश्मरी वा गुदकीलकुष्ठं शिरोगतो नाशमुपैति रोगः॥तस्य प्रदानेन वियोजितेन पानेन पाण्ड्वामयराजयक्ष्मा ॥८१॥ नाश शमं याति हलीमको वा बस्तिप्रदानेन गुदोद्भवाश्च॥रोगो विनाशं समुपैति पुंसां विसर्पविस्फोटकप्रोक्षणेन ॥ ८२ ॥

गिलोय, कूड़ाकी छाल, मुलहटी, पोहकरमूल, गोखरू, छोटी कटेहली, वड़ी कटेहली, नीला कमल, भूमिआंवला, जवासा, त्रायमाण, पीपली, कूट ॥ ७८ ॥ दाख, इनको समान भाग ले फिर आंवलोंका रस ६४ तोले, बकरीका दूध १२८ तोले, दही ६४ तोले, घृत ६४ तोले इनमें मिला अग्निसे पकावे । यह घृत पानमें और भोजनमें हित कहा है ॥ ७९ ॥ नस्यमें तथा वस्तिकर्ममें भी युक्त करना हित कहा है और राजयक्ष्मा, हलीमक, कामला, पांडुरोग, मूर्च्छा, भ्रम, कंपरोग, शिरकी पीड़ा, शूल इन रोगोंको नाशता है ॥ ८० ॥ महापथरी, गुदकील, कुष्ठ, शिरका रोग इनका नाश होता है और इस घृतका पान करनेसे पांडुरोग, राजयक्ष्मा ॥ ८१ ॥ हलीमक, इन रोगोंका नाश होता है और इस घृतको वस्तिकर्ममें वर्त्तनेसे गुदाके रोग दूर होते हैं और इस घृतके मोक्षण अर्थात् शरीरपै छिड़कनेसे विसर्प, विस्फोटक इन रोगोंका नाश होता है ॥ ८२ ॥

अथ पिप्पली आदि घृत ।

कणा पयःपञ्चगुणे पलाश आद्यं घृतं वै विपचेत्समांशम् ॥ पानेऽथवा भोजनके प्रशस्तं देयं च राजक्षयनाशहेतोः ॥८३ ॥

पीपली, केशू, इनको समान भाग ले इनसे पांचगुना दूधमें इन औषधोंके समानभाग, गौके घृतको और इन औषधोंको पकावे । यह घृत पानमें और भोजनमें श्रेष्ठ है और राजयक्ष्मा, क्षयरोग इनका नाश करता है ॥ ८३ ॥

अथ पञ्चकोलआदि घृत ।

पञ्चकोलं यवाग्रञ्च क्षीरं दध्ना घृतं पुनः॥समांशेन तु योज्यानि भार्ङ्गी कुष्ठं तु पौष्करम् ॥८४॥ शतं तत्र हरीतक्या जले चैव चतुर्गुणे ॥ क्राथं चैकत्रयं योज्यं क्राथयेन्मृदुवह्निना ॥ ८५ ॥ मृदुपाकं घृतं सिद्धं पाने नस्ये च बस्तिषु ॥ गुणाधिक्यं भवे-

नृणां पाण्डुरोगे हलीमके॥८६॥राजयक्ष्मणि क्षये चैव शस्तं चोक्तं भिषग्वर ॥ ८७ ॥

पञ्चकोल अर्थात् पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, जवाखार; दूध, दही, घृत, भारंगी कूठ, पोहकरमूल ॥ ८४ ॥ इन सबोंको समान भाग ले और सौ १०० हरड़ें ले फिर इन औषधोंसे चौगुने जलमें मन्द मन्द अग्निसे क्वाथ बनावे । मन्द मन्द अग्निसे पकाया हुआ ॥८५॥ यह घृत पानमें, नस्यमें और वस्तिकर्ममें युक्त करना श्रेष्ठ है और पांडुरोग, हलीमक ॥ ८६ ॥ इन रोगोंमें मनुष्योंके अधिक गुण करनेवाला है और हे उत्तम वैद्य ! राजयक्ष्मा रोगमें यह घृत श्रेष्ठ है ॥ ८७ ॥

अथ पाराशर घृत ।

यष्टी बला गुडूची च पञ्चमूलं समांशकम् ॥ क्वाथेन सदृशं धात्रीरसं चेक्षुरसं तथा ॥ ८८ ॥ विदार्य्याश्च रसं चैव घृतं च समभागिकम्॥क्षीरं दधिसमं चात्र नवनीतं तु तत्समम्॥८९॥ द्राक्षातालीससंयुक्तं यथालाभेन योजयेत्॥सिद्धं घृतं च पानाय नस्ये वस्तौ प्रदापयेत् ॥९०॥ जयति राजयक्ष्माणं पाण्डुरोगं सुदारुणम् ॥ हलीमकं चार्शसं च रक्तपित्तनिवारणम् ॥९१॥ लेपेन दुष्टवैसर्पपित्तदग्धव्रणापहम् ॥ ९२ ॥

मुलहटी, खरेहटी, गिलोय, पंचमूल इनको समान भाग ले क्वाथ बनावे और क्वाथके समान आंवलाका रस और ईखका रस ॥ ८८ ॥ और विदारीकंदका रस मिलावे । इन औषधोंके समानभाग घृत और दूध, दही, नौंनी घृत इन सबोंको समानभाग ले ॥ ८९ ॥ दाख, तालीसपत्र इनको अनुमानसुवाफ़िक मिला फिर इस घृतको सिद्ध कर पानमें नस्यमें और वस्तिकर्ममें देना श्रेष्ठ है ॥ ९० ॥ यह राजयक्ष्मा, पांडुरोग, हलीमक, बवासीर, रक्तपित्त इनको नाशता है ॥ ९१ ॥ इस घृतका लेप करनेसे दुष्टविसर्परोग, पित्तरोग, दग्ध, व्रण इनका नाश होता है ॥ ९२ ॥

अथ बलाआदि घृत ।

बला श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयं च पर्णीद्वयं गोक्षुरकं स्थिरा च॥पटोलनिम्बस्य दलानि मुस्तं सत्रायमाणा च दुरालभा च॥९३ ॥ कृत्वा कषायं च यदावशेषं पूतीकृते चूर्णमिदं प्रयुञ्ज्यात्॥द्राक्षा शटी पुष्करमूलधात्री तमालकी दुग्धसमं कषायम् ॥ ९४ ॥

सर्पिःप्रयुक्तं नवनीतकं च सर्पिस्तदर्द्धेन नियोजनीयम् ॥ सिद्धं घृतं पानमथैव बस्तौ नस्ये तथाभ्यञ्जनभोजनेन॥९५॥जघन्य-कासक्षयकामलानां राजक्षये क्षीणबलेन्द्रियाणाम् ॥ शतेषु शोफेषु व्रणेषु शस्तं शिरोऽर्तिपार्श्वार्तिगुदामयघ्नम् ॥ ९६ ॥

खरैहटी, बडा गोखरू, छोटी कटेहली, वड़ी कटेहली, माषपर्णी, मूंगपर्णी, छोटा गोखरू और बड़ा गोखरू, शालपर्णी, परवल, नींवके पत्ते, नागरमोथा, त्रायमाण, जवासा ॥ ९३ ॥ इनका क्वाथ बना जब चतुर्थांश बाकी रहै तब उतार वस्त्रसे छान पीछे दाख, कचूर, पोहकर-मूल, आंवला, भूमिआंवला, इनका चूर्ण मिलावे और इस क्वाथके समान दूध मिला ॥ ९४ ॥ नूनीघृतसे आधा और घृत मिला पीछे इस घृतको उस क्वाथमें पकावे फिर यह घृत पीनेमें, वस्तिकर्ममें, नस्यमें, मालिसमें, भोजनमें वर्त्तना श्रेष्ठ कहा है ॥ ९५ ॥ अत्यंत खांसी, क्षय-रोग, कामला, राजयक्ष्मा इन रोगोंको नाशता है और क्षीण इंद्रियोंवाले तथा क्षीण बलवाले पुरुषोंको हित कहा है॥क्षतरोग,शोजा, व्रण, शिरकी पीडा,पसलीकी पीडा, गुदाका रोग इनको नाश करता है ॥ ९६ ॥

अथ चन्दनादि तैल।

चन्दनं सरलं दारु यष्ट्येला वालकं शटी॥नलशैलेयकं पृक्का पद्मकं वनकेसरम् ॥९७॥ कङ्कोलकं मुरामांसी शैरियं द्विहरी-तकी॥रेणुकात्वक्कुङ्कुमंच सारिवे द्वे तिक्तागरुः ॥९८॥ नलि-काबले तथा द्राक्षा कषायं सुपरिस्रुतम्॥तैलमस्तु तथा लाजा रसेन समभागिकम् ॥९९॥ मन्दाग्निना पचेत्तैलं सिद्धं पाने च बस्तिषु॥ नस्ये चाभ्यञ्जने चैव योजयेत्तद्भिषग्वरः ॥ १०० ॥ हन्ति पांडुक्षयं कासं ग्रहघ्नं बलवर्णकृत्॥मन्दज्वरमपस्मारकुष्ठ-पामाहरं पुनः ॥ १०१ ॥ करोति बलपुष्ट्योजो मेधाप्रज्ञायुर्व-र्द्धनम् ॥रूपसौभाग्यदं प्रोक्तं सर्वभूतयशस्करम् ॥१०२॥

चन्दन, सरल, देवदार, मूलहटी, इलायची, नेत्रवाला, कचूर, नड, शिलारस, पृक्कासंज्ञक वृक्ष, पद्माक, वनकेशर, ॥ ९७ ॥ कंकोल, मुरामांसी, लोबान, दोनों प्रकारकी हरडैं, रेणुका, दालचीनी, केशर, दोनों प्रकारकी सारिवा, अनंतमूल, कुटकी, अगर ॥ ९८ ॥ नाड़ीशाक, खरैहटी, दाख इनका क्वाथ बनावे और पीछे उस क्वाथमें तेल,दहीका पानी, धानकी खीलोंका, रस इनको समान भाग ले मिलावे ॥९९॥ इस तेलको मन्द मन्द अग्निसे पकावे सिद्ध किया

हुआ यह तेल वैद्यजनोंको पीनेमें, वस्तिकर्ममें, नस्यमें तथा मालिसमें वर्तना चाहिये॥ १०० ॥ यह तेल पांडुरोग,क्षयरोग,खांसी,ग्रहदोष इनको नाशता है और वल वर्ण इनको करता है,मन्द-ज्वर, अपस्मार, कुष्ट, पामा इन रोगोंको नाशता है ॥ १० १ ॥ वल, पुष्टि, पराक्रम, मेधा, बुद्धि,आयु इनको बढ़ाता है,रूप सौभाग्य इनको करता है, सम्पूर्ण भूतपीडाको दूर करता है १०२

अथ राजयक्ष्मारोगका निदान।

स्वामिभार्याभिगमने गुरुपत्न्यभिलाषणात्॥ राजस्वहेमचौर्याद्वा राजयक्ष्मा भवेद्गदः ॥१०३॥ अथवा दुष्टरोगेण जायते शृणु पुत्रक॥चतुर्भिर्हेतुभिर्यक्ष्मा जायते शृणु साम्प्रतम् १०४॥ व्यायामयानसुरतागतिपीडिताङ्गरोगेण वा व्रणनिपीडितक्षीणदेहात् ॥ क्रोधातिशोकभयलङ्घनतोऽनभक्षात् सञ्जायते च मनुजस्य महागदोऽयम् ॥ १०५ ॥ वार्द्धक्यायो भवति नितरां ज्याधनुःकर्षणेन भारात्यर्थं भवति हननोत्पातबन्धेन युद्धात्॥ दूराध्मानात्कदशनवशाच्चिन्तयातिव्यवायात्सम्भूतिः स्यान्मनुजवलहृद्राजयक्ष्मेतिसंज्ञः ॥ १०६ ॥

स्वामीकी स्त्रीसे संग करनेसे और गुरुकी स्त्रीसे अभिलाषा करनेसे,राजाका द्रव्य और सुवर्णकी चोरी करनेसे राजयक्ष्मा रोग होता है ॥ १०३ ॥ अथवा दुष्टरोगसे होता है सो हे पुत्र! चार हेतुओंकरके यह राजयक्ष्मा रोग होता है सो सुन ॥ १०४ ॥ कसरत, असवारी, मैथुन, गमन इनसे पीड़ित अंग होनेसे,रोगसे, व्रणसे पीडित होनेसे,क्षीण देह होनेसे,क्रोध, अतिशोक, लंघन करना, भय, व्रत इनसे मनुष्यके यह महान् रोग होता है ॥ १०५ ॥ निरन्तर धनुष्यके खींचनेसे बुढ़ापा हो जाता है उससे और अत्यन्त भार उठानेसे चोर आदिके उत्पातसे,युद्धसे,दूरसे अग्निको धमानेसे, बुरा भोजन करनेसे, चिंता करनेसे,अति मैथुनसे, मनुष्यके वलको हरनेवाला राजयक्ष्मासंज्ञक रोग हो जाता है ॥१०६॥

अथ राजयक्ष्माके लक्षण।

क्षतक्षयाच्छ्रमाद्वापि सहसोपप्लवादपि॥व्यवायातिप्रसङ्गेन तथा रूक्षातिसेवनात्॥१०७॥तेन संक्षीयते गात्रं ज्वरो मन्दश्च जायते॥ज्वरान्ते जायते शोफो मलविद् चातिमूत्रता १०८॥अतिसारश्च भवति भक्षणेनातिशेषते॥ कासते ष्ठीवतेऽत्यर्थं शोषं च

कुरुते भृशम् ॥ १०९॥ स्त्रियोऽभिलापतात्यर्थं वार्त्तायाद्विपता पुनः ॥ राजयक्ष्मेति विज्ञेयो गदः साध्यो न विद्यते ॥ ११०॥ सुप्तौ पादौ भवेतां तु ग्रासं च बहु मन्यते॥शब्दे च पटुता यस्य राजयक्ष्मा न जीर्य्यति ॥ १११ ॥

उरःक्षतसे, क्षय होनेसे अथवा श्रमसे एक बार जोरसे कूदनेसे,अत्यंत स्त्रीसंग करनेसे, रूखा भोजन सेवनेसे॥१०७॥शरीर क्षीण हो जाता है और मन्दज्वर हो जाता है,ज्वरके अंतमें शोजा होजाता है,मैल और विष्ठा मूत्र अत्यन्त उतरता है॥१०८॥अतिसार होता है,भोजन किया हुआ जरता नहीं है, अत्यन्त खांसता है और अत्यन्त थूकता है, वहुतसा शोष हो जाता है॥१०९॥ स्त्रीकी अभिलाषा अत्यन्त रहती है और वार्ता नहीं सुनी जाती है ऐसा यह :राजयक्ष्मा रोग कहाता है,यह साध्य नहीं कहा है ॥११०॥ जिसके पैर शून्य हो जावे और एक ग्रास भोजनको भी वहुत माने और जिसकी बोली नम्रहो ऐसे पुरुषका राजयक्ष्मा रोग शांत नहीं होता है१११

अथ राजयक्ष्माका इलाज ।

यदन्नं यत्समाहारं यादृशं प्रतियाचते ॥ तत्तस्य च प्रदातव्यं मधुरं घनमेव च ॥११२॥ यद्यदाहारमिच्छेद्वा नरं वा राजयक्ष्मिणम्॥तस्य तस्यास्य लाभेन क्षीयन्ते नास्य धातवः११३॥ यदा सरक्ताः शोफाः स्युः पाकतां यांति मानवे॥तदा पुनर्नवाक्काथः सलेशः प्रविधीयते ॥ ११४ ॥

जो अन्न अथवा जो पदार्थ राजयक्ष्मारोगवालेको देवे वही उसको मधुर और कड़ा देना चाहिये ॥११२॥ राजयक्ष्मारोगवालेको जिस जिस भोजनकी इच्छा होती है उसी उसी भोजनसे इसकी धातु क्षीण नहीं होती है॥११३॥जो यदि राजयक्ष्मारोगवाले पुरुषके रक्तसहित शोजा होवे और पक जावे तो सांठीका क्काथ किंचित्मात्र देना चाहिये ॥ ११४ ॥

अथ राजयक्ष्मावालेकी आयुष्यमर्यादा ।

सञ्जीवेच्चतुरो मासान्षण्मासं वा बलाधिकः॥उत्कृष्टैश्च प्रतीकारैः सहस्राहं तु जीवति ॥ ११५ ॥ सहस्रात्परतो नास्ति जीवितं राजयक्ष्मिणः ॥ गतप्राणौजोवीर्य्यश्च क्षीणश्च विकलेन्द्रियः ॥११६॥ न भवेत्पुनरुच्छ्रायो याप्यरोगश्च मुञ्चति॥ यस्तदायासम्पन्नो भूयोऽपि कासना भवेत् ॥११७॥तस्य प्राणापहारी

स्याद्राजयक्ष्मातिदारुणः ॥ त्रिभिर्मासैश्च षण्मासैर्वर्षैश्चापि त्रिभिः पुनः ॥ ११८ ॥

राजयक्ष्मारोगवाला पुरुष चारमहीनोंतक जीता है और बल अधिक होवे तो छःमहीनोंतक जीता है और अत्यंत इलाज होते रहें तो हजारदिनोंतक जीता है ॥ ११५ ॥ राजयक्ष्मारोगवाले पुरुषका जीना हजारदिनोंसे उपरांत नहीं होता है और प्राण, बल, वीर्य इनसे हीन होजाता है, क्षीण होजाता है, इंद्रिय विकल होजाती हैं ॥ ११६ ॥ जो रोग फिर नहीं बढ़ाता है वह याप्यरोग छुटजाता है और जो उस रोगके परिश्रमसे युक्त हुआ फिर खांसीसे युक्त होजाता है ॥ ११७ ॥ उस पुरुषका तीन महीनोंमें अथवा छःमहीनोंमें प्राणोंका नाश होता है ॥ ११८ ॥

अथ अमृतप्राशनघृत ।

शतमूलीरसे प्रस्थं गुडूचीकल्कप्रस्थकम्॥हरीतकीशतानां च कुटजस्य त्वचा तुलाम् ॥ ११९ ॥ निष्क्वाथ्य च पृथक्त्वेन घृतनाश्चैकत्र मिश्रयेत्॥दार्वीप्रलेपनं कृत्वा गुडानां शतपञ्चकम् ॥१२०॥सिता चामलकीचूर्णं त्वगेला चित्रकं शटी ॥ द्राक्षा कुष्ठं शिलाजिच्च शिलाभेदस्तु तालकम् ॥ १२१ ॥ योज्यं तत्राक्षमानेन भक्षयेच्छुद्धसर्पिषा ॥ तस्योपरि पिबेत्क्षीरं भोजनञ्च ततः परम् ॥ १२२ ॥ राजयक्ष्मी लभेत्सौख्यं पाण्डुकामलकाञ्जयेत् ॥ अतीसारं विनश्यति बले नागबलो भवेत् ॥ १२३ ॥

शतावरीका रस ६४ तोले, गिलोयका कल्क ६४ तोले, बडी सौ १०० हरड़ोंकी छाल और कुड़ाकी छाल ४०० तोले ॥ ११९ ॥ इनका जुदा २ काढा बना फिर छानिके एक जगह मिलालेवे पीछे अग्निपर पकावे जब कडछीके चपकने लगजावे तब ५०० पानसौ मुनक्का दाख, ॥ १२० ॥ मिसरी, आंवलाका चूर्ण, दालचीनी, इलायची, चीता, कचूर, दाख, कूट शिलाजीत, शिलाभेद, शुद्धमारित हरताल॥ १२१ ॥इनको एक २ तोला प्रमाण गेरै पीछे इसको अच्छे घृतके संग खावे इसके ऊपर दूध पीवे पीछे भोजन करे ॥१२२॥ इसके खानेसे राजयक्ष्मारोगवाला पुरुष सुखको प्राप्त होताहै और पांडुरोग, कामला, अतिसार इनका नाश होता है हस्तीके समान बल होजाता है ॥ १२३ ॥

अथ तालकाम्रातक ।

तालकं च शिलाभेदस्तथा चैव शिलाजतुः॥क्षीरके द्वे समङ्गा च कुष्ठ नागबला बला ॥ १२४ ॥ एलापत्रकतालीसं तमालं हरिचन्दनम्॥ मुस्ता द्राक्षा च रास्ना च मुण्डी शैलेयकं पुरः ॥१२५॥सुरसा चैव संयोज्या तिलाः कृष्णा द्विभागिकाः ॥ चूर्णं सूक्ष्मं प्रभुञ्जीत गुडेन मधुना युतम् ॥ १२६ ॥ पश्चाद्गोक्षीरपानं स्यात्क्षीरेण सह भोजनम् ॥राजयक्ष्मादिभिः क्षीणा ग्रहणीपीडिताश्च ये ॥१२७॥ धातुक्षीणबला ये च तेषां संयोजयेद्भृशम्॥वृद्धोऽपि तरुणो भूत्वा नरो नार्य्याभिनन्दति१२८॥ वन्ध्यापि लभते पुत्रं षण्ढोऽपि पुरुषायते ॥ तालकाम्रातकं नाम कृष्णात्रेयविभाषितम् ॥ १२९ ॥

शुद्ध और मारित हरताल, पाषाणभेद, शिलाजीत, काकोली, क्षीरकाकोली, मजीठ, कूठ, बडीखरैंहटी, खरैंहटी ॥ १२४ ॥ इलायची, तेजपात, तालीसपत्र, तमालपत्र, लालचंदन, नागरमोथा, दाख, रास्ना, गोरखमुंडी, लोबान, गूगल ॥ १२५ ॥ तुलसी और कालेतिल दो भाग, इनका सूक्ष्म चूर्ण बना तिसमें गुड और शहद मिला भक्षण करे ॥ १२६ ॥ और पीछे गौके दूधको पीवे और दूधके सगही भोजन करै, जो पुरुष राजयक्ष्माआदि रोगोंसे पीडित है और जो ग्रहणी रोगसे पीडित है ॥ १२७ ॥ धातुक्षीणरोगवाले इनको यह चूर्ण देना चाहिये और इसके खानेसे वृद्धपुरुष भी जवान होके स्त्रीके संग रमण करता है ॥१२८॥ बंध्या स्त्री पुत्रको प्राप्त होजाती है और नपुंसक भी पुरुषकी तरह आचरण करता है यह तालकाम्रातकनामवाला औषध कृष्णात्रेयजीने कहा है ॥ १२९ ॥

अथ गुडूच्यादिचूर्ण ।

गुडूची च बले द्वे च धात्री च मरिचानि च ॥
चूर्ण गुडेन संयुक्तं राजयक्ष्मापहं नृणाम् ॥ १३० ॥

गिलोय, दोनों प्रकारकी खरैंहटी, आंवला, मिरच, इनका चूर्ण गुडमें मिला खानेसे राजयक्ष्मारोगका नाश होता है ॥ १३० ॥

अथ क्षयरोगपर पथ्यापथ्य ।

शालिषष्टिकगोधूमवास्तुकं जाङ्गलानि च॥ मुद्गांश्च गोपयश्चैव शशकैणकुरङ्गिणाम् ॥ १३१ ॥ तित्तिरक्रौञ्चलावानां वार्त्ताक-

पिच्छकच्छागलानां हि ॥ कथितानि मांसादीनि प्रलेपकानि जगति च ॥१३२॥विभोजयेत्क्षीरसर्पिः क्षये वा राजयक्ष्मिणः॥ क्षाराम्लकटुकं तीक्ष्णं तैलं सौवीरकं सुरा ॥राजिकावर्जिताश्चैते क्षये वा राजयक्ष्मिणः ॥ १३३ ॥इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने क्षयरोगचिकित्सा नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

शालीसंज्ञक तथा सांठीचावल, गेहूं, वथुवाका शाक, जांगलदेशके जीवोंका मांस, मूंग, गौका दूध और शूसा, काला हिरन, हिरन ॥ १३१ ॥ तीतर, कूंजि, लावा, वत्तक, मोर, बकरा इन्होंका मांस, इन सबोंका भोजन करना श्रेष्ट कहा है ॥ १३२ ॥ और राजयक्ष्मा रोगमें तथा क्षयरोगमें दूध और घृतका भोजन करना श्रेष्ट कहा है और खारा, खट्टा, चर्चरा, तीक्ष्ण ऐसा पदार्थ, तैल, कांजी, मदिरा, राई ये क्षयमें तथा राजयक्ष्मा रोगमें वर्ज देने चाहिये ॥ १३३ ॥ इति देरीनिवासिवुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने- क्षयरोगचिकित्सानाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः १०.

अथ रक्तपित्तका निदान और चिकित्सा ।

अतिघर्मतयावापि तीक्ष्णोष्णकटुसेवनात्॥क्षाराम्लसेवनाद्वापि मद्यपानादिसेवनात् ॥ १ ॥ अतिव्यवायाच्छीतेन शुष्कशाका- दिसेवनात् ॥ एतैस्तु कुपितं पित्तं रक्तेन सह मूर्छितम् ॥ २ ॥ पुत्रस्तु संशयापन्नः पप्रच्छ पितरं पुनः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अत्यंत घामसे और तीक्ष्ण तथा गरम वस्तुके सेवनेसे और खारे खट्टे पदार्थके सेवनेसे तथा मदिराके सेवनेसे ॥ १ ॥ अत्यंत मैथुनके सेवनेसे, शीतल पदार्थके सेवनेसे, सूखे शाकादिके सेवनेसे कुपित हुआ पित्त रक्तके संग मूर्छाको प्राप्त हो जाता है ॥२॥ ऐसे सुन संशयमें युक्त हुआ हारीत आत्रेयजीसे पूछता है ॥ ३ ॥

हारीत उवाच॥ कथं पित्तं प्रकुपितं केन वापि प्रचाल्यते ॥ तद्वद्रक्तं प्रकुपितं जायते केन हेतुना ॥ ४ ॥ युगपद्दृश्यते केन कथं वापि प्रवर्त्तते ॥ एवं पृष्टो महाचार्य्यः प्रोवाच मुनिपुङ्गवः५

हारीत कहते हैं—पित्त कैसे कुपित होता है और किस प्रकार चलायमान होता है और रक्तका कोप किस कारणसे होता है ? ॥४॥ एक वार दोनों मिले किस हेतुसे दीखते हैं और कैसे प्रवृत्त होते हैं ? ऐसे पूछे हुए महाचार्य उत्तम मुनि कहते भये ॥ ५ ॥

आत्रेय उवाच ॥ शृणु प्राज्ञ महातेजश्चिकित्सागमपारग ॥ येनैव कुप्यते पित्तं रक्तं तेनैव कुप्यते ॥ ६ ॥ तावत्प्रकुपिते कोष्ठे वायुर्दारयते भृशम् ॥ ऊर्ध्वं च नयते प्राणश्चापानोऽपानमीरति ॥ ७ ॥ मध्ये समानः कुरुते रक्तपित्तस्य कोपनम् ॥ एवं युगपत्पित्तश्च रक्तेन सह कुप्यति ॥ ८ ॥ चतुर्द्धा दृश्यते कोपो गतिश्चास्य द्विधा मता ॥ ऊर्ध्वश्लेष्मणि संसृष्टं नासास्ये कर्णरन्ध्रयोः ॥ ९ ॥ रक्त प्रवर्त्तत यस्य साध्यास्तु विजिगीषुणा ॥ अधोयातेन संसृष्टं गुदेनापि प्रवर्त्तते ॥ १० ॥ स ज्ञेयो रक्तपित्तस्तु कृच्छ्रेण सिद्धिमिच्छति ॥ उभाभ्यामधऊर्ध्वाभ्यां वातश्लेष्मणि वर्त्तते ॥ ११ ॥ तमसाध्यं विजानीयात्कृच्छ्रेण यदि सिध्यति ॥१२॥ एकमार्गबलतो वा नाभिवेगेन चोत्थितः ॥ रक्तपित्तः सुखेनापि साध्यः स्यान्निरुपद्रवः ॥ १३ ॥ एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते ॥ असाध्यस्तु त्रिदोषेषु रक्तपित्तः प्रवर्त्तते ॥ १४ ॥ ऊर्ध्वगरक्तपित्तेषु विरेकं कारयेत्सुधीः ॥ अधोभागगते रक्ते तदास्य वमनं हितम् ॥१५॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे प्राज्ञ ! महातेजवाले ! वैद्यकशास्त्रके पारको जाननेवाले ! सुनो जिस कारणसे पित्त कुपित होता है उसी कारणसे रक्तपित्त कुपित होता है ॥ ६ ॥ पहले कोष्ठस्थानमें पित्त कुपित होके वायुको अत्यंत फाड देता है, प्राणवायु ऊपरको प्राप्त हो जाता है और अपानवायु गुदाके स्थानमें कुपित हो जाता है ॥७॥ मध्यनाभिमें स्थित हुआ समान वायु रक्तपित्तको कोप कर देता है इसी तरह एकही वार पित्त रक्तके संग कुपित हो जाता है ॥ ८ ॥ रक्तपित्तका कोप चार प्रकारसे दीखता है और इसकी गति दो प्रकारकी कही हैं जिसके कफ मुखके ऊर्ध्वभागमें प्राप्त हो और नासिकाके तथा कानोंके छिद्रोंमें ॥ ९ ॥ रक्त प्रवृत्त होजावे वह साध्य कहा है और जिसके अधोमार्गमें रक्तकोप हो जाता है उसके गुदाके द्वारा रक्त निकसता है ॥ १० ॥ वह रक्तपित्त कष्टसाध्य कहा है और जो ऊर्ध्वमार्गमें प्राप्त हो तथा अधोमार्गमें प्राप्त हो और वात कफ अधिक वर्तते हों ॥ ११ ॥ वह

असाध्य जानना अथवा कष्टसे सिद्ध होता है ॥ १२ ॥ एक मार्गसे उठा हुआ अथवा नाभिके देशसे उठा हुआ रक्तपित्त साध्य है और उपद्रवोंसे रहित है ॥ १३ ॥ एकदोषसे उत्पन्नहुआ साध्य होता है, दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ याप्यरोग होता है और तीन दोषोंसे उत्पन्न हुआ रक्तपित्त असाध्य कहाता है ॥ १४ ॥ और जब रक्तपित्त ऊर्ध्व भागमें प्राप्त होवे तब जुलाब दिवावे और जब रक्त अधोभागमें स्थित हो तब वमन कराना चाहिये ॥ १५ ॥

अथ रक्तपित्तके उपद्रव।

रोगक्षीणे छविरविकले हीनदौर्बल्यकाये मन्दाग्निर्वा क्षवथुरथवा पाण्डुता दाहशोषः॥तृष्णा छर्दिः श्वसनमधृतिर्भक्तविद्वेषमोहौ हृत्पीडा स्याद्भ्रमसथ भवेद्रक्तपित्तोपसर्गात् ॥१६॥ अष्टादश इमे प्रोक्ता रक्तपित्तउपद्रवाः ॥ उपद्रवैर्विना साध्योऽसाध्यः सोपद्रवस्तथा ॥१७॥ रक्तनिष्ठीवनोपेतो रक्तनेत्रो भ्रमातुरः ॥ रक्तमूत्रश्च वमते रक्तमूत्री न जीवति ॥ १८ ॥

रोगसे क्षीण होजावे और कांतिसे रहित होजावे, शरीर हीन होजावे और दुर्बल होजावे, मन्द अग्नि होजावे, छींकहो, पांडरोगहो, दाहहो, शोषहो, तृषाहो, छर्दिहो, श्वासहो, धीरज नहीं रहे, भोजनसे वैर रहे, मोह रहे, हृदयमें पीडा रहे, रक्त और पित्तके उपसर्गसे भ्रमहो, ऐसे ये ॥ १६ ॥ अठारह रक्तपित्तके उपद्रव कहे हैं। उपद्रवोंसे रहित रक्तपित्त रोग साध्य कहा है और उपद्रवोंसे संयुक्त रक्तपित्त असाध्य कहा है ॥ १७ ॥ रक्तके थूकनेसे युक्त हो, रक्तनेत्र हो, भ्रमसे आतुर हो और रक्तमूत्रवाला पुरुष वमन करता है, वह जीता नहीं है ॥ १८ ॥

अथ रक्तपित्तका लक्षण।

एवं प्रोक्तो निदानार्थस्ततो वक्ष्यामि भेषजम्॥सुलक्षणसमायुक्तं रक्तपित्तं सुखावहम् ॥१९॥ यस्यारुणं पवनफेनयुतं च तावत्पित्तातिकृष्णमथ पीतकुसुम्भकाभम्॥ पित्तेन पित्तमिति तं प्रवदन्ति धीराः सान्द्रं सपाण्डुरतिजं सघनं कफेन॥२०॥

इस प्रकार निदान तो कहदिया है अब औषध कहेंगे। सुंदरलक्षणोंसे युक्त रक्तपित्त सुखसाध्य कहा है॥१९॥जो झागों सहित और लाल थूके वह वातसे उपजा रक्तपित्त जानना और पित्त अधिक हो तो काला और कसुंभाके डहलके समान थूके उसको पित्तसे उपजा रक्तपित्त कहते हैं और कफसे होवे तो कडा और पीला सफेद चिकना ऐसा थूके ॥ २० ॥

अथ रक्तपित्तकी चिकित्सा ।

क्षीणमांसं कृशं वृद्धं बालं वा ज्वरपीडितम् ॥
शोषमूर्च्छाभ्रमापन्नं नातिरेचनमाचरेत् ॥ २१ ॥

क्षीणमांसवाला, कृश, वृद्ध, बालक, ज्वरसे पीड़ित, शोष, मूर्छा, भ्रम इनसे पीडित पुरुषको जुलाब अधिक नहीं दिलावे ॥ २१ ॥

अथ ऊर्ध्वरक्तका उपाय ।

निष्पीड्य वासारसमाददीत क्षौद्रेण खण्डेन युतं च पानम् ॥
नासास्यकर्णे नयनप्रवृत्तं रक्तं तु शीघ्रं शमतां प्रयाति ॥२२॥

अथवा अडूसेके पत्तोंके रसको निचोड़ उसमें शहद और खांड मिला पीना चाहिये। इससे नासिका, मुख, कान इनमें प्रवृत्त हुआ रक्त शीघ्रही शांत होजाता है ॥ २२ ॥

अथ वासादि क्वाथ ।

वासाकषायोत्पलमृत्प्रियङ्गुरोध्राञ्जनाम्भोरुहकेसराणि ॥पीत्वा ससध्वा ससिता प्रयोज्या पित्ताश्रयं चैवमुदीर्णमाशु ॥२३॥

वांसाका क्वाथ, कमलकी जड़की मांटी, गोंदी, लोध, रसांजन, कमलकेशर, इनमें शहद और मिसरी मिला पीनेसे रक्तपित्त शांत होता है ॥ २३ ॥

अथ निंबक्वाथ अथवा अडूसाका क्वाथ ।

अविद्यमाने पिचुवासकेऽस्मिन् कथं नरः सीदति रक्तपित्ते ॥
क्षये च कासे श्वसनेऽपि यक्ष्मे वैद्याः कथं नातुरमाद्रन्ति२४

नींब और अडूसाके रहते मनुष्य क्यों रक्तपित्तसे दुःखित होता है। क्षय, कास, श्वास और यक्ष्मामें वैद्य रोगीको क्यों यही नहीं देते हैं ? ॥ २४ ॥

अथ वासाकी प्रशंसा ।

भिषग्भिषजां माता वा पुरा कृत्य क्रिया यदि ॥ क्रियायते रक्तपित्ते क्षये कासे च सिद्धिदा ॥ २५ ॥ वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च॥रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥ २६ ॥

जो यह पहले कहीहुई चिकित्सा है यह सब वैद्योंकी माता है।रक्तपित्तमें,क्षयीरोगमें,खांसीमें यह चिकित्सा सिद्धिको देनेवाली है ॥२५॥ जबतक वासा औषध है तबतक इस रोगवालेकी जीवनेकी आशा है सो रक्तपित्तरोगवाला और क्षयरोगवाला तथा खांसीवाला पुरुष किसवास्ते दुःख पाता है ॥ २६ ॥

पकाके पीनेसे रक्तपित्तकी शांति होती है ॥ ३० ॥ खैर, कचनाल, गोंदी, शाल्मली इनके पुष्पोंका चूर्ण शहदके संग चाटनेसे इसरोगसे छुट जाता है ॥ ३१ ॥ पीपली और हरड़ेको सात दिनतक वांसाके रसमें भावना दे फिर सुखाके शहदमें युक्त कर खानेसे अत्यंत दुर्जय रक्तपित्तका नाश होता है ॥ ३२ ॥ इलायची, पद्माक, नागकेशर, दाख, रुद्रजटा, मुलहटी, पीपली इनकों समान भाग ले और इन सवोंके समान मिसरी मिला फिर लेह वना लेवे इसके खानेसे शरीरकी खाज, रक्तपित्त ॥ ३३ ॥ दाह, ज्वरकी पीड़ा, श्वास, मोह, तृषा, मूर्च्छा, वमन इनका नाश होता है ॥ ३४ ॥

अथ नासाप्रवृत्तरुधिरचिकित्सा ।

घ्राणे प्रवृत्तं रुधिरं यदि स्यात्तदा घृतेनामलकीफलानि ॥
तोयेन पिष्ट्वा शिरसि प्रलेपः स रक्तपित्तं सहसा रुणद्धि ॥ ३५ ॥

जो नासिकामें रुधिर प्रवृत्त हो जावे तो घृत और जलमें आंवलोंको पीस शिरपैं लेप करना चाहिये । यह रक्तपित्तको शीघ्रही दूर करता है ॥ ३५ ॥

द्राक्षारसं वा घृतशर्कराढ्यं जलं सिताढ्यं च सरक्तपित्ते ॥
यवान्नमेवेक्षुरसं सिताढ्यं क्षयं च कासं क्षतजं निहन्ति ॥ ३६ ॥

दाखोंके रसमें घृत और खांड मिला देनेसे और मिसरी जलके संग पीनेसे रक्तपित्त दूर होता है और जवका अन्न ईखके रस तथा मिसरीके संग खानेसे क्षय, क्षतरोगसे उत्पन्न हुई खांसी इनका नाश होता है ॥ ३६ ॥

अथ हरितालिकादि नस्य ।

नस्यं विदध्याद्धरितालिकाया रसेन वालकरसेन वापि ॥
स्याद्दाडिमस्य प्रसवोद्भवेन रसेन नस्यं रुधिरस्रुतेऽपि ॥ ३७ ॥

कानमें रक्त प्राप्त हो जावे तब आलके रसमें अथवा अनारके रसमें हरताल मिला उसकी नस्य बनाके देनी चाहिये ॥ ३७ ॥

अथ आम्रादि नस्य ।

आम्रास्थिजम्बूद्भवशर्कराढ्यं नस्यं सिताढ्यं हितकृज्ज्वराणाम् ॥
नासाप्रवृत्तं रुधिरं निहन्ति हिक्कासच्छर्दिश्वसनं विमर्दि ॥ ३८ ॥

आंबकी गुठली, जामनकी गुठली इनको पीस खांडमें मिला अथवा मिसरीमें मिला नस्य देनेसे ज्वरोंका नाश होता है और नासिकामें प्रवृत्त हुआ रुधिरका नाश होता है और हिचकी, वमन, श्वास इनका नाश होता है ॥ ३८ ॥

अथ पलांड्वादि नस्य।

पलाण्डुपत्रनिर्यासनस्यं नासाग्रजावहम् ॥
यष्टीमधूमधुयुतं पश्चान्नस्येऽस्रजं जयेत् ॥ ३९ ॥

प्याजके पत्तोंकी नस्य देनेसे रक्तपित्तरोग दूर होता है और मुलहटी,शहद इनकी नस्य देनेसे शीघ्र ही इस रोगका नाश होता है ॥ ३९ ॥

अथ वासादिपानक।

वासापत्ररसं विधाय मतिमान्योज्यानि चेमानि तु रोध्रं चोत्पलमृत्तिकासमधुकं कुष्टं प्रियङ्ग्वन्वितम्॥चूर्णं पुष्परसेन पाचकमिदं पित्ताश्रयाणां हितं कासकामलपाण्डुरोगक्षतजश्वासापमर्दि भवेत् ॥ ४० ॥

वांसाके पत्तोंके रसको निचोड़ उसमें लोध, कमलकी जड़की मृत्तिका,मुलहटी, गोंदी इनका चूर्ण मिला और वांसाके पत्तोंका रस मिला फिर इसको खावे यह पाचक है और पित्ताशयवालोंको हित है और खांसी, कामला, पांडुरोग,चोटसे उपजा हुआ श्वासरोग इनको नाशता है ॥४०॥

अथ दाडिमादि रस।

रसो हितो दाडिमपुष्पकस्य तथैव किञ्जल्करसोत्पलस्य ॥
लाक्षारसो वा पयसा च नस्याद्घ्राणप्रवृत्तं रुधिरं रुणद्धि॥४१

अनारकी कलीका रस तथा कमलकी केशर और लाखका रस इनका दूधके संग नस्य देनेसे नासिकामें प्रवृत्त हुआ रुधिर रुक जाता है ॥ ४१ ॥

अथ मुखमें प्रवृत्त हुए रुधिरकी चिकित्सा।

दाडिमपुष्पादि नस्य।

यदि वदनपथेऽसृक् जायते तस्य कुर्यात्प्रतिविधिमहमेनां वच्मि सञ्चित्य युक्ताम् ॥ भवति न सुखसाध्यं लोहितं मानुषेषु तदनु युवतियोन्यां रक्तवाहस्त्वसाध्यः ॥४२॥ मधु मधुकमुशीरं कञ्जकिञ्जल्कदूर्वारसमिह परिपीतं दाडिमस्य प्रसूतम्॥ मलयजसितकुष्ठं पद्मकं चैव बालं मधु मधुकमुशीरं कोद्रवौ द्वौ समन्तात्॥४३॥ समसुरभिपयो वा धावनं तण्डुलानां परिकलितसमग्रं तुर्य्यभागेन योज्यम् ॥ लघुतरमपि वह्नौ धावितं

सिद्धमेव भवति वदनवृत्ते लोहिते पानमस्य ॥ ४४ ॥ श्रुतिपथमपि रक्ते वा प्रवृत्ते तु नासं विहितमपि तदा स्यात्पूरणं कर्णनासे॥रुधिरमभिरुणद्धि श्वासमाशु क्षतं वा श्वसितरुधिरच्छर्दिं मेहमुन्मादरोगम् ॥ ४५ ॥ नासाप्रवृत्ते नस्यं स्यान्मुखे पानं विधेयकम् ॥ कर्णे नेत्रे पूरणं च गुदमार्गे निरूहणम् ॥४६॥ लिह्यात् सितायुतं चूर्णं दाडिमस्य त्वचस्तथा ॥ पद्मकिञ्जल्कचूर्णं वा लिह्याद्वा सितया पुनः ॥४७॥ मुखप्रवृत्तरुधिरं रुणद्धयाशु वमिं क्लमम्॥श्वासशोषौ भ्रमं तृष्णां नाशयत्याशु निश्चयः ॥ ४८ ॥ जम्ब्वाम्रपल्लवानि स्युर्हरीतक्या युतानि तु ॥ मधुशर्करया युक्तमास्यलोहितवारणम् ॥ ४९ ॥ वटप्रवालार्जुनजम्बुकाम्रकदम्बकानां खदिरस्य वापि॥ यथाप्रपन्नो मधुनावलेह आस्यस्रजं वारयते क्षणेन ॥ ५० ॥

यदि मनुष्यके मुखमें रुधिर प्रवृत्त हो जावे तब उसकी विधिको कहते हैं। मनुष्योंके रुधिरक विकार सुखसाध्य नहीं है और जवान स्त्रीकी योनिमें भी प्रवृत्त होके बहता हुआ रुधिर असाध्य कहा है ॥ ४२ ॥ शहद, मुलहटी, खश, कमलकेशर, दूब, अनारदाना इनका रस पीना श्रेष्ठ कहा है और चंदन, कूठ, पद्माख, नेत्रवाला, शहद, मुलहटी, उशीर, दोनों प्रकारके कोदू धान्य ॥४३॥ गौका दूध इनका समान भाग ले और चतुर्थांश चावलोंके धोवनका पानी लेवे फिर इन औषधोंका कल्क बना उसमें मिला मंद२ अग्निसे पकावे,पीछे मुखमें प्रवृत्त हुए रुधिरमें इसका पीना श्रेष्ठ है॥४४॥और कानमें प्रवृत्त हुए रुधिरमें अथवा नासिकामें प्रवृत्त हुए रुधिरमें कानमें तथा नासिकामें इसको पूरण करे ।यह रुधिरको शीघ्र ही नाशता है और श्वास,चोट,श्वासमें प्रवृत्त हुआ रुधिर, प्रमेह,उन्माद इन रोगोंका नाश होता है ॥ ४५ ॥ जो नासिकामें रुधिर प्रवृत्त हो जावे तो नस्य देनी चाहिये।मुखमें प्रवृत्त होवे तो पीना चाहिये और कानमें तथा नासिकामें प्रवृत्त होवे तो पूरण कर गुदामें प्रवृत्त हो तो निरूहबस्ति देनी चाहिये ॥४६॥अथवा अनारके फलकी छालके चूर्णको मिसरीमें युक्त कर भक्षण करना चाहिये तथा कमलकेशरके चूर्णको मिसरीमें मिला भक्षण करे ॥ ४७ ॥ इससे मुखमें प्रवृत्त हुआ रुधिर और वमन, ग्लानि इनका नाश होता है और श्वास, शोष, भ्रम, तृषा इनको शीघ्र ही नाशता है ॥ ४८॥ और जामन,आंब इनके पत्ते, हरडै इनको खांड़ और शहदमें मिला खानेसे मुखके रक्तरोगका निवारण होता है ॥४९॥वड, अर्जुनवृक्ष, कदंब, जामुन, आंब, खैर इनमेंसे कोईसे वृक्षकी पीपली और शहद मिला अवलेह बना चाटनसे मुखमें प्राप्त हुआ रक्तका निवारण होता है ॥ ५० ॥

अथ शतावरीघृत ।

शतावरी मधुकं बला च ससिता काकोलिका दाडिमा मेदः क्षीरविदारिका च फलिनी स्यात्तिन्तिडीकं बला ॥ सिद्धा गोपयसाज्यकं हितमिदं पाने तथा वस्तिषु योनौ मेढ्रगुदप्रवृत्तरुधिरं हन्यात्सकासक्षयम् ॥ ९१ ॥

शतावरी, मुलहटी, खरेंहटी, मिसरी, ककोली, अनारदाना, मेदा, विदारीकन्द, गोंदी, अमली, खरेंहटी इन औषधोंको गौके दूधमें पकावे, फिर उसमें घृत मिला उसको सिद्ध करे। यह घृत पीनेमें तथा वस्तिकर्ममें हित है और योनि, लिंग, गुदा इनमें प्रवृत्त हुए रक्तको नाशता है और खांसीको दूर करता है ॥ ९१ ॥

अथ मृद्वीकाआदिघृत ।

मृद्वीका मधुकं विदारिवसुधा नीली समङ्गाफला काकोल्यो बृहती युगं वृषमहामेदासितं चन्दनम् ॥ जातीपत्रपटोलश्यामस्मृतासंजीवकाश्चाभया मेदे द्वे च कुचन्दनं मधुरसाः श्यामाः समांशास्त्वमी ॥ ९२ ॥ पक्का गोपयसा विशुद्धविधिना सिद्धं चतुर्थांशकं मत्स्यण्डी मधुकं च सिद्धमिति चेत्पानं प्रशस्तं नृणाम् ॥ स्त्रीणां चापि हितं निहन्ति रुधिरं पित्ताद्गुदे वा भवेन्मेढ्रे चापि च रोमकूपकपथे वृत्तं निहन्यात्स्रजम्* ॥ ९३ ॥ एतद्द्राक्षाभिधानं घृतमपि विहितं रक्तपित्ते ज्वरे वा वातास्रे योनिशूले भ्रममदशिरसोन्मादरक्तप्रमेहे॥ पित्ताम्ले चातिकुष्ठ क्षयक्षतरुधिरे राजयक्ष्मेऽथ पाण्डौ पाने बस्तौ च नस्ये हितमपि मनुजां भाषितं चात्रिणा च ॥ ९४ ॥

मुनक्का दाख, मुलहटी, विदारीकन्द, लघुखजूरी, नीरु, मजीठ, त्रिफला, काकोली, दोनों प्रकारकी कटेहली, वांसा, महामेदा, सफेद चन्दन, जावित्री, परवल, निशोथ, गिलोय, जीवक, हरडै, मेदा, महामेदा, लाल चन्दन, मूर्वा, पीपल इन सबोंको समान भाग ले ॥ ९२ ॥ फिर गौके दूधमें पकावे, फिर चतुर्थांश वाकी रहे तब उतारि राव, मुलहटीका चूर्ण इनको मिलावे। इसका पीना मनुष्योंको तथा स्त्रियोंको भी हित है और रक्तरोगको नाशता है और पित्तसे प्राप्त हुआ गुदाका रक्त और लिंग, रोम इनमें प्राप्त हुआ रक्त इनका नाश होता है ॥ ९३ ॥

* अत्र घृतं दत्त्वा साधयेदिति भावार्थः ।

यह द्राक्षा आदि नामक घृत रक्तपित्तमें और ज्वरमें हित है और वातरक्त, योनिशूल, भ्रम, मद, शिरोरोग, उन्माद, रक्तप्रमेह, पित्ताम्ल, अतिकुष्टरोग, क्षयी, क्षतरक्त, राजयक्ष्मा, पांडुरोग इन सव रोगोंको नाशता है और अत्रिऋषिसे कहा हुआ यह घृत पानमें तथा वस्तिकर्ममें मनुष्योंको हित कहा है ॥ ९४ ॥

अथ कूष्मांडावलेह ।

छल्लिं निष्कृष्य कूष्माण्डखण्डानि प्रतिकल्पयेत् ॥ काञ्जिकेनाशु धौतानि पुनरेव जलेन तु ॥ ९५ ॥ पश्चात्क्षीररसप्रस्थे कल्कयेत्पुनरेव च ॥ घृतेन पुनरेवैतत्पाचयेत्सुविधानतः ॥ ९६ ॥ यदा मधुनिभानि स्युस्तदा शर्करया सह ॥ निधाय तत्र चेमानि भेषजानि प्रकल्पयेत् ॥ ९७ ॥ पिप्पलीशृङ्गवेराभ्यां द्वे पले मरिचानि च ॥ जीरके द्वे तथा धात्री त्वगेलापत्रकं तथा ॥ ९८ ॥ पलार्द्धेन वियुञ्जीयाच्चूर्णं तत्र विनिक्षिपेत् ॥ दार्व्या विघट्टयेत्तावल्लेहीभूतं यदा भवेत् ॥ ९९ ॥ तदा मधुघृतेनापि लिह्याज्ज्ञात्वा बलाबलम् ॥ रक्तपित्तं क्षयं कासं कामलं नैमिकं भ्रमम् ॥ ६० ॥ छर्दितृष्णाज्वरश्वासपांडुरोगान् क्षतक्षयम् ॥ अपस्मारं शिरोर्तिंश्च योनिशूलं च दारुणम् ॥ ६१ ॥ चिरं योनौ रक्तवाहं मन्दज्वरनिपीडनम् ॥ वृद्धोऽपि च युवा कासी वन्ध्या भवति पुत्रिणी ॥ ६२ ॥ अवीर्यो वीर्य्यमाप्नोति भवेत्स्त्रीणां प्रियो नरः ॥ एष कूष्मांडको लेहः सर्वरोगनिवारणः ॥ ६३ ॥

कोहलेको छील उसके टुकड़े बनाके कांजीसे धोवे पीछे जलसे धोवे ॥ ९५ ॥ फिर उसका कल्क बना ६४ तोले दूध मिला पीछे ६४ तोले घृत मिला अच्छे विधानसे पका लेव ॥ ९६ ॥ जब वे कोहलाके टुकड़े शहदके समान वर्णवाले हो जावें तब खांड़ मिला इन आगे कही हुई औषधोंको मिलावे ॥ ९७ ॥ पीपल, अदरक, मिरच ये आठ आठ तोले और दोनों जीरे, आंवले, दालचीनी, इलायची, तेजपात ॥ ९८ ॥ ये दो दो तोला मिला चूर्ण बनाके गेरे फिर कडछीसे चलावे जब लेह बन जावे ॥ ९९ ॥ तब बलाबलको विचार शहद और घृतके संग इसको खावे । यह अवलेह रक्तपित्त, क्षयी, खांसी, कामला, चक्करकी तरह भ्रम इन रोगोंको नाशता है ॥ ६० ॥ और छर्दि, तृषा, ज्वर, श्वास, पांडुरोग, क्षतक्षय, मृगीरोग, शिरकी पीड़ा, दारुण योनिशूल ॥ ६१ ॥ बहुतसा बहता हुआ योनिका रक्त,

मन्दज्वरकी पीडा, इनका नाश होता है और वृद्ध पुरुष भी जवान और कामी होता है, वंध्या स्त्री पुत्रवाली हो जाती है ॥ ६२ ॥ और जिसके वीर्य नहीं हो वह वीर्यवाला हो जाता है और स्त्रियोंको प्रिय होता है। यह कूष्मांडकावलेह सम्पूर्ण रोगोंको निवारण करता है ॥६३॥

अथ अन्यकूष्मांडका अवलेह।

सुस्निग्धकूष्माण्डकखण्डकानि पलानि पञ्चाशदथो सितायाः॥ युञ्ज्यात्सतोयं प्रणिधाय धीमान् घृतेन प्रस्थं परिपक्वमेव ॥६४॥ विज्ञाय पक्वं पुनरेव तत्र वासाकषायञ्च विमिश्रयेच्च ॥ दार्वीप्रलेपो भवतीति ज्ञात्वा चेमानि वस्तूनि पुनर्वियुञ्ज्यात् ॥६५॥ गन्धत्रयामलकरुद्रजटा च भार्ङ्गी युञ्ज्यादिमानि सकलानि च कर्षकाणि॥धान्या पुनर्नवयुतानि च नागराणि एषां पलेन तुलिता कथिता च मात्रा ॥ ६६ ॥ श्यामापलाष्टकमिदं विदधीत चूर्णं संघट्टयेत्सकलमेव पुनस्तु दर्व्या ॥ युञ्ज्यात्समं मधुयुतं सकलामयघ्नं कासं ज्वरं क्षतजमाशु निहन्ति हिक्काम् ॥ ६७ ॥ हृद्रोगपित्तरुधिरं क्षयपीनसं च पित्ताम्लकं विजयते श्वसनं च मूर्च्छाम् ॥ स्त्रीणां हितं भवति बालकवृद्धकेषु श्रेष्ठं समस्तरुजनाशबलप्रदं च ॥ ६८ ॥

अच्छे सुन्दर कोहलाके चिकने चिकने टुकड़े बना फिर तिसमें २०० तोले मिसरी मिलावे पीछे तिसमें जल मिला और ६४ तोले घृत मिला तिसको पकावे ॥ ६४ ॥ जब पक जावे तब उतार तिसमें वांसाका क्वाथ मिलाके फिर पकावे जब कडछीमें चपकने लगजावे तब इन औषधोंको गेरे ॥ ६५ ॥ आंवला, रुद्रजटा, भारंगी, सुगंधत्रय, दालचीनी, तेजपात, इलायची इन्होंको एक एक तोला प्रमाण लेवे। सांठी, सोंठ, धनियां इन्होंको चार चार तोले गेरे और निशोथका चूर्ण ३२ तोले मिलावे पीछे इन सबोंको मिला ॥ ६६ ॥ कडछीसे घोटे फिर इसको वराबरके शहदमें मिलाके खावे। यह अवलेह खांसी, ज्वर, क्षतरोग, हिचकी ॥ ६७ ॥ हृदयरोग, पित्तरक्त, क्षयी, पीनस, पित्ताम्ल, श्वास, मूर्छा इन रोगोंको नाशता है और स्त्री, बालक, वृद्ध इनको श्रेष्ठ है, बलको देनेवाला है ॥ ६८ ॥

अथ खंडकाद्यरसायन।

शतावरीमुण्डितिकामृता च फलाचत्वक्पुष्करमूलभार्ङ्गी॥वृषो बृहत्या खदिरं च मांशली पृथक्पृथक् पञ्चपलैकमात्रया॥६९॥

उत्तार्य पक्वं जलमाशु पश्चाद्यावद्भवेच्छेषमथैव पूतम् ॥ विमूर्छितं तत्र निधाय धीमान्पलं तथा द्वादशमाक्षिकस्य ॥ ७० ॥ तथैव चूर्णस्य च लोहकस्य विघट्टितं खण्डघृतेन तुल्यम् ॥ देयं पलं षोडशकं विधिज्ञो विपाचयेल्लोहमये च पात्रे ॥ ७१ ॥ गुडेन तुल्योऽपि विभाति यावत्तुगा विडंगं मगधा च शुण्ठी ॥ भृङ्गं फला कंटकजीरयुग्मं कक्कोलधान्यं सह केसरेण ॥ ७२ ॥ पलेन मात्रां विदधीत सम्यक् सुघट्टितं चूर्णमिदं घृतस्य॥ स्निग्धे कटाहे प्रणिधाय भुञ्ज्यात्कर्षप्रमाणं विदधीत चूर्णम् ॥ ७३ ॥ प्रभातकालेऽनुपिबेत् सरःपयो गुरूणि चाम्लानि च वातलानि वा ॥ भगन्दरादिश्वयथूंन्निहन्ति वै रक्ताम्लकं वा श्वसनञ्च यक्ष्मिणम्॥७४॥ विशोषणं कुष्ठरुजां च गुल्मान्बलप्रदं वृष्यतमं प्रदिष्टम् ॥ स रक्तपित्तं सहसा निहन्ति योनिप्रभावं च सरक्तशूलम् ॥ ७५ ॥ रक्तातिसारं रुधिरप्रमेहं समेढ्रबस्तौ विहितं नराणाम् ॥ सौभाग्यदं कान्तिकरं प्रपुष्टिं तेजो बलौजश्च तथा तनोति ॥ ७६ ॥

शतावरी, गोरखमुंडी, गिलोय, त्रिफला, दालचीनी, पोहकरमूल, भारंगी, वांसा, कटेहली, खैर, मुसली इनको जुदे २ बीस बीस तोला प्रमाण लेवे ॥ ६९ ॥ फिर इनको जलमें पकावे जब चतुर्थांश काथ बाकी रहे तब उतार तिसको वस्त्रमांहके छानी पीछे इन आगे कही हुई औषधोंको गेरे ४८ तोले प्रमाण शहद मिलावे ॥ ७० ॥ और ४८ तोले प्रमाण लोहाका चूर्ण गेरे और खांड तथा घृत इनको समानभाग ६४ तोले प्रमाण गेरे फिर लोहेके पात्रमें पकावें ॥ ७१ ॥ पीछें पकके गुड़के समान हो जावे तब वंशलोचन, वायविडंग, पीपली, सोंठ, दोनों जीरे, गोखरू, त्रिफला, भंगरा, धनियां, मिरच, केशर ॥ ७२ ॥ इन सबोंको चार २ तोला प्रमाण लेवे पीछे इन सबोंका चूर्ण मिला अच्छीतरह घोट घृतके चीकने कडाहेमें वाल धरे पीछे इसको एक तोला प्रमाण हमेशा खावे ॥ ७३ ॥ प्रातःकाल सरोवरके जलका अनुपान करे और भारी तथा खट्टे और वातवाले पदार्थ खाने चाहिये। वह भगंदर, शोजा, रक्ताम्ल, श्वास, राजयक्ष्मा ॥ ७४ ॥ विशोष, कुष्ठरोग, गुल्म इन रोगोंका नाश करता है और बलको देनेवाला है और वीर्यमें हित है और रक्तपित्तरोगको शीघ्र ही नाशता है और योनिमें बहता हुआ रक्त, योनिका शूल ॥ ७५ ॥ रक्तातिसार, रुधिरमेह, लिंगका रोग और बस्तिस्थानका

रोग इनको नाशता है और कांतिको करनेवाला है सौभाग्यप्रद है और तेज, पुष्टि, बल इनको बढ़ाता है ॥ ७६ ॥

अथ रक्तातिसारचिकित्सा।

रक्तातिसारे च प्रयोजनीयं रक्तप्रवाहे सरुजे सदाहे॥फलत्रिकं चातिविषा समङ्गा सपर्पटं दाडिमधातकीनाम्॥७७॥ क्षौद्रेण सध्वा सहितं च चूर्णं तथैव दध्ना सघृतं सलेहम् ॥ रक्तातिसारं रुधिरप्रवाहं योनिप्रवाहं सततं स्त्रियश्च॥७८॥ निवारयत्याशु हितं नराणां बालातिसारे प्रशमाय योग्यम् ॥७९॥

रक्तातिसार तथा पीडासहित और दाहसहित रक्तप्रवाह, इन रोगोंमें त्रिफला, अतीश, मंजीठ, पित्तपापड़ा, अनारदाना, धवके फूल ॥ ७७ ॥ इनका चूर्ण बना उसमें खांड और शहद मिला और दही, घृत ये मिला फिर अवलेह बनाके देना चाहिये। यह अवलेह रक्तातिसार, रुधिरप्रवाह, स्त्रीके निरंतर योनिका प्रवाह ॥ ७८ ॥ इनका निवारण करता है और मनुष्योंको हित है। बालकके अतिसारको शांत करता है॥ ७९ ॥

अथ योनिप्रवाहचीकित्सा।

योनिप्रवाहे मधुकं समङ्गा एलादलं निम्बदलानि पथ्या ॥ मुस्ता विशाला कटुरोहिणी च कल्को हितः शर्करया युतोऽयम् ॥८०॥ योनिप्रवाहं विनिवारयेच्च सयोनिशूलं सरुजां तृषार्तिम् ॥ एला समङ्गा सहशाल्मलीभिर्हरीतकी मागधिका समांशा ॥ ८१ ॥ क्राथोदितः शर्करया समध्वा योनिप्रवाहं विनिवारयेच्च ॥ ८२ ॥

योनिके प्रवाहमें मुलहठी, मंजीठ, इलायचीके पत्ते, नींवके पत्ते, हरडै, नागरमोथा, इंद्रायण, कुटकी इन औषधोंका कल्क बना उसमें खांड मिला खाना चाहिये ॥ ८० ॥ यह विशेष करके योनिके प्रवाहको दूर करता है और पीडासहित योनिशूल, तृषाकी पीडा इनको दूर करता है और इलायची, मंजीठ, सेमर, हरडै, पीपली इनको समान भाग ले ॥ ८१ ॥ काथ बना उसमें खांड और शहद मिला पीनेसे रक्तप्रवाह दूर होता है ॥ ८२ ॥

घर्मातपान्ते च विदाहि चाम्लं सौवीरकं वा कटुकं कषायम्॥ क्षारं सुरां वा परिवर्जनीयं सरक्तपित्ते मनुजे हिताय ॥ ८३ ॥ वास्तूकचिल्ली सुनिषण्णकश्च जीवन्तिका वा शतपुष्पिका वा॥

शाका हिता रक्तभवे च पित्ते मुद्रास्तथा लोहिततण्डुलाश्च ॥ ८४ ॥ यवगोधूमचणकाः कोशातक्यः पटोलकम् ॥ मुद्गा माषा हिताश्चैव रक्तपित्तनिवारणे॥८५॥हरिणशशकलावास्तित्तिरास्ते कुलिङ्गाः अपि च शिखिककेरक्रौञ्चपारावतानाम् ॥ पलमनिलसुपित्तावर्हणं वा हितश्च भवति बलममोघं सत्त्वतेजश्च कान्तिः॥८६॥इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने रक्तपित्तचिकित्सा नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

रक्तपित्तरोगमें मनुष्यके हितके वास्ते घाम, अग्निकी गरमाई, विदाही, खट्टा पदार्थ, कांजी, चर्चरा, कसैला पदार्थ, खारा और मदिरा इनको वर्ज देवे ॥ ८३ ॥ वथुआ चिल्ली, चौपतिया, कुरडू, जीवंतिकाशाक, सौंफ इनके शाक ये सब रक्तपित्तमें हित कहे हैं और मूंग,लाल चावल ये हित कहे हैं ॥ ८४ ॥ और जव, गेहूं, चणे, तूरीधान्य, परवल, मूंग, उडद ये अन्न रक्तपित्तको निवारण करनेमें हित कहे हैं ॥ ८५ ॥ हिरन, चौगड़ा, लावा, तीतर, चिमणापक्षी, ककेरा, मयूर, कूंजि, परेवापक्षी इनका मांस खानेसे और वातपित्तके नाशक मांसके खानेसे अमोघ वल होता है और सत्त्वगुण, तेज, कांति इनको वढ़ाता है॥८६॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने रक्तपित्तचिकित्सानाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ११.

अथ अर्शचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ अथातो वक्ष्यते पुत्र अर्शसश्च चिकित्सितम् ॥ षट्प्रकारेण ये प्रोक्तास्तेषां च शृणु लक्षणम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे पुत्र ! अब अर्श अर्थात् ववासीर रोगकी चिकित्सा कहते हैं, जो छह प्रकारके ववासीररोग कहते हैं उन्होंके लक्षणको सुनो ॥ १ ॥

अथ अर्शके प्रकार ।

जाता दोषैस्त्रिभिरपि वातपित्तकफादिकैः ॥ सन्निपाते चतुर्थः स्यात्पञ्चमो रक्तसम्भवः ॥ २ ॥ षष्ठकः सहजो ज्ञेयश्चार्शसां षड्विधो भवः ॥ एवं च षट्प्रकारेण जायन्ते गुदजा रुजः॥३॥

वातसे १ पित्तसे २ कफसे ३ और सन्निपातसे उपजा चौथा और रक्तसे उपजा हुआ पांचवां बवासीर रोग होता है ॥२॥ और छठा सहज अर्थात् स्वभावसे ही उपजा हुआ होता है। इस प्रकारसे गुदाके रोग छः तरहसे होते हैं ॥ ३ ॥

अथ वातार्शके हेतु और संप्राप्ति।

अनशनलघुरूक्षाहारसंसेवनेन कटुलवणविदाहैः सेवयावातरोधात्॥ भवति सततवीप्सा विष्टरेणैव हीना कुपितमरुतवेगादर्शसां भूतिरासीत् ॥४॥ अनशनोपविष्टस्य मलमूत्रावधारणे॥ शीतसंसेवनेनापि गुदजः संप्रकुप्यति ॥५॥ लवणकटुकषाया तिक्तसंसेवनेन अमितविलघुभोज्याच्छीतलेनातिरोधात्॥ कुपितमलिननामापानमार्गेष्वपाने सृजति रुधिरवातोऽपान मार्गेमरुत्सु ॥ ६ ॥

अनशन अर्थात् भोजन नहीं करनेसे हलका और रूखा भोजन करनेसे और चर्चरा, नमक, विदाही ऐसे पदार्थके खानेसे और वातके रोकनेसे और आसनपै निरंतर नहीं बैठनेसे वायु कुपित हो जाता है,उससे बवासीर रोग हो जाता है ॥४॥जो भोजन किये विना बैठा रहे और मलमूत्रके वेगको रोके और शीतल वस्तुका सेवन करे उसके गुदाका वायु कुपित हो जाता है ॥ ५ ॥ नमक, चर्चरा, कसैला, कडुआ इन वस्तुओंके सेवनेसे अत्यंत ज्यादे हलके भोजनसे वायु कुपित होके मलिननामवाले अपानवायुको गुदामें रहनेवालेको विगाड़ देता है फिरवह अपानवायु गुदामें रक्तका रोग हो जाता है ॥ ६ ॥

अथ पित्तार्शका हेतु।

कट्वम्ललवणोष्णानि विदाहीनि गुरूणि च॥ सेवनाद्वायुतोयेन श्रमाद्व्यायामपीडया॥यानव्यवायदोषाद्वा दुर्नामा पित्तसम्भवः७

और चर्चरा, खट्टा, नमक, गरम, विदाही, भारी ऐसे पदार्थके सेवनेसे वायु, जल इनके सेवनेसे, श्रमसे, कसरतकी पीडासे, असवारी और मैथुनके दोषसे पित्तसे उपजा बवासीर होता है ॥ ७ ॥

अथ कफार्शका हेतु।

अव्यायामात्तस्य शीलादजस्रं शीताद्वान्याद्वातसंसेवनाच्च॥ लौल्यात्यम्लात्तैलसंपिच्छलेन दुर्नामा संजायते श्लेष्मरोगात्८

कसरत नहीं करनेसे अथवा निरंतर कसरत करनेसे,शीतल वस्तुके सेवनेसे और वायुके सेव-

नेसे और जिसकी गुठ्ठी बंधती हो ऐसे पदार्थसे तथा अत्यंत खट्टा पदार्थ सेवनेसे कफसे उपजा हुआ बवासीर हो जाता है ॥ ८॥

अथ वातार्शका लक्षण ।

शीतत्वतोदं परुषं विनिद्रा गुल्मोदराष्ठीलविषूचिका वा ॥
शोफावुभौ कृष्णनखस्य नेत्रे लिङ्गानि वातप्रभवार्शसानाम्॥९॥

शीतलता रहे, व्यथा हो, कठोरता हो, निंद्रा नहीं आवे और गुल्मोदर, अष्ठीला, विषूचिका, शोजा ये उपद्रव हों और नख, मुख, नेत्र ये काले रहैं ये वायुसे उपजे हुए बवासीररोगके लक्षण हैं ॥ ९ ॥

अथ पित्तार्शका लक्षण ।

दाहभ्रमौ ज्वरपिपासिशरीरतो वा मूर्छारुचिर्नयनदन्तमुखानि यस्य॥पीतच्छविर्भवति वा विटभेदनं च पित्तेन जातगुदजस्य च लक्षणानि ॥ १० ॥

दाह हो, भ्रम हो, ज्वर हो, तृषा हो, शरीरमें मूर्च्छा हो,अरुचि हो और नेत्र, दांत, मुख, ये जिसके पीले हो जावें विष्टा ढीला हो जावे ये पित्तसे उपजे बवासीरके लक्षण हैं ॥ १० ॥

अथ कफार्शका लक्षण ।

निद्रा च जाड्यघनमन्दरुजा च शोफा शूलातिगुल्मगुदभङ्गुरका-स्तथा स्युः ॥ विड्बन्धतोदमरुचिर्गतिमन्दता च श्लेष्मोद्भवा गुदरुजः खलु भेषजज्ञ ॥ ११ ॥

निद्रा हो, जडता हो, भारीपन हो, मंद पीडा हो,शोजा हो,शूल,अत्यन्त गुल्म, गुदाका भंग, विड्बंध, व्यथा, अरुचि, मंदगति ये लक्षण हों वह कफसे उपजा बवासीर जानना ॥ ११॥

अथ त्रिदोषार्शका लक्षण ।

शूलानाहारुचिः कासो हृल्लासो रुचितोदता ॥
स्कन्धयोर्जाड्यता सर्वाश्चाशासि संभवन्ति हि ॥ १२ ॥

शूल हो,अफारा हो,अरुचि हो, खांसी हो, थुकथुकी हो,अरुचिकी पीडा हो,कंधोंमें जडता ये सब दोषोंसे उपजे बवासीरके लक्षण हैं ॥ १२ ॥

अथ गुदरोगलक्षण ।

गुदजलक्षणं वक्ष्ये गदे कण्डूरसृक्स्रवः ॥ परुषा विषमा दीर्घा वातेन गुदजा मताः ॥१३॥ सदाहाश्च विचित्राश्च पीता नीला-

वभासिकाः॥लोहितं स्रवते सोष्णं पित्तेन गुदजा मताः॥१४॥ सदाहाः कठिना ये तु तत्र पाको विबन्धता ॥ शीतकण्डूसमस्थूलाः कफेन गुदजा मताः ॥१५॥ सदाहाः सरुजः श्यावाः कण्डूः शोषश्च जायते॥स्रवते सततं रक्तं ते कण्ड्वासृग्भवार्शसाः ॥१६॥ धान्याङ्कुरसमाकाराः क्रिमयः संभवन्ति च॥वातवर्चस्समालिङ्गा गुदजाः संभवन्ति हि॥ १७ ॥ वक्रास्तीक्ष्णाः स्फुटितवदना दीर्घविम्बीफलाभाः केचित्सिद्धार्थककणनिभाः कालखर्जूरकाभाः ॥ कर्कन्ध्वाभाःकमलजसमा वा कलम्बेन तुल्या वायोश्चैते मनुजविहिताः सम्भवाश्चार्शसां च ॥१८॥

अब गुदाके रोगके लक्षणको कहते हैं। गुदामें खाज हो,रक्त प्रवृत्त हो,कठोर हो,विषम हो, दीर्घ हो ये वातसे उपजे गुदाके बवासीरोंके मसोंके लक्षण हैं ॥१३॥ दाहवाली हों विचित्र हों नीलावर्णवाली हों,गरम रुधिर गिरता हो ये पित्तसे उपजे बवासीरके मसोंके लक्षण हैं ॥१४॥ और दाहवाली हों कठिन हों पकी हुई हों विष्ठावन्ध हों शीली हों,और खाजहो समान हों और स्थूल हों ये कफसे उपजी बवासीरकी गुमड़ियोंके लक्षण हैं ॥ १५॥ और जो दाहसहित हों, पीड़ासहित हों कपिशवर्णवाली हों, खाज हो, शोष हो और निरन्तर रक्त गिरे ये खाजसहित रक्तसे उपजे बवासीरके लक्षण हैं ॥ १६ ॥ और धान्यके अंकुरके समान चिह्नवाले क्रिमि होजाते हैं और वायुके विष्ठाके समान लिंगवाले होते हैं ॥ १७ ॥ और टेढ़े, खुले हुए मुखवाले, तीक्ष्ण, बड़े गूलरके फलके समान तेजवाले, कलौंजीके समान आकारवाले और कुछ काली खजूरीके समान आकारवाले और कुछ बेरके समान आकारवाले अथवा सिरसमके फलके समान आकारवाले तथा कमलगट्टाके समान आकारवाले ऐसे मस्से वायुसे उत्पन्न हुए बवासीरके होते हैं ॥ १८ ॥

अथ अर्शके स्थान।

गुदे नासिकायां च कर्णे मुखे वा तथा नेत्रकोणे च योन्यन्तरे वा ॥ असाध्या भवन्तीह रोगा नराणां क्रिया यत्नतस्तत्र सम्यग् विधेया ॥ १९ ॥

और गुदा, नासिका, कान, मुख, नेत्रोंके कोणमें, योनिका मध्य इन्होंमें मनुष्योंके अर्श रोग होते हैं सो साध्य नहीं हैं वहां यत्नसे क्रिया करनी चाहिये ॥ १९ ॥

अथ गुदामें अर्शका स्थान ।

त्रिवलीगुदमध्ये तु बाह्यतोऽभ्यन्तरेषु च ॥ अर्शसां तु विजानीयात्त्रीणि स्थानानि चैव हि ॥ २० ॥ बाह्यतः सुखसाध्यः स्यान्मध्ये कष्टेन सिध्यति ॥ असाध्योऽन्तर्वलीजातो गुदजो भिषजां वर ॥ २१ ॥

गुदाके बाहिर और भीतर त्रिवली होती है सो बवासीरोंके तीन स्थान हैं ॥ २० ॥ बाहिरके स्थानका बवासीर सुखसाध्य है और जो मध्यमें हो वह कष्टसाध्य होता है और जो गुदाके अन्तर्वलीमें हो वह असाध्य रोग कहा है ॥ २१ ॥

अथ अर्शकी चिकित्साका प्रकार ।

प्रलेपवर्त्तिभिः स्वेदैर्बाह्याः सिध्यन्ति चोत्तमाः॥यन्त्रशस्त्रेण मध्यास्तु अन्तर्जाश्चान्तरौषधैः ॥ २२ ॥ तस्मात्पुत्र प्रयत्नेन क्रिया कार्या विजानता ॥ येनातुरस्य रक्षा स्याद्येन रोगो निवर्त्तते ॥ २३ ॥

प्रलेप, वत्ती लगाना, स्वेद इनसे बाहिरकी पिंडिका सिद्ध होती है और गुदाके मध्यके मस्सोंको यन्त्र शस्त्रसे सिद्ध करे और अन्तर भीतरके बवासीरको औषधोंसे सिद्ध करे ॥२२॥ हे पुत्र ! इस वास्ते जानते हुए वैद्यको ऐसी क्रिया करनी चाहिये कि, जिससे रोगीकी रक्षा हो जावे और रोग निवृत्त होवे ॥ २३ ॥

अथ अर्शरोगके उपद्रव ।

करचरणमुखे वा नाभिमेढ्रे गुदे वा भवति हि यदि पुंसां शोफशोषो ज्वरश्च ॥ श्वसनतमकच्छर्दिर्मोहहृत्पार्श्वशूलं कृशमरुचिविबन्धश्चातिसारोपसर्गाः ॥ २४ ॥ इत्येवं द्वादशार्शसां संभवन्ति ह्युपद्रवाः ॥ उपद्रवैर्विना साध्या न साध्या बहूपद्रवाः ॥ २५ ॥

यदि मनुष्योंके हाथ, पैर, मुख, नाभि, लिंग, गुदा इनमें शोजा और शोष हो तथा ज्वर हो,श्वास हो,अन्धेरी आवे,छर्दि हो,मोह हो,हृदयमें पसलीमें शूल हो,दुर्बलता, अरुचि,मलका बन्धा,अतिसार ये होवें तो ॥ २४ ॥ ये बारह प्रकारके बवासीरके उपद्रव जानने । उपद्रवोंके विना तो बवासीर रोग साध्य है और उपद्रवोंसहित बवासीर असाध्य है ॥ २५ ॥

अथ असाध्य अर्श ।

शूलारोचकतृष्णार्त्तश्चातिरक्तप्रवाहवान् ॥
शूलशोफातिसारार्त्तो ध्रुवं न जीवतेऽर्शसा ॥ २६ ॥

शूल, अरुचि, तृषा इनकी पीड़ावाला और रक्तके प्रवाहवाला, शोजा अतिसार इनकी पीड़ासे युक्त ऐसा अर्शरोगवाला पुरुष नहीं जीवता है॥ २६ ॥

अथ पाचनक्काथ ।

अतोऽर्शसां प्रवक्ष्यामि क्रियां चैव भिषग्वर॥वटिकाक्षारशस्त्राणि येन संपद्यते सुखम् ॥२७॥ अर्शसां च क्रियाः प्रोक्ताश्चार्शोघ्ना बलवर्द्धनाः ॥ पित्तशोणितशमना न च वातप्रकोपनाः॥२८॥ तस्यादौ पाचनं श्रेष्ठं ततो भेषजमाहरेत् ॥ पथ्यामृता च धनिका पाने क्काथो गुडान्वितः ॥ २९ ॥

हे उत्तम वैद्य ! अब बवासीररोगोंकी क्रियाको कहते हैं गोली, क्षार, शस्त्रक्रिया इन इलाजोंसे सुख होता है ॥ २७ ॥ अर्शरोगोंको नाशनेवाली और बलको बढ़ानेवाली अर्शरोगकी क्रिया कही है जो क्रिया रक्तपित्तको शांत करनेवाली और वातको कोप नहीं करनेवाली हो सो करनी चाहिये ॥ २८ ॥ बवासीरकी आदिमें पाचन औषध करे पीछे अन्य औषध करे और हरड़ै, गिलोय, धनियां इनका क्काथ बना उसमें गुड़ मिला पीना चाहिये यह पाचन औषध कहा है ॥ २९ ॥

अथ कल्कयोग ।

दन्ती विडङ्गमगधा धान्या भल्लातकं कुष्टगुडं तिलं वा ॥
एषां च कल्कः पयसा प्रयुक्तः निहन्ति पाने गुदजांश्च रोगान्३०

जमालगोटाकी जड़, वायविडंग, पीपली, धनियां, भिलावा, गुड़, तिल, कूठ इनका कल्क बना दूधसे युक्त कर भक्षण करनेसे गुदाके रोगोंको नाशता है ॥ ३० ॥

नागरपिप्पलिबिल्वविडङ्गं शठ्यभया त्रिवृता पयदन्ती ॥
कल्कमिदं सगुडं प्रतिपाने वार्शसि नाशनकारि नराणाम्३१

सोंठ, पीपली, बेलगिरी, वायविडंग, जमालगोटाकी जड़, कचूर, हरड़ै निशोथ और जमालगोटा इनका कल्क बना गुड़ मिला खानेसे मनुष्योंके बवासीररोगोंका नाश होता है ॥ ३१ ॥

अथ पत्रकादिक्काथ ।

पत्रककेसरशुण्ठिसमैलातुम्बुरुधान्यविडंगतिलानाम् ॥
क्काथो हरीतकिसर्पिगुडेन पीतो निहन्ति गुदे गदजानि॥३२॥

तेजपात, नागकेशर, सोंठ, इलायची, धनियां, वायविडंग, तिल, हरड़ै इनको समान ले और धनियांको दो भाग ले फिर क्वाथ बना गुड़ मिलाके पीनेसे गुदाके रोगोंका नाश होता है॥ ३२॥

अथ पिप्पल्यादियोग।

पिप्पलिकामभयां गुडयुक्तां प्रातरिमां यदि खादति कश्चित्॥
तस्य गुदागतकीलकमाशु निहन्ति सकामलपाण्डुजरोगान् ३३

पीपल, हरड़ै इनको गुड़में मिला प्रातःकाल जो मनुष्य भक्षण करता है उसका गुदकीलकरोग शीघ्रही नष्ट होता है और कामला, पांडु इन रोगोंके समूहोंका नाश होता है॥ ३३॥

अथ वार्ताकयोग।

सुस्विन्नवार्ताकफलस्य तोयं दध्ना सिताह्वासलिलास्रुतेन॥
पाने विधेयं गुदकीलकानां क्रिमीन्निहन्यात्क्रिमिजांश्च रोगान् ३४

बैंगने स्वेदित करके इनके जलमें दही और मिसरी मिलाके और अन्यजल मिलावे पीछे इसके पीनेसे गुदकीलकरोगका नाश होता है॥ ३४॥

अथ भल्लातकचतुष्टय।

भल्लातकाः कृष्णतिलाश्च पथ्या चूर्णं गुडेनापि नरस्य सेव्यम्॥
हन्याच्च पाने गुदकीलमेहशूलार्शकासान् विनिहन्ति तस्य ३५

मिलावे, कालेतिल, हरड़ै इनके चूर्णको गुड़के संग खानेसे गुदकीलक रोग दूर होता है और प्रमेह, शूल, बवासीर, खांसी इनका नाश होता है॥ ३५॥

सूरणकन्दकमर्कदलैस्तु वेष्टितमेव हि कर्दमलिप्तम्॥ तप्तमिदं किल वह्निसमानं भक्ष्यं सैन्धवतैलविमिश्रम्॥ ३६॥ भक्षति चार्शविनाशनहेतोर्वातविकाररहितोऽपि नरस्य॥ ३७॥

जमीकंदको आकके पत्तोंसे लपेट उसपै गारा लीप फिर अग्निमें स्थापित कर देवे, जब तपके अग्निके समान हो जावे तब तैल और सैंधानमक मिला और दूध मिला॥ ३६॥ भक्षण करनेसे बवासीर दूर होता है और वायुके विकार भी दूर हो जाते हैं॥ ३७॥

अथ कल्याणनामक लवण।

चित्रकपुष्करमूलशटीनां तेषु समांशास्तिला विनियोज्याः॥
सूरणकन्दकखण्डसमेतास्तेषु समोऽग्निफलानि विदध्यात्॥
॥ ३८॥ सैन्धवं तस्य चतुर्गुणकञ्च भावितमर्कदलेन समस्तम्॥ तच्च घृतस्य घटे विनिधायारण्यसुगोमयवह्निविप-

क्रम् ॥३९॥ क्षीरमिदं लवणाज्यविपक्कं तक्रयुतं प्रतिपानमतोऽपि॥ नाशयति गुदकीलककीलान्हन्ति विपूचिभगन्दररोगान् ॥४०॥कामलपाण्ड्वानाहविबन्धान्गुल्ममरोचकनाशनकारी॥ मूत्रगदं गलकण्डुक्रिमीणां नाशनभद्रकसैन्धवो नाम ॥ ४१ ॥

चीता, पोहकरमूल, कचूर इनके समान तिल और जमीकंदके टुकडे और इनके समान मालकांगनी ॥ ३८ ॥ इन सबोंसे चार भाग सैंधानमक इन सबोंको आकके पत्तोंके रसमें भावना दे पीछे इसको घृतके चिकने घडेमें घालके आरनोंकी अग्निमें पकावे ॥ ३९ ॥ पीछे इसको दूधमें पकावे। फिर नमक घृत इनमें पका तक्रके संग पीनेसे गुदकीलकरोगोंका नाश होता है और विपूचिका, भगंदर ॥ ४० ॥ कामला, पांडुरोग, आनाह, मलका बंधा, गुल्म, अरुचि इनका नाश होता है और मूत्ररोग, गलरोग, क्रिमिरोग इनको यह कल्याणलवण सैंधव औषध नाशता है ॥ ४१ ॥

अथ भल्लातकवटक।

त्रिकटुकमगधानां मूलचित्रं त्रिगन्धं समतुलितसमीषां तुल्यभल्लातकानि ॥ सकलमिह समन्तादेकतः सम्प्रचूर्ण्य द्विगुणतुलितमात्रं योजनीयो गुडस्तु ॥ ४२ ॥ सकलमपि विकुट्य स्निग्धभाण्डे निधाय प्रतिदिनमपि सेव्यं चाक्षमात्रं सुधीरैः ॥ गुदजजठररोगं शूलगुल्मान्क्रिमींस्तु जनयति वडवाग्निं हन्ति पांडुं क्षयं वा ॥ ४३ ॥

त्रिकटु अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपल, पीपलामूल, चीता, त्रिगंध अर्थात् दालचीनी, तेजपात, इलायची इनको समान भाग लेवे और सबोंके समान भिलावे लेवे पीछे इन सबोंका एक जगह चूर्ण बना इनसे दूनी मात्रा गुड गेरे॥ ४२ ॥ पीछे इन सबोंको कूट चिकने बरतनमें घाल धरे फिर धीर पुरुषोंको दिन दिन प्रति एक एक तोला प्रमाण खाना चाहिये यह गुदाके रोग, उदररोग, शूल, गुल्मरोग, क्रिमि, पांडु, क्षयरोग इनको नाशता है और जठराग्निको दीप्त करता है ॥ ४३ ॥

अथ प्राण देनेवाला मोदक।

नागरं त्रिफलां चैव पलांस्त्रींश्च प्रयोजयेत् ॥ चतुष्पलानि मरिचानां पिप्पलीनां पलद्वयम् ॥ ४४ ॥ पलमेकं तु चव्यस्य योज्यं तत्र भिषग्वरैः ॥ तालीसार्द्धं पलं देयं पलार्द्धं पद्म-

कस्य च ॥४५॥ जीरकस्य समं मात्रा समेन तुलितो गुडः ॥ सुपक्वा सुघना श्यामा पिप्पलीनां शतत्रयम् ॥ ४६ ॥ उलूखले क्षोदयित्वा स्निग्धभाण्डेन धारयेत् ॥ ४७ ॥ अक्षप्रमाणा गुटिका नराणां प्रातः प्रदेया सकलामयघ्नी ॥ निहन्ति चार्शांसि च पाण्डुरोगं हलीमकं कामलकं भ्रमं वा ॥ ४८ ॥ गुल्मातिसारं च सरक्तपित्तं क्षयं क्षतं चाक्षयमस्य यक्ष्मा ॥ जीर्णज्वरारोचकपीनसानां हितो भवेत्प्राणदमोदकोऽयम् ॥ ४९ ॥

सोंठ, त्रिफला, बारह बारह तोले प्रमाण लेवे, मिर्च १६ तोले लेवे, पीपल ८ तोले ॥ ४४ ॥ चव्य चार तोले लेवें और तालीसपत्र दो तोले, पद्माक २ तोले ॥ ४५ ॥ इन सबोंके समान जीरा और जीराके समान गुड़ लेवे और सुंदर पकी हुई सुंदर कडी और श्यामवर्णवाली ऐसी ३०० पीपल ॥ ४६ ॥ इन सबोंको ऊखलमें कूट फिर चिकने बरतनमें घाल धरे ॥४७ ॥ यह एक तोला प्रमाणकी गोली मनुष्योंको प्रातःकाल देनी चाहिये । यह सब रोगोंको नाशनेवाली है और बवासीर, पांडुरोग, हलीमक, कामला, भ्रम इन रोगोंका नाश होता है ॥ ४८ ॥ और गुल्म, अतिसार, रक्तपित्त, दारुण राजयक्ष्मा, जीर्णज्वर, अरुचि, पीनस इन रोगोंमें यह प्राणद मोदक हित है ॥ ४९ ॥

अथ कांकायनगुटिका ।

जाजीपिप्पलिमूलकोलमगधापथ्याग्निकं नागराः सूक्ष्मैला च पलद्वयेऽपि क्रमशः कृत्वा पलैः सैन्धवम् ॥ भल्लातक्यफलानि पञ्चशतकं तेन समस्तेन तु द्वैगुण्येऽपि पुराणसूरणमतः सर्वस्य तुल्यो गुडः ॥ ५० ॥ क्षोदित्वा वटकाक्षमात्रमुपरि जातो विशेषो गुणः कुर्वन्त्यर्शनिवारणं क्षयमपि पुष्टं तथा सुप्रभम् ॥ मन्दाग्निर्वडवासमो भ्रमहरो हृद्रोगपाण्ड्वामयं शूलानाहभगन्दरो भयहरो दुष्टार्तिनिर्वासनः ॥ ५१ ॥ कृतोऽप्यर्थे विकारोऽपि ऋषिणा योगयुक्तिना ॥ काङ्कायनेन मतिमांस्तेन सौख्यमभीप्सति ॥ ५२ ॥

जीरा, पीपलामूल, बेर, पीपल, हरड़ै, चीता, सोंठ, छोटी इलायची इनको आठ २ तोला प्रमाण लेवे और इनके समान सैंधानमक लेवे और पांचसौ भिलावे लेवे और पीछे कही

इन सब औषधोंसे दूना प्रमाण पुराना जमींकंद लेवे और इन सब औषधोंके समान गुड़ लेवे ॥ ९० ॥ फिर इन सबोंको कूटके मिला लेवे पीछे १ तोला प्रमाण गोली बांध लेवे । यह गोली अतिविशेष गुणयुक्त है, बवासीररोगोंको निवारण करती है और क्षयरोगवाला सुंदर कांतिसे युक्त पुष्ट हो जाता है, मंदाग्नि अत्यंत तेज होती है, भ्रमका नाश होता है और हृदयरोग, पांडु, शूल, अफारा, भगन्दर इनके भयको हरनेवाली है, दुष्ट पीडा बवासीरको नाशती है ॥ ९१ ॥ योगकी युक्तिवाले कांकायनमुनिने उत्तम औषध कहा है, बुद्धिमान् पुरुष इससे सुखको प्राप्त होता है ॥ ९२ ॥

अथ लवणोत्तमादि।

लवणोत्तमवह्निकलिङ्गवचाचिरविल्वमहतिपचुमन्दयुतम् ॥ पिब सप्तदिनं किल मस्तुजलैर्यदि मर्दितुमिच्छसि पायुरुजाम् ९३॥

सैंधानमक, चीता, इंद्रजव, वच, करंजुवा, वकायन, इनको सात दिनतक दहीके जलसे पीवे जो यदि वायुके रोगोंको अर्थात् गुदरोगोंको नाशनेकी इच्छा हो तो ॥ ९३ ॥

अथ एलादिगुटिका।

विश्वोपकुल्यामरिचानि केशरं पत्रं लवङ्गैलकवृद्धिमाह्वयाः ॥ चूर्णं हितं शर्करयुक्तमेतद्गुदामयानामुदरार्तिशान्तये ॥ ९४ ॥

सोंठ १ भाग, पीपल २ भाग, मिरच ३ भाग, नागकेशर ४, तेजपात ५, लोंग ६, इलायची ७, इनको एकोत्तरवृद्धिभागसे लेवे पीछे इनके चूर्णमें खांड मिला खाना गुदाके रोग और उदरके रोगकी शांतिके वास्ते हित है ॥ ॥ ९४ ॥

अथ अर्शनाशक चतुःसममोदक।

सनागरं पुष्करवृद्धदारुकं गुडो नवो मोदकमम्बुदारुकम् ॥ अर्शःषु दुर्नामकरोगदारकं करोति वृद्धं सहसैव दारकम् ॥९५

सोंठ, पोहकरमूल, भिदारा ,नवीन गुड, नेत्रवाला,देवदार इन्होंका मोदक खानेसे बवासीर रोगोंका नाश होता है और वृद्ध पुरुष तत्काल बालकसरीखा निरोग या स्त्रीसे युक्त होता है ॥ ९५ ॥

अथ त्रिकटुकाद्यमोदक।

त्रिकटुकमभयानां पुष्करं चित्रकाणां कृमिरिपुतिलचूर्णं कारयेत्सद्गुडेन॥उषसि वटकमेकं भक्षयेद्यो मनुष्यो विनिहितगुदरोगश्चाग्निवृद्धिं करोति ॥ ९६ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़े, पोहकरमूल, चीता, वायविडंग, तिल इनका चूर्ण बना उसमें

गुड मिला जो मनुष्य प्रातःकाल इस मोदकको भक्षण करता है उसके गुदाके रोग दूर होते हैं और जठराग्निकी वृद्धि होती है ॥ ५६ ॥

अथ मरिचाद्यमोदक।

मरिचं नागरचित्रं सूरणभागोत्तरेण संकुट्य॥सर्वसमो गुडयुक्तो मोदको बिल्वप्रमाणं सेवेत्॥विनिहितपित्तविकारं क्षयति मनुजानां करोति तनुपुष्टिम् ॥ ५७ ॥

मिरच १ भाग, सोंठ २, चीता ३, जमीकंद ४, इनको एकोत्तरवृद्धिभागसे लेवे फिर कूटके इन सबोंके समान गुड़ मिला मोदक बांध लेवे फिर चार तोला इस मोदकको भक्षण करे यह मोदक मनुष्योंके पित्तके विकारको नाशता है और मनुष्योंके शरीरकी पुष्टि करता है ॥ ५७ ॥

अथ सूरणपिंड।

त्रिसमगतसूरणकन्दो लोहितवर्णेन यो भवेन्मतिमान् ॥ षट्खण्डीकृतवानपि संशुष्कान्षोडशान्भागान् ॥५८॥ तस्यार्द्धेन तुलितश्चित्रकशुण्ठ्यौ च तत्र संयोज्या॥मरिचस्य चैकभागो गुडेन बद्धस्तु मोदको मनुजैः ॥५९॥ भक्षित एव हि गुणवान्निहन्ति सकलान्गुदामयान् ॥ त्वरितमग्नेर्दीपनमुक्तं गुल्मानां जठररुजाम् ॥ ६० ॥

तीनों तरफसे समान और लाल वर्णवाला ऐसे जमीकंदको लेके उसके छह टुकडे वना सुखा लेवे यह जमीकंद सोलहभाग लेना चाहिये ॥ ५८ ॥ और चीता, सोंठको आठ भाग लेवे, मिरच १ भाग लेवे, पीछे इनको गुड़में मिला मोदक बांध लेवे। यह मोदक गुणवाला है ॥ ५९ ॥ और भक्षण किया हुआ गुदाके सब रोगोंको नाशता है, जठराग्निको शीघ्र ही दीप्त करता है और गुल्मरोग, जठररोगको शीघ्र ही नाशता है ॥ ६० ॥

अथ भीमवटक।

त्रिफलमगधजानां मूलतालीसपत्रं क्रिमिरिपुमगधानां पुष्करं चेत्समांशः॥मरिचदहनभागश्चैकभागेन शुण्ठी सकलतुलिततुल्यः सूरणस्यैकभागः ॥६१॥ मदनचपलयुक्तं वृद्धदारैलभृङ्गं कृतमिह परिचूर्ण द्विगुणो शीर्णखण्डः ॥ कृतवटकमुखस्तु प्राश्नुते यो मनुष्यो हरति जठररोगं तस्य चाशु प्रकर्षम्॥६२॥

गुदजरुधिरपित्तं कासमन्दाग्निशूलान् क्षयतमकहलीमान् कामलांश्च क्रिमींश्च ॥ विदधति बलपुष्टिं दापयेच्चाशु मार्गे प्रवलयति हुताशं योगराजः प्रसिद्धः ॥६३॥ योगराजेन युञ्जीत स्मरणेनाप्यगस्त्यतः ॥ अस्य योगस्य योगेन भीमोऽपि बहुभक्षकः ॥ ६४ ॥

त्रिफला, पीपलामूल, तालीसपत्र, वायविडंग, पीपल, पोहकरमूलको समान भाग लेवे और मिरच, चीता ये दोनों एक भाग, सोंठ एक भाग और इन सबोंके समान जमीकंद ॥ ६१ ॥ मैनफल, गठोना, चिरौंजी, इलायची, भंगराका चूर्ण और दूनी पुरानी खांड इनका वटक अर्थात् गोली बना जो मनुष्य खाता है उसका जठररोग शीघ्र ही दूर होजाता है ॥ ६२ ॥ और गुदाका रक्तपित्त, खांसी, मंदाग्नि, शूल, क्षयरोग, तमक, श्वास, हलीमक, कामला, क्रिमि, इन रोगोंको नाशता है और बल पुष्टि इनको वढ़ाता है जठराग्निको तेज करता है यह सब योगोंका प्रसिद्ध राजा है ॥ ६३ ॥ इस योगराजको अगस्त्यमुनिका स्मरण करके प्रयुक्त करे । इस योगके प्रतापसे भीम भी वहुत भोजनको भक्षण किया करता था ॥ ६४ ॥

अथ चव्याद्यघृत ।

चव्यं पाठा त्रिकटु मगधा मूलकस्तुम्बुरूणां बिल्वाजाजीरजनिसुरसा पथ्यया सैन्धवं च ॥ पिष्ट्वा चैतत्समगविघृतं पाचयेत्सुप्रयुक्तं पानाभ्यंगे हरति गुदजान्वातरोगाश्मरीं च॥ ६५ ॥

चव्य, पाठा, त्रिकटु "सोंठ, मिर्च, पीपल" पीपलामूल, धनियां, बेलगिरी, जीरा, हलदी, तुलसी, हरड़ै, सैंधानमक, इनको पीसके बराबरके गौके घृतमें पकावे । यह घृत पीनेसे और मालिस करनेसे गुदाके रोग, पथरी इनको नाशता है ॥ ६५ ॥

अथ पिप्पल्याद्य तैल ।

श्यामा कुष्ठं मधुकमदनं पुष्पकं चित्रकञ्च बिल्वं दारु प्रतिविषशताह्वाकलिङ्गाशटीनाम्॥पिष्ट्वा तैलं द्विगुणपयसा पाचितं चानुवासे चाभ्यङ्गे वा हितमपि गुदव्याधिनिर्णाशहेतोः॥६६॥ वातव्याधिश्रवणरुधिरे कर्णशूलेऽश्मरीणां जङ्घापृष्ठे कटिशिरःशिरावेक्षणे वाततोदे॥विष्ठाबन्धग्रहगतगदे मूढगर्भे तथैव श्रेष्ठं तैलं सकलनिचयव्याधिसंधारणेन ॥ ६७ ॥

पींपली, कूठ, मुलहटी, मैनफल, मैनफलका पुष्प, चीता, वेलगिरी, देवदार, अतीश, शतावरी, इंद्रजव, कचूर, इनको तैलमें पीस फिर दूने दूधमें पका इसको अनुवासन वस्तिमें और मालिसमें वरतैं। यह गुदाकी व्याधिके नाशके हेतुमें हित है ॥ ६६ ॥ वातव्याधि, कानका रुधिररोग, कर्णशूल, पथरी, जांघ, पीठ, कटि, शिर, इनका रोग, नाड़ियोंका फुरणा, वातकी व्यथा, मलका बंधा इनको नाशता है, ग्रहदोषको दूर करता है, मूढगर्भको दूर करता है, यह तैल संपूर्ण व्याधियोंको नाशता है ॥ ६७ ॥

अथ मुस्ताद्यवटक।

मुस्ता विश्वविडंगचव्यकशटी पथ्या च तेजोवती दन्तीन्द्राग्निवृता समांशकपली मात्रा च प्रत्येकशः॥तस्मादष्टपलांश्च पुष्करमपि षड् वृद्धदारोपलान् युञ्ज्यात्षोडशसूरणाख्यसलिलद्रोणेऽखिलं कल्कितम् ॥६८॥ भूयो वै विपचेज्जलं त्रिगुणितं चोद्धृत्य तत्रैव हि संयुञ्ज्यात्पुनरेव चित्रकत्रिवृत्तेजोवतीसूरणम्॥एलापत्रकनागकेशरलवंगानां समं चूर्णितमेषां षोडशभागयोग्यविहितं सर्वञ्च तं चैकतः ॥ ६९ ॥ स्थाप्यं स्निग्धघटे प्रभातसमये तं चाक्षमात्रं वटं जीर्णे क्षीरमपि प्रभूतमतिमान् पाने तथा भोजने ॥ अर्शोगुल्मभगन्दरांश्च ग्रहणीपाण्डुं तथा कामलां शूलञ्चाथ विबन्धकासक्षतजान् हन्त्याशु यक्ष्मांस्तथा ॥ ७० ॥

नागरमोथा, सोंठ, वायविडंग, चव्य, कचूर, हरडै, तेजवल, जमालगोटाकी जड़, इंद्रायण, निशोत, इन सबोंको समान भाग चार २ तोला प्रमाण लेवे और पोहकरमूल ३२ तोले लेवे विधारा २४ तोले प्रमाण लेवे, जमीकंद ६४ तोला प्रमाण लेवे फिर इनका कल्क बना १०२४ तो० प्रमाण जलमें पकावे ॥ ६८ ॥ पीछे कडा होजावे तब तिगुना जल मिला फिर पकावे पीछे इसको नीचे उतार इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग इनको समान भागले चूर्ण बनाके उसमें मिलादेवे और इनका चूर्ण इन औषधोंसे सोलहमां भाग मिलाना चाहिये ॥ ६९ ॥ पीछे इसको चीकने बरतनमें घाल धरे फिर इसको प्रातःकाल एक तोला प्रमाण भक्षण करे पीछे यह चूर्ण जरजावे तब दूध पीवे और भोजनमें भी दूधको वरतै जो बवासीर, गुल्म, भगंदर, संग्रहणी, पांडुरोग, कामला, शूल, मलका बंधा, खांसी, क्षतजरोग, राजयक्ष्मा, इन रोगोंको नाशता है ॥ ७० ॥

अथ भल्लातकगुड।

भल्लातकानां द्विसहस्रकाणां द्रोणे जले पाच्यपदावशेषम्॥क्वाथे तु तस्मिन् विपचेद्गुडस्य तुलाप्रमाणं पुनरेव तत्र ॥ ७१ ॥
भल्लातकानां शतपञ्चकानि तत्रैव संयोज्य पलत्रिकं वा ॥ व्योषं जवानीघनसैन्धवानामेलालवङ्गं दलनागकेशरम्॥प्रत्ये-ककर्ष तुलितं नियोज्यं न चात्र किञ्चित् प्रविचारणीयम्॥७२॥
संकुट्य तैले घृतभाजने वा स्थाप्यं प्रभाते,वटकप्रमाणम् ॥ भक्ष-द्गुडं यो विनिहन्ति रोगान्भगन्दरार्शःक्रिमियक्ष्मपाण्डून् ॥७३॥गुल्माश्मरीमेहहलीमकं वा सरक्तपित्तं ग्रहणीं निहन्ति॥ करोति पुष्टिं बलमातनोति वर्णप्रकर्षं सुखमादधाति ॥ ७४ ॥

दो हजार भिलावोंको १०२४ तोले जलमें पकावे,जब चतुर्थांश बाकी रहे तब उतार उस क्वाथमें ४०० तोले गुड़को पकावे ॥ ७१ ॥ पीछे उसमें पांचसौ भिलावे मिलावे और त्रिफला, सोंठ, मिरच, पीपल, अजवायन, नागरमोथा, सैंधानमक,इलायची, लौंग, तेजपात, नागकेशर, इनको एक२ तोला प्रमाण गेरे ॥७२ ॥ पीछे इनको अच्छी तरह कूटके मिला तैलके अथवा घृतके चीकने पात्रमें घाल धरे पीछे प्रभातसमय इसको वड़ाके प्रमाण भक्षण करे । यह गुड़ भगंदर, ववासीर, क्रिमि, राजयक्ष्मा, पांडु ॥ ७३ ॥ गुल्म, पथरी, हलीमक, रक्तपित्त, संग्रहणी, इन रोगोंको नाशता है और पुष्टि करता है, वलको बढाता है,वर्णकोसुन्दर करता है, सुख करता है ॥ ७४ ॥

अथ अन्यभल्लातकगुड।

दशमूलगुडूचिसटीक्षुरकं सहचित्रकभार्ङ्गिफलासहितम्॥ भल्ला-तकपंचशतं प्रदिशेद्विपचेज्जलद्रोणमितेन च तत् ॥ ७५ ॥
गुडजीर्णशतं प्रददेत्कथितमवतार्य्य सुशीतलमेलसमम्॥दलके-सरभृङ्गलवङ्गयुतं कृतचूर्णमिदं सकलैकमिति ॥ ७६ ॥ घृत-भावितमेकदिनं विदधीद्घृतभाजनके दिनसप्तमिदम्॥स्निग्धघटे विदधीत मनुष्यो दत्तमिदं गुदजामयसङ्घे ॥७७॥ मोदकमेक-मुषस्सु ग्रसेद्विनिहन्ति गुदामयमेहरुजः ॥ किल कासहलीम-ककामलके हितमेव हुताशनदीप्तिकरम् ॥७८॥ यस्तु शीतजले

क्षिप्तो जलेनैव विलीयते॥ लोहितो लोहितां याति गुडपाकस्य लक्षणम् ॥ ७९ ॥

दशमूल, गिलोय, कचूर, गोखरू, चीता, भारंगी, त्रिफला, पांचसौ मिलावे, इन्होंको १०२४ तोले जलमें पकावे ॥७५॥ पीछे इस क्वाथमें बराबर पुराना गुड़ मिला पकाके नीचे उतार शीतल हो जावे तब तेजपात, नागकेशर, भंगरा, लौंग इनका चूर्ण बना उसमें मिला ॥७६॥ फिर एक दिनतक घृतमें भावना दे पीछे सात दिनतक घृतके पात्रमें वाल रक्खे पीछे चिकने पात्रमें इसको घाल धरे। इस मोदकको गुदाके रोगोंके समूहोंमें खावे॥७७॥एक मोदक प्रातःकाल खावे। गुदाके रोग, प्रमेह,खांसी, हलीमक,कामला इन रोगोंको नाशताहै और जठराग्निको दीप्त करता है ॥ ७८ ॥ जो जलमें गेरा हुआ डूब जावे और लाल लाल वर्णवाला हो जावे यह गुड़के पाकका लक्षण है ॥ ७९ ॥

अथ भल्लातकावलेह।

ग्रन्थिकं चित्रकं मुस्तं चविकं त्रिफलामृता॥सहदेवी गजकर्णापामार्गश्च कुठेरकम् ॥८०॥ प्रत्येकं चतुष्पालिकं कल्के द्रोणाम्भसा सुधीः ॥ द्वे सहस्रे समे पिष्टे भल्लातक्याः फलानि तु ॥ ८१॥ पादावशेषे कल्के च लोहचूर्णं तुलार्द्धकम्॥क्षिपेत्कुडद्वयं सर्पिः सर्वं चैकत्र घट्टयेत् ॥८२॥ फलत्रिकं तथा व्योषं चित्रकं लवणाष्टकम्॥विडङ्गानि समांशानि सर्वाणि पलमात्रया ॥ ८३ ॥ चतुष्पलं वृद्धदारोर्मूर्वाख्या तु चतुष्पला ॥ संशुष्कसूरणंकन्दं चूर्णं चाष्टपलोन्मितम् ॥ ८४ ॥ संक्षिप्य स्वादयेच्चूर्णमवतार्य्य सुशीतले॥स्थापितं मधु संयोज्यं कुडवद्वयमात्रया ॥८५॥ देयं गुदामये चादौ कल्कमप्रातराशने॥ अर्शांसि ग्रहणीरोगं कामलाराजयक्ष्मणः ॥८६॥ गुल्मक्रिमीनश्मरीं च मन्दाग्निमेहशोणितम्॥नाशयत्याशु यक्ष्माणंकरोति बलमाकृतेः ॥८७॥ आशु वृद्धिं प्रकुरुते वलीपलितनाशनम् ॥ रसायनस्य योगेन नरो नागबालो भवेत् ॥ ८८ ॥

गठोना, चीता, नागरमोथा, चव्य, त्रिफला, गिलोय, सहदेवी, गजपीपली, ऊंगा, बबई ॥ ८० ॥ इन सबोंको सोलह सोलह तोला प्रमाण लेवे पीछे कल्क बना एक हजार

चौवीस १०२४ तोले प्रमाण जलमें पकावे और दो हजार भिलावोंका कल्क बना उसका काथ बनावे ॥८१॥ जब चतुर्थांश बाकी रहे तब उतार २०० तोले प्रमाण लोहाका चूर्ण मिलावे और ३२ तोले प्रमाण घृत मिला पीछे एक जगह घोट ॥ ८२ ॥ पीछे त्रिफला, सोंठ, मिरच, पीपल, चीता, आठ प्रकारके नमक, वायविडंग इन सबोंको चार चार तोला प्रमाण लेवे ॥ ८३ ॥ और भिदारा १६ तोले, मूर्वा १६ तोले और सूखा हुआ जमीकन्द ३२ तोले प्रमाण लेवे इनका चूर्ण बना उस पाकमें गेर देवे ॥ ८४ ॥ पीछे शीतल हो जावे तब ३२ तोला प्रमाण शहद मिलावे ॥ ८५ ॥ पीछे गुदाके रोगकी निवृत्तिके वास्ते इस कल्कको प्रातःकाल खावे । बवासीर, संग्रहणी, कामला, राजयक्ष्मा इन रोगोंको नाशता है ॥ ८६ ॥ गुल्म, क्रिमि, पथरी, मन्दाग्नि, प्रमेह, रक्तरोग इन रोगोंको नाशता है और बल, आकृति इनको बढाता है ॥ ८७ ॥ धातुओंकी वृद्धि करता है बुढापाके सफेद बालोंको दूर करता है । इस रसायनके योगसे मनुष्य हस्तीके समान बलवाला होता है ॥ ८८ ॥

अथ रक्तबवासीरकी चिकित्सा ।

रक्तार्शसामुपचारं वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ॥ प्रातस्तिलान्भक्षयेच्च नवनीतविमिश्रितान् ॥ ८९ ॥ सितानागरकं युक्तं नवनीतं सशर्करम् ॥ केशरं मातुलुङ्गस्य विडंगं शर्करायुतम् ॥ ९० ॥ भक्षेत्कूष्माण्डकालेहं नवनीतेन सशर्करम् ॥ एतेन रक्तगुदजाञ्छमयन्ति विचक्षणाः ॥९१॥ समङ्गा शाल्मलीपुष्पं चन्दनं ककुभत्वचम्॥नीलोत्पलमजाक्षीरे पिष्ट्वा पानमसृग्गदे ॥९२॥ कुटजमूलसकेसरमुत्पलं खदिरधातकिमूलशृतं पयः॥ पिबति भक्षणयोगमसृग्भवं गुदजनाशनकारिविकारणम् ॥ ९३ ॥

अब रक्तके बवासीरकी चिकित्साको कहते हैं पुत्र! सुनो,तिलोंको नौनी घृतमें मिला प्रातः भक्षण करे ॥ ८९ ॥ और मिसरी, सोंठ, नौनीघृत, खांड इनको मिला खावे और बिजौराकी केशर, वायविड़ंग, खांड इनको खावे ॥ ९० ॥ अथवा कोहलेको नौनी घृत और खांडके संग खावे, इन इलाजोंसे वैद्यजन रक्तकी बवासीरोंको शांत करै ॥ ९१ ॥ मंजीठ, सेंबरा पुष्प, चन्दन, अर्जुनवृक्षकी छाल, नीलाकमल,इनको बकरीके दूधमें पीस पीनेसे रक्तके रोगोंका नाश होता है ॥ ९२ ॥ कूड़ाकी छाल और जड़, कमलकेशर, खैरकी जड़,धवकी जड़ इनमें दूधको पका काथ बना जो मनुष्य पीता है उसकी गुदाके रक्तके रोगोंका नाश होता है ॥ ९३ ॥

अथ वर्त्तियोग।

कुक्कुटस्य पुरीषञ्च तथा पारावतस्य च ॥ गृहधूमं च सिद्धार्थं धत्तूरकदलानि च ॥ काञ्जिकेन च संपिष्य वर्त्तिं सञ्चारयेद्गुदे ॥ ९४ ॥ सूरणकन्दकवर्त्तिर्विधेया मल्लीरसेन घृतेन च लिप्त्वा ॥ रोगगुदे गुदकीलकमाशु नाशयते गुदजांश्च क्रिमींश्च ॥९५॥ हरिद्रा मार्कवं कुष्ठं गृहधूमं सुवर्चलम् ॥ सिद्धार्थकरसश्चैव काञ्जिकेन च पिष्यते ॥ ९६ ॥ मधुना सह वर्त्तिः स्याद्गुदे सञ्चारिता यदि॥अर्शसां नाशनं चैव करोति सहसा नृणाम् ९७

मुरगाकी वींट, कबूतरकी वींट,घरका धुवां, सरसों,धतूराके पत्ते, इनको कांजीमें पीस गुदामें बत्ती चढानी चाहिये ॥ ९४ ॥जमीकंदकी वत्ती बना मोगरीके रससे और घृतसे लीपि गुदामें चढ़ानेसे गुदकीलक, गुदाके क्रिमि उन रोगोंका नाश होता है ॥ ९५॥ हलदी, भंगरा, कूट, घरका धुआं,कालानमक इनको सरसोंके रसमें और कांजीमें पीस ॥ ९६ ॥ पीछे शहद मिला बत्ती बना गुदामें चढ़ानेसे शीघ्र ही बवासीररोगोंका नाश होता है ॥ ९७ ॥

अथ देवदाल्यादि लेप।

श्योनाकीपलसम्मितञ्च हुतभुग्व्योषै रसानां गणान्षड्ग्रन्थापिचुमन्दवारिककणाभार्ङ्गीशिलातैलकम्॥पिष्ट्वा श्लक्ष्णसमस्तकाञ्जिकयुतं दत्त्वा शिलालेपनं दुर्नामानि निहन्त्यथापि गुदजान्सर्वातिसारामयान् ॥ ९८ ॥

सोनापाठा, चीता, व्योत्र अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपल इनको चार २ तोला प्रमाण लेवे पीछे इनका रस निकाल लेवे और वच,नींबी,नेत्रवाला,पीपली,भारंगी, शिलाजीत इनको समान भाग ले पीछे तैलमें और कांजीमें तथा पूर्वोक्त औषधोंके रसमें इनको बारीक पीस शिलापै लीप देवे पीछे शिला ऊपरसे उतार गुदापैं लगानेसे बवासीर,सब प्रकारके अतीसार इनका नाश होता है ॥९८॥

अथ अर्शरोगपर शस्त्रादिकर्म।

यन्त्रं शस्त्राग्निकार्यञ्च कथितं तत्तु शल्यके॥यथा यन्त्रेण छिद्यन्ते दाहस्तत्र विधियकः ॥९९॥चर्मकीलं तथा छित्त्वा दग्धं क्षारेण धीमता ॥ पक्वजम्बूसमो वर्णो क्षारदग्धे प्रशस्यते ॥ १०० ॥ दग्धं वा सूरणक्षारं कदलीजीवमुद्गकैः। पलाशकोकिलाक्षारम-

पामार्गघृतान्वितम् ॥ १०१ ॥ क्षारदाहे प्रशस्येत नवनीतघृतेन वा ॥ कुष्ठं पथ्या तथा निम्बपत्राणि च मनःशिला ॥१०२॥ तस्मान्मधुघृतमिश्रं निर्धूमाङ्गारके क्षिपेत्॥ धूपयेद्गुदजांतेनयथा सम्पद्यते सुखम् ॥१०३॥ मनःशिला नागरकं सगुग्गुलं ससार्षपम् ॥ देवदारु सपौष्करं विशल्यासर्जिकारसम् ॥ १०४ ॥ घृतेन धूपयेद्गुदजं गुदामयं भगन्दरम्॥निहन्ति दुष्टपीनसं व्रणं सपूयगन्धिकम् ॥१०५॥ निर्गुण्डीदलशंभुतालमथवा सत्सार्षपं चूर्णकं देवाह्वं घृतशर्करामधुयुतं धूपं गुदायां गते ॥ दुर्नामे सरुजे व्रणे च विषमे दुष्टे विसर्पेषु च पामापीनसकासनाशनकरो धूपो ग्रहोच्छेदनः ॥ १०६ ॥

यन्त्र, शस्त्र तथा अग्निकर्म कहा है वह शल्यतन्त्रमें कहा है और जो यन्त्रसे छेदन किया जावे वहां दाह करना चाहिये ॥ ९९ ॥ चर्मकीलको छेदन करके क्षारसे दग्ध करे और जो पक्का हुआ जामनके फलके समान वर्णवाला हो वह क्षारसे दग्ध करना श्रेष्ठ कहा है ॥ १०० ॥ जमीकन्दका खार, केला, जीवक, मूंग इनके खारसे दग्ध करना श्रेष्ठ कहा है और केशू, तालमखाना, ऊंगा इनको खारके घृतमें युक्त कर अथवा नौनीघृतमें युक्त कर ॥१०१॥ क्षारदाह करना श्रेष्ठ कहा है और कूठ, हरड़े, नींबके पत्ते, मनसिल ॥ १०२ ॥ इनको शहदमें मिला धूवोंसे रहित हुए अंगारपै गेरे पीछे उससे गुदाके मस्सोंके धूमनी देवे तब रोगीको सुख प्राप्त होता है ॥ १०३ ॥ मनसिल, सोंठ, गूगल, सिरसम, देवदार, पोहकरमूल, कलहारी, साजीखार ॥ १०४ ॥ इनको घृतमें मिला धूप देनेसे ववासीरका मस्सा, गुदाके रोग, भगंदर, दुष्टपीनस, राधिकी गन्धसे युक्त व्रण, इनको नाशता है ॥ १०५ ॥ संभालूके पत्ते, तेजपात, हरताल, सरसोंका चूर्ण, देवदार, इनको घृत, खांड, शहदमें मिला धूप देनेसे गुदाके रोग दूर होते हैं । पीड़ासहित ववासीर, विषम और दुष्ट विसर्परोग, पामा, पीनस, खांसी, इन रोगोंको नाशता है और यह धूप ग्रहदोषको दूर करता है ॥ १०६ ॥

अथ अर्शरोगमें पथ्य ।

एवं क्रियाविधिः प्रोक्तश्चातः पथ्यानि मे शृणु ॥ शालिषष्टिकमुद्गाश्च कुलत्थाढक्यवास्तुकम् ॥१०७॥ चिल्ली च शतपुष्पा च कूष्माण्डकपटोलकम् ॥ कारवेल्लं च तुण्डीरं सूरणो राजिकार्ज-

कम् ॥१०८॥ गुडस्तक्रं घृतं चैतत्प्रशस्यन्तेऽर्शसां सदा ॥ सूकरः शल्लकी गोधा मूषको वा सरीसृपः ॥ १०९ ॥ लावतित्तिरवा र्त्तिकमांसानि कथितानि च ॥११०॥ वल्लूरमत्स्यदधिपिच्छलतैलबिल्ववार्त्ताकभोजनमतिप्रतिवर्जनीयम् ॥ नैसर्गिकं निशि दिवा शयनञ्च शीतं शीतान्तमेव परिवर्जितमादरेण ११२

इत्यात्रेय भाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अर्शश्चिकित्सा नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकारसे क्रियाओंकी विधि कही है । अब पथ्यवस्तुओंको कहते हैं—सालिसंज्ञक चावल, सांठी चावल, मूंग, कुलथी, तुरीधान्य, वथुवा ॥ १०७ ॥ चिल्लीशाक अर्थात् वथुवाके भेद, सौंफ, कोहला, परवल, करेला, तोरी, जमीकंद, सिरसमकी डांकल इनका भोजन और शाक हित कहा है ॥ १०८ ॥ गुड़, तक्र, घृत ये ववासीरवालोंको हित हैं और शूकर, शेह गोह, मूंसा, सर्प आदि ॥ १०९ ॥ लावा, तीतर, वत्तक, इनके मांस, पथ्य कहे हैं॥११०॥ सूखा मांस, मत्स्यका मांस, दही, झागोंवाला, पदार्थ, तैल, बेलगिरी, वत्तकका मांस, इनका भोजन नहीं करे और रात्रिमें प्रकृतिके अनुसार शयन करे, दिनमें नहीं सोवे और शीतल पदार्थोंको वर्ज देवे ॥ १११ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

अथ खांसीकी चिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥अथ वक्ष्यामि कासानां निदानं सचिकित्सितम् ॥ कासांश्चाष्टविधांश्चैव शृणु पुत्र महामते ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—इससे अनन्तर कास अर्थात् खांसीरोगोंका चिकित्सासहित निदान कहते हैं, खांसी आठ प्रकारसे होती है सो हे पुत्र ! हे महामते ! सुनो ॥ १ ॥

अथ कासरोगके हेतु ।

हास्यात्प्रहास्यरजसानिलसंनिरोधान्मार्गेऽप्यतीव गमनादथ भोजनस्य ॥ वेगावरोधनिरतात्क्षवथोस्तथैव संजायतेऽपि मनुजां प्रतिधाम कासः ॥ २ ॥ संसेवनान्मधुरापिच्छलजाग-

रेण स्वप्नैर्दिवातिदाधिगौल्यहिमाशनेन ॥ संजायते मदनतैल-मथाल्पकन्दी मद्येन वा किल कफस्य जनिर्नियुक्ता ॥ ३ ॥

हास्यसे, हँसीके और वायुके रोकनेसे, मार्गमें विशेष गमन करनेसे, भोजनका वेग रोकनेसे, छींकके रोकनेसे, मनुष्योंको खांसी रोग होता है ॥ २ ॥ मधुर तथा झागोंवाले पदार्थके सेवनेसे, जागनेसे, दिनमें सोनेसे और अत्यंत दही, गुली बंधनेवाला पदार्थ, ठण्ढा पदार्थ इनके भोजन करनेसे तथा मैनफल, तैल, अल्प कंद, इनके भक्षण करनेसे, मदिरा पीनेसे खांसीमें कफ उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

अथ कासरोगकी संप्राप्ति ।

ऊर्ध्वं गतोदानविपर्ययेण कफेन प्राणानुगतेन दीर्घः ॥
हृदं निरेत्य कफकासकण्ठे करोति तेनापि च कासंसंज्ञाम् ॥ ४ ॥

कंठमें रहनेवाला उदानवायुके विपरीत होजानेसे कफके संग प्राणवायुके दीर्घ संग होनेसे हृदयमें प्राप्त हुआ कफ खांसीके संग कंठमें प्राप्त हो जाता है उससे खांसी रोग होता है ॥ ४ ॥

अथ कासरोगके प्रकार ।

कासाश्चाष्टौ समुद्दिष्टाः क्षतजोऽन्यःप्रकीर्तितः॥वातिकः पैत्तिकश्चैव श्लैष्मिकः सान्निपातकः ॥५॥ वातपित्तसमुद्भूतः श्लेष्मपित्तसमुद्भवः॥सप्तमो लोहितेनात्र चाष्टमो जायते क्षयात्॥६॥ न वातेन विना श्वासःकासो न श्लेष्मणा विना॥न रक्तेन विना पित्तं न पित्तरहितः क्षयः ॥७॥ कथितः सम्भवःश्वासस्यातो वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ येन संलक्ष्यते नृणां कासश्चाष्टविधः परः ॥ ८ ॥

खांसी आठ प्रकारसे भी होती है,एक खांसी क्षतज होती है, वातसें १, पित्तसे २, कफसे ३, सन्निपातसे ४, वातपित्तसे ५,कफपित्तसे ६ और सातमी रक्तसे और आठमी क्षयसे होती है ॥ ५ ॥ ६ ॥ वातके विना श्वास नहीं होता, कफके विना खांसी नहीं होती, रक्तके विना पित्त नहीं होता, पित्तके विना क्षयरोग नहीं होता यह सिद्धान्त है ॥ ७ ॥ श्वासकी उत्पत्ति तो कह दी है अब लक्षण कहते हैं जिससे मनुष्योंको आठ प्रकारकी खांसी जानी जावेगी ॥ ८ ॥

अथ वातसे उपजी खांसीके लक्षण ।

क्षीणेन्द्रियः पार्श्वरुजोऽतिवेगः शूलावृतो वा गलके च बद्धः॥ निद्राकृतिर्भिन्नरवो मनुष्यो वातेन कासस्य भवेत्प्रकाशः॥९॥

इंद्रिय क्षीण हों, पसलीमें पीडा हो, अत्यंत वेग हो, शूल हो, गलबंधा रहे, निद्रासी आवे स्वर फटा रहे तो वातसे उपजी खांसी जाननी ॥ ९ ॥

अथ पित्तसे उपजी खांसीके लक्षण ।

कण्ठे विदाहो ज्वरशोषमूर्च्छातृष्णाभ्रमः पित्तभवे च कासे ॥ आस्ये कटुत्वं च शिरोऽर्तिपित्तं निष्ठीवते पीतनखानि नेत्रे १०

कंठमें दाह हो, ज्वर, शोष, मूर्च्छा, तृषा, भ्रम ये हों तब पित्तसे उपजी खांसी जाननी और मुखमें कडुआपन हो, पित्त थूके, शिरमें पीडा हो, नख, नेत्र ये पीले रहें ॥ १० ॥

अथ कफकी खांसीके लक्षण ।

जाडयं वमिः पाण्डुभवं च कासं निष्ठीवते यः सघनं कफं वा ॥ भक्तारुचिर्वा कफपूर्णदेहे घनःस्वरःश्लेष्मभवे च कासे॥११॥

जडता हो, वमन हो, पिलासलिये सुपेद और चिकना करडा कफ थूके, भोजनमें अरुचि हो, कफसे पूर्ण शरीर हो, भारी स्वर हो, ये कफसे उत्पन्न हुई खांसीके लक्षण हैं ॥ ११ ॥

अथ त्रिदोषकी खांसीके लक्षण ।

कण्डूदाहश्वासच्छर्दिशोषारोचकपीडिताः ॥ शिरोऽर्तिशोफहृल्लासःकासे त्रिदोषसम्भवे॥१२॥कासः कण्डूःपिपासा च कुक्षिशूलो विनिद्रता॥शुष्ककासःपिपासा च वातपित्तोद्भवः कफः ॥१३॥ धूमगन्धः पीतवर्णोऽक्षिप्रपाकी सरक्तकः ॥ रक्तनेत्रः पिपासाढ्यः पित्तश्लेष्मान्वितः कफः ॥ १४ ॥

खाज हो, दाह हो, श्वास हो, छर्दि हो, शोष हो, अरुचिकी पीडा हो, शिरमें पीडा हो, शोजा हो, थुकथुकी हो, ये त्रिदोषसे उपजी खांसीके लक्षण हैं ॥१२॥ खांसीकी धसक हो, खाज हो, तृषा हो, कुक्षिमें शूल हो, निद्रा नहीं आवे, सूखी खांसी हो तो वातपित्तसे उपजा कफ अर्थात् खांसी जाननी ॥ १३ ॥ धूवां सरीखी गंध हो, पीला वर्ण हो, आंखि पकजावें, कफमें रक्त, अति लाल नेत्र हो तो पित्तकफसे उपजी खांसी जाननी ॥ १४ ॥

अथ क्षतजखांसीके लक्षण ।

व्यवायातिप्रसङ्गेन वेगरुद्धाभिघातकः ॥ भारोद्वहणयातेन

जायते क्षतजः कफः ॥१५॥ तेन हृदि व्यथा रूक्षं कासते च सशोणितम्॥श्वासः संक्षीयते गात्रं दीनो मन्दज्वरातुरः ॥१६॥ वेपते पर्वभेदश्च मोहभ्रमनिपीडितः । एवं क्षतजनिर्दिष्टो नृणां प्राणापहारकः ॥ १७ ॥

मैथुनके अत्यंत प्रसंगसे, वेगके रोकनेसे, अभिघातसे और बोझाके उठानेसे क्षतसे उपजा हुआ कफ जानना ॥ १५ ॥ उस करके हृदयमें पीडा हो, रूखी खांसी आवे अथवा खांसीमें रक्त आवे, श्वास हो,गात्र क्षीण हुआजावे,गरीब रहे, मंदज्वरकी पीडा रहे, कंपना रहे, हड़फूटन हो, मोह, भ्रम, इनकी पीडा हो ऐसे मनुष्योंके क्षतज अर्थात् चोटसे उपजीहुई खांसी जाननी यह प्राणको हरनेवाली खांसी है ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ रक्तकी खांसीके लक्षण ।

अल्पायासात्क्षतात्क्षीणात्संपातात्क्षणभोजनात्॥ पातनाघातयोगेन जायते रक्तजः कफः ॥१८॥ विस्रगन्धास्यहृच्छूलदीनो वै विकलेन्द्रियः ॥ रक्तनिष्ठीवनोपेतः श्वासो वापि सदातुरः ॥ १९ ॥ क्षीयते सततं गात्रं मोहस्तृष्णा च जायते ॥ इत्येतैर्लक्षणैर्युक्तं रक्तकासं विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

कुछ परिश्रम करनेसे, चोटसे, क्षीण होनेसे, गिरनेसे और दुष्टभोजनसे,गिरनेके घातके योगसे रक्तसे उपजाहुआ कफ होजाता है ॥ १८ ॥ मुखमें बुरी गंध आवे, हृदयमें शूल हो, गरीब रहे, इंद्रिय विकल रहैं, रक्तके थूकनेसे युक्त हो, श्वास हो, मदसे पीड़ित हो ॥ १९ ॥ शरीर निरंतर क्षीणहुआ जावे, मोह हो,तृषा हो, इन लक्षणोंसे जो युक्त हो वह रक्तसे उपजी खांसी जाननी ॥ २० ॥

अथ सबप्रकारकी खांसियोंके लक्षण ।

अथ क्षयानुमानेन लक्ष्यते कासलक्षणम् ॥ पाण्डुरोगे तथा यक्ष्मे गुल्मे वापि क्षतक्षये॥२१॥ शोफार्शसां प्रतिश्याये चावश्यं काससम्भवः ॥ एतेषां चानुमानेन कासं संलक्षयेद्भृशम् ॥ २२ ॥ स्थवरिणां रक्तकासः सोऽपि याप्यः प्रकीर्त्तितः ॥ बालानां जायते कासो धात्रीवैकल्पयोगतः ॥ २३ ॥ एते

कासाः समुद्दिष्टा दशभिर्भिषगुत्तमैः ॥ तेषां क्रियाप्रतीकारः पथ्यभेषजमेव च ॥ २४ ॥

इससे अनंतर क्षयके अनुमान करके खांसीका लक्षण कहते हैं । पांडुरोग, राजयक्ष्मा, गुल्म, क्षतक्षय, शोजा, ववासीर, पीनस इनमें अवश्य खांसी होजाती है इनके और अनुमानसे अत्यंत खांसीका लक्षण जानना ॥ २१ ॥ २२ ॥ वृद्ध पुरुषोंको जो रक्तसहित खांसी होती है वह याप्यरोग कहाता है और धायके विकलताके योगसे वालकोंको खांसी उत्पन्न होती है इन दशप्रकारके लक्षणों करके वैद्यजनोंने खांसी कही है सो उनके बंद करनेवाली क्रियाओंको कहते हैं और पथ्य औषधोंको कहते हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ वातकी खांसीकी चिकित्सा ।

शतमूलिकायाः क्वथितःकषायःपीतःकणाचूर्णयुतः सुखोष्णः॥ नृणां निहन्यान्मरुतोद्भवं तु कासं सशूलं च विपाचनं स्यात् ॥२५॥भार्ङ्गी शटीगोस्तनिशृङ्गवेरशृङ्गीकणाचूर्णयुतोऽवलेहः॥ गुडेन तैलेन हितो नराणां कासस्य वायोश्च विकारहंता ॥ २६ ॥ नागरं पुष्करं दारु दुस्पर्शकं पिप्पली मुस्तकं रास्ना च शटी ॥ भार्ङ्गिका शर्करा संयुतं चूर्णकं हन्ति कासं विनिःश्वासवातोद्भवम् ॥ २७ ॥

महाशतावरीका काथ बना उसमें पीपलीका चूर्ण मिला सुखसे सुहाता हुआ गरम २ पीनेसे मनुष्योंके वातसे उपजी हुई शूलसहित खांसी दूर होती है और पकजाती है ॥ २५ ॥ भारंगी, कचूर, दाख, अदरक, काकडासींगी, पीपल, इनका चूर्ण बना गुड़में और तेलमें अवलेह बना चाटनेसे वातसे उपजी हुई खांसी दूर होती है ॥ २६ ॥ सोंठ, धमासा, काकड़ासींगी, कचूर, पोहकरमूल, देवदार, भारंगी, पीपल, नागरमोथा, रास्ना इनका चूर्ण बना खांड मिला खानेसे श्वासरहित वातकी खांसी दूर होती है ॥ २७ ॥

अथ कट्फलआदि औषध ।

कट्फलं रोहिषं धान्यं भार्ङ्गी मुस्ता वचा तथा ॥ कर्कटं पर्पटं दार्वी देवदारु च नागरम्॥२८॥कल्कितं मधुना युक्तं पानमस्य न संशयः॥कासश्लेष्मप्रतीकारमनेन किल निश्चितम् ॥ २९ ॥ शोषवातक्षयं कण्ठग्रहं पीनसकं कफम् ॥ हिक्कां कफज्वरं चैव नाशयत्याश्वसंशयम् ॥ ३० ॥

कायफल, रोहिषतृण, भारंगी, नागरमोथा, वच, धनिया, पित्तपापड़ा, देवदारु, दारुहलदी, सोंठ, काकड़ासिंगी ॥ २८॥ इनका कल्क बना शहद मिला पीना हित है। इस औषधसे खांसी और कफ दूर होता है ॥२९॥ क्षय, पीनस, कंठग्रह, वातसे उपजा शोष, कफ, हिचकी, कफसे उपजा ज्वर इनको नाशता है ॥ ३० ॥

अथ द्राक्षादि औषध।

द्राक्षामलक्याः फलपिप्पलीनां कोलं सखर्जूरयुतोऽवलेहः ॥ निहन्ति कासं क्षयरक्तपित्तान् सकामलं पाण्डु हलीमकञ्च ॥३१॥

दाख, आंवला, पीपल, चव्य, खजूर इन्होंका अवलेह बना चाटनेसे रक्तपित्त, खांसी, क्षयरोग इनका नाश होता है, कामला, पांडुरोग, हलीमक इनको नाशता है ॥ ३१ ॥

अथ वालकादि कल्क।

वालाबृहत्यौ मधुकं वृपं च तथैव कुष्ठं पिचुमन्दकञ्च ॥ गवास्तनीसंयुतकल्कमेतत्पानं हितं पित्तकफात्मके च॥ ३२ ॥

नेत्रवाला, छोटी कटेहली, वडी कटेहली, मुलहठी, वांसा, कूट, नींव, दाख इनका कल्क बना पित्तकफसे उपजी हुई खांसीमें पीना हित है ॥ ३२ ॥

अथ मुस्ता चूर्ण।

मुस्ताटरूषकफलत्रिकदारुभार्ङ्गी व्याघ्रीसपुष्पफलमूलदलैरुपेता॥रास्ना विषातुलसिका विहितं सुचूर्णं क्वाथेन हन्ति किल कासमिदं न चिन्त्यम् ॥ ३३ ॥ बद्धाथवा च गुटिका मधुना गुडेन सिन्धूद्भवेन मगधासमहौषधेन॥ आस्ये धृता निशि विशालगुणा भवन्ति श्वासं क्षयं क्षतजकासमिदं निहन्ति ॥ ३४ ॥

नागरमोथा, वांसा, त्रिफला, देवदार, भारंगी और पुष्प, फल, मूल, पत्ते इन पंचांगोंसहित कटेहली, रास्ना, अतीश, श्रेष्ठ तुलसीके पत्ते, इनका चूर्ण बना, जलमें क्वाथ बना पीनेसे खांसी दूर होती है ॥ ३३ ॥ अथवा इस चूर्णको शहद तथा गुड़में मिला और सैंधानमक, पीपल, सोंठ ये मिला गोली बांध मुखमें धरे। रात्रीके समयमें यह उत्तम गुणवाली कही है और श्वास, क्षय, क्षतसे उपजी खांसी इनको नाशती है ॥ ३४ ॥

अथ पित्तकी खांसीकी चिकित्सा।

शर्करा चव खर्जूरं द्राक्षा लाजा कणा मधु ॥ सर्पिर्युतो हितो लेहः पित्तकासनिवारणः ॥३५॥ आटरूषकपत्राणि पिचुमन्द-

द्दलानि च ॥ तुलसीस्वरसश्चैव शटी शृङ्गी मरीचकम् ॥३६॥ शुण्ठीचूर्णं गुडे युक्तं लिह्यात्कासे कफात्मके ॥ भार्ङ्गयाश्च नागपिप्पल्याः पिबेत्क्वाथं सुखोष्णकम् ॥३७॥ आर्द्रकस्य रसं नीत्वा मधुना च पिबेत्सुधीः॥कासे श्वासे प्रतिश्याये ज्वरे श्लेष्मसमुद्भवे ॥ ३८ ॥ कट्फलं भूतृणं भार्ङ्गी शुण्ठी पर्पटकं वचा ॥सुराह्वं च जलशृतमुक्तश्च पण्डितैस्तथा ॥३९ ॥ मधुना संयुतं पानं कासे वातकफात्मके॥ श्वासे हिक्काज्वरे शोषे महाकासे च दारुणे ॥ ४० ॥

खांड, खजूर, दाख, धानकी खील, पीपल, शहद इन औषधोंके चूर्णमें घृत मिला लेह बना चाटनेसे पित्तकी खांसी दूर होती है ॥ ३५ ॥ वांसाके पत्ते, नींबके पत्ते, तुलसीका रस और कचूर, काकड़ासींगी, मिरच ॥ ३६ ॥ सोंठ, इनका चूर्ण बना गुड़में मिला चाटनेसे कफसे उपजी खांसी दूर होती है और भारंगी,गजपीपली इनका क्वाथ सुखसे सुहाता हुआ गरम २ पीवे ॥ ३७ ॥ अदरखका रस निकाल शहदके संग पीना खांसी, श्वास, पीनस, कफसे उपजा ज्वर इनमें श्रेष्ठ है ॥ ३८ ॥ कायफल, रोहिषतृण, भारंगी, सोंठ, पित्तपापडा, वच, देवदार इनको जलमें पकावे ऐसे पंडितोंने कहाहै ॥ ३९ ॥ पीछे शहद मिला पीनेसे वात कफसे उपजी खांसी दूर होती है और श्वास, हिचकी, ज्वर, शोष, महादारुण खांसी इनमें श्रेष्ठ है ॥ ४० ॥

अथ लघुतालीसआदि औषध ।

तालीसपत्रं मरिचञ्च विश्वाश्यामायुतं चोत्तरभागवृद्ध्या ॥ त्वक्पत्रकेणापि लवङ्गमेलामष्टौ कणाया गुणितां सिताञ्च ॥ ॥ ४१ ॥ लिह्यात्प्रभाते श्वसने च कासे प्लीहारुचौ पीनसच्छर्दिहिक्काम् ॥ शोफातिसारं ग्रहणीं च पाण्डुं क्षयं निहन्यात्क्षतजं च यक्ष्मम् ॥ ४२॥

तालीसपत्र १, मिरच २, सोंठ ३, पीपल ४ इनको यथोत्तर वृद्धिभागसे ले और दालचीनी, तेजपात, लौंग, इलायची इनको मिला और पीपलसे आठगुनी मिसरी मिला ॥ ॥ ४१ ॥ फिर प्रभातसमयमें खानेसे श्वास, खांसी, प्लीह अर्थात् तिल्ली, अरुचि, पीनस, छर्दि, हिचकी, शोजा, अतिसार, संग्रहणी, पांडु रोग इन रोगोंका नाश होता है और चोटसे उपजा क्षय, राजयक्ष्मा इनको नाशता है ॥ ४२ ॥

अथ बृहत्तालीसाद्य औषध ।

तालीसं त्रिफलाप्रियङ्गुमगधामूलञ्च मुस्ता शटी दार्व्येलादल-
नागकेसरलवङ्गानां तथा नागराः ॥ कृष्णाकोलकबालकं सच-
विला मूर्वा विपा कर्कटं द्राक्षा कुष्ठनिशाग्निवत्सकवृषं गोकण्ट-
तिक्ता तथा ॥ ४३ ॥ वृक्षाम्लं च सदाडिमाम्लकरसं पक्कं बद-
र्याः फलं चैतेषां समभागचूर्णविहितं योज्या समा शर्करा ॥
योज्यं चार्द्धपलं निहन्ति क्षतजं कासं तथा श्वासकं पाण्डुं
कामलमेदशोषगुदजे शस्तं सदा यक्ष्मिणाम् ॥ ४४ ॥

तालीसपत्र, त्रिफला, गोंदी, पीपलामूल, नागरमोथा, कचूर, देवदार, इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग, सोंठ, पीपली, कंकोल, नेत्रवाला, चव्य, मूर्वा, अतीश, काकडासींगी, दाख, कूठ, दारुहलदी, चीता, कूड़ाकी छाल, वांसा, गोखरू, कुटकी ॥ ॥ ४३ ॥ विजौरा, अनारदाना, पके हुए बेर इनको समान भाग ले चूर्ण बनावे और सब चूर्णके समान खांड मिलावे, इस चूर्णको आधा तोला प्रमाण खावे । यह क्षतसे उपजी खांसी, श्वास, पांडुरोग, कामला, मेद, शोष, गुदाके रोग, राजयक्ष्मा इन रोगोंको नाशता है ॥ ४४ ॥

मधुयष्टिका हिता प्रोक्ता क्षये कासे त्रिदोषजे ॥

क्षयसे उपजी हुई खांसीमें और त्रिदोषसे उपजी हुई खांसीमें मुलहटीका सेवन करना हित है ॥

आमजे शूलरोगार्त्तिः पर्वभेदो भ्रमः क्लमः ॥
शोषः शिरोव्यथा क्लेदो नेत्रे गम्भीरमिच्छति ॥ ४५ ॥

आमसे उपजी हुई खांसीमें शूलरोगकी पीडा, संधियोंका भेद, भ्रम, ग्लानि ये होते हैं और शोष हो, शिरमें पीडा हो, ग्लानि हो, नेत्र गंभीर हों ये लक्षण हो जाते हैं ॥ ४५ ॥

अथ छर्दिलक्षण ।

स्वल्ली वा चेतनं वापि अजीर्णाज्जायते वमिः॥सापि स्निग्धा च
रूक्षा च द्विविधा जायते वमिः ॥४६॥ गम्भीरनेत्रो वमते विड्-
बन्धो वाति सार्य्यते ॥ गात्रे खल्लीकरं शूलं तथा शोथाति-
मूर्च्छना ॥४७॥ विकलाङ्गो भ्रमार्तश्च भ्रमन्तं पश्यते जगत् ॥
शिरोऽर्त्तिर्वेपतेऽत्यर्थं करपादौ हिमोपमौ ॥४८॥ एतैर्लिङ्गैस्तु

संयुक्तां छर्दिं दूरे परित्यजेत् ॥ असाध्या सर्वयोगैस्तु साप्यजीर्णा सुधीमता ॥ ४९ ॥

अजीर्णसे, वमन होनेसे खल्लीरोग हो जावे, मूर्च्छा हो जावे और वमन भी स्निग्ध, रूक्ष ऐसे दो प्रकारकी होती हैं ॥४६॥ जिसके गंभीर नेत्र हों और वमन करे, विष्ठा वन्ध हो, अतिसार हो और शरीरमें खल्ली रोग हो, शूल हो, शोजा हो, अतिमूर्च्छा हो ॥४७॥ अंग विकल हो, भ्रमकी पीडा हो, जगत्को भ्रमताहुआ देखे, शिरमें पीडा हो, कांपन हो, हाथ पैर ठंढे हों ॥४८॥ इन लक्षणोंसे युक्त जो वमन हो उसको दूरसे ही त्याग देवे और सब योगों करके यह असाध्य है अजीर्णसे उपजी कहाती है ॥ ४९ ॥

अथ वातच्छर्दिकी चिकित्सा ।

सपञ्चमूलीक्वथितः कषायः ससैन्धवं चामलकश्च कल्कः ॥ क्वाथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकं छर्देश्च वातस्य निवारकञ्च ॥५०॥ दद्यात्क्षीरं शर्कराभिर्नरस्य पित्तोद्भूतां वातिशीघ्रं निहन्ति ॥ द्राक्षा वापि क्षीरदार्व्या विचूर्ण लेहो हन्ति सारघाणां पिबन्ति ॥ ॥५१॥ फलत्रिकं पुष्करकं वचां च तथाभयासैन्धवकं गुडेन ॥ चूर्णं विलिह्यात्कफवान्तिमत्ति नरस्य मूत्रेण युतस्य पानम् ॥ ॥ ५२ ॥ शटी दार्व्यभया शुण्ठी मागधी घृतसंयुता ॥ चूर्णं तक्रेण संयुक्तं हन्ति छर्दिं त्रिदोषजाम् ॥५३॥ रक्तशाल्युद्भवा लाजा मधुशर्करयान्विता ॥ ज्वरार्त्तिं युवतेः शीघ्रं नाशयंत्येव मे मतम् ॥५४॥ आमलक्या रसेनाथ घृष्टं चन्दनकं मधु ॥ गुटिका पलमानेन लेहो हन्ति वमिं ध्रुवम् ॥५५॥ आर्द्रदाडिमनिर्य्यासश्चाजाजी शर्करान्विता ॥ सतैलं माक्षिकं वापि चत्वारः कवलग्रहाः ॥ ५६ ॥ वाताद्यद्वन्द्वजांश्छर्दीन्निहन्त्येव न संशयः ॥ ५७ ॥ त्रिकटुकरजनीद्वयं च फलत्रिकं सध्वा च यावशूकश्च ॥ समकृतमिति चूर्णमेतन्मधुना युतं वमिं निवारयति ॥ ५८ ॥ सगुडं दाडिमद्राक्षापथ्यागुडनागरैर्युक्ता ॥ त्रिवृता नागरमथवा गुडेन युक्तं वमिं दहति ॥ ५९ ॥

लघुपंचमूलका क्वाथ बना उसमें सैंधानमक, आंवला, इनका कल्क बना और पीपल मिला इस क्वाथके पीनेसे वातसे उपजी छर्दि दूर होती है ॥ ९० ॥ और दूधमें खांड मिला पीनेसे पित्तसे उपजी छर्दि शीघ्रही नष्ट होती है और दाख, क्षीरविदारी इनके चूर्णका सारघ शहतमें लेह बना पीनेसे पित्तछर्दिका नाश होता है ॥ ९१ ॥ और त्रिफला, पोहकरमूल, वच, हरड़ै, सैंधानमक इनका चूर्ण बना गुड़में मिला चाटनेसे कफकी छर्दि दूर होती है और जिसके ज्यादे मूत्र उतारता हो उसको भी इसीका पीना श्रेष्ठ है ॥ ९२ ॥ और कचूर, देवदार, हरड़ै, सोंठ, पीपल इनके चूर्णको घृतमें अथवा तक्रमें मिला खानेसे त्रिदोषसे उपजी छर्दि दूर होती है ॥ ९३ ॥ और शालीचावलोंकी खीलोंमें शहद और खांड मिला खानेसे शीघ्र ही ज्वरकी पीडाका नाश होता है ॥ ९४ ॥ आंवलाके रसमें चंदनको घिस तिसमें शहद मिला आंवलाके प्रमाण गोली बांधलेवे । यह लेह वमनको निश्चय नाशता है ॥ ९५ ॥ अदरखका रस, अनारदानाका रस, जीरा, खांड, तैल, शहद इनके कवलग्रह अर्थात् ग्रास बनाके मुखमें धारण करे ॥ ९६ ॥ इस ग्रासोंके धारण करनेसे वात आदिक दोषोंसे उपजीहुई तथा दोदोषोंसे उपजी हुई और तीन दोषोंसे उपजीहुई वमन दूर होती है ॥ ९७ ॥ और सोंठ, मिरच, पीपल, हलदी, दारुहलदी, त्रिफला, मदिरा, जवाखार, इनको समान भागले चूर्ण बना शहदमें खानेसे छर्दिका निवारण होता है ॥ ९८ ॥ और अनारदाना, दाख, इन्होंको मिला अथवा हरड़ै, सूंठ, इनको गुड़ मिलाय अथवा निशोथ, सूंठ इनको गुड़में मिला खानेसे वमन दूर होती है ॥ ९९ ॥

अथ पित्तकी छर्दिकी चिकित्सा।

पर्पटं सगुडं क्वाथं शीतलं पाययेन्नृणाम्॥हन्ति वमिं महाघोरां सपित्तां भ्रमसंयुताम् ॥६०॥ काकोली काकमाची च क्वाथं शर्करया युतम्॥लाजाशर्करसंयुक्तं हंति पित्तवमिं नृणाम्॥६१॥ मातुलुङ्गरसश्चैव पथ्या शर्करया युतः ॥ हन्ति कासं पित्तभवं वमिं शीघ्रं नियच्छति॥६२॥दृष्ट्वा पित्तवमिं घोरां सदाहभ्रम-दायिनीम् ॥ तस्यारग्वधपत्राणि मधुशर्करयान्वितम् ॥६३ ॥ क्षीरपानं प्रशस्तं वा मुस्ताशर्करयान्वितम् ॥ ६४ ॥

पित्तपापडा, गुड़ इनका क्वाथ बना शीतलकर मनुष्योंको पिलानेसे पित्तसहित और भ्रमसहित महाघोर वमन दूर होती है ॥ ६० ॥ काकोली, मकोह, इनका क्वाथ बना उसमें खांड मिला पीनेसे अथवा धानकी खीलोंके रसमें खांड मिला पीनेसे पित्तकी छर्दि दूर होती है ॥ ६१ ॥ बिजौराके रसमें हरड़ैका चूर्ण और खांड मिला पीनेसे पित्तसे उपजी खांसी और वमन दूर

होती है ॥ ६२ ॥ दाह तथा भ्रमवाली घोर पित्तकी छर्दिको देखि तहां अमलतासके पत्तोंके रसमें शहद और खांड मिला पीना ॥ ६३ ॥ तथा नागरमोथा, खांड ये मिला दूधका पीना श्रेष्ठ कहा है ॥ ६४ ॥

अथ कफकी छर्दिकी चिकित्सा ।

जम्ब्वाम्रकप्रवालानि दाडिमामलकं तथा ॥ मस्तुनोपोषितं पानं हन्याच्छ्लेष्मवमिं नृणाम् ॥ ६५ ॥ सर्जार्जुनंधवकदम्बकलोलचूर्णं धान्याकशुण्ठिसहितं सगुडं प्रदद्यात् ॥ श्लेष्मोद्भवं वमनमाशु निहन्ति पुंसां लेहस्तथा मधुकणाक्रिमिहाशटीनम् ॥ ६६ ॥

जामुन, आंब इनके कोमल पत्ते, अनारदाना, आंवला, इनको दहीके मस्तुमें पीस पीनेसे मनुष्योंको कफसे उत्पन्न हुई छर्दि दूर होती है ॥ ६५ ॥ और रालवृक्ष, अर्जुनवृक्ष, धव कदंब, कंकोल, सूंठ, धनियां इनका क्वाथ बना गुड़ मिला पीनेसे कफसे उपजी छर्दि दूर होती है और कचूर, पीपल, शहद, वायविडंग इनका अवलेह बना चाटना हित है ॥ ६६ ॥

अथ एलादिचूर्ण ।

एलालवङ्गगजकेसरकोलसर्जालाजाप्रियङ्गुघनचन्दनपिप्पलीनाम् ॥ चूर्णानि मार्कवसितासहितानि लीढ्वा छर्दिं निहन्ति कफमारुतपित्तजाश्च ॥ ६७ ॥ एलादलानि गजकेसरकत्वगेलालामज्जकं च दहनं च घनं प्रियङ्गुम् ॥ सच्चन्दनं मगधजासमचूर्णितश्च लीढ्वा सितासमत्रिदोषवमिं जघान ॥ ६८ ॥

इलायची, लौंग, नागकेसर, चव्य, रालवृक्ष, धानकी खील, गोंदी, नागरमोथा, चन्दन, पीपल, भांगरा इनके चूर्णमें मिसरी मिला चाटनेसे कफ वात पित्त इन दोषोंसे उपजी हुई छर्दि दूर होती है ॥ ६७ ॥ और इलायचीके पत्ते, नागकेशर, दालचीनी, इलायची, रोहिषतृण, चीता, नागरमोथा, गोंदी, चंदन, पीपल इनको समानभाग ले चूर्ण बना मिश्री मिला खानेसे त्रिदोषसे उपजी छर्दिका निवारण होता है ॥ ६८ ॥

अथ छर्दीकी शमनक्रिया ।

ऊर्ध्वभागगते दोषे रेचनं तु प्रशस्यते ॥ तस्मिञ्जातेऽप्यधोभागं वमनं शाम्यति ध्रुवम् ॥ ६९ ॥ अथवा द्विभागगते तदा देयाभया मधु ॥ क्रिमिजं वमनं ज्ञात्वा क्रिमीणां शमनक्रिया ७०

वमन व खांसीमें जो दोष उर्ध्वभागोंमें स्थित हो तो जुलाब दिवानी चाहिये और जो

अधोभागमें अर्थात् नीचेके स्थानोंमें दोष प्राप्त होवें तो वमन कराना श्रेष्ठ है ॥ ६९ ॥ और जो नीचे तथा ऊपर दोनों भागोंमें दोष स्थित हों तो हरड़े, शहद देने चाहिये और क्रिमियोंसे उपजे वमनको जानके क्रिमियोंको शांत करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ॥ ७० ॥

अथ छर्दिरोगमें पथ्यापथ्य ।

न चोष्णं नातिचाम्लं च न तीक्ष्णं न तथा लघु॥तन्दुलीयकशाकं वा न मद्यं काञ्जिकं न तु॥७१॥ वमिदोषे च कथितं पथ्यं चात्र शृणुष्व मे ॥ अनूपं शालिभक्तं च शतपुष्पा च वास्तुकम् ॥७२॥ आढकी मुद्गयूपश्च दधि गुडघृतान्वितम् ॥ अंगारमण्डका चाथ वमौ पथ्यं प्रशस्यते ॥ ७३ ॥ यथाबलं यथाकालं यथारोगं यथानलम्॥तथा दृष्ट्वा प्रकुर्वन्ति पथ्यानां समुपक्रमम्॥७४॥ दिवा निद्रां प्रयुञ्जीयाद्वमौ श्वासेऽतिसारके॥हिक्काशोषे तथाजीर्णे वमिक्लेदेऽथवा पुनः ॥ ७५ ॥ न चोष्णतोयपानञ्च नातिभोजनमेव च ॥ न धावनं न कर्त्तव्यं वर्जयेद्वमनार्दिते ॥७६॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने छर्दिचिकित्सा नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

गरम, अत्यंत खट्टा, तीक्ष्ण तथा हलका,चौलाईका शाक, मदिरा, कांजी इनको वमन रोगमें नहीं खावे ॥ ७१ ॥ अब वमनमें पथ्य कहते हैं सुनो । अनूपदेशके जीवोंका मांस, शालिसंज्ञक चावल, सोंफ, बथुवा ॥७२॥ तुरीधान्य, मूँगोंका यूप, दही, गुड़, घृत, अङ्गारोंमें सेके हुए मांडे ये वमनमें भोजन करने श्रेष्ठ हैं॥७३॥जैसा बल हो जैसा समय हो जैसा रोग हो जैसी जठराग्नि हो तैसे ही पथ्य भोजनोंको विचारके देवे ॥ ७४ ॥ वमन, श्वास, अतीसार इन रोगोंवाले पुरुषोंको दिनमें सुवावे और हिचकी, शोष, अजीर्ण, वमन, ग्लानि इन रोगोंमें भी दिनमें सोना श्रेष्ठ है ॥ ७५ ॥ गरम जल नहीं पीवे, ज्यादे भोजन नहीं करे और वमनसे पीड़ित पुरुषको दांतून नहीं करनी चाहिये ॥ ७६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने छर्दिचिकित्सानाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.



अथ तृषा और तालुशोषकी संप्राप्ति ।

आत्रेय उवाच ॥ भयश्रमाद्बलहीनाद्विदलरूक्षसेवनात् ॥ आतपे

वा ज्वरे जीर्णे क्षयाच्च क्षतजात्तथा ॥ १ ॥ एतैः संकुपिता दोषा वातपित्तकफास्त्रयः ॥ चतुर्थी क्षतजा प्रोक्ता पञ्चमी क्षयजा स्मृता ॥ २ ॥ अजीर्णात्षष्ठी संप्रोक्ता सप्तमी रूक्षसेवनात् ॥ अष्टमी स्याज्ज्वरोत्पन्ना लक्षणानि शृणुष्व मे ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–भय, श्रम, बलकी हीनता इनसे, विदल संज्ञक अर्थात् कुलथी आदि अन्नको सेवनेसे, घामसे और ज्वरसे, अजीर्ण और क्षतसे तथा क्षयसे ॥ १ ॥ इनसे कुपित हुए वातपित्त कफसे तीन प्रकारकी तृषा होती है और घावके होनेसे चौथी और क्षयसे उपजी पांचवीं तृषा होती हैं ॥ २ ॥ अजीर्णसे छठी और रूक्षपदार्थको सेवनेसे सतवीं और ज्वरसे उपजी आठवीं ऐसे तृषा कही हैं उनके लक्षणको मुझसे सुनो ॥ ३ ॥

अथ वातआदि दोषोंसे उपजी तृषाके क्रमसे लक्षण ।

क्षामः श्यावास्यता चाथ वैरस्यं वेपथुस्तथा ॥ वातेन सा भवेत्तृष्णा विज्ञेया भिषजां वरैः ॥ ४ ॥ शीततोयाभिलाषश्च भ्रमदाहप्रलापतः ॥ मूर्च्छा च लोहिते नेत्रे तृष्णा पित्तोद्भवा मता ॥ ॥ ५ ॥ निद्रा श्यावास्यतालस्यं बलासोष्णाभिलाषता ॥ घनश्यावांगशैत्यं च श्लेष्मणो जायते तृषा ॥ ६ ॥

कृश शरीर हो जावे और मुख काला हो जावे, मुखमें स्वाद आवे नहीं और कंप उपजे ये लक्षण होवें तब वातकी तृषा जाननी ॥ ४ ॥ शीतल पानीकी इच्छा रहे, भ्रम, दाह, प्रलाप, ये उपजे, मूर्च्छा हो, नेत्र लाल होजावें तब पित्तकी तृषा जाननी ॥ ५ ॥ नींद हो, मुख काला हो, कफ पडे, गरम चीजकी इच्छा रहे, कठिन और काला और शीतल ऐसा अंग होजावे तब कफकी तृषा जाननी ॥ ६ ॥

अथ त्रिदोषकी तृषाका लक्षण ।

हृक्छूलं वमते, दाहो भ्रमो वा शिरसो व्यथा ॥
वेपथुश्चाङ्गशैत्यञ्च त्रिदोषप्रभवा तृषा ॥ ७ ॥

नेत्रोंमें शूल चले, छर्दि आवे, दाह और भ्रम हो, शिरमें पीड़ा रहे, कंप हो, अंगोंमें शीतलता हो, तब त्रिदोषकी तृषा जाननी ॥ ७ ॥

अथ अन्यतृषाओंके लक्षण ।

वक्त्रशोषो भवज्जृम्भा शिरोऽर्त्तिर्गुरुतोदरे ॥ अजीर्णेनाथ मनुजे तृष्णा संलक्ष्यते गदः ॥ ८ ॥ रसक्षये यदा तृष्णा तथाक्षमक्षुधा-

तुरः ॥ ग्लानिः शोषो भ्रमः श्वासो दैन्यमाशु प्रवर्त्तते ॥ ९॥ क्षतक्षयेषु या तृष्णा तस्यां नान्नाभिनन्दनम् ॥ अन्या ज्वरातुरे प्रोक्ता तृष्णा सा ज्वरवेगजा ॥ १० ॥ अन्यातिसारे शूले वा तृष्णा ज्ञेया भिषग्वरैः ॥ ११ ॥

मुखमें शोष हो और जँभाई आवे, शिरमें पीड़ा हो, पेट भारी रहे तब अजीर्णकी तृषा जाननी ॥ ८ ॥ शरीर कृश हो, भूखसे पीडित रहे, ग्लानि, शोष, भ्रम, दीनपना ये शीघ्र उपजें तब रसके क्षयसे उपजी तृषा जाननी ॥९॥ घावसे उपजी तृषामें अन्नमें रुचि न हो, ज्वररोगवालेके ज्वरके वेगसे उपजी तृषा होती है ॥ १० ॥ अतीसारसे और शूलसे भी उपजी तृषा जाननी ॥११॥

अथ असाध्यतृष्णाका लक्षण ।

तृष्णातिसारवमनदाहमूर्च्छाभ्रमशोषोद्भवा ॥
तोयेन न याति तृप्तिमसाध्यां तां विजानीहि ॥ १२ ॥

अतीसार, छर्दि, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, शोष इनसे उपजी जो तृषा पानीसे शांत नहीं होवे तब वह असाध्य जाननी ॥ १२ ॥

अथ वातकी तृषाकी चिकित्सा ।

तृष्णां वातोद्भवां दृष्ट्वा शस्यते सगुडं दधि॥सगुडं वामृताक्वाथ पीतं वाततृषापहम् ॥ १३ ॥ शुण्ठी च जीर्णा सह शृङ्गवेरं जलेन सौवर्चलयुक्तकल्कः ॥ पिबेत्कषायं च सुशीतलं वा वातोद्भवां चाशु निहन्ति तृष्णाम् ॥ १४ ॥

वातकी तृषा देख गुड़सहित दही हित है अथवा गिलोयके क्वाथमें गुड मिला पीवे। यह वातकी तृषा शांत होती है ॥ १३ ॥ सूंठ, जीरा, अदरख, कालानमक इनका पानीसे पीस कल्क बनावे अथवा काथ बना पीनेसे वातकी तृषा शांत हो जाती है ॥ १४ ॥

अथ पित्तकी तृषाकी चिकित्सा ।

काश्मर्यं पद्मकोशीरं द्राक्षा मधुकचन्दनम् ॥ वालकं शर्करायुक्तं क्वाथं पित्ततृषापहम् ॥ १५ ॥ वटद्रुमो रोध्रसिता च चन्दनं सदाडिमं तण्डुलधावनेन ॥ पिष्टश्च शीतेन जलेन वापि पीतं च पित्तोत्थतृषापहश्च ॥ १६ ॥ कुष्ठमुत्पललाजां च न्यग्रोधस्य प्ररोहकान् ॥ संचूर्ण्य शर्करायुक्ता गुटिका तृण्णिवारणी ॥१७॥

द्राक्षोत्पलं सयष्टीकं शस्तं चेक्षुरससेवनात् ॥ पीतं पित्तोद्भवां तृष्णां हन्ति दाहञ्च पित्तजम् ॥ १८ ॥ आकण्ठं शर्करायुक्तं तथा क्षीरं पिबेन्नरः ॥ वमनञ्च तदा कुर्य्याद्धन्ति तृष्णां सपैत्तिकीम् ॥ १९ ॥ लोष्ठप्रततोयञ्च निर्वाप्य शीतलं कृतम् ॥ पिबेत्तृष्णाविनाशाय जलं वा चन्दनान्वितम् ॥ २० ॥

कंभारी, कमल,खस,दाख,मुलहटी,चंदन,नेत्रवाला इनके काथमें खांड़ मिला पीवे यह पित्तकी तृषाको हरता है ॥ १५ ॥ वडके कोंपल, लोध, मिश्री, चंदन, अनारदाना इनको चावलोंके पानीसे अथवा शीतल पानीसे पीस पीवे । यह पित्तकी तृषाको हरता है ॥१६ ॥ कूठ,नीलाकमल, धानकी खील, वडकी कोंपल इनके चूर्णमें खांड मिला गोली बांधै । ये गोली पित्तकी तृषाको हरती है ॥ १७ ॥ दाख, नीलाकमल, इनका और मौरेठीका चूर्ण अथवा ईखका रस सेवनेसे पित्तकी तृषा और पित्तका दाह शांत होता है ॥ १८ ॥ खांडसे युक्त किये दूधको कंठतक पीवे पीछे वमन करे तब पित्तकी तृषा शांत होती है ॥ १९ ॥ जलीहुई माटीको या राखको, लोहको या वालूरेतको गरम कर पानीमें बुझावे पीछे शीतल कर पीवे अथवा चंदनसे युक्त किये पानीको पीवे तब पित्तकी तृषा शांत होती है ॥ २० ॥

अथ कफकी तृषाकी चिकित्सा ।

जम्ब्वाम्रकप्रवालानि तथा लाजा च चन्दनम् ॥ धातकीकुसुमानि स्युः पिष्टवासारसंयुतः ॥२१॥ ॥ श्लेष्मतृष्णापहो लेहो दाहमूर्च्छाभ्रमापहः ॥ पिबेच्चाढकीयूषञ्च लाजाशर्करयान्वितम् ॥२२॥ क्षीरपानं समरिचं जलं वा मरिचान्वितम् ॥ श्लेष्मतृष्णाविनाशाय पिबेद्वा कोलकं पयः ॥ २३ ॥

जामुन और आंबकी कोंपल, धानकी खील, चंदन, धवके फूल इनको वांसाके रसमें पीस चाटे । यह अवलेह कफकी तृषा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम इनको नाशता है ॥ २१ ॥ धानकी खीलोंसे संयुक्त किये अरहरके यूषमें खांड़ मिला पीवे अथवा मिरचोंसहित दूधको पीवे ॥ २२ ॥ अथवा मिरचोंसहित पानीको पीवे अथवा वड़वेरीके पत्तोंके रसको पीवे तब कफकी तृषा नष्ट होजाती है ॥ २३ ॥

अथ त्रिदोषकी तृषाकी चिकित्सा ।

दुरालभा पर्पटकं प्रियङ्गु लोध्रद्रुमं त्र्यूषणकं सकुष्ठम् ॥ काथः सुशीतो मधुशर्करायास्तृष्णां त्रिदोषप्रभवां निहन्ति ॥ २४ ॥

कालदाडिमवृक्षाम्लाः सारिवा समशर्करा ॥ पथ्या दाडिमचूर्णं वा मातुलुङ्गरसान्वितम् ॥ २५ ॥

जवासा, पित्तपापडा, कांगनी, लोध, सूंठ, मिर्च, पीपल, कूठ इनके काथको शीतल कर उसमें शहद और खांड मिला पीवे यह त्रिदोषकी तृषाको नष्ट करता है। कालाअनार, वृक्षाम्ल और सारिवा इनके समान भाग शर्कराका चूर्ण खावे अथवा सूंठ और अनारका चूर्ण बिजौराके रसके साथ खावे ॥ २५ ॥

अथ तालुशोषकी चिकित्सा।

काष्ठपात्रे शृतं सम्यक्छीतलं सलिलं तथा ॥ मर्दितं बहुवेलां तु तत्पानीयं च पाययेत् ॥ २६ ॥ तालुशोषे घृतं तच्च दापयेच्च भिषग्वरः॥तृष्णादाहभ्रमच्छर्दिशोषमूर्च्छां व्यपोहति ॥ २७ ॥ क्षतजां क्षयजां तृष्णां वारयत्याशु निश्चितम् ॥ २८ ॥

गरम किये पानीको काष्टके पात्रमें घाल बहुत देरतक मर्दितकर पीवे ॥ २६ ॥ और उसी पानीमें घृतको सिद्धकर वैद्य तालुशोषमें देवे यह तृषा, दाह, भ्रम, छर्दि, शोष, मूर्छा इनको नाशता है ॥ २७ ॥ क्षतसे और क्षयसे उपजी तृषाको शीघ्र दूर करता है ॥ २८ ॥

अथ दाडिमकोल।

दाडिमं कोल चुक्रीका वृक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ॥
रसं चैव तथा पथ्यायुक्तं तालुप्रलेपनम् ॥ २९ ॥

अनार, बेर, चूका, बिजौरा, अम्लवेतसके रसमें हरडेका चूर्ण मिला तालूपर लेप करै ॥ २९ ॥

अथ तृष्णाआदिकोंकी साधारण चिकित्सा।

वारयत्याशु शोषं च तृष्णां हन्ति च सज्वराम्॥केसरं मातुलुङ्गस्य पिष्टं तण्डुलवारिणा ॥३०॥ प्रतप्तमधुना तालुलेपो मुखशोषापहः ॥ मधुशर्करया तालुलेपो शोषनिवारणः ॥ ३१ ॥ पद्मकन्दश्शृतालेपः शीतः शीतलवारिणा ॥ तालुशोषं निहन्त्याशु जम्ब्वाम्रपल्लवानि च ॥ ३२ ॥ निम्बान् वा मातुलुङ्गान् वा सौवीरं नागराणि च ॥ तृषार्त्तपुरतो भक्षेन्न देयं तस्य धीमता॥३३॥ दर्शनात्तस्य चास्ये च लाला प्रस्रवते भृशम् ॥

तेनास्य शोषं हरति तृष्णामपि नियच्छति ॥३४॥ रक्तशाल्योदनं शस्तं दधिशर्करयान्वितम्॥भोजनञ्च प्रशस्तं च न क्षारं कटुकं पुनः॥३५॥शोषे च च्छर्दितृष्णायां श्रमे पानात्ययेऽपि च॥अतीसारे च शोषे च दिवा निद्रा सुखावहा ॥३६॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने तृष्णातालुशोषचिकित्सा नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

विजौराकी केशरको चावलोंके पानीसे पीस पीनेसे तालुशोष और ज्वरसहित तृषा शांत होती है ॥ ३० ॥ गरम किये शहदसे तालुपर लेप करे यह मुखशोषको नाशता है,शहद और खांडसे तालूपर लेप करे यह मुखके शोषको दूर करता है ॥ ३१ ॥ कमलकंदको शीतल पानीसे पीस लेप करे अथवा जामन और आंवके पत्तोंको पीस लेप करे तब तालुशोष शांत होता है ॥ ३२ ॥ नींबू, विजौरा, कांजी, सूंठ, इनको इस रोगवालेके आगे खावे परंतु उस रोगीको नहीं देना ॥ ३३ ॥ इनके देखनेसे रोगीके मुखमें अत्यंत लाल झिरने लगती है उससे तृषा और शोष दूर होता है ॥ ३४ ॥ दही और खांडसे संयुक्त किये लाल शालिचावल इसरोगमें भोजन करने श्रेष्ठ हैं, खारा और चर्चरेको फिर नहीं खावे ॥ ३५ ॥ शोष, छर्दि, तृषा, परिश्रम, पानात्यय इन रोगोंमें दिनकी नींद सुखको देती है ॥ ३६ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने तृषातालुशोषचिकित्सानाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.



अथ मूर्च्छाकी संप्राप्ति।

आत्रेय उवाच॥वेगाभिघातातिनिरोधकेन क्षीणक्षताच्च तृषितेन वापि॥विरुद्धयुक्तान्नविभक्षणेन दोषःप्रदुष्टःप्रकरोति मूर्च्छाम्॥१॥ पञ्चेन्द्रियाणां संलग्नाः प्रत्येके द्वादशादयः ॥ पञ्चेन्द्रियाणां सहिता नाडिकाः षष्टिसंख्यया॥२॥रुन्धंति नाडिकाद्वारं तेन चेतो विमूर्च्छति॥संज्ञानाशाद्भवेच्छीघ्रं निश्चेताश्च सदा नरः॥३॥पतति काष्ठवत्तूर्णं मोहमूर्च्छा निगद्यते ॥ सा षड्विधा समुद्दिष्टा वातपित्तकफात्तथा॥४॥ शोणितादभिघा-

तन मद्येनाथ विषेण वा॥एतेषां कोपयेत्पित्तं मरुद्रक्तं समीरितम् ॥५॥ संख्यादौर्बल्यकं तेन मूर्च्छा मोहःप्रकथ्यते॥ कथयामि समासेन लक्षणानि पृथक्पृथक् ॥ ६ ॥

आत्रेय कहते हैं—विषयआदि वेगके अभिघातसे,मूत्रआदिको रोकनेसे, क्षीण क्षतसे, तृषाकी पीडासे, विरुद्ध अन्नको सेवनेसे दुष्टहुआ वातआदि दोष मूर्च्छाको करता है॥ १ ॥ अलग २ बारहनाड़ी पांचों इन्द्रियोंमें लगीहुई हैं एसे साठ नाड़ी जाननी ॥ २ ॥ जब दुष्ट हुए दोष नाड़ियोंके द्वारको रोकते हैं तब मनुष्य मूर्च्छाको प्राप्त होते हैं। संज्ञाके नाश होनेसे शीघ्रही जड़रूप मनुष्य होजाता है ॥ ३ ॥ और काष्ठकी तरह मनुष्य शीघ्र गिर पड़ता है उसको मोहमूर्च्छा कहते हैं वह छःप्रकारकी कही है ॥ ४ ॥ वातकी, पित्तकी, कफकी, रक्तकी, चोटकी, मदिराकी अथवा विषकी, ऐसे मूर्च्छा हैं। वायु और रक्तसे प्रेरित किया पित्त इन मूर्च्छाओंको कोपित करता है॥ ५ ॥ ऐसे गिनती है अब इस मोहमूर्च्छाके लक्षणोंको विस्तारसे पृथक् २ कहता हूं ॥ ६ ॥

अथ मूर्च्छाका लक्षण।

नीलं कृष्णारुणं पश्येत्तमः प्रविशति क्षणात् ॥
कम्पो मार्दवमेतासां क्षणेन प्रतिबुध्यति ॥ ७ ॥

नीला, काला,लाल ऐसे रंगको देखे और क्षणभरमें अंधेरीको प्राप्त होवे,कंप हो और शरीर शिथिल होजावे और क्षणभरमें जागे ये मूर्च्छाके लक्षण हैं ॥ ७ ॥

अथ वातजआदिमूर्च्छालक्षण।

वातेन मूर्च्छा भवति कृशता विकृतास्यता ॥
नेत्रस्रावश्च मृष्टिश्च आध्मानश्च भवेत्क्षणम् ॥ ८ ॥

शरीर कृश होवे, मुख विकारको प्राप्त हो, नेत्रोंमें पानी झिरे और शरीरमें हड़फूटन होवे और क्षणभरमें पेटपर अफारा हो तब वातकी मूर्च्छा जाननी ॥ ८ ॥

अथ पित्तजमूर्च्छा।

पीतश्च नीलहरितं तमः प्रविशते भृशम्॥ सन्तापश्च पिपासा च रक्ते पीते च लोचने ॥९॥ सस्वेदं शरीरं चापि श्रमःसंभिन्नवर्चसाम्॥पित्ताद्भवति मूर्च्छात्वं जायते च शिरोव्यथा॥१०॥

पीला, नीला, हरा ऐसे अंधेरेमें प्राप्त हो, संताप और पिपासा हो, लाल और पीले नेत्र हो जावें ॥ ९ ॥ पसीना आवे, श्रम हो,पतला मल उतरे और शिरमें पीडा हो तब पित्तकी मूर्च्छा जाननी ॥ १० ॥

अथ कफजमूर्च्छा ।

धूम्राकुलां दिशं पश्येत्तमः पश्यति यः पुरः ॥ नेत्राकुलत्वं मन्दाग्निस्तमोऽङ्गेषु च शीतता ॥ ११ ॥ चिरात्प्रबुध्यतेऽत्यर्थं कण्ठश्च घुर्घुरायते ॥ हृल्लासमूर्च्छा भवति कफजा च विलक्षणैः ॥ १२ ॥

धूमासे व्याप्त हुई दिशाको देखे और आगे अंधेरीको देखे, नेत्र व्याकुल होवें,मदाग्नि हो, अंगोंमें भी मन्दपना और शीतलपना हो ॥ ११ ॥ बहुत देरमें जागे, कंठमें घुर्घुर शब्द होवे, थुकथुकी होवे तब कफकी मूर्च्छा जाननी ॥ १२ ॥

अथ सान्निपातजमूर्च्छा ।

सन्निपातादपस्मारो दृश्यते भिषजांवर ॥
स प्राणिनां घातयति रक्तेन सहितो यदि ॥ १३ ॥

हे वैद्यवर ! सन्निपातसे मृगी रोग दीखता है वह रक्तसे मिलके जीवोंको नाशता है॥ १३॥

अथ रक्तगन्धजमूर्च्छा ।

रक्तगन्धेन मूर्च्छन्ति तेन मूर्च्छा शिरोव्यथा ॥
कम्पते नष्टचेष्टत्वं जल्पते वमते पुनः ॥ १४ ॥

रक्तकी गन्धसे उपजी मूर्च्छामें शिरपीडा होती है, रोगी कांपता है, चेष्टा नष्ट हो जाती है, ज्यादे बोलता है और वमन करता है ॥ १४ ॥

अथ मद्यादिजन्यमूर्च्छा ।

विभ्रान्तचेता रक्ताक्षः स्वप्नशीलः सुरावशः ॥१५॥ क्षतक्षयाद्भवेच्चान्या कोद्रवान्ननिषेवणात् ॥ जायते मोहमूर्च्छा च तेन निद्राति दुर्मनाः ॥ १६ ॥

मदिरासे उपजी मूर्च्छामें भ्रमते हुए चित्तवाला और लाल नेत्रोंवाला और शयन करनेको चाहनेवाला ऐसा मनुष्य होजाताहै ॥ १५ ॥ क्षतक्षयसे और कोदूआदि अन्नसे उपजी मूर्छामें अत्यंत नींद आती है और मन बिगड़ जाता ॥ १६ ॥

मूर्च्छा, भ्रम, निद्रा और तंद्रा इन्होंका हेतु ।

पित्तोत्तमाद्भवति वै मनुजस्य मूर्च्छा पित्तप्रभञ्जनभवं भ्रममेव पुंसाम् ॥वातात्कफात्तमयुता मनुजस्य तन्द्रा निद्रा कफानिलतमा भजते नरस्य ॥ १७ ॥

मनुष्यको पित्तके अत्यंतपनेसे मूर्च्छा होती है और मनुष्योंके पित्त और वातसे उपजा भ्रम होता है, वात और कफसे अंधेरी करके युक्तहुई तंद्रा होती है और कफ वात और तम इनसे ही नींद होती है ॥ १७ ॥

अथ मूर्च्छाकी चिकित्सा।

स्वेदाग्निपङ्क्विधिमर्दनवातशान्त्यै शीतान्नपानव्यजनानिलपित्तशान्त्यै॥कषायबहुलस्य सदा प्रशस्तं श्लेष्मोद्भवा विनिहिता भ्रममूर्च्छना वा ॥१८॥ पाययेत्रिफलाक्काथं शीतं शर्करया युतम्॥दुरालभायाःक्काथश्च पाययेच्छर्करान्वितम्॥१९॥

पसीना, मालिस, मर्दन ये वातकी मूर्च्छामें हित हैं, शीतल अन्न और पान, बीजनाकी पवन ये सब पित्तकी मूर्च्छामें हित हैं, कसेला पदार्थका पान कफकी मूर्च्छामें हित है ॥१८॥ त्रिफलाके शीतलक्काथमें खांड मिला पीवे अथवा जवासाके क्वाथमें खांड मिला पीवे ये दोनों क्वाथ मूर्च्छाको हरते हैं ॥ १९ ॥

अथ रक्तमूर्च्छाआदिकोंको उपाय।

कणां कोलस्य मज्जाञ्च केसरोशीरचन्दनम्॥पिष्ट्वा शीताम्बुना खण्डपानं हन्ति विमूर्च्छितम् ॥२०॥रक्तजां मूर्च्छनां दृष्ट्वा विधेयः शीतलो विधिः॥क्षयजे दुर्बले क्षीणे मूर्च्छापोषणकारणम्॥२१॥ नष्टचेष्टात्वमापन्ने नरे संचेतनक्रिया ॥ संपीड्य च नवाङ्गुष्टं नासिकां च प्रपीडयेत् ॥ २२ ॥ दन्तैर्वा सन्दंशैर्वापि शनैर्गात्रं प्रपीडयेत् ॥ दाहयेद्वा ललाटे तु पृष्ठदेशे च भालके ॥ २३ ॥ एवं न सिध्यते वापि तदा चान्दोलनं हितम् ॥ २४ ॥

पीपल, बेरकी मजा, नागकेसर, खस, चंदन इनको शीतल पानीसे पीस और खांड मिला पीवे यह मूर्च्छाको नाशता है ॥ २० ॥ रक्तसे उपजी मूर्च्छाको देखके शीतल विधि करनी चाहिये। क्षयवाला, दुर्बल,क्षीण इनके मूर्च्छाकी रक्षाका कारण करना ॥ २१॥ जब मूर्च्छासे मनुष्यकी संज्ञा जाती रहे तब मनुष्यको चेतन करानेकी क्रिया करे. अँगूठेको पीडित कर पीछे नासिकाको पीडित करना ॥ २२ ॥ दंतोंसे अथवा नखआदिसे धीरेधीरे शरीरको पीडित करना अथवा मस्तकमें और पृष्ठभागमें दाग देवे ॥ २३ ॥ जो ऐसे भी सिद्धि नहीं होवे तो आंदोलन क्रिया करनी हित है अर्थात् हिंडोलेसे झुलाना हित है ॥ २४ ॥

अथ नष्टसंज्ञमूर्च्छितकी चिकित्सा ।

मूर्च्छातुरं सकलशीतजलेन सिञ्चेत्संवीजयेच्च शिखिपिच्छकवीजनैस्तु॥ दोलायनं हि विहितं मनुजस्य मूर्च्छां मोहं भ्रमञ्च हरते च मदात्ययं वा ॥ २५ ॥

मूर्च्छासे पीडित हुए मनुष्यको शीतल पानीसे सींचे और मोरकी पंखोंके वीजनेसे हवा करे और दोलायन अर्थात् हिंडोलाके द्वारा झुलानेसे मूर्च्छा, मोह, भ्रम, मदात्यय इनका नाश होता है ॥ २५ ॥

अथ मूर्च्छा मद भ्रम इनकी चिकित्सा ।

करञ्जबीजं सह सैन्धवेन रसोनपत्रस्य रसं च यत्र ॥ मार्कं च पथ्यञ्च वचां जलेन पिष्ट्वाञ्जनं हन्ति दिनस्य तन्द्राम् ॥२६॥ घोटकलालामरिचं लवणयुतं नेत्रयोरञ्जनं शस्तम्॥ विनिहन्ति दिनशतं तन्द्रां निद्रां वा मानुषस्य ॥२७ ॥ सुगन्धं सुकषायोपयुक्ता रसत्रिफला गुडार्द्रकं प्रातः ॥ सप्ताहान्मधुरजलं हन्ति मदमूर्च्छाकरानुन्मादान् ॥ २८ ॥ रक्तकर्षणमिच्छन्ति मोहमूर्च्छाप्रशान्तये ॥ तस्मादवहितः कुर्य्यात्तासु रक्तावसेचनम् ॥ २९ ॥

करंजुआके वीज, सेंधानमक, लहसनके पत्ताका रस, भंगरा, हरड़े, बच, इनको पानीसे पीस अंजन करनेसे तंद्रा दूर होती है ॥ २६ ॥ घोड़ाको लालोंसे काली मिर्च और सेंधानमकको पीस नेत्रोंमें आँजनेसे सौ १०० दिनोंतक मनुष्यकी तंद्रा और नींद दूर हो जाती है ॥ २७ ॥ चंदन, हरड़े, बहेड़ा, आंवला, गुड़, अदरख इनको प्रभातमें खाके ऊपर मधुर जलको पीनेसे मद और मूर्च्छाको करनेवाले उन्माद दूर होते हैं ॥ २८ ॥ कुशल वैद्य मोह और मूर्च्छाकी शांतिके लिये रक्तको घटाना चाहते हैं इसवास्ते मोह मूर्च्छारोगमें सावधान मनुष्य रक्तको निकसावे ॥ २९ ॥

अथ मूर्च्छादिकोंके साधारण उपाय ।

शीतसेकावगाहाद्याञ्श्रीखण्डं व्यजनानिलान् ॥ शीतानि चान्नपानानि सर्वमूर्च्छासु योजयेत् ॥ ३० ॥ शर्करेक्षुरसद्राक्षावातमूर्च्छाप्रपानकैः॥काश्मर्य्यमधुकैरेव पित्तमूर्च्छां जयेन्नरः ॥ ॥ ३१ ॥ यष्ट्याः क्राथं शृतं सर्पिः शृतं वामलकीरसम् ॥ पिबे-

द्रुसं सितालाजायुक्तं चोषणं च शीतलम् ॥३२॥ मधुना हन्ति च मूर्च्छाः सालेपैश्च प्रबोधयेत् ॥३३॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मूर्च्छाचिकित्सा नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

शीतल पानीको सेक, शीतल पानीमें स्नान करना, सफेद चंदन, वीजनाकी पवन, शीतल अन्न और पान ये सब प्रकारकी मूर्च्छामें योजित करने ॥ ३० ॥ खांड, ईखका रस, दाख, इनसे वायुकी मूर्च्छाको दूर करे, खँभारी और मुलहटीसे पित्तकी मूर्च्छाको दूर करे। ॥ ३१ ॥ मुलहटीके काथमें पकाया हुआ घृत अथवा आंवलोंके रसमें धानकी खीलोंका चूर्ण और मिश्री मिला पीवे ॥ ३२ ॥ अथवा शहद मिला पीवे तो मूर्च्छा दूर होती है और मूर्च्छारोगीको सुन्दर आलापोंसे जगाना श्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

अथ निद्राचिकित्सा।

आत्रेय उवाच॥दिवा निद्रा तथा तंद्रा धुरिणां नृत्यहास्यभिः। गीतैश्च शान्तिमायाति नात्र कार्या विचारणा॥ यदा रात्रौ न निद्रा स्यात्तदा कुर्य्यादिमां क्रियाम् ॥ १ ॥ काकमाच्यास्तु मूलञ्च शिखां बद्ध्वा भिषग्वरः॥अधोमुखीं शिखां बद्ध्वा निद्रां जनयति निशि ॥ २ ॥ मस्तुना पादतलको मर्दयेन्निद्रयार्थिनाम् ॥ यस्य नो दिवसे निद्रा तस्य निद्रा निशासु च ॥ ३ ॥ भयचिन्तया च लोभेन या निद्रा न भवेन्निशि ॥ तां चिन्तां च परित्यज्य निद्रा संजायते क्षणात् ॥ ४ ॥ सिंही व्याघ्री सिंहमुखी काकमाची पुनर्नवा॥वार्त्ताकीनां च मूलानां क्वाथो निद्राकरो नृणाम् ॥ ५ ॥ काकजंघा चापामार्गः कोकिलाक्षः सुपर्णिका ॥क्वाथो निद्राकरः शीघ्रं मूलं वा बन्धयेच्छिखाम् ॥ ६ ॥इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने निद्राचिकित्सा नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-बैल और घोड़ाआदिके बोलनेसे, नाचनेसे, हास्य करनेसे दिनकी नींद और तंद्रा दूर होती हैं और जो रात्रिमें नीद नहीं आवे तब इस क्रियाको करना ॥ १ ॥ काकमाचीकी जड़को चोटीपर बंधानेसे अथवा चोटीके मुखको नीचेकी तर्फ कर बांधनेसे रात्रिको नींद आ जाती है ॥ २ ॥ नींदकी इच्छावालोंके पैरोंके तलुवोंको दहीके पानीसे मर्दित करे और जिसको दिनमें नींद नहीं आती है उसको रात्रिमें नींद आजाती है ॥३॥ भय, चिंता, लोभ, इनसे जो रात्रिमें नींद नहीं आवे तब भय, चिंता, लोभ इनको त्यागनेसे नींद आती है ॥४॥ कटेहली, बड़ी कटेहली, बांसा,मकोहविशेष,सांठी,वार्ताकुनामक कटेहलीका भेद इनकी जड़ोंका क्वाथ मनुष्योंको नींद प्राप्त करता है ॥ ५ ॥ काकजंघा, ऊंगा, तालमखाना, सालवण, इनका क्वाथ बना पीवे अथवा इनकी जड़ोंको शिखा अर्थात् चोटीपर बंधावे ॥ ६ ॥

इति वैरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने निद्राचिकित्सानाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.



अथ मदात्ययचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ हालाहलाहलसमं भजते वियोगात् तत्सेवया तु मनुजस्य महापकारः ॥ तृष्णा[1] वमिः श्वसनमोहनदाहतृष्णा संजायतेऽतिसरणं विकलेन्द्रियत्वम् ॥ १ ॥ ये नित्यं सेवनाद्दुष्टा मद्यस्य मनुजा भृशम् ॥ विषमाहारसदृशी सुरा मोहनकारिणी ॥२॥ यथा विषं प्राणहरं वियोगाद्योगेन तं चाप्यमृतं वदन्ति॥तथा सुरा योगयुता हिता स्यादयोगतश्चारभतेऽतिकष्टम् ॥३॥ क्षुधातुरे तृषाक्रान्ते सुरा वा भोजनं विना ॥ न च क्षीणैर्विना भक्त्या विनाहारातिपानकम् ॥४॥ अत्यशनेऽप्यजीर्णेऽपि सुरा पीता रुजाकरी ॥ ५ ॥

विशेषयोगसे मदिरा हलाहलविषके समान फलको देती हैं और मदिराको अत्यन्त पीनेसे तृषा, छर्दि, श्वास, मोह, दाह, अतिशरणपना, इन्द्रियोंका विकलपना ये उपजते हैं ॥१॥ जो नित्य मदिराको पीते हैं उनको जो समयपर नहीं मिले तब वह मदिरा विषमभोजनके समान हो जाती है और मोहको करती है ॥२॥ जैसे बुरे योगसे विष प्राणोंको हरता है और अच्छे योगसे विष

---

१ तृष्णा पिपासा तथा अप्राप्ता भिलाषा च।

अमृतके समान हो जाता है वैसे ही योगसे युक्तकरी मदिरा हित है और अयोगसे युक्तकरी अत्यन्त कष्टको करती है ॥ ३ ॥ क्षुधासे पीडितको, तृषासे पीडितको, भोजनसे रहितको, क्षीणको, आहार और पानसे वर्जितको ॥ ४ ॥ भोजनपर भोजन करनेवालेको और अजीर्णवालेको पानकरी मदिरा रोगको करती है ॥ ५ ॥

अथ वातादिदोषजन्य मदात्यय।

यस्य प्रलपनं चापि वाचा वातमदात्ययः॥दाहमूर्च्छातिसारश्च ज्वरः पित्तमदात्यये ॥६॥ छर्द्यरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवम् ॥शीतता च प्रतिश्यायः कफजे च मदात्यये ॥ ७ ॥ त्रिषु दोषेषु समता लिंगैर्येषामुपक्रमः॥स त्रिदोषसमुद्भूतो मदात्ययो भिषग्वर ॥ ८ ॥

जिसके वहुत प्रलाप उपजे उसके वातका मदात्यय जानना और जिसके दाह, मूर्च्छा, अतीसार, ज्वर ये उपजें उसके पित्तका मदात्यय जानना ॥ ६ ॥ जिसके छर्दि, अरोचक, थुक्थुकी, तंद्रा, शरीरका गीलापन, भारीपन, शीतलपना, जुखाम ये उपजें उसके कफका मदात्यय जानना ॥ ७ ॥ जिसके तीन दोषोंके लक्षण मिलें उसके सन्निपातका मदात्यय जानना ॥ ८ ॥

मदात्ययकी चिकित्सा।

वमनं च प्रशस्तं च निद्रासंसेवनं पुनः ॥ स्नानं हितं पयःपानं भोजने सगुडं दधि॥ ९ ॥मस्तुखण्डं सखर्जूरं मृद्वीका सारिवाम्लिका ॥ आमला च परूषं च लेहो हन्ति मदात्ययम् ॥ १० ॥ द्राक्षामलकखर्जूरपरूषकरसेन वा ॥ कल्कयेत्पयसा तत्तु पानं सर्वमदात्यये ॥११॥ पथ्याक्काथेन संयुक्तं पयःपानं मदात्यये ॥ १२ ॥

वमन, नींदको सेवना, स्नान, दूधका पीना, भोजनमें गुड़ सहित दही ये मदात्ययमें हित हैं ॥ ९ ॥ दहीका पानी, खांड़, छुहारा, मुनक्का, सारिवा, अमली, आंवला, फालसा, इनकी चटनी मदात्ययको नाशती है ॥ १० ॥ दाख, आंवला अथवा छुहारा, फालसा इनके रस करके बनायी चटनी मदात्ययको नाशती है ॥ ११ ॥ सब प्रकारके मदात्ययमें दूधसे कल्क बना पीवे और मदात्ययरोगमें हरड़ैके क्वाथसे संयुक्त किये दूधको पीना हित है ॥ १२ ॥

अथ सुपारीके मदका निदान और चिकित्सा ।

पूगीफलमदे कम्पो मोहो मूर्च्छा क्लमस्तमः ॥ प्रस्वेदो विधुरत्वं च लालास्रावश्च जायते ॥१३॥ भ्रमक्लमपरीतत्वं विज्ञेयं पूगमूर्च्छिते ॥ मानवो लक्षणैरेभिर्ज्ञेयः पूगविमूर्च्छितः ॥१४॥ तस्य शीतं जलं पीतं बस्तिर्वा तु हितं भवेत् ॥ शर्करा भक्षणे देया मुस्ता वा शर्करान्विता ॥ १५ ॥

सुपारीके मदमें कंप, मोह, मूर्च्छा, ग्लानि, अँधेरी, पसीना, लारका पड़ना ये उपजते हैं ॥ १३ ॥ इन लक्षणोंके होनेसे मनुष्य सुपारीसे मूर्च्छित हुआ जानना । उसको शीतल पानीका पीना और बस्तिकर्म्म हित कहा है ॥ १४ ॥ इस रोगीको खानेवास्ते अकेली खांड़ अथवा नागरमोथासहित खांड़का देना हित है ॥ १५ ॥

अथ कोदूआदिसे उपजे मदात्ययकी चिकित्सा ।

कोद्रवाणां भवेन्मूर्च्छा देयं क्षीरं सुशीतलम् ॥ धत्तूरकमदे देयं शर्करासहितं दधि ॥१६॥ हलिनी करवीरं च मोहिनी मदयन्तिका ॥ अन्येषामपि कन्दानां वमनं चाशु कारयेत् ॥१७॥ पाययेच्छर्करायुक्तं क्षीरं वा दधि शर्कराम् ॥ १८॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मदात्ययचिकित्सा नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

कोदूसे उपजी मूर्च्छामें अच्छीतरह शीतल किया दूध हित है, धतूराके मदमें खांड़सहित दही हित है ॥ १६ ॥ कलहारी, कनेर, भांग, मोगरी, अन्य प्रकारके सब कंद इनके मदोंमें शीघ्र वमनको करवावे ॥ १७ ॥ अथवा खांड़से युक्त किये दूधको अथवा खांड़से युक्त करी दहीको पान करावे ॥ १८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने षोड़शोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

अथ दाहकी संप्राप्ति आदिक ।

आत्रेय उवाच ॥ समानः संक्रुद्धो रुधिरमपि पित्तं त्वचि गतं नरस्याङ्गे दाह्यं भवति नितरां घोरमपि च ॥ कदा दन्तोद्धर्षो

भवति मनुजां दाहउदये भवेच्छीतस्यार्तिः श्वसनमपि वा शो-
षमरतिः ॥ १ ॥ पित्तज्वरसमानानि लक्षणानि भिषग्वर ॥
पित्तज्वरवदारभ्य क्रिया दोषोपशान्तये ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-जब समान वायु और रक्त कुपित होता है और पित्त त्वचामें प्राप्त होता है तब मनुष्यके अंगोंमें घोर दाह उपजता है और दाहके उदयमें कभी २ दंतोंको घसता है और शीतलकी भी पीड़ा होती है,शोष और ग्लानि उपजती है ॥ १ ॥ हे वैद्यवर ! दाहरोगके लक्षण पित्तज्वरके समान होते हैं इस कारणसे दोषकी शांतिके लिये पित्तज्वरकी तरह क्रिया करनी चाहिये ॥ २ ॥

अथ दाहकी चिकित्सा ।

कुशकासेक्षुमूलानामुशीरं घनवालकौ ॥क्राथः शर्करया युक्तः शीतदाहं नियच्छति ॥३॥ पर्पटः सघनोशीरः क्वथितःशर्करान्वितः॥शीतपानं निहन्त्याशु दाहं पित्तज्वरं नृणाम्॥४॥लामज्जचन्दनोशीरैर्लेपनं दाहशान्तये ॥वीजयेत्तालवृन्तैश्च कदल्यम्भोजसंस्तरे॥५॥कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥शस्यते शीतलं वारि दाहतृष्णानिवारणम्॥६॥उत्तानस्य प्रसुप्तस्य नाभेरुपरि संदधेत्॥कांस्यपात्रमये सौख्यं धाराभिःशीतवारिणा॥७पूरयेत्सुरतं यत्नात्तेन सौख्यं समाप्नुते॥शतधौतं घृतमपि तद्दाहोपरि धारयेत्॥८॥मतिर्धात्रीफलं वापि जलशीतेन लेपनम्॥ दाहशोषातुरस्यापि लेह्यं वा सुखकारकम्॥९॥जम्ब्वाम्रपल्लवान्निम्बं बीजपूररसेन तु॥पिष्ट्वा प्रलेपनं दाहेशीघ्रं सुखमभीप्सते ॥१०॥धारागारमथापि शीतलशशी ज्योत्स्ना तु पानानि च वातः शीतलचन्दनं च कमलं प्रेमानुबन्धस्तथा॥रामागूहनमर्दनं स्तनयुगे शुक्लार्द्रवस्त्राणि च क्षीरं शर्करशङ्खलोहरजतं दाहप्रशान्त्यै हितम् ॥११॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने दाहचिकित्सा नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

डाभकी जड़, कांसकी जड़, ईखकी जड़, खस, नागरमोथा, नेत्रवाला इनके काथमें खांड मिला पीवे यह शीतसहित दाहको नाशता है ॥ ३ ॥ पित्तपापड़ा, नागरमोथा, खस इनके

काथमें खांड मिला पीवे परन्तु यह शीतकषाय बनाके पीना चाहिये । यह मनुष्योंके दाहको और पित्तज्वरको नाशता है ॥ ४ ॥ रोहिषतृण, चन्दन, खस इनका लेप दाहकी शांतिके लिये हित है और दाहवालेको केलाके या कमलपत्तोंकी सेजपर शयन करा ताड़के यामलके बीजनेसे हवा करवावे ॥५॥ दारुहलदीके रससे लेप करना दाहरोगमें हित है और शीतल पानी भी श्रेष्ठ है । वह तृषाको और दाहको निवारण करता है॥६॥ दाहवाले मनुष्यको सीधा शयन करा उसकी नाभिके ऊपर कांसीके पात्रको धर उसमें शीतल पानीकी धारा देनेसे सुख उपजता है ॥ ७ ॥ सुन्दर स्त्रीसे मिलाप होनेसे भी दाह दूर होता है और सौ सौ वार धोये हुए घृतकी मालिस करनेसे भी दाह दूर होता है ॥ ८ ॥ मचकनको अथवा आंवलाको शीतल पानीसे पीस लेप करावे अथवा चटावे तब दाहमें सुख होता है ॥ ९ ॥ जामन, आंब, नींब इनके पत्तोंको बिजौराके रससे पीस लेप करनेसे दाहरोगीको सुख मिलता है ॥ १० ॥ फुहारेका स्थान, चन्द्रमाकी शीतल चांदनी, शीतल पन्ने, शीतल वायु, सफेद चन्दन, कमल, प्रेमका होना, स्त्रीका मिलाप और स्त्रीकी चूंचियोंको मसलना, सफेद वस्त्रको गीला बना धारण करना, दूध, खांड, शंख, लोहा, चांदी ये सब दाहकी शांतिके लिये हित हैं ॥ ११

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने दाहचिकित्सा नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

अथ मृगीरोगकी संप्राप्ति आदिक ।

आत्रेय उवाच॥ पित्तं मरुच्च श्लेष्मा च उदानः कुपितो भृशम् ॥ प्राणः शिरसि संकुप्य कुरुते नष्टचेष्टताम् ॥१॥ प्राणान्नयत्यचैतन्यं नाडीं चेन्द्रियरोधनम्॥ पतते काष्ठवल्लोको मुखे लालां विमुञ्चति ॥ २ ॥ कण्ठश्च घुर्घुरायेत फेनमुद्गिरतेऽथवा॥ कम्पते हस्तपादौ च रक्तव्यावर्ति लोचनम् ॥ ३ ॥ अपस्मारे च लिङ्गानि जायन्ते भिषजां वर ॥ व्यावृत्तं लोचनं क्षामं तमो दाहः शिरोव्यथा ॥ ४ ॥ हताभेन्द्रियसंज्ञश्चापस्मारी विनश्यति ॥ ५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-पित्त, वात,कफ, उदानवायु ये अत्यन्त कुपित होके और प्राण-

---

१ यह एक तरहका शाक होता है ।

वायु शिरमें कुपित होके चेष्टाको नष्ट करते हैं ॥१॥ तब चेतन नहीं रहता और नाड़ी भी अचेत हो जाती है और इन्द्रियां रुक जाती हैं और काष्ठकी तरह मनुष्य गिर जाता है और मुखसे लार पड़ती है ॥ २ ॥ कण्ठमें घुर्घुर शब्द होता है अथवा झागको मुखसे गेरता है, हाथ और पैर कंपते हैं और रक्तसे विशेषकरके आवृत हुए नेत्र हो जाते हैं ॥ ३ ॥ हे वैद्यवर ! मृगीरोगमें ये लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥ जिसके नेत्र पलट जावें और शरीर रूखा हो जावे और अन्धेरी, दाह, शिरमें पीड़ा ये उपजें, इन्द्रियोंकी कांति और संज्ञा जाती रहे ऐसा अपस्मारी अर्थात् मृगी रोगी मर जाता है ॥ ५ ॥

अथ मृगीरोगकी चिकित्सा।

तस्य पानाञ्जनालेपमर्दनं पानमेव च ॥ अपस्मारे चोपचार्य्यं घृतं तैलं च धीमता ॥६॥ अगस्तिपत्रं मरिचं मूत्रेण परिपेषितम्॥नस्ये शस्तमपस्मारं हन्ति शीघ्रं नरस्य तु ॥७॥वन्ध्याकर्कोटिकामूल घृतं शर्करयान्वितम्॥नस्ये वापि प्रयोक्तव्यमपस्मारप्रशान्तये ॥ ८ ॥

इस रोगवालेके लिये कुशल वैद्यको पान करनेके पदार्थ, अंजन, आलेप, मर्दन, घृत, तैल, इनसे इलाज करना चाहिये ॥ ६ ॥ अगस्ति वृक्षके पत्तेको और काली मिर्चको गोमूत्रमें पीस नासिकामें चढ़ानेसे मृगीरोग शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥ बांझककोड़ी की जड़के रसमें घृत और खांड मिला नासिकामें चढ़ानेसे मृगीरोग शांत होता है ॥ ८ ॥

अथ कूष्माण्डलेह ।

कूष्माण्डखण्डाश्च रसेन पाचिताः सत्र्यूषणैलादलनागकेशरम्॥ कुसेधिकाग्रन्थकधान्यकानां समांशकेनापि सिता प्रयोज्या॥ ॥ ९॥ उषस्सु वै भक्षणकं विधेयं तस्योपरि क्षीरमितं प्रशस्तम्॥ विहन्त्यपस्मारविकारमाशु विनाशयेच्छीघ्रमसृग्विकारम्॥१०

जलसे पके हुए कोहलेके टुकड़े ले उसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, इलायची, तेजपात, नागकेशर, रानीमेथी, पीपलामूल, धनियां इन सबोंके चूर्ण मिला सबोंके समान मिश्री मिलावे, पीछे प्रभातमें खावे और उसके ऊपर प्रमाणसे दूधको पीवे। यह मृगी रोगको और रक्तके विकारको शीघ्र हरता है ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ कूष्मांडघृत ।

कूष्मांडब्राह्मी षड्ग्रन्था शंखपुष्पी पुनर्नवा ॥ सुरसासहितं

चूर्णं शर्करामधुसंयुतम् ॥ ११ ॥ अपस्मारविनाशाय भक्षणे हितमेव च ॥ उन्मादे पित्तरक्ते तु वन्ध्याया गर्भदायकम् ॥ १२ ॥

कोहला, ब्राह्मी, वच, शंखपुष्पी, सांठी, तुलसी इनके चूर्णमें खांड और शहद मिला ॥ ११ ॥ खानेसे मृगीरोग, उन्माद, रक्तपित्त इनका नाश होता है और वन्ध्याके गर्भ ठहरता है ॥ १२ ॥

अथ दीपघृत ।

रास्नामागधिकामूलं दशमूलं शतावरी ॥ शणत्रिवृत्तथैरण्डो भागान्द्विपलिकान्क्षिपेत् ॥ १३ ॥ यष्टीमधुकमृद्वीका शंखपुष्पी शतावरी ॥ रास्ना समङ्गा भृतकं त्रिसुगन्धश्च भीरुकम् ॥ १४ ॥ कुष्ठं वैतद्दीपकं च घृतं योज्यं भिषग्वरैः ॥ हन्त्यपस्मारमुन्मादं रक्तपित्तं गुदामयम् ॥ १५ ॥

रास्ना, पीपलामूल, शतावरी, शण, निशोत, अरंड ये सब आठ २ तोले लेने ॥ १३ ॥ मुलहटी, मुनक्का, शंखपुष्पी, शतावरी, रायसन, मंजीठ, दालचीनी, इलायची, तेजपात, शतावरीका भेद ॥ १४ ॥ कूठ इनमें घृतको पकावे । यह घृत मृगी रोग, उन्माद, रक्तपित्त, गुदाका रोग इनको नाशता है ॥ १५ ॥

अथ ब्राह्मीघृत ।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशंखपुष्पीभिरेव च ॥
पचेद्घृतं पुराणं च अपस्मारं नियच्छति ॥ १६ ॥

ब्राह्मीका रस, वच, कूठ, शंखपुष्पी इनमें पुराने घृतको पकावे । यह मृगी रोगको नाशता है ॥ १६ ॥

अथ अन्य उपाय ।

महाबलाद्यं तैलं च बस्तौ नस्ये प्रशस्यते ॥ शतावर्य्यादिकं चापि सदैव च हितं भवेत् ॥ १७ ॥ चन्दनाद्यं घृतं चैव प्रयोज्यं चात्र चोत्तमैः ॥ अपस्मारे वाप्युन्मादे वातरोगेऽथवा हितम् ॥ १८ ॥

महाबलादि तैल और शतावर्य्यादि तैल नस्यकर्म्ममें और बस्तिकर्ममें सदा हित है ॥ १७ ॥ मृगीरोग, उन्माद, वातरोग इनमें चन्दनादि घृत युक्त करना ॥ १८ ॥

अथ त्र्यूषणादि गुटिका ।

त्र्यूषणं त्रिफला हिङ्गु सैन्धवं कटुका वचा ॥ नक्तमालकबी-

जानि तथा च गौरसर्षपाः ॥ १९ ॥ वस्तमूत्रेण पिष्टैस्तु गुटिका छायाशोषिता ॥ अञ्जनं हन्त्यपस्मारमुन्मादं चैव दारुणम् ॥२०॥ स्मृतिभ्रंशभ्रमीदोषभूतदोषविनाशनम् ॥ ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च चातुर्थिकं ज्वरं हरेत् ॥ २१ ॥ हन्ति तिमिरपटलं रात्र्यान्ध्यंच शिरोरुजम्॥सन्निपातविस्मरणं चेतयत्याशु मानवम् ॥ २२ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरडै, वहेडा, आंवला, हींग, सेंधानमक, कुटकी, वच, करंजुवाके वीज, सफेद सरसों ॥ १९ ॥ इनको वकरेके मूत्रमें पीस गोलियां वना छायामें सुखावे। पीछे गोलीको घिस नेत्रोंमें आंजनेसे मृगीरोग, दारुणरूप उन्माद ॥ २० ॥ स्मृतिभ्रंश, भ्रम, भूतदोष, ऐकाहिकज्वर, द्व्याहिकज्वर चातुर्थिकज्वर ॥ २१ ॥ तिमिर, पटलगतरोग, रतौंध, शिरकी पीडा इनका नाश होता है और सन्निपातसे मूर्च्छित हुआ रोगी जागता है ॥ २२ ॥

चन्दनादि चूर्ण।

चन्दनं तगरं कुष्ठं यष्टीत्रिसुगन्धवासकम्॥मञ्जिष्ठाभीरुमृद्वीकापाठाश्यामाप्रियङ्गुभिः ॥ २३ ॥ स्वयंगुप्ता पीलुपर्णी विषा रास्ना गवादनी ॥ काकोल्यौ जीरकं मेदे पुष्करं घनवालुकम् ॥ ॥ २४ ॥ विदारी वासुमन्ती च वृद्धदन्ती विडङ्गकम् ॥ पद्मकं चैन्द्रवृक्षश्च तथारग्वधचित्रकम् ॥ २५ ॥ धान्यकं पञ्चजीरेण तथा तालीसपत्रकम् ॥ खदिरं निर्यासतगरं कालीयकं च कैथकम् ॥ २६ ॥ नागकेसरं परूषश्च खर्जूरं चैकत्र मर्दयेत् ॥ भावितं पुनरेवं च मधुना सघृतेन च ॥२७॥ लेहोऽयञ्च सदा शस्तश्चापस्मारेऽति दारुणे॥उन्मादे कामलारोगे पांडुरोगे हलीमके ॥ २८ ॥ राजयक्ष्मे रक्तपित्ते पित्तातीसारपीडिते ॥ रक्तातिसारे शोषे च शिरोरोगे सदाज्वरे ॥२९ ॥ तमकभ्रमके छर्दिदाहे च समदात्यये ॥ अश्मर्य्याञ्च प्रमेहेषु कासे श्वासे च पीनसे ॥ ३० ॥ एतेषां च प्रयोक्तव्यः सर्वरोगनिवारणः ॥ वन्ध्यानां च प्रयोक्तव्यो वृद्धानां च विशेषतः ॥३१॥ बालानां

च हितश्चैव शृणु चात्र प्रमाणकम् ॥ एवं प्रयोजितो रोगे महाकल्को मतो बुधैः ॥ ३२ ॥ बलवान्गुणवांश्चैव भवतीह फलप्रदः ॥ भिषग्भिः कथ्यते लेहः कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥ ३३ ॥

चंदन, तगर, कूठ, मुलहटी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, वांसा, मजीठ, शतावरी, मुनक्का, स्योनापाठा, कालीनिशोत, मालकांगनी ॥ २३ ॥ कौंचके बीज, मीठी तोरी, अतीश, रास्ना, इंद्रायन, काकोली, क्षीरकाकोली, जीरा, मेदा, महामेदा, पोहकरमूल, नागरमोथा, नेत्रवाला ॥ २४ ॥ विदारीकंद, शालवण, विधायरा, जमालगोटाकी जड, वायविडंग, पद्माक, इंद्रायणविशेष, अमलताश, चीता ॥ २५ ॥ धनियां, पांचों तरहके जीरे, तालीशपत्र, खर, तगर, दारुहलदी, कैथ ॥ २६ ॥ नागकेशर, फालसा, छुहारा ये सब समान भाग लेके मर्दित करने पीछे घृत और शहदमें मिला खावे ॥ २७ ॥ यह लेह भयंकररूपी मृगीरोग, उन्माद, कामला, पांडुरोग, हलीमक ॥ २८ ॥ राजरोग, रक्तपित्त, पित्तका अतिसार, शोष, शिरका रोग, सब कालमें रहनेवाला ज्वर ॥ २९ ॥ तमक, श्वास, भ्रम, छर्दि, दाह, मदात्यय, पथरीरोग, प्रमेह, खांसी, श्वासरोग, पीनस ॥ ३० ॥ इनमें प्रयुक्त करना चाहिये। यह सब रोगोंको निवारण करता है, वंध्या स्त्रियोंको और वृद्ध मनुष्योंको विशेष करके हित है ॥ ३१ ॥ और बालकोंको हित है ऐसे यह कल्क बुद्धिमानोंने माना है ॥ ३२ ॥ यह चूर्ण बलको देता है, गुणोंको प्रकाशित करता है। यह चूर्ण अथवा कल्क वृद्ध वैद्योंने कहा है और कृष्णात्रेयजीने पूजित किया है ॥ ३३ ॥

अथ द्राक्षावलेह।

द्राक्षा दारु तथा निशा च मधुकं कृष्णा कलिंगा त्रिवृद्यष्टीका त्रिफला विडंगकटुकासृक्चन्दनं दाडिमम् ॥ चातुर्जातकनिम्बका च तुरगी तालीसपत्रं घना मेदे द्वे सुरदारु कुष्ठकमलं रोध्रं समङ्गा वरी ॥३४॥ भार्ङ्गीकोलकदाडिमाम्लसहितं काश्मर्य्यशृङ्गाटकं काम्बोजा शणघण्टिका लघुतरा क्षुद्रा च रास्नायुतम् ॥ चूर्णं शर्करया समं मधु घृतं खर्जूरकेसंयुतं लिह्यात्कर्षमिदं समस्तबलकृद्धन्त्याश्वपस्मारकम् ॥ ३५ ॥ उन्मादश्च सुदारुणं क्षयमथो यक्ष्मा च पाण्डुश्वसन् कासासृग्रुधिरप्रमेहगुदजं स्त्रीणां हितं शस्यते ॥ ३६ ॥

मुनक्का, देवदार, हलदी, मुलहटी, पीपल, सफेद निशोत, काली निशोत, महुवा, हरडे, बहेडा, आंवला, वायविडंग, कुटकी, रक्तचंदन, अनार, दालचीनी, इलायची, नागकेशर,

तेजपात, नींवकी छाल, कालानमक, असगंध, तालीशपत्र, नागरमोथा, मेदा, महामेदा, देवदार, कूठ, कमल, लोध, मजीठ, शतावरी ॥ ३४ ॥ भारंगी, वेर, अनार, अमली, कंभारी, सिंगाड, पदमाख, तानीवेल, छोटी कटेहली, रास्ना, खिजूरि ये अथवा छुहारे इनके चूर्णमें खांड, घृत, शहद इनको मिला १ तोलाभरको चाटे। यह वलको करता है, मृगी रोगको हरता है ॥ ३५ ॥ उन्माद, दारुणरूपी क्षय, राजरोग, पांडु, श्वासरोग, खांसी, रक्तके रोग, प्रमेहरोग, गुदाके रोग इनको भी नाशता है और स्त्रियोंको हित कहा है ॥ ३६ ॥

अथ अन्य उपाय ।

एतैर्यदि न सौख्यं स्याद्दहेल्लोहशलाकया॥ललाटे च भ्रुवोर्मध्ये दहेद्वा मूर्ध्नि मानवम् ॥३७॥ वर्जयेत्कटुकं चाम्लं रक्तपित्तविकारिणाम्॥विशेषेण वर्जनीयं सुरापूगकषायकम् ॥ ३८ ॥ न सेव्यानि ह्यपस्मारे मोहमूर्च्छाकराणि वा॥३९॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अपस्मारचिकित्सा नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

जो इन योगोंसे सुख नहीं होवे तब लोहेकी सलाईको गर्म कर मस्तक,भ्रुकुटियोंका बीच, शिर इनमें दाग देवे ॥ ॥ ३७ ॥ चर्चरा, खट्टा, रक्तपित्तविकारवालोंको वर्जित करे, मदिरा, सुपारी,कसैला पदार्थ ॥ ३८ ॥ मोह और मूर्च्छाको करनेवाले पदार्थ इनको मृगीरोगमें त्यागे ॥ ३९ ॥ इति वेरीनिवासिवुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थानेऽपस्मारचिकित्सा नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

ऊनविंशोऽध्यायः १९.

अथ उन्मादनिदान ।

आत्रेय उवाच॥अयं मानसिको व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः॥ प्रमत्ता ऊर्ध्वगा दोषा ऊर्ध्वं गच्छन्त्यमार्गताम्॥१॥ उन्मादो नाम दोषोऽयं कष्टसाध्यो भिषग्वरैः॥सोऽपि पृथग्विधैर्दोषैर्द्वन्द्वजोऽन्यः प्रकीर्तितः॥ तथान्यः सन्निपातेन विषाद्भवति चापरः ॥ २ ॥ अशुचिविपथशून्यागारकेऽरण्यमध्ये स्मयगहनवीथीदेवतागारके च ॥ अथ कथमपि भीत्या शङ्कया खिन्नचेतः

क्षुभितमनसमार्गत्याज्यमुन्मार्गयेति ॥३॥ चिन्ताव्यथासुभय-हर्षविमर्षलोभाद्देवातिथिद्विजनरेन्द्रगुर्वपमानात्॥ प्रेमाधिकाच्च युवतौ हितविप्रयोगादुन्मादजन्म च नृणां कथितं वरिष्ठैः ॥४॥ तेन गायति वा रौति विरूपं पठते यदा॥ लोलयेच्छर्दिते वापि कम्पते हसते तथा ॥ ५ ॥ धावते हनने चैव तथा जिह्वा विनश्यति ॥ जवे भासयतेऽत्यर्थं पश्येद्वनमथातुरः ॥ ६ ॥ तस्यापस्मारकं कर्म कर्त्तव्यं भिषजां वरैः ॥ विशेषेण भूतविद्यामध्ये वक्ष्यामि चाग्रतः ॥ ७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने उन्मादनिदानं नामोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

आत्रेयजी कहते हैं:—मनमें होनेवाली व्याधि उन्मादसंज्ञक कहाती है, प्रमत्त अर्थात् बिगड़के बढ़े हुए दोष ऊपरके मार्गमें प्राप्त हो जाते हैं ॥ १ ॥ तब यह उन्माद रोग होता है यह वैद्योंने कष्टसाध्य कहा है वह उन्माद वात, पित्त, कफ इनसे और द्वंद्वज होता है और एक सन्निपातसे उन्माद होता है, एक विषसे होता है ॥ २॥ और अशुद्ध होके भयंकर मार्गमें, शून्य मकानमें, वनमें तथा भयवाले गह्वर मार्गमें, देवताके मंदिरमें, किसी प्रकारसे भयकी शंकासे, खिन्न मन होनेसे मन क्षोभको प्राप्त हो अपने मार्गको त्याग उन्मादको प्राप्त हो जाता है ॥ ३॥ चिंता, व्यथा, भय, हर्ष, क्रोध, लोभ इनसे और देवता, अतिथि, ब्राह्मण, राजा, गुरु: इनके अपमान करनेसे और अधिक प्रेमवाले जनका तथा स्त्रीका वियोग होनेसे बुद्धिमान् पुरुषोंने उन्मादका हेतु कहा है ॥ ४ ॥ उस उन्मादके होनेसे कभी गावे, कभी रोवे, विरूप हो जावे, कभी पढे, चंचलपना हो, छर्दि करे कांपे, हंसे ॥ ५ ॥ मारनेके समय भाग जावे, जिह्वाको छिपा लेवे और वेगसमय अत्यंत तेज हो जावे और पीडित होके वनको देखे ॥ ६ ॥ ऐसे पुरुषके वैद्यजनोंको मृगीरोगमें कहे हुए कर्म करने चाहिये और विशेष करके भूतविद्यामध्यमें इसे कहेंगे ॥ ७ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने उन्मादनिदानं नाम ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः २०.

अथ वातव्याधिचिकित्सा तहां सोलह प्रकारके शिरोगत प्राणवायुका प्रकोप ।

आत्रेय उवाच ॥ चतुरशीतिर्विख्याता वाता नृणां रुजाकराः॥

तेषां निदानं वक्ष्यामि समासेन पृथक्पृथक् ॥१॥ विरुद्धाचिन्ताशनजागराच्च व्यायामतश्चातितमोऽभिषङ्गात् ॥असृग्विरेकाद्विषमासनेन प्राणस्तथापानसमानरोधात् ॥ अध्वाश्रमे क्षीणबलेन्द्रियाणामासन्नतो धातुगतोऽपि वायुः॥२॥ प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥ एषां दोषाद्भवन्त्येते वातदोषाः पृथक्पृथक् ॥ ३ ॥ शिरःशूलं कर्णशूलं शङ्खशूलमसृग्गदः ॥ अर्द्धशीर्षविकारश्च दिनवृद्धिसमुद्भवः ॥४॥ नासिकोपद्रवो वापि मन्यास्तम्भो हनुग्रहः ॥ जिह्वास्तम्भस्तालुशूलं तथा च तमकं भ्रमः ॥५॥ तन्द्राश्वासगलाद्याश्च षोडशैते शिरोगताः ॥ प्राणप्रकोपतो यान्ति पित्तेन सममीरिताः ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-वातसे उत्पन्न होनेवाले विकार मनुष्योंके ८४ होते हैं सो संक्षेप करके जुदे २ उनके निदानोंको कहेंगे ॥ १ ॥ विरुद्ध भोजन, चिंता, जागरण, कसरत, अत्यंत तमोगुणके अभिषंगसे, रुधिरके विरेक अर्थात् फस्तसे, विषमभोजनसे, प्राण, अपान, समान इन वायुओंके रोकनेसे, मार्गके श्रमसे, क्षीणवल इंद्रियवाले पुरुषोंके धातुके समीपमें वायु प्राप्त हो ॥२॥ प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान इन वायुओंके दोषसे जुदे २ वातदोष हो जाते हैं ॥ ३ ॥ शिरमें शूल हो, कानमें शूल हो, कनपटियोंमें शूल हो, रुधिरकी पीडा हो, दिनके चढ़नेके समय आधे शिरमें पीडा हो ॥ ४ ॥ नासिकामें उपद्रव हो, मन्यास्तंभ हनुग्रह अर्थात् ठोडी बंध रहे, जिह्वास्तंभ, तालुवामें शूल, तमकश्वास, भ्रम ॥ ५ ॥ तंद्रा,श्वास, गलके रोग ये सोलह शिरमें प्राप्त होनेवाले वायुके रोग हैं और प्राण वायुके कोपसे पित्तके संग कोप पा जाते हैं ॥ ६ ॥

अथ सोलह प्रकारके उदानवायुके कोप।

हिक्का श्वासः परिश्वासः कासः शोषार्त्तिघण्टिका ॥ हृल्लासो हृदि शूलश्च यकृद्वातादिका वमिः ॥७॥ क्षवथुर्जृम्भणं चैव तथा वैस्वर्यपीनसः ॥ अरुचिश्च प्रतिश्याय एते प्रोक्ता उदानतः ॥ ॥ ८ ॥ उदानः श्लेष्मसंयुक्तो दोषाद्धृदि प्रकुप्यति ॥ ९ ॥

हिचकी, श्वास, अत्यन्त श्वास, खांसी,शोषकी पीड़ा,गलघंटिका रोग, थुकथुकी, हृदयमें शूल यकृत्, वात आदिकोंकी छर्दि ॥ ७ ॥ छींक आना, जँभाई आना, स्वर बिगड़ना, पीनस,

---

१ अत्र षट्पदवृत्तम्।

अरुचि, जुकाम ये रोग उदानवायुके कोपसे होते हैं ॥ ८ ॥ यह उदान वायु कफके साथ दोष करके हृदयमें कुपित होता है ॥ ९ ॥

अथ व्यानवायुके कोपके लक्षण ।

वक्ष्यामो व्यानको नाम मरुतस्य प्रकोपनम् ॥ वातः सर्वाङ्गको धातुविकारं कुरुते भृशम् ॥ १० ॥ स च धातुगतो ज्ञेयस्तथा प्रोक्तः पृथक् पृथक् ॥ त्वग्वाते रोमहर्षश्च मन्या चांसाभूरेव च ॥ ॥ ११ ॥ मांसगे शोथतोदश्च मेदःस्वस्थे च कम्पता ॥ भङ्गतास्थिगते वाते पतनं मज्जगे भवेत् ॥ १२ ॥ शुक्रगे सन्धिशोथश्च तस्मात्त्वग्वातलक्षणम् ॥ एतैर्धातुगतान्वातान्साध्यासाध्यान्निरोधयेत् ॥ १३ ॥ संत्यक्तमांसमेदःस्थो वायुः सिध्यति भेषजैः ॥ अन्ये कष्टेन सिध्यन्ति न सिध्यन्त्यथवा पुनः ॥ १४ ॥

अब व्याननामवाले वायुके कोपके लक्षणोंको कहते हैं,सब अंगमें रहनेवाला यह वायु अत्यन्त धातुविकारको करता है ॥ १० ॥ सो वह धातुमें प्राप्त हुआ पृथक् २ जानना । यह वातके त्वचामें कोप हो जानेपर रोम खड़े हों मन्यासंज्ञक नसोंका फुरणा हो ॥ ११ ॥ मांसमें प्राप्त हो जावे तब शोजा हो, पीडा,मेदमें कंपना हो ॥ १२ ॥ अस्थियोंमें प्राप्त होवे तब हाड़ टूट जावे, मज्जामें कुपित होवे तब गिरना होवे, वीर्यमें होवे तब संधियोंमें शोजा होवे, ऐसे त्वचा आदिकोंमें वायु प्राप्त होता है। इत्यादिक धातुओंमें प्राप्त हुए वायुओंको साध्य और असाध्योंको रोके ॥ १३ ॥ जो वायु मांससे रहित मेदमें प्राप्त होवे वह औषधोंसे सिद्ध होता है और अन्य वायु कष्टसे सिद्ध होते हैं ॥ १४ ॥

अथ समानवायुका प्रकोप ।

लोमहर्षो भवेत्तोदो निद्रानाशोऽरुचिस्तमः ॥ गात्रं सूची च विध्येत भ्रमन्त्येव पिपीलिकाः ॥ १५ ॥ रूक्षत्वं त्वग्रसे नेत्रे कृशत्वं जायते पुनः ॥ गर्भरजसः शुक्रस्य नाशो भवति वेपथुः १६ मन्दाग्नित्वं च भवति स्वप्नानि च स पश्यति ॥ निद्रानाशः क्षोभयति सामान्यं वातलक्षणम् ॥ १७ ॥

रोमहर्ष अर्थात् रोम खड़े हो जावें, शरीरमें व्यथा हो, निद्राका नाश हो, अरुचि हो, अंधेरी हो, शरीरमें कीड़ीसी जले ॥ १५ ॥ त्वचा, नेत्र ये रूखे रहें और दुर्बल शरीर होजावे और स्त्रीके गर्भ, रजस्वला इनका नाश हो जावे, वीर्य नष्ट हो जावे, कंपना हो ॥ १६ ॥

मंद अग्नि हो जावे, अनेक सुपने आवे, निद्राका नाश हो जावे शरीरमें क्षोभ होवे ये सामान्य वातके लक्षण हैं ॥ ॥ १७ ॥

अथ आक्षेपकवायुका लक्षण तथा अपतन्त्रकवायुका लक्षण ।

मुहुराक्षेपयेद्गात्रं मेदस्तोदो बहुस्वरः ॥ स चैवाक्षेपको नाम जातो व्यानप्रकोपतः ॥ १८ ॥ धनुर्वन्नाम्यते गात्रमाक्षिपेच्च मुहुर्मुहुः ॥ प्रक्लिन्ननेत्रस्तब्धाक्षः कपोत इव कूजति ॥ तस्माद्- भिषजां श्रेष्ठा अपतन्त्रकनामतः ॥ १९ ॥

और जो वारंवार शरीर कांपे, मेदमें व्यथा हो, ज्वर बहुत हो जावे ऐसा आक्षेपकनाम- वाला वायु होता है,यह व्यानवायुके कोपसे होता है ॥ १८ ॥ शरीर वारंवार धनुष्यकी तरह नवे, गीले और गर्वसरीखे नेत्र रहें, कपोतकी तरह कूजे ये लक्षण हों उस वायुको वैद्यजन "अपतंत्रकनामवाला" कहते हैं ॥ १९ ॥

अथ अप्रतानकवायुप्रकोप ।

मतान्तरे वदन्त्यन्ये ह्यप्रतानको मतः ॥
गृहीतार्द्धं ततो वायुरप्रतानकः संस्मृतः ॥ २० ॥

कईक मतोंने इस वायुको अप्रतानक कहते हैं अथवा जो आधा शरीरको बंध कर देवे उसको "अप्रतानक" वायु कहते हैं ॥ २० ॥

सोऽपि कफाश्रितो वायुः संपीडयति दण्डवत् ॥ स्तम्भयत्याशु गात्राणि सोऽपि दण्डाप्रतानकः॥२१॥हृद्वक्षोजकराङ्गुलौ गुल्फ- सन्धौ समाश्रितः॥स्नायुं प्रतानयेद्यस्तु सोऽपि स्नायुप्रतानकः ॥२२॥ बाह्यानामथ नाडीनां प्रतानयति मारुतः ॥ कव्या- श्रितो वा भवति सशल्यमिव कुर्वते॥२३॥ तमसाध्यं बुधाः प्राहुस्तच्च वातं प्रतानकम्॥ अन्धं चतुर्थमाक्षेपमभिघातसमुद्भ- वम् ॥२४॥ अभिघातेन यो जातो न स साध्यः प्रतानकः ॥ ऊर्ध्वं तानयते यस्तु विशोषयति गात्रकम् ॥ २५ ॥ मोहतमः कृते वास्थिसन्धिसंशुष्कको मतः ॥

और वही वायु कफके आश्रय होके लाठीकी चोट सरीखी पीडा करता है, गात्रोंको बंध कर देता है वह दंडप्रतानक वायु कहाता है ॥ २१ ॥ हृदय, छाती, हाथोंकी अंगुली, गुल्फ

इनकी संधियोंके आश्रय होके जो नसोंको विस्तारित कर देता है वह स्नायुप्रतानक वायु कहाता है ॥ २२ ॥ जो वायु बाहरकी नसोंमें विस्तारित हो जाता है अथवा कटिके आश्रय हो जाता है और शल्य चोट लगी सरीखी पीडा हो ॥ २३ ॥ उसको बुद्धिमान् मनुष्य असाध्य प्रतानक वात कहते हैं और चोटसे उत्पन्न होनेवाला चौथा आक्षेपक वात कहाता है ॥ २४ ॥ वह ऊपरले अंगोंमें फैलता है और शरीरमें शोष कर देता है ॥ २५ ॥ और मोह हो, तम अर्थात् अंधेरी हो वह अस्थिसंधि इनको सुखानेवाला वायु कहाता है।

अथ एकाङ्गवायु ।

कृच्छ्रार्द्धकर्षं भवति शुष्कतां च प्रकुर्वति ॥ २६ ॥
पृष्ठं प्रतानार्द्धं यो वै स तथैकाङ्गिको मतः ॥ २७ ॥

उससे आधा शरीरमें कष्ट रहे, खिंचा हुआ रहे और शोषका कोप हो ॥ २६ ॥ और जो पीठको तथा आधे शरीरको बंध कर देता है वह एकांगिक वायु कहाता है ॥ २७ ॥

अथ एकांगपक्षघातवायु ।

एकांगपक्षघातश्च भवत्यन्यतमो यदि ॥
वातघ्नैरौषधैः सर्वैर्वायुः कष्टेन सिध्यति ॥ २८ ॥

और जो यदि अन्य पक्षघातसंज्ञक वायु एकओरके अंगमें प्राप्त हो जाता है वह संपूर्ण वातनाशक औषधोंकरके कष्टसे सिद्ध होता है ॥ २८ ॥

अथ तूनी तथा प्रतितूनी वायु ।

तोदमूर्छा वेपनं स्याद्वेष्टता स्पर्शनाज्ञता ॥ यस्तु नश्यति गात्राणि वायुस्तूनीतिशब्दतः ॥ २९ ॥ वेपनं तोदवेष्टत्वं स्पर्शनं वेत्ति यः पुनः ॥ प्रतूनयति गात्राणि प्रतितूनीति गद्यते ॥ ३० ॥

शरीरमें पीड़ा हो,मूर्च्छा हो, कंपना हो,शरीर बंधा रहे,स्पर्श नहीं जाना जावे और अंगोंको नष्ट कर देवे वह तूनीसंज्ञक वायु कहाता है ॥ २९ ॥ और शरीर कांपे, व्यथा हो, शरीर बंध रहे और स्पर्श सह लेवे, शरीरको पीने अर्थात् पीनने सरीखी पीड़ा हो वह प्रतितूनी वात कहाता है ॥ ३० ॥

अथ व्यानवायुके कोपका लक्षण ।

हृदि स्तम्भः पृष्ठस्तम्भ ऊरुस्तम्भश्च गृध्रसि ॥ पृथक्त्वेन च कथितमग्रे शृणुष्व कोविद ॥ ३१ ॥ एते व्यानप्रकोपेण द्विषोडश प्रकीर्त्तिताः ॥ ३२ ॥

हृदय बंध रहे पीठ बंध रहे, जांघ बंध रहे, गृध्रसी रोग हो जावे सो जुदे २ बत्तीस प्रकारके रोग पहले व्यान वायुके कोपसे कहे हैं। अब आगे कहे हुए अन्य वायुओंके लक्षणोंको सुनो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अथ सोलह प्रकारके समानवायुके कोप।

शूलं गुल्म उदावर्त्त आध्मानोदावर्त्तमेव च ॥ परिणामो विषमाग्निरजीर्णं वाति गुल्मकः ॥ ३३ ॥ परिक्लेदी रसशेषो रसश्च मलवालकः ॥ वन्धी भेदी विलासी च षोडशैते समानतः ॥३४॥

शूल हो, गुल्म, उदावर्त्त, अफारा, परिणामशूल, विषमाग्नि, अजीर्ण, वातका गोला ॥३३॥ परिक्लेद, पीड़ा, रसशोष, रस नहीं पकना, मल कच्चा रहना, मलका बंधा, तथा पतला मल होना, भोग करनेकी इच्छा रहे ये सोलह विकार समान वायुके कोपसे होते हैं ॥ ३४ ॥

अथ सोलह प्रकारके अपानवायुके लक्षण।

भगन्दरो बस्तिशूलो मेहार्शश्चातिकोठकः ॥ लिङ्गदोषौ गुदभ्रंशस्तथान्यो गुदशूलकः ॥ ३५ ॥ मूत्ररोधो विड्रोधश्च षोडशैते विजानता ॥ अपानस्य प्रकोपेन विज्ञेयास्तु प्रधानतः ॥ ३६ ॥ एते विकाराः कथिताः विस्ताराश्च प्रकीर्त्तिताः ॥ दाहः सन्तापः शोषश्च मूर्छा पित्तान्वितो मरुत् ॥ ३७ ॥ शैत्यं शोफारुचिर्जाड्यं वातश्लेष्मसमन्वितम् ॥ यो द्वन्द्वजाश्रितो धीर तं साध्यं मारुतं विदुः ॥ ३८ ॥ केवलोऽपि समीरोऽपि सोऽपि साध्यतमः स्मृतः ॥ ३९ ॥

भगंदर रोग हो, वस्तिमें शूल,प्रमेह, बवासीर, शीत, पित्त, लिंगदोष, गुदभ्रंश, गुदामें शूल ॥ ३५ ॥ मूत्रबंध होना मलबंध होना, ये सोलह विकार वैद्योंको अपानवायुके कोपसे जानने चाहिये ॥ ३६ ॥ ये विकार विस्तार करके यहां कह दिये हैं, और दाह, संताप, शोष,मूर्च्छा ये पित्तवातसे होते हैं ॥ ३७ ॥ शीतलता, शोजा, अरुचि, जडपना ये वातकफसे होते हैं और जो दो दोषोंसे मिला हुआ वायु है उसको साध्य कहते हैं ॥३८॥ तथा एक दोषवाला भी वायु सुखसाध्य कहा है ॥ ३९ ॥

अथ अर्दित अर्थात् लकुआके लक्षण।

वक्रं भवति वक्रार्द्धं ग्रीवा चाप्युपवर्त्तते ॥ वैकृत्यं नयनानाञ्च

विसंगो वेदनातुरः ॥ ग्रीवायां गण्डयोर्दन्तपार्श्वे यस्यातिवेदना ॥ ४० ॥ तमर्दितमिति प्राहुर्वातव्याधिविचक्षणाः ॥ ४१ ॥

मुख टेढ़ा हो जावे तथा ग्रीवा ऊपरको हो जावे, नेत्र बिगड़ जावे, वायु बन्ध हो जावे, पीडा रहे और ग्रीवा, कपोल, दांतोंके मसूढ़े इनमें ज्यादे पीडा हो ॥ ४० ॥ इसको व्याधिको जाननेवाले वैद्य अर्दित अर्थात् लकुआ कहते हैं ॥ ४१ ॥

अथ द्वन्द्वज अर्दितका लक्षण ।

लालास्रावोऽथ शोषश्च हनुग्रहो विरस्यता॥दन्तशूलं भवेद्यस्य वातेनार्दितमेव च ॥४२॥ पीतांगं सज्वरं तृष्णा पित्तजो मोह एव च ॥ शोफस्तम्भोऽस्य भवति कफोद्भूतेऽथवार्दिते ॥४३॥

लार गिरे, शोष हो, ठोड़ी बन्ध रहे, मुखका रस बिगड़ा रहे, दांतोंमें शूल हो ये अर्दित वातके लक्षण हैं ॥ ४२ ॥ पीला शरीर हो, ज्वर हो, तृषा हो, मोह हो ये पित्तसें उपजे अर्दित वायुके लक्षण हैं और शोजा हो गात्र बन्ध रहे ये कफसे उपजे वायुके लक्षण हैं ॥ ४३ ॥

अथ असाध्य अर्दित ।

भाविनो लक्षणं यस्य वेपथुर्नेत्रमाविलम् ॥ क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः ॥४४॥ न सिध्यत्यर्दितं गाढं विषमं चापि तस्य च ॥ कण्ठो घोरो भक्षणार्थं जृम्भा प्रस्तारिते मुखे ॥४५॥ हनुस्तम्भो भवत्येते कृच्छ्रसाध्या भवन्ति हि ॥ विषमे वा दिवास्वप्ने विवर्तितनिरीक्षणे ॥ ४६ ॥ मन्यास्तम्भं जनयति कृच्छ्रात्पार्श्वं विलोकते ॥ वाग्वादिनीं शिरां रुद्ध्वा स्तम्भयेद्रसनानिलः ॥ ४७ ॥ रक्ताश्रितोऽपि पवनः शिरोनाड्यां समाश्रितः ॥ शिरोऽर्तिं कुरुते यस्तु सोऽप्यसाध्यः शिरोग्रहः ॥ ४८ ॥

जिसके कम्पना हो, नेत्र गड जावे, आखोंकी पलक क्षीण हो जावे और अव्यक्त अप्रकट बोले उसके जानना कि अब अर्दित वात होवेगा ॥ ४४ ॥ और जिसके विषम तथा अत्यन्त लकुवा वात हो जाता है उसके अच्छा नहीं होता है और जिसका कण्ठ घोर हो, भक्षण करनेके वास्ते तथा जंभाई लेनेके वास्ते फाडा हुआ मुखसरीखा मुख रह जावे ॥४५॥ ठोड़ी बन्द हो जावे ये कष्टसाध्य लकुआके लक्षण हैं और जिसके दिनमें विषम सोनेसे उलटे देखनेके समय ॥४६॥

ठोड़ीकी नस वन्ध रहें और वगलकी ओर वड़े कष्टसे देखा जावे और वाणीको वोलनेवाली नाड़ीको श्वासवायु वन्ध कर देवे यह भी कष्टसाध्य वात है ॥ ४७ ॥ और रक्तके आश्रय हुआ वायु शिरकी नाड़ियोंके आश्रय हो जो शिरमें पीडा कर देता है वह भी शिरोग्रह वायु असाध्य कहाता है ॥ ४८ ॥

अथ अपान आदिक वातोंकी चिकित्सा ।

अतः प्रतिक्रियां वक्ष्ये यथा सिध्यति मारुतः ॥ स्नेहनं रूक्षणं कार्यं पाचनं शमनानि च ॥ ४९ ॥ स्वेदनं मर्दनाभ्यङ्गो वस्तिस्नेहो निरूहणम् ॥ स्नायुसन्ध्यस्थिसंप्राप्ते भेदनं कारयेत्सुधीः ॥ ५० ॥ मणिमन्थेन यन्त्रेण ततः संभूषयानिलम् ॥ असाध्ये शुक्रगे व्याने बीजवत्समुपाचरेत् ॥ ५१ ॥

अव जैसे वायु सिद्ध होता है वैसे चिकित्साको कहते हैं-स्नेहन, रूक्षण, पाचन, शमन ऐसे इलाज करने चाहिये ॥ ४९ ॥ पसीना दिवाना, मालिस करनी, वस्तिस्नेह, निरूहण वस्ति ये चिकित्सा करनी चाहिये और स्नायु, संधि, अस्थि इनमें वायु प्राप्त हो जावे तो भेदन अर्थात् गहावे ॥ ५० ॥ और माणिमंथ यंत्र करके वायुको शांत करे और जो असाध्य व्यानवायु शुक्रमें प्राप्त होवे तो वीर्यवृद्धिसरीखी औषध करे ॥ ५१ ॥

अथ स्नेहननाम घृत ।

मुण्डी गुडूची बृहतीद्वयं च रास्ना समङ्गा क्वथितः कषायः ॥ समुच्चितेनापि विमिश्रितं च दुग्धं दधि स्यान्नवनीतकञ्च ५२॥ पचेत्सुधीमान्मृदुवह्निना च सिद्धं घृतं स्नेहनमेव पुंसाम् ॥ कर्षप्रमाणं विहितं च पाने चाभ्यञ्जके भोजनके तथैव ॥५३॥ बस्तौ हितं स्नेहनमेव पुंसां सप्ताहकं वातविकारिणाञ्च॥५४॥

गोरखमुंड़ी, गिलोय, छोटी कटेहली, वड़ी कटेहली, रास्ना, मंजीठ इनका क्वाथ वना लेवे पीछे इस क्वाथमें दूध, दही, नूनीघृत ॥ ५२ ॥ इनको मिला फिर मंद मंद अग्निसे पकावे फिर यह घृत सिद्ध हो जावे तव इसकी मालिस करनी वातवाले पुरुषोंको हित है और एक तोला प्रमाण इसको पीवे अथवा मालिसमें और भोजनमें वरते ॥ ५३ ॥ वातके विकारवाले पुरुषोंको यह घृत सात दिनतक सेवन करना चाहिये ॥ ५४ ॥

अथ निरूहणबस्ति ।

रास्नाविडङ्गरजनी सह नागरेण सौवीरकेण सुरसा सह सैन्ध-

वेन ॥ सोष्णश्च पानमिदमेव विरूक्षणं स्यान्नृणाञ्च पञ्चदिन-कर्षकमात्रमेव ॥ ५५ ॥

रास्ना, वायविडंग, हलदी सोंठ, कांजी, तुलसी, सेंधानमक इनको एक जगह मिला गरम गरम पीना हित है और रूखा भोजन खावे और पांच दिनतक एक एक तोला प्रमाण इसको खावे ॥ ५५ ॥

अथ पाचन तथा शमनका कथन ।

अतः स्यात्पाचनं सम्यग् दिनसप्तकमेव तत् ॥पाचिते चैव दोषे च तस्मात्संशमनं ददेत्॥५६॥वक्ष्यामि ते पुष्टिगते धमन्याः समाश्रिते च बहुधाशमेन ॥ संस्विद्य नाशं च नयेत् समीरं सप्ताहकं चोष्णजलेन सेकः ॥ ५७ ॥

इसके सेवनेसे वायु पक जाता है और फिर सात दिन पीछे दोष पक जावे तब संशमन औषधको करे ॥ ५६ ॥ अब धमनी नाडीके आश्रय होके पुष्टिस्थानमें प्राप्त हुए वायुके इलाजको कहते हैं उस वायुको वहुत प्रकारसे शमन करके स्वेद अर्थात् पसीना दिवाके वायुको शांत करे और सात दिनतक गरम जलसे सेके ॥ ५७ ॥

अथ सर्वांगवायुकी चिकित्सा ।

रास्नात्रिकण्टकैरण्डशतपर्वा पुनर्नवा ॥ क्वाथो वातामयं हन्ति सर्वाङ्गगतमाशु च॥५८॥रास्नागुडूचिकादारुनागरैरण्डसंयुतः॥ क्वाथः सर्वाङ्गवातेऽपि समधातुगते हितः ॥५९॥ रास्नाश्वगन्धाकाशीशं वचा च कपिकच्छुकम् ॥ क्वाथस्त्वेरण्डतैलेन पीतो हन्ति समीरणम् ॥६०॥ रास्नाधान्यकशुण्ठी च यवानी दशमूलकम्॥क्वाथः पाचनके प्रोक्तो नरे वातविकारिणि॥६१॥ रास्नाद्यानि पाचनानि हितानि कथितानि च ॥ ६२ ॥

रास्ना, छोटी कटेहली, बडी कटेहली, गोखरू, अरंड, वच, सांठी इनका क्वाथ वना पीनेसे वातोंके रोग दूर होते हैं और सर्वांगवात शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ ५८ ॥ रास्ना, गिलोय, देवदार, सोंठ, अरंड इनका क्वाथ सर्वांगवातमें और धातुगत वातमें हित है ॥ ५९ ॥ रास्ना, असगंध, हीराकसीस, वच, कौंचके बीज इनके क्वाथको अरंडीके तेलके संग पीनेसे वातका नाश होता है ॥ ६० ॥ रास्ना, धनियां, सोंठ, अजवायन, दशमूल इनका क्वाथ वातविकारवाले पुरुषोंको पाचन कहा है ॥ ६१ ॥ ऐसे ये रास्ना आदिक क्वाथ वातवालोंको हित और पाचन कहे हैं ॥ ६२ ॥

अथ रसोनकयोग ।

अर्द्धपलं रसोनञ्च हिङ्गुसैन्धवजीरकैः ॥ सौवर्चलेन संयुक्तं तथैव कटुकत्रिकम्॥६३॥घृतेन संयुतं भक्षेन्मासमेकं दिने दिने॥ निहन्ति वातरोगञ्च अर्दितं च प्रतानकम्॥६४॥ एकाङ्गरोगिणाञ्चापि तथा सर्वाङ्गरोगिणाम्॥ऊरुस्तम्भं क्रिमिदोषं गृध्रसीर्वापि कर्षति॥६५॥ पलार्द्धञ्च पलं चापि रसोनञ्च सुकुट्टितम्॥ हिङ्गुजीरकसिन्धूत्थं सौवर्चलकटुत्रयम् ॥ ६६ ॥ एभिः संचूर्णितैः सर्वैस्तुल्यं तैलेन संयुतम् ॥ यथाग्नि भक्षयेत्प्रातः रुबुक्काथानुपानवत्॥६७॥मासमेकं प्रयोगेण सर्ववातामयाञ्जयेत्॥ एकाङ्गं चैव सर्वाङ्गमूरुस्तम्भं च गृध्रसीः ॥ ६८ ॥ कटिपृष्ठास्थिसन्धिस्थमर्दितं चापतन्त्रकम्॥ज्वरं धातुगतं जीर्णं नित्यञ्च शीतलाह्वयम् ॥ ६९ ॥

लहसन २ तोले, हींग, सेंधानमक, जीरा, कालानमक, सोंठ, मिर्च, पीपल इनको समान भाग ले ॥ ६३ ॥ घृतमें मिला दिन २ प्रति एक २ मास प्रमाण भक्षण करे । यह वातरोग, लकुवा, प्रतानकवात इनको नाशता है ॥ ६४ ॥ एकांगवातरोग, सर्वांगवात, ऊरुस्तंभ, क्रिमिदोष, गृध्रसी वात इनको दूर करता है ॥ ६५ ॥ चार तोले अथवा दो तोले लहसनको कूट उसमें हींग, जीरा, सेंधानमक, कालानमक, सोंठ, मिर्च, पीपल ॥ ६६ ॥ इन सबोंको समान भाग ले चूर्ण बना उसमें बराबरका तैल मिला फिर प्रातःकाल जठराग्निके अनुसार इसको भक्षण करे और इसपै अरंडके क्राथका अनुपान करे ॥ ६७ ॥ इसके एक मास खानेसे सब प्रकारके वातरोगोंका नाश होता है । एकांगवात, सर्वांगवात, ऊरुस्तंभ, गृध्रसीवात ॥ ६८ ॥ कटि, पृष्ठ, अस्थि, संधि इनको मर्दन करनेवाला वात, अपतंत्रकवात, धातुगत ज्वर, तथा जीर्णज्वर और नित्य आनेवाला ज्वर, शीतज्वर इनको नाशता है ॥ ६९ ॥

अथ वातको शमन करनेवाले क्राथ ।

नागरा च हरिद्रा च कणाजाज्यजमोदिका॥वचा सैन्धवरास्ना च मधुकं समभागिकम् ॥ ७० ॥ श्लक्ष्णचूर्णं पिबेच्चैव सर्पिषा प्रत्यहं नरः॥एकविंशतिदिनैर्वा रोगान्हन्ति न संशयः ॥ ७१॥ भवेच्छ्रुतिधरः श्रीमान्मेघदुन्दुभिनिस्वनः ॥ हन्ति वातामयान्

सर्वाङ्गलेहो यश्च सुखावहः ॥ ७२ ॥ शतावरी वचा शुण्ठी रास्ना कदरशल्लकी॥दशमूली बलाकिण्वस्तुम्बुरू च गुडूचिका ॥ ७३ ॥ एष कल्को घृतैर्युक्तो हन्ति वातं शरीरगम् ॥७४ ॥ शल्लकीचिक्कणीत्वचोक्काथस्तैलेनसंयुतः॥कुर्य्याद्वातार्दितंस्वस्थमेकविंशतिदिनैर्नरम् ॥ ७५ ॥ अतोऽभ्यङ्गश्च कर्त्तव्यस्तैलैरपि घृतैरपि ॥ गुग्गुलुश्च रसोनश्च कारयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ७६ ॥

सोंठ, हलदी, पीपल, जीरा, अजमोद, वच, सेंधानमक, रास्ना, मुलहटी इनको समान भाग ले ॥ ७० ॥ बारीक चूर्ण बना घृतके संग पीनेसे इक्कीस दिनोंमें वातके रोग नष्ट होते हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ७१ ॥ और श्रोत्र इंद्रिय बलवान् हो जाती हैं। मेघके समान स्वर हो जाता है इसमें संदेह नहीं और यह लेह सब प्रकारके वातरोगोंको नाशता है, सुख करनेवाला है ॥ ७२ ॥ शतावरी, वच, सोंठ, रास्ना, छोटा शल्यकी वृक्ष, दशमूल, खरेहटी, मदिरासे बाकी रहा द्रव्य, धनियां, गिलोय ॥ ७३ ॥ इन औषधोंका कल्क बना घृतके संग खानेसे शरीरमें प्राप्त हुए वातका नाश होता है ॥ ७४ ॥ शालवृक्ष, सुपारीका वृक्ष इनकी छालके क्काथमें तैल मिला मालिस करनेसे इक्कीस दिनमें वातसे पीडित मनुष्य स्वस्थ आनंदित होता है ॥ ७५ ॥ इसवास्ते तैलोंकरके तथा घृतकरके मालिस करनी हित है और विधिपूर्वक लहसनमें गूगलको सिद्ध कर उसका सेवन करना हित है ॥ ७६ ॥

अथ बलाआदिक औषध ।

भागाश्चाष्टौ बलामूलं चत्वारो दशमूलकम् ॥ क्काथश्चतुर्गुणे तोयेऽथवा द्रोणस्य संख्यया ॥७७॥ तत्राढकं क्षिपेत्क्षीरमाढकं मिश्रयेद्दधि ॥ कुलत्थाढकयूषं वै चाशु पर्य्युषितं क्षिपेत् ॥ ॥ ७८॥ तैलं तिलानां द्रोणं तु कटाहे पाचयेच्छनैः॥ जीवन्ती जीवनीया च काकोल्यौ जीवकर्षभौ ॥ ७९ ॥ मेदे द्वे सरलं दारु शल्लकश्च कुचन्दनम्॥कालीयकं सर्जरसं मञ्जिष्ठा त्रिसुगन्धिकम् ॥८०॥ मांसी शैलेयकं कुष्ठं वचा कालाष्टशारिवा ॥ शतावरी चाश्वगन्धा शतपुष्पा पुनर्नवा ॥ ८१ ॥ किण्वकं च सुरा मुस्ता तथा तालीसपत्रकम् ॥ कटुत्रयं वालुकौ च सर्व

तत्रैव मिश्रयेत् ॥ ८२ ॥ सिद्धं सर्वगुणं श्रेष्ठं कृत्वा मङ्गलवाचनम् ॥ सौवर्णे राजते कुम्भे वाथवा मृन्मयायसे ॥८३॥ प्रततं धारयित्वा तु पानाभ्यङ्गे निरूहके ॥ बस्तौ वापि प्रयोक्तव्यं मनुष्यस्य यथाबलम् ॥८४॥ वातार्दितेऽथवा भग्ने भिन्ने वापि प्रदापयेत् ॥ या वन्ध्या च भवेन्नारी पुरुषाश्चाल्परेतसः॥८५॥ क्षीणो वा दुर्बलो वापि तथा जीर्णज्वरातुरः ॥ आमवातातुराणाञ्च तथा प्रक्षिप्य कञ्चटम् ॥८६॥ प्रभाते च प्रयोक्तव्यं तथा शुष्के हनुग्रहे॥ कर्णशूले चाक्षिशूले मन्यास्तम्भे च पार्श्वगे ॥ ॥८७॥ सर्ववातविकाराणां हितं तैलं यथामृतम् ॥ हन्ति श्वासं च कासं च गुल्मार्शोग्रहणीगदम् ॥८८॥ अष्टादशानि कुष्ठानि शीघ्रं वापि नियच्छति ॥ ग्रहभूतपिशाचाश्च डाकिनी शाकिनी तथा ॥ ८९ ॥ दूरदेशे पलायन्ते बलातैलस्य दर्शनात् ॥ अपस्मारादिदोषांश्च तच्च दूरे नियच्छति ॥९० ॥ वृद्धा युवानो भवन्ति वन्ध्या च लभते सुतम् ॥ तैलं महाबलाद्यं च महावातहरं स्मृतम् ॥ ९१ ॥

खरेंहटीकी जड़ आठ भाग, दशमूल चार भाग इनको चारगुना जलमें और १०२४ तोले जलमें पकाके क्वाथ बनावे ॥ ७७ ॥ पीछे उसमें २५६ तोले दूध मिला और २५६ तोले दही, २५६ तोले कुलथीके यूषको वासी करके मिलावे ॥ ७८ ॥ और तिलोंका तैल १०२४ तोले ऐसे इन सबोंको मिला पीछे शनैःशनैः कड़ाहीमें पकावे और जीवंती,हरडै, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक ॥ ७९ ॥ मेदा, महामेदा, सरस, देवदार, शल्लकी, लाल चन्दन, रोहिस तृण, शलका वृक्ष, मंजीठ, त्रिसुगन्धि अर्थात् तेजपात, इलायची,दालचीनी ॥ ८० ॥ जटामांसी, शिलारस, कूठ, वच, नील, अनंतमूल, शतावरी, असगंध, सौंफ, सांठी ॥ ८१ ॥मदिरासे बाकी रहा द्रव्य, मदिरा, नागरमोथा, तालीसपत्र, कुटकी, नेत्रवाल इन सबोंको एक जगह मिला ॥८२॥ पीछे इसको सिद्ध करे। यह सब गुणोंवाला है, श्रेष्ठ है। इसको मंगलाचरण करके सुवर्ण अथवा चांदी तथा मृत्तिकाके पात्रमें घाल धरे ॥ ८३ ॥ इसको गरम २ पीनेमें अथवा मालिसमें तथा निरूहबस्तिमें प्रयुक्त करे अथवा मनुष्यके अग्निबलको विचार साधारण बस्तिमें इसको प्रयुक्त करे ॥८४॥ लकुवावात, भग्नवात, भिन्नवात इन्होंमें यह औषध वरतना चाहिये और जो वन्ध्या स्त्री है अथवा अल्पवीर्यवाला पुरुष है

उसको यह श्रेष्ठ कहा है ॥ ८५ ॥ क्षीण पुरुष, दुर्वल, जीर्णज्वरसे पीड़ित इन पुरुषोंके वास्ते श्रेष्ठ कहा है और आमवात रोगवाले पुरुषोंको इस औषधमें गजपीपली मिलाके देना चाहिये ॥ ८६ ॥ और शुष्क हनुग्रहरोगमें भी इसको प्रभातकालमें खावे और कर्णशूल, अक्षिशूल, मन्यास्तंभ, पशलीशूल इनको नाशता है ॥ ८७ ॥ और यह तैल सम्पूर्ण वातके विकारोंको नाशता है और श्वास, खांसी, गुल्म, बवासीर, संग्रहणी रोग ॥ ८८ ॥ अठारह प्रकारके कुष्ठ रोग इन सर्वोंको नाशता है ओर ग्रहदोष, भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी ॥ ८९॥ ये सब इस वलातैलके दर्शन करनेसे दूर भाग जाते हैं और मृगी आदि रोग दूर चले जाते हैं ॥ ९० ॥ और वृद्ध पुरुष जवान हो जाता है और वन्ध्या स्त्री पुत्रवाली हो जाती है । यह महावला आदिक नामवाला तैल महावातरोगोंकोहरनेवाला कहा है ॥ ९१ ॥

अथ बलाआदि तैल ।

बलाक्वाथाढकं क्षिप्त्वा क्षिपेत्तत्राढकं दधि॥कुलत्थाढकयूषं तु सौवीरस्याढकं तथा ॥९२ ॥ एकत्र कृत्वा विपचेद्योजयेदौषधञ्च तत् ॥ शतपुष्पा देवदारु पिप्पली गजपिप्पली ॥९३॥ त्रिसुगन्धि सुरामांसी कुष्ठञ्च दशमूलकम् ॥ चूर्णकं निक्षिपेत्तत्र सिद्धं तदवतारयेत् ॥ ९४ ॥ योज्यं पाने तथाऽभ्यङ्गे निरूहे नस्यकर्मणि॥हन्ति वातामयाशीतिं श्रेष्ठं गुणगणात्मकम्॥९५ यथा महाबलं तैलं तथेदं गुणवर्द्धनम् ॥ ९६ ॥

२५६ तोले खरेहटीके काथमें २५६ तोले दही मिलावे पीछे उसमें २५६ तोले कुलथीका यूष मिलावे, २५६ तोले कांजी मिला ॥९२॥ इन सर्वोंको एक जगह कर आगे कही हुई औषधोंको मिलावे । सौफ, देवदार, पीपल, गजपीपल ॥ ९३ ॥ दालचीनी, तेजपात, इलायची, मुरामांसी, कूठ, दशमूल इनके चूर्णको मिला अग्निसे पकावे । सिद्ध हो जाय तब उतार ॥ ९४ ॥ इसको पीनेमें, निरूहवस्तिमें, नस्यकर्ममें वरते और अस्सी प्रकारके वातरोगोंको यह तैल नाशता है, जैसे पहले कहा हुआ महावलादिक तैल गुणोंवाला है ॥ ९५ ॥ ऐसे ही यह तैल गुणोंको बढानेवाला और बलप्रद कहा है ॥ ९६ ॥

अथ भृंगराजतैल ।

भृङ्गराजरसश्चैव कटुतुम्बीरसं तथा॥सौवीरकरसं चैव क्वाथं वै दशमूलकम् ॥ ९७ ॥ माषकुलमाषयूषं च वाजं दधि समाश्रयेत्॥समांशकानि सर्वाणि तैलं चार्द्धं प्रयोजयेत् ॥ ९८ ॥

मृद्वग्निना पाचनीयं सिद्धं चैवावतारयेत्॥अभ्यङ्गे च प्रयोक्तव्यं न पाने वस्तिकर्मणि ॥ ९९ ॥ पूरणं कर्णरोगेषु शिरःशूले च दारुणे॥अर्द्धशीर्षविकारेषु भ्रुवः शङ्खाक्षिशूलके ॥ १०० ॥ तस्य योगेन मनुजः सुखमाप्यते द्रुतम् ॥ हन्ति कुष्ठं च पामानं त्वग्रोगोऽभ्यञ्जनेन तु ॥१०१॥ शीघ्रं विनाशमायाति हन्त्यपस्मारमुत्कटम्॥न वस्तिशूलो भवति वामवाते श्रमः क्लमः ॥ १०२ ॥

भँगराका रस, कडुई तूंबीका रस, कांजीका रस, दशमूलका क्वाथ ॥ ९७ ॥ उड़दोंके वाकलोंका यूप अथवा बकरीका दही इनको समान भाग ले और आधा भाग तैल मिल ॥ ९८ ॥ पीछे मंद मंद अग्निसे पकावे। जब सिद्ध हो जावे तब उतारि इसकी मालिस करे और यह तैल पीनेमें तथा वस्तिकर्ममें नहीं बरतना चाहिये ॥ ९९ ॥ और कानके रोग, दारुण शिरकी शूल, इनमें पूरण करना चाहिये और अधशिराका विकार, भृकुटि, कनपटी आंखि इनकी शूल ॥ १०० ॥ इन रोगोंवाला मनुष्य इस तैलके योगसे सुखको प्राप्त हो जाता है और इस तैलकी अच्छीतरह मालिस करनेसे कुष्ट, पामा इनका नाश होता है ॥ १०१ ॥ मृगीरोग शीघ्र ही नष्ट होता है और वस्तिस्थानमें शूल नहीं रहता है और आमवातमें श्रम और ग्लानि होती है ॥ १०२ ॥

अथ आमपाककी चिकित्सा।

आमपाकीति विज्ञेयो न कुर्य्यात्तस्य पाचनम् ॥ विरेचनं न कर्त्तव्यं स्तम्भनं तस्य कारयेत् ॥१०३॥ कटिपृष्ठे वक्षोदेशे तोदनं बस्तिशूलता ॥ गुल्मवज्जठरं गर्जेत्तथान्त्रे शोफमेव च ॥१०४ ॥ शिरोगुरुत्वं भवति वामे च पतति भृशम् ॥ सर्वाङ्गगो भवेत्सोऽपि विज्ञेयः सुविजानता ॥ १०५ ॥ तस्य च पाचनं कुर्य्याद्विरेचनं ततः परम्॥विष्टम्भी गुल्मपाकी चसर्वाङ्गगोऽन्यःप्रकीर्त्तितः॥१०६॥विज्ञेयस्तत्र यःसाध्यश्चान्यौ द्वौ कष्टसाध्यकौ॥स्नेही वामश्च कथितः कृत्वापस्मारनिग्रहम्१०७

जो पुरुष आमपाकी हो उसको पाचन औषध नहीं देवे और जुलाब नहीं दिवावे किंतु स्तंभन औषध देवे ॥ १०३ ॥ और कटि, पीठ, छाती इनमें व्यथा, वस्तिमें

शूल हो और गोलाकी तरह पेट बोले आंतोंमें शोजा हो ॥ १०४ ॥ शिर भारी हो और वहुतसी आंव गिरै वह सर्वांगवात अर्थात् सब अंगमें प्राप्त हुआ वात जानना ॥ १०५ ॥ उसमें पहले पाचन औषध देवे पीछे जुलाबकी औषध देवे और जिसका मलबंध हो गोला पक जावे वह भी अन्यप्रकारका सर्वांगवात कहाता है ॥ १०६ ॥ वहां एक तो साध्य होता है और दो कष्टसाध्य होते हैं, और स्नेह, तैलादिक देके वमन करके मृगीरोगको दूर करे ॥ १०७ ॥

अथ नारायणनामक तैल ।

श्योनाकः पाटला बिल्वं तर्कारी पारिभद्रकम् ॥ अश्वगन्धा कण्टकारी प्रसारिणी पुनर्नवा ॥ १०८ ॥ श्वदंष्ट्रातिबला चैव बला च समभागिकी ॥ पादशेषं जलद्रोणे क्वथितं परिस्रावयेत् ॥ १०९ ॥ वाच्यमानानि योज्यानि भेषजानि भिषग्वरैः ॥ ११० ॥ शतपुष्पा वचा मांसी दारु शैलेयकं वरा ॥ पतङ्गं चन्दनं कुष्ठं तथान्यं रक्तचन्दनम् ॥ १११ ॥ करञ्जबीजांशुमती त्रिसुगन्धि पुनर्नवा ॥ रास्ना तुरङ्गगन्धा च सैन्धवं च दुरालभा ॥ ११२ ॥ सिध्मासुरसा चैतत्तु प्रत्येकं तु पलद्वयम् ॥ चूर्णं कृत्वा क्षिपेत्तत्र क्षिपेल्लाक्षारसाढकम् ॥ ११३ ॥ शतावरीरसं चैव अजाक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ दधि तत्राढकं गव्यं तिलतैलं प्रयोजयेत् ॥ ११४ ॥ सिद्धंतत्र प्रदश्येत ततो मङ्गलवाचनम् ॥ प्रति ह्येनं प्रति ष्ठाप्य नारायणमिदं स्मृतम् ॥ ११५ ॥ हन्ति वातविकारांश्च अपस्मारग्रहांस्तथा ॥ शिरोरोगान्कर्णरोगान्कुष्ठान्यष्टादशान्यपि ॥ ११६ ॥ वन्ध्या च लभते पुत्रं षण्ढोऽपि पुरुषायते ॥ कृशो युवायते मूर्खो विद्याराधनतत्परः ॥ ११७ ॥ नारायणमिदं तैलं कृष्णात्रेयेण भाषितम् ॥ ११८ ॥

सोनापाठा, पाडलवृक्ष, वेलपत्र, अरणी, नींब, असगंध, कटेहली, खींप, सांठी ॥ १०८ ॥ गोखरू, खरैहटी, गंगेरनकी जड़ इनको समान भाग ले १०२४ ॥ तोले जलमें पकावे जब चतुर्थांश बाकी रहे तब उतारि वस्त्रसे छान लेवे ॥ १०९ ॥ पीछे वैद्यजनोंको आगे कही हुई औषधें गेरनी चाहिये ॥ ११० ॥ जैसे--सौंफ, वच, जटामांसी, देवदार, शिलारस, त्रिफला,

पतंग, चन्दन, कूठ, लाल चन्दन ॥ १११ ॥ करंजुवाके बीज, शालवन, तेजपात, दालचीनी, इलायची, सांठी, रास्ना, असगंध, सेंधानमक, जवांसा ॥ ११२ ॥ मीठी तोरी,तुलसी इन सबोंको आठ २ तोला प्रमाण ले चूर्ण बना उसमें पहले कहे क्राथमें गेर देवे और लाखका रस २५६ तोले ॥ ११३ ॥ शतावरीका रस २५६ तोले, बकरीका दूध चार भाग, गौका दही २५६ तोले और २५६ तोले तिलोंका तैल इनको मिला ॥ ११४ ॥ फिर अग्निसे सिद्ध करे पीछे मंगलाचरण करके इस नारायणनामक तैलको प्रतिष्ठा करके स्थापित कर देवे ॥ ११५ ॥ यह तैल वातके विकारोंको नाशता है और मृगीरोग, ग्रहदोष इनको दूर करता है और शिरके रोग ॥११६॥ कर्णरोग,अठारह प्रकारके कुष्ठ इनको नाशता है। वंध्या स्त्री पुत्रको प्राप्त हो जाती है और नपुंसक भी पुरुषकी तरह आचरण करता है और दुवला पुरुष भी जवानकी तरह आचरण करता है और मूर्ख पुरुष विद्यावान् हो जाता है ॥११७॥ यह नारायण नामवाला तैल कृष्णात्रेयजीने कहा है ॥ ११८ ॥

अन्यानि घृततैलानि तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥ एतेन जायते सौख्यं वातरोगं नियच्छति ॥ ११९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने वातव्याधिचिकित्सा नाम विंशोऽध्यायः २०

अन्य भी जो घृत तथा तैल कहे हैं वे सब इस जगह प्रयुक्त करने चाहिये इस कर्मकरके सुख होता है और वातरोग दूर होते हैं ॥११९॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने वातव्याधिचिकित्सानाम विंशोऽध्यायः २०॥

एकविंशोऽध्यायः २१.

अथ आमवातचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ लक्षणं शृणु पुत्र त्वं समासेन वदाम्यहम् ॥ गुर्वन्नाहारपुष्टेन मन्दाग्निना व्यवायिनः ॥१॥ तर्पितैः कन्दशाकैस्तु आमो वायुसमीरितः ॥ श्लेष्मस्थाने प्रपच्यैव जायते बहुवेदनः ॥ २ ॥ आमातिसारो वर्तेत सन्धौ शोफः प्रजायते ॥ जरत्वश्चैव गात्राणां बलासपतनं मुखे ॥ ३ ॥ पृष्ठमन्यात्रिके जाते वेदनार्त्तेऽपि सीदति ॥ अङ्गं वैकल्यमायाति आमवाते भिषग्वर ॥४॥ तस्य नो स्नेहनं कार्यं पाचनञ्च विधीयते ॥

आमं संक्षयते प्राज्ञश्चतुर्धा भेदलक्षणैः ॥ ५ ॥ विष्टम्भी गुल्मकृन्स्नेही आमः पक्काम एव च ॥ सर्वाङ्गगो भवेच्चान्यो वक्ष्ये तस्यापि लक्षणम् ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे पुत्र! आमवातके लक्षणोंको संक्षेपमात्रसे कहते हैं सुनो, भारी अन्नके भोजनसे, मंदअग्निवाले पुरुषके ॥ १ ॥ कसरत नहीं करनेसे, कंद मूलआदिक शाकोंसे तृप्त होनेसे वायुसे प्रेरित हुआ आम अर्थात् कच्चा रस सो कफके स्थानमें पकके बहुत पीडासहित हो जाता है ॥ २ ॥ उससे आमातिसार होता है । संधियोंमें शोजा हो, अंगोंमें ज्वर बना रहे, मुखसे कफ गिरे ॥ ३ ॥ और पीठ, मन्या कटिआदि त्रिकस्थान इनमें अत्यंत पीडा रहे और हे उत्तम वैद्य ! आमवातरोगमें सब अंग विकल हो जाते हैं ॥ ४ ॥ उस आमवातमें स्नेहन अर्थात् तैलआदिका औषध नहीं करे, पाचन क्काथ देने चाहिये और चार प्रकारके लक्षणोंसे आमवात होता है ॥ ५ ॥ विष्टंभी अर्थात् मलबंध रहे १, पेटमें गुल्म हो २, स्नेही आम ३, पक्काम ४ ऐसे चार प्रकारका होता है और एक सर्वांगवात होता है उसका लक्षण भी कहेंगे ॥ ६ ॥

अथ विष्टंभी आमके लक्षण ।

विष्टम्भी गुरु चाध्मानं बस्तिशूलं च जायते ॥
तस्यापि पाचनं कार्य्यं स्नेहनं नैव कारयेत् ॥ ७ ॥

मल बंध रहे, पेट भारी रहे, अफारा हो, बस्तिमें शूल हो उसका भी पाचन औषध करना चाहिये और स्नेहन औषध नहीं करे ॥ ७ ॥

अथ गुल्मीआमका लक्षण ।

जठरं गर्जते यस्य गुल्मवत्परिपीडयते। कटिदेशे जडत्वञ्च आमगुल्माभिशंकितः ॥ ८ ॥ तस्यादौ लङ्घनानि स्युर्ज्ञात्वा देहबलाबलम् ॥ पाचनं नैव कर्त्तव्यं गुल्मपाके विमूर्च्छति ॥ ९ ॥ पाचिते चापि गुल्मामे तदाशु मरणं ध्रुवम् ॥ १० ॥

जिसका पेट गर्जता रहे, गोलासरीखी पीडा हो, कटिमें जडता हो वह गुल्मवाला आम कहाता है ॥ ८ ॥ उसकी देहके बलाबलको विचार लंघन कराने चाहिये और पाचन औषध नहीं करावे गुल्मपाक होनेमें मूर्च्छा हो जाती है ॥ ९ ॥ गुल्म आममें पाचन औषध करनेसे शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है ॥ १० ॥

अथ स्नेहीआमके लक्षण ।

यस्य च स्निग्धता गात्रे जाड्यं मन्दाग्निको बली ॥ स्नेहामो

विजलो यस्य स्नेही वामः प्रकीर्तितः ॥ ११ ॥ तस्य नो स्नेहनं कार्य्यं चोपवासश्च कारयेत्॥पाचनं चैव कर्त्तव्यमामं चैवातिसारयेत् ॥ १२ ॥

जिसके शरीरपै चिकनाइ हो, जडता हो, मन्दअग्नि हो और जलसे रहित चिकनी चिकनी आम गिरे वह स्नेही आम होता है ॥ ११ ॥ उसकी स्नेहन औषध नहीं करे, उपवास वस्तिकर्म करे और पाचन औषध करे, आमको निकासे ॥ १२ ॥

अथ आमके लक्षण।

यस्य शोफाननं जाड्यं तथा चैव घनोदरम् ॥अरुच्यामातिसारश्च स चासाध्यो विजानता ॥ १३ ॥ प्रत्याख्येया क्रिया कार्य्या जीवितस्यापि संशये ॥ पाचनं पाचितं ज्ञात्वा तस्माच्चूर्णानि दापयेत् ॥ १४ ॥

जिसके मुखपै शोजा हो, जडता हो, पेट कडा हो, अरुचि हो, आमातिसार हो वह असाध्य कहा है ॥ १३ ॥ उसकी सब क्रिया त्याग देनी चाहिये। उसके जीवनेमें संदेह है वह पाचन औषधोंको पकानेवाली जानके चूर्ण देना चाहिये ॥ १४ ॥

अथ पक्काम और सर्वांगआमके लक्षण।

सपीतो विजलः श्यामः पक्कामः पतते त्वधः ॥ न बस्तिशूलो भवति आमवाते श्रमः क्लमः॥१५॥ आमपाकीति विज्ञेयो न कुर्य्यात्तस्य पाचनम् ॥ विरेचनं न कर्त्तव्यं स्तम्भनं तस्य कारयेत्॥१६॥कटिपृष्ठे वक्षोदेशे तोदनं बस्तिशूलवान् ॥ गुल्मतो जठरं गर्जेत्तथातः शोफ एव च ॥ १७ ॥ शिरोगुरुत्वं भवति आमश्च पतते भृशम् ॥ सर्वाङ्गगो भवेत्सोऽपि विज्ञेयोऽसौ विजानता॥१८॥तस्य च पाचनं कुर्य्याद्विरेचनमनन्तरम्॥विष्टम्भी गुल्मपाकी च अन्यः सर्वाङ्गगो मतः ॥ १९ ॥ विज्ञेयाश्चात्र ये साध्याश्चान्यौ द्वौ कष्टसाध्यकौ॥स्नेही आमश्च कथितः कृच्छ्रसाध्यं द्वयं मतम् ॥ २०॥पक्कामः सुखसाध्यस्तु ज्ञात्वा कर्म समाचरेत् ॥ २१ ॥

पीला रंगवाला, जलसे रहित, काला रंगवाला ऐसा पका हुआ आंव गिरे और वस्तिस्थानमें शूल नहीं होवे और जो आमवात होवे तो श्रमग्लानि होती है ॥ १९ ॥ और जो आमपाकी वात होवे तो उसका पाचन नहीं करे जुलाब भी नहीं देवे वहां स्तंभन औष-धोंको करे ॥ १६ ॥ कटि, पीठ, छाती इनमें व्यथा हो, बस्तिमें शूल हो, गुलमसरीखा पेट गर्जे, शोजा हो ॥ १७ ॥ शिर भारी हो, बहुतसा आम गिरे वह सर्वांगवात जानना ॥ १८ ॥ उसको पहले पाचन औषध देवे पीछे जुलाब देवे, और विष्टंभी, गुल्मपाकी, सर्वांग ॥ १९ ॥ ये रोग साध्य हैं और स्नेही आम,आम ये दो कष्टसाध्य कहे हैं ॥ २० ॥ वहां पके हुए आमको सुखसाध्य जानके उसका कर्म करे ॥ २१ ॥

अथ पाचनविधि।

रास्ना त्रिकण्टमेरण्डं शतपुष्पा पुनर्नवा॥ पानं पाचनके शस्तं वामे वाते भिषग्वर॥२२॥ रास्ना श्योनाककाश्मीरं चिक्कणीकं च पुष्करम्॥ क्वाथं शृतं सुखोष्णं च पाचनं पाययेन्नरः॥एत-त्पाचनकं विद्धि प्रोक्तं चामे सवातिके ॥ २३ ॥

हे उत्तम वैद्य! आमवातमें रास्ना, गोक्षुर, अरंड, सौंफ, सांठी इनका क्वाथ बना पीनेमें पाचनके वास्ते श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ रास्ना, सोनापाठा, खंभारी, चिकनीसुपारी, पोहकरमूल इनका क्वाथ सुखसे सुहाता हुआ गरम २ पीना पाचनमें हित है। यह क्वाथ आमवातमें पाचनके वास्ते श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥

आमवाते कणायुक्तं दशमूलीजलं पिबेत्॥गुडूची नागरं पथ्या चूर्णमेतद्गुडान्वितम् ॥२४॥ धान्यनागरराजाम्लदेवदारुवचा-भयाः ॥ पाचनं चामवाते च श्रेष्ठमेतत्सुखावहम्॥२५॥ तथा कोलकचूर्णं वा पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ आमवातञ्च मदाग्निं शूलं गुल्मञ्च नाशयेत्॥ २६ ॥बलाक्वाथाढकं क्षिप्त्वा दधित-क्राढकं क्षिपेत् ॥कुलत्थाढकयूषं तु सौवीरस्याढकं तथा२७॥ एकत्र कृत्वा विपचेद्योजयेदौषधञ्च तत् ॥ शतपुष्पा देवदारु पिप्पली गजपिप्पली ॥२८॥त्रिसुगन्धि मुरामांसी कुष्ठं द्रिप-ञ्चमूलकम्॥चूर्णं विनिक्षिपेत्तत्र सिद्धं तदवतारयेत्॥२९॥पाने चाभ्यन्तरे योज्यं निरूहे बस्तिकर्मणि॥ हन्ति वातामयं सर्वं श्रेष्ठं गुणगणप्रदम् ॥ ३० ॥ पिबेदेरण्डजं तैलं गुडक्षीरेण संयु-

तम् ॥ सर्वाङ्गे चामवाते हि श्रेष्ठमेतद्विरेचनम् ॥३१॥नागरस्य भागमेकं द्वौ भागौ क्रिमिजस्य तु ॥ त्रिवृद्भागत्रयं क्षिप्त्वा चूर्णं गुडसमं वटम् ॥ ३२ ॥ भक्षेत्तथोष्णतोयेन पुनश्चोष्णं पयः पिबेत् ॥ एतेन जायते वामे विरेकः सुखकारकः ॥ ३३ ॥ विडङ्गशुण्ठी रास्ना च पथ्या त्रिकटुकान्विता॥क्वाथमष्टावशेषं च कार्येद्भिषजांवरः ॥३४॥ दुग्धं क्वाथार्द्धकं तैलं तथैवैरण्डजं क्षिपेत् ॥ कर्षमात्रं सुपातव्यो विरेकश्चानुपानतः॥३५॥गुडूची त्रिफला पथ्या गुडेन सह भक्षयेत्॥विरेको ह्यामवातेषु श्रेष्ठमेतत्सुखावहम् ॥ ३६ ॥

आमवातमें पीपल, दशमूल इनका काथ बना पीना हित है और गिलोय, सोंठ इनके चूर्णमें गुड़ मिला खाना ॥ २४ ॥ तथा धनियां, सोंठ, अमलतास, देवदार, हरडै इनका चूर्ण आमवातमें पाचन है और सुखको करनेवाला है ॥२५॥ पीपलोंके चूर्णको गरम जलके संग पीनेसे आमवात, मंदाग्नि, शूल, गुल्म इनका नाश होता है ॥ २६ ॥ और २५६ तोले खरेहटीका काथ, दही, तक्र इनको २५६ तोले लेवे कुलथीका यूप २५६ तोले, कांजी २५६ तोले ॥ २७ ॥ इनको एक जगह मिलाके पकावे और इन आगे कही औषधोंको गेरे। सौंफ,देवदार, पीपल,गजपीपल॥ २८॥ त्रिसुगंधि अर्थात् दालचीनी,तेजपात, इलायची,मुरामांसी,कूठ, दशमूल इनका चूर्ण गेरे पीछे सिद्ध हो जावे तब उतार लेवे॥२९॥यह पीनेमें और निरूहवस्तिमें उदरके भीतर युक्त करना चाहिये। यह संपूर्ण वातररोगोंको नाशता है,श्रेष्ट है,गुणको देनेवाला है ॥३०॥ और अरंडीके तेलको गुड़ तथा दूधके संग पीवे।सर्वांगवातमें और आमवातमें यह जुलाब श्रेष्ट है ॥ ३१ ॥ और सोंठ एक भाग, अगर दो भाग,निशोत तीन भाग इन सबोंके समान गुड़ मिला गोली बांध लेवे ॥ ३२ ॥ पीछे गरम जलके संग भक्षण करे और ऊपरसे गरम दूध पीवे इससे आमवातमें सुखका करनेवाला जुलाब होता है ॥ ३३ ॥ और वायविडंग, सोंठ, रास्ना, हरडै इनको जलमें चढ़ा अष्टमांश बाकी रहे तबतक काथ बनावे॥ ३४ ॥ पीछे काथसे आधा दूध और अरंडीका तैल मिलावे पीछे यह एक तोला प्रमाण पीना चाहिये। इसमें जुलावका अनुपान करे ॥ ३५ ॥ गिलोय, त्रिफला, हरडै इनको गुड़के संग भक्षण करे। यह जुलाव आमवातमें हित है, सुखको करनेवाली है ॥ ३६ ॥

अथ आमवातरोगको शमन करनेवाली औषध।

अभया मस्तुना पिष्टा मधुशर्करयान्विता ॥आमातिसारं स्तम्भेत्तु गुडामलकमेव च ॥३७॥ वत्सकं जीरके द्वे च दध्ना पिष्टं

तु दापयेत्॥ आमातिसारशमनं बस्तिशूलं नियच्छति॥३८॥ गुग्गुलुं च रसोनं च हिङ्गु नागरसंयुतम्॥क्वाथं वामविनाशाय शमनं मारुतस्य च ॥ ३९ ॥ अजमोदोग्रगन्धा च कुष्ठं त्रिकटुकं शटी॥फलत्रिकं च भार्ङ्गी च पुष्करं लवणाष्टकम् ॥४०॥ जीरके द्वे विडङ्गानि तुम्बुरू द्वे च दारु च॥तथा बिल्वा शिला भेदो रोध्रं वत्सकवासकम्॥४१॥ धातकीकुसुमं चैव शाल्मली त्वक् च दाडिमम् ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ४२ ॥ घृतेन संयुतं वातं नाशयत्याशु निश्चितम् ॥ सहिंगु चारनालेन पीतं शूलार्त्तिनाशनम् ॥४३॥ तथा चोष्णजलेनापि वामवातं नियच्छति ॥ गृध्रसीकटिशूले च दशमूलजलेन तु ॥४४ ॥ विबन्धैरण्डतैलेन शोफे वापि सुदारुणे ॥ गुल्मगोमूत्रसंयुक्तं गुडेन पाण्डुरोगजित् ॥ ४५ ॥ प्रमेहे मधुसंयुक्तं यक्ष्मणि शर्करायुतम् ॥ हन्ति सर्वामयान् घोरान् यथायोगेन योजितम् ॥ ४६ ॥

हरडैको दहीके पानीमें पीस शहद और खांड मिला पीनेसे अथवा गुड आंवला इनके पीनेसे आमातिसार बन्द होता है ॥ ३७ ॥ कूडाकी छाल, दोनो जीरे इनको दहीमें पीस देनेसे आमातिसार, बस्तिशूल ये शांत होते हैं ॥ ३८ ॥ गूगल, लहसन, हींग, सोंठ, इनका क्वाथ बना पीनेसे आमवातका नाश होता है ॥ ३९ ॥ अजमोद, वच, कूठ, सोंठ, मिरच, पीपल, कचूर, त्रिफला, भारंगी, पोहकरमूल, लवणाष्टक ८ नमक ॥ ४० ॥ दोनों जीरे, वायविडंग, धनियां दो भाग, देवदार, बेलगिरी, पाषाणभेद, लोध, कुडाकी छाल, वांसा ॥ ४१ ॥ धायके फूल, सालवनकी छाल, अनारदाना इनको समान भाग ले बारीक चूर्ण बना लेवे ॥ ४२ ॥ पीछे घृतमें मिला खानेसे आमवातका नाश होता है और हींग, कांजी इनके संग पीनेसे बस्तिशूलकी पीडाका नाश होता है ॥ ४३ ॥ और गरम जलके संग पीनेसे आमवातका नाश होता है और गृध्रसीवात, कटिशूल इन रोगोंमें दशमूलके क्वाथके संग पीवे ॥ ४४ ॥ और मलका बन्धा, दारुण शोजा इनमें अरंडीके तैलके संग पीवे, पांडुरोगमें गुडके संग और पेटके गोलेमें गोमूत्रके संग पीवे ॥ ४५ ॥ प्रमेहमें शहदके संग, राजयक्ष्मारोगमें खांडके संग पीवे । यह चूर्ण इस प्रकार यथायोगके संग देनेसे संपूर्ण घोर वातरोगोंको नाशता है ॥ ४६ ॥

अथ आमवातमें वर्ज्य।

वर्जयेद्द्विदलं गौल्यं तैलं पिच्छलमेव च ॥ शीतोदकेन न स्नान-मामवाते भिषग्वर ॥४७॥ पाचिते चामदोषे च आमवातं न सेवयेत्॥ न सेवनीयं चोष्णं च द्रवं द्रावं विशेषतः ॥ ४८ ॥ ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥४९॥ इत्या-त्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने आमवातचिकित्सा नामै-कविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्विदल धान्य, गुली बंधनेवाला अन्न, तैल, झागोंवाला पदार्थ वर्ज देवे और हे उत्तम वैद्य ! आमवातमें शीतल जलसे स्नान नहीं करावे ॥ ४७ ॥ जब आमदोष पक जावे तब आमवातनाशक औषधोंको नहीं सेवे और विशेष करके गरम वस्तुसे पतला और दस्त लगानेवाला भोजन नहीं सेवे॥ ४८ ॥ और ज्वरमें कही हुई पथ्य वस्तुको यहां प्रयुक्त करे ॥ ४९ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने आमवातचिकित्सानाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.



अथ गृध्रसीवातका निदान और लक्षण।

आत्रेय उवाच ॥ रक्तवातसमुद्भूतान्दोषाञ्छृणु महामते ॥ कट्यूरुजानुमध्ये तु जायते बहुवेदना ॥१॥ गृध्रसीति विजा-नीयात्तेन नोक्तश्च लक्षणम् ॥२॥ जानुमध्ये भवेच्छोफो जायते तीव्रवेदना ॥ वातरक्तसमुद्भूता विज्ञेया कोष्ठशीर्षिका ॥ ३ ॥ कण्डरा बाहुपृष्ठे च अङ्गुल्यभ्यन्तरेषु च॥ करकमक्षयकरी सा विज्ञेया विपश्चिता॥४॥ पादहर्षो भवेच्चात्र पादयोर्लोमहर्षणम्॥ कफवातप्रकोपान्ते प्रस्वेदः करपादयोः ॥५ ॥ पित्तवातान्वितं चान्ते उष्णत्वं करपादयोः ॥

आत्रेयजी कहते हैं--हे महामते ! रक्तवातसे उपजे हुए दोषोंको सुन, कटि, जांघ,

गोड़े इनमें बहुतसी पीडा होती है ॥ १ ॥ उसको गृध्रसीवात कहते हैं इसके अन्य लक्षण पहले नहीं कहे हैं ॥ २ ॥ गोड़ोंके मध्यमें पीडा हो,शोजा हो, तीव्र वेदना हो वह वातरक्तसे उपजी हुई कोष्ठशीर्षका कहाती है ॥ ३ ॥ और भुजा, पीठ, अंगुलीमें खाज हो वह करक्रमक्षय-करी अर्थात् हाथके क्रमसे क्षय करनेवाली गृध्रसी कहाती है ॥ ४ ॥ और पैरोंमें जो रोमहर्ष होता है वह पादहर्ष कहाता है और कफवातके प्रकोपके मध्यमें हाथ पैरोंमें पसीना हो जावे ॥ ५ ॥ और पित्तवातके मध्यमें हाथ पैर गरम हो जाते हैं ॥

अथ गृध्रसीवातकी चिकित्सा ।

अमीषां रुधिरस्रावं ततः स्वेदं च कारयेत् ॥ ६ ॥ अभ्यङ्गे वातहृ-तैलं पानं रास्नायाः पञ्चकम् ॥ शतावरी बले द्वे च पिप्पली पुष्कराह्वयम् ॥ ७ ॥ चूर्णमेरण्डतैलेन गृध्रसीमपकर्षति ॥ अजमोदादिकं चूर्णमामवाते प्रकीर्त्तितम् ॥ ८ ॥ तदत्र योज-नीयं च गृध्रसीनां निवारणम् ॥ एतैर्न जायते सौख्यं दहेल्लोहश-लाकया ॥ ९ ॥ पादरोगेषु सर्वेषु गुल्फे द्वे चतुरङ्गुले ॥ तिर्य्य-ग्दाहं प्रकुर्वीत दृष्ट्वा पादे शिरां दहेत् ॥ १० ॥ वातरोगेषु प्रोक्तानि पथ्यानि चात्र योजयेत् ॥ ११ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गृध्रसीचिकित्सा नाम द्वाविंशो-ऽध्यायः ॥ २२ ॥

इन सबोंमें रुधिरस्राव करावे, पसीना दिवाना चाहिये ॥ ६ ॥ वातको हरनेवाले तैलको मालिसमें बरते और रास्नापंचक आदि औषधोंका क्वाथ पीना चाहिये और शतावरी, खरेहटी, बडी खरेहटी, पीपल, पोहकरमूल ॥ ७ ॥ इनके चूर्णको अरंडके तैलमें मिला पीनेसे गृध्रसी वातका नाश होता है और अजमोद आदि चूर्ण जो आमवात रोगमें कहा है ॥ ८ ॥ वह यहां गृध्रसी वातके निवारण करनेमें देना चाहिये और इन इलाजोंसे यदि सुख नहीं होवे तो लोहकी शलाका करके दग्ध करे ॥ ९ ॥ संपूर्ण पादरो-गोंमें दोनों टंकनोंसे चार अंगुल दाह करे अथवा पैरपे नाड़ीको देख तिरछा दाह करना चाहिये ॥ १० ॥ और वातरोगमें कहे हुए पथ्योंको यहां करे ॥ ११ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां गृध्रसीचिकित्सानाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

अथ वातरक्तका निदान और लक्षण।

आत्रेय उवाच ॥ कटुक्षाराम्ललवणै रक्तं देहे प्रकुप्यति ॥ रोधात्संधारणाद्वापि दिवास्वप्नादिसेवनैः ॥१॥ समीरकोपः प्रत्यङ्गे युगपद्दृश्यते नृणाम् ॥ वातरक्तमिति प्रोक्तं नृणां देहे प्रवर्त्तते ॥ ॥ २ ॥ जायते सुकुमाराणां तथा स्त्रीणां भिषग्वर॥ स्थूलानाञ्च विशेषेण कुप्यते वातशोणितम्॥३॥ आलस्यं च तथा कण्डूर्मण्डलानाञ्च दर्शनम्॥वैवर्ण्यं स्फुरणं शोफशोषौ दाहश्च मार्दवम् ॥४॥ वातरक्तं विजानीयाच्छ्यावतां दन्तरक्तयोः ॥एतद्विलक्षणं दृष्ट्वा कर्त्तव्या च प्रतिक्रिया ॥ ५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-कडुआ, खारा, खट्टा, नमक इन भोजनोंके खानेसे शरीरमें रक्त कुपित होता है और मल आदिकोंके वेगके धारण करनेसे, दिनमें सोनेसे ॥ १ ॥ वायुका कोप हो जाता है तब मनुष्योंके अंगमें एक वार वातरक्त कुपित होके दीखता है ॥ २॥ यह रोग सुन्दर बालकोंके तथा स्त्रियोंके होता है और स्थूल शरीरवाले पुरुषके विशेष करके वातरक्त कुपित होता है ॥ ३॥ आलकस हो, खाज हो, शरीरमें मंडलसे दीखे,शरीर विवर्ण हो जावे और स्फुरण और शोजा हो, शोष हो, दाह हो, कोमलपना हो ॥ ४ ॥ दांत, रक्त ये काले हों तब जानिये कि, वातरक्त है ऐसा विलक्षण रोग जानके इसका इलाज करे ॥ ५ ॥

अथ वातरक्तकी चिकित्सा।

विरेकं रक्तमोक्षं च पानलेपनलेहकान् ॥ धान्यनागरसंयुक्तं क्षीरं चास्य प्रदापयेत् ॥ ६॥ पटोलीनिम्बपत्राणि क्वथित्वा मधुसंयुतम् ॥ पाचनं वातरक्तानां तथा च शमनानि च ॥७॥ काञ्जिकेन च संपिष्य पिचुमन्ददलानि च॥लेपनं शस्यते तस्य वातरक्तप्रशान्तये ॥८॥ दूर्वा मूर्वा शटी शुण्ठी धान्यकं मधुयष्टिका ॥ वर्त्तनं शीततोयेन वातरक्तप्रलेपनम् ॥ ९ ॥ धन्यकर्षञ्च जीरे द्वे गुडेन परिपाचितम्॥ भक्षणे वातरक्तानां दापयेद्दोषशा-

न्तये ॥ १० ॥ एतैर्यदि न सौख्यं स्यात्तदा रक्तावसेचनम् ॥ ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रदापयेत् ॥११॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने रक्तवातचिकित्सानाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

जुलाब दिवानी, फस्त खुलानी, पान, लेप, अवलेह ये क्रिया करनी चाहिये और धनियां, सोंठ इनसे युक्त दूधका पान करना चाहिये ॥ ६ ॥ परवल, नीमके पत्ते इनका काथ बना शहद मिला पीनेसे रक्तवातका पाचन होता है और शमन होता है ॥ ७ ॥ नीमके पत्तोंका कांजीमें पीस लेप करनेसे वातरक्तकी शांति होती है ॥ ॥ ८ ॥ दूब, मूर्वा, सोंठ, कचूर, धनियां, मुलहटी इनको शीतल जलमें पीस लेप करनेसे वातरक्तकी शान्ति होती है ॥ ९ ॥ और १ तोला धनियां, १ तोला दोनों जीरे इनको गुड़में पका भक्षण करनेसे वातरक्त दोषकी शांति होती है ॥ १० ॥ और इनसे जो शांति नहीं होवे तो रक्त निकसावे और ज्वरमें कहे हुए जो पथ्य हैं उनको यहां करवावे ॥ ११ ॥

इति वेरीनिवासि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने रक्तवातचिकित्सा नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः २४.

अथ अम्लपित्तका निदान ।

आत्रेय उवाच॥ गुडनिषेवणाच्चाम्ले विरुद्धाहारसूचिते॥ कुपितश्चाम्लपित्तश्च कण्ठस्तेन विदह्यते ॥ १ ॥ दाहो वा हृदये तस्य शिरोऽर्तिश्चैव जायते ॥ उद्गारानम्लकान् कण्ठे हिक्काम्लोऽपि प्रधावति ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—गुड़का सेवन करनेसे और खट्टा पदार्थ खानेसे, विरुद्ध भोजन करनेसे अम्लपित्त कुपित हो जाता है, उससे कंठ दग्ध होता है ॥ १ ॥ अथवा उसके हृदयमें दाह होता है और शिरमें पीड़ा होती है और कंठमें खट्टी २ डकार आती हैं खट्टी हिचकी भी आती है ॥ २ ॥

अथ अम्लपित्तकी चिकित्सा ।

शृणु तस्य प्रतीकारं वमनं कारयेद्द्रुतम् ॥ अधोगते चाम्लपित्ते विरेकश्च प्रदीयते ॥ ३ ॥ पारिभद्रदलानीति आमलक्याः फला-

नि च॥क्वाथपानं प्रयोक्तव्यमम्लपित्तं व्यपोहति ॥४॥ पटोलपाटलाक्वाथो धान्यनागरकान्वितः॥जलेन हितकः प्रोक्तश्चाम्लपित्तनिवारणे ॥५॥पटोलविश्वामृतवल्लितिक्तापत्राणि निम्बस्य च वत्सकानाम्॥क्वाथो विसर्पे कृतमम्लपित्तं विनाशयेन्मण्डलकानि दद्रून् ॥६॥ रात्रौ संपाचनं देयं धान्यनागरकल्कितम् ७ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अम्लपित्तचिकित्सा नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

उसके इलाजको सुनो । वहां शीघ्रही पहले वमन करवावे और जो अम्लपित्त नीचेको गत हो रहा हो तो जुलाब दिवानी चाहिये ॥ ३ ॥ नींबके पत्ते आंवले इनका काथ बना पीनेसे अम्लपित्तका नाश होता है ॥ ४ ॥परवल,पाडलवृक्ष इनका काथ अथवा धनियां, सोंठ इनका क्वाथ बना पीनेसे अम्लपित्तका निवारण होता है ॥ ५ ॥ परवल, सोंठ, गिलोय, कुटकी और नींब,वाला इनके पत्तोंका काथ बना पीनेसे विसर्परोगसे उपजा हुआ अम्लपित्तका नाश होता है और मंडल, दद्रु इनका नाश होता है ॥ ६ ॥ और धनियां, सोंठ इनका कल्क बना रात्रिमें पाचनके वास्ते देना चाहिये ॥ ७ ॥ इति बेरीनिवासि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां अम्लपित्तचिकित्सानाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः २५.



अथ शोफचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच॥शोफो भवेच्च विकलेन्द्रियरोममार्गे क्षीणे बले वपुषि चाम्लकटूष्णसेव्यात् ॥ शैत्यात्तथा विशदपिच्छलसेवनेन रूक्षाभिघातपतनेन च धारणाद्वा ॥१॥आमाशये गतवतोऽपि नरस्य यस्य अन्ते प्रधावति ततोऽपि च दोष एषः ॥ पाणौ तथैव चरणे च पृथक् प्रसूतो द्वन्द्वेन वा भवति शोफविकारचारः॥२॥ नरस्य चान्तःप्रभवाश्च शोफाः साध्या भवेयुर्विनता मुखेषु॥साध्यैर्विना सर्वशरीरगाश्च पादे स्त्रियो वा वदने नरस्य ॥ ३ ॥ वायौ क्षये वापि च गुल्मदेशे तद्राजयक्ष्मण्य-

थवोदरेषु॥रक्तेन जातोऽप्ययमेव शोफो गात्रे भवेच्छोफविकारचारः॥४॥अन्याश्चोर्ध्वगशोफाश्च श्लेष्मपित्तसमुद्भवाः॥कष्टसाध्याश्च विज्ञेया बहूपद्रवसंयुताः॥५॥श्लेष्मणि शिरसि प्राप्ते ऊर्ध्वशोफः प्रजायते॥मध्यः पक्काशयस्थेऽपि मलमप्यागते त्वधः॥६॥ रसे सर्वानुगाःशोफाःसर्वदेहानुगा रसाः॥७॥सर्वाङ्गशोफा अथ मध्यशोफाःसर्वाङ्गशोफाःपरिवर्जनीयाः॥वृद्धे च बाले क्षतजाः क्षयोत्थाश्छर्द्यतिसारश्वसनेन युक्ताः ॥८॥ श्रमज्वरक्षीणशरीरजाता शोफोद्भवा या च भवेन्नरस्य ॥ साध्या न वैद्यस्य च दोषदुष्टा सा नैव साध्या भिषजां वरिष्ठ ॥९॥ तोदश्च रूक्षं श्वसनश्च वातात्पित्ताच्छ्रमःशोफविदाहकश्च॥शीता घनाःश्लेष्मणि वाथ कण्डूः स्याद्द्वन्द्वजा द्वन्द्वजलक्षणेन॥१०॥अतो वदामीत्युपचारमस्यां संस्वेदनं पाचनशोधनं वा॥विरेचनं रक्तविमोक्षणं च कषायशोफेषु विधिः प्रदिष्टः ॥११॥ न चास्य स्नेहनं कार्य्यं नैव कार्य्यं विरूक्षणम् ॥ १२ ॥

आत्रेयजी कहते हैं--जिनकी इंद्रिय और रोममार्ग विकल हो जावे,बल क्षीण हो जावे तब खट्टा,चर्चरा, गरम ऐसे पदार्थके सेवनेसे शरीरमें शोजा हो जाता है और शीतल पदार्थ, कोमल और झागोंवाले पदार्थके सेवनेसे, रूखा भोजन करनेसे और चोट आदिके लगनेसे,गिरनेसे,मल मूत्र रोकनेसे॥ १ ॥आमाशयमें प्राप्त हुआ शोथ वायुविकार मनुष्यके भीतर कुपित हो जाता है तब हाथ पैरोंपै शोजा हो जाता है और दो दोषोंके विकारसे भी यह शोजा होता है॥ २ ॥मनुष्यके भीतर होनेवाले शोजे और प्रमेहरोगसे उपजी हुई पिडिकाओंके मुखका शोजा साध्य है और सब शरीरमें होनेवाला शोजा, स्त्रीके पैरोंमें तथा पुरुषके मुखमें होनेवाला शोजा असाध्य होता है ॥ ३ ॥ क्षयी रोग, वात, गुल्मका स्थान, राजयक्ष्मा, उदररोग इनमें भी रक्तसे उपजा हुआ यह शोजेका विकार हो जाता है ॥ ४ ॥ अन्य ऊपरको होनेवाले शोजे कफपित्तसे होते हैं व कष्टसाध्य होते हैं और बहुत उपद्रवोंसे युक्त होते हैं॥ ५ ॥जब शिरमें कफ प्राप्त हो जावे तब ऊपरको शोजा हो जाता है और पक्काशयमें स्थित हुआ मल नीचेको प्राप्त हो जावे तब मध्यमें शोजा होता है ॥ ६ ॥ सब प्रकारके शोजे रसके अनुसार रहते हैं, रस सब शरीरमें प्राप्त होनेवाले हैं ॥ ७ ॥ सब अंगोंमें होनेवाला और मध्यमें होनेवाला दो प्रकारका शोजा होता है वहां सर्वांगशोथ और वृद्ध, बालक इनका शोजा चोटसे उपजा तथा क्षयरोगमें उपजा और छर्दि, अतिसार

इन्होंसे युक्त ये सब शोजे वर्ज देने अर्थात् असाध्य हैं ॥ ८ ॥ और भ्रम, ज्वर इनसे क्षीण हुए शरीरमें जिस पुरुषके शोजाकी पीडा होती है वह वैद्यजनोंने असाध्य कही है. हे उत्तमवैद्य! वह शोजाकी पीडा साध्य नहीं है ॥ ९ ॥ वातसे उपजे शोजेमें व्यथा हो, रूखा शोजा हो, श्वास हो, पित्तके शोजेमें श्रम हो, दाह हो और कफसे उपजा शोजा शीतल और कडा हो, खाजकी पीड़ा होती है और दो दोषोंसे उपजे शोजेमें दो दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ १० ॥ अब इस शोजेका इलाज कहते हैं।पसीना देना,पाचन और शोधन औषध देनी, जुलाब दिवानी, फस्त खुलानी, क्वाथपान ये विधि शोफ रोगमें कही हैं ॥ ११ ॥ शोजाकी आदिमें तेलआदि औषध और रूखी औषध नहीं करनी चाहिये किंतु आगे कही हुई औषधोंको पाचनके वास्ते देवे ॥ १२ ॥

अथ पुनर्नवादि क्वाथ ।

कक्कोल शुण्ठि मगधा च पुनर्नवा च निम्बाभया च कटुका च पटोलदार्वी ॥ क्वाथः सुखोष्णकथितस्तु विपाचनेन शोफो जहाति जठरं च नरस्य शीघ्रम् ॥ १३ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, सांठी, नींब,हरड़ैं, कुटकी, परवल,दारुहलदी इनका क्वाथ बना गरम २ पीना पाचन कहा है और मनुष्यके उदरमें प्राप्त हुआ रोग और शोजेको शीघ्र ही नाश देता है ॥ १३ ॥

अथ अन्य उपाय ।

पुनर्नवा गुडूची च गुग्गुलुं समकल्कितम् ॥
हन्ति गुल्मोदरांश्चैव शोषदोषान्कफांस्तथा ॥ १४ ॥

सांठी, गिलोय, गूगल इनको समान भाग ले कल्क बना खानेसे शोजा, गुल्मरोग, उदररोग, कफरोग इनका नाश होता है ॥ १४ ॥

हस्ती महिष्या वृषभस्य मूत्रं तथैव लाजं सकणं प्रयोज्यम् ॥ पानेन शोफो विजहाति शीघ्रमेरण्डतैलेन युतं पयो वा ॥ १५ ॥ संस्वेदनक्रिया तत्र कार्य्या चैव पुनः पुनः ॥ एरण्डपत्रकैर्वापि अथवा तिन्तिडीच्छदैः ॥ १६ ॥ लोमशा कटुतुम्बी च काञ्जिकेन जलेन वा ॥ निष्क्वाथ्य चापि संस्वेदस्तथैवोष्णेन तेन च ॥ १७ ॥

इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने शोफचिकित्सा नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

हस्ती, भैंस, बैल इनके मूत्रमें धानकी खील और पीपल मिला क्वाथ बनाके पीनेसे शीघ्र ही शोजाका नाश होता है और अरंडीके तेलमें दूध मिला पीनेसे भी शीघ्र ही नाशता है॥ ॥ १५ ॥ अरंडके पत्तोंसे अथवा अमलीके पत्तोंसे वारंवार स्वेदनक्रिया अर्थात् पसीना दिवावे ॥ १६ ॥ वालछड़, कडुई तुंवी, इनको कांजीमें अथवा जलमें औटाय गरम २ जलसे पसीना दिवावे अथवा इनके ही गरम करके पसीना दिवावे ॥ १७ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहाय०हारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने शोफचिकित्सा नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः २६.



अथ गुल्मनिदान और लक्षण।

आत्रेय उवाच॥श्वयथूत्थैरुपचारैस्तैरनिलः कुप्यते यदा॥मन्दाग्निना विषमेण गुल्मं जठरे जायते॥१॥ उदरं गर्जते यस्य विषमाग्निश्च दृश्यते॥ तोदो वपुषि शूलं च वातगुल्मं विनिर्दिशेत् ॥२॥ शोषोऽरतिः सपीतत्वं मन्दज्वरनिपीडिनम् ॥ तमोभ्रमपिपासार्त्तिर्गुल्मं तत्पित्तसम्भवम् ॥३॥ शोषो जाड्यश्च हृल्लासस्तन्द्रालस्यं सशीतकम् ॥ मन्दाग्निर्विड्विबन्धश्च गुल्मं तच्छ्लेष्मसम्भवम् ॥४॥ मोहो विभ्रमता जाड्यमरतिः क्षुत्पिपासकम्॥ आलस्यं निद्रतावेश्यं गुल्मं तत्कफपैत्तिकम् ॥ ५ ॥ निद्रालस्यश्च दाहश्च शोफाच्छूलं च सज्वरम् ॥ वैवर्ण्यमरतिर्जाड्यं विड्बन्धो विकलाङ्गता ॥६॥ तथातिसारो मूर्च्छा च तृड्हृल्लासश्च वेपथुः ॥श्वासोऽरुचिरजीर्णत्वं गुल्मं तत्सान्निपातिकम् ॥७॥ साध्यं केवलदोषोत्थं द्वन्द्वं कष्टेन सिध्यति ॥ असाध्यं सन्निपातोत्थं वक्ष्यामस्तत्प्रतिक्रियाम् ॥ ८ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—शोजेसे उत्पन्न हुए उपचारोंकरके वायु जब कुपित हो जाता है तब मन्द अग्निसे और विषम अग्निसे उदरमें गुल्म अर्थात् गोला उत्पन्न हो जाता है ॥ १ ॥ जिसका उदर गर्जे और विषम अग्नि दीखे, शरीरमें व्यथा हो और शूल हो वह वातसे उपजा

गुल्म जानना ॥ २ ॥ शोष हो, पीडा हो, ग्लानि हो,पीला शरीर हो, मन्द ज्वरकी पीड़ा हो, तम अर्थात् अँधेरी, भ्रम, पिपासा ये हों वह पित्तसे उपजा गुल्म जानना ॥ ३ ॥ शोष हो, जडता हो, थुकथुकी हो, तंद्रा हो, आलस्य हो, ठंढकर रहे, मन्दाग्नि रहे, विष्ठा बन्ध रहे वह कफसे उपजा गुल्म जानना ॥ ४ ॥ मोह, विभ्रम, जडता, ग्लानि, क्षुधा, पिपासा, आलस्य, निद्रा आना ये हों वह कफपित्तसे उपजा गुल्म जानना ॥ ५ ॥ निद्रा हो, आलस्य हो, दाह हो, शूलसहित शोजा हो, ज्वर हो,बुरा वर्ण हो, ग्लानि हो, जड़ता, मलबंध, विकलपना ॥ ६ ॥ अतिसार, मूर्च्छा, तृषा, थुकथुकी, कांपना, श्वास, अरुचि, अजीर्ण, ये हों वह सन्निपातका गुल्म जानना ॥ ७ ॥ एक दोषका गुल्म साध्य है और दो दोषोंसे उपजा गुल्म कष्टसाध्य है, सन्निपातसे उपजा गुल्म असाध्य होता है। अब इनकी चिकित्सा कहेंगे ॥ ८ ॥

अथ गुल्मचिकित्सा ।

यकृद्ग्रहणीचिकित्सैव कथितं चोपवारणम् ॥ तद्वत्प्लीहा समाख्यातो न चात्र कथितः पुनः॥९॥ चिकित्सोदरगुल्मस्य वक्ष्यते शृणु साम्प्रतम् ॥ स्नेहनं रूक्षणञ्चैव पाचनं शोधनानि च ॥१०॥संशमनं विरेकश्च बस्तिस्नेहनिरूक्षणम् ॥ क्षारपानञ्च चूर्णानि गुल्मोपचरणक्रिया ॥ ११ ॥

पहले यकृत् ग्रहणीके गुल्मकी चिकित्सा जो कही है वही तिल्लीकी चिकित्सा जान लेनी, अब फिर नहीं कहेंगे ॥ ९ ॥ अब गुल्मोदर अर्थात् पेटके गुल्मकी चिकित्साको कहते हैं सो सुनो। स्नेहन, रूक्षण, पाचन, शोधन ॥ १० ॥ संशमन, जुलाव, स्नेहनवस्ति, रूक्षणवस्ति, क्षारपान, चूर्ण ये सब क्रिया गुल्मरोगकी शांतिके वास्ते करें ॥ ११ ॥

अथ शुंठ्यादि क्वाथ ।

पञ्चमूलं लघुः शुण्ठी मूर्वा च सुरसा तथा ॥
क्वाथोऽस्याष्टावशेषः स्यात्तत्समं क्षीरमेव च ॥ १२ ॥

सोंठ, देवदार, तुलसी, मूर्वा, लघुपंचमूल इनका क्वाथ अष्टमांश बाकी जल रहे ऐसा लेवे और इसके बराबर दूध मिलावे ॥ १२ ॥

अथ स्नेहविधि ।

दधि तत्सममाज्यं तु पाचयेत्तत्समाग्निना॥घृतं यावत्प्रदृश्येत सिद्धमुत्तार्य्यते ततः ॥ १३ ॥ तत्कृतं पानकेऽभ्यङ्गे भाजने च प्रदापयेत्॥ स्नेहः सप्तविधो यावत्तस्माच्च रूक्षणं हितम् ॥१४॥

उस दूधके समान दही मिला फिर उसीके समान घृत मिलावे, फिर मंद २ अग्निसे पकावे। जब घृतमात्र बाकी रह जावे तब सिद्ध हुआ जानके उतार लेवे ॥ १३ ॥ पीछे इसको पात्रमें घाल धरे इसको पीनेमें और मालिसमें वरते। स्नेह सात प्रकारका होता है इसवास्ते रूक्षण कर्म करना हित है ॥ १४ ॥

अथ शुंठचादि पानक।

दिनत्रयश्च कर्त्तव्यं कथयाम्यत्र कोविद ॥ शुण्ठी सौवर्चलं जीरे द्वे वा हिङ्गुसमन्वितम् ॥ १५ ॥ काञ्जिकं पानमेतेषां रूक्षणं गुल्मशान्तये ॥ चिकित्सितेऽत्र गुल्मस्य क्षारपाकं प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥

तीन दिनतक रूक्षण कर्म करे सो कहते हैं—सोंठ, काला नमक, दोनों जीरे, हींग इनको ॥ १५ ॥ कांजीमें मिला पान करना यह गुल्मकी शांतिके वास्ते रूक्षण कर्म कहा है और यहां गुल्मकी चिकित्सामें क्षारपाकयुक्त करना भी श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥

अथ विरूक्षण।

क्षारं पलाशार्जुनसूरणस्य तथैव क्षारं सहयावशूकम् ॥ सौवर्चलं सिन्धुभवोद्भिदश्च सामुद्रजं वापि विमिश्रयेच्च ॥ १७ ॥ तोयं परिस्राव्य विधानतोऽपि युक्तं तथैतानि सदौषधानि॥ पथ्याग्निशुण्ठीरजनीसुराह्वं कुष्ठं विशाला च जवानिका च ॥ १८॥ तथाजमोदा सह जीरके द्वे षड्ग्रन्थिका हिङ्गुयुतं च चूर्णम् ॥ क्षारोदकापानविमिश्रपानं निहन्ति सर्वाण्यपि कोष्ठजानि ॥ १९ ॥ गुल्मानि सर्वाणि विषूचिकानां मन्दाग्निशूलानि भगन्दराणाम्॥प्लीहोदरानाहनविड्विबन्धं विनाशयेद्रोगत्रयं नराणाम् ॥ २० ॥

टेशू, अर्जुनवृक्ष, जमीकंदका खार, जवाखार, कालानमक, सेंधानमक, रेही इनका खार, खारीनमकका खार इनको एकत्र मिलाय ॥ १७ ॥ जलमें उतार पीछे विधिसे इन औषधोंको गेरे। हरडे, चीता सोंठ, हलदी, देवदार, कूठ, इंद्रायण, अजवायन ॥ १८ ॥ अजमोद, दोनों जीरे, वच, हींग इनके चूर्णको उन क्षारोंके संग पीवे। यह कोष्ठमें उपजे हुए सब विकारोंको नाशता है ॥ १९ ॥ और सब प्रकारके गुल्म, विषूचिका, मंदाग्नि, शूल, भगंदर, प्लीहोदर, अफारा, विड्बंध इन सब रोगोंको नाशता है ॥ २० ॥

अथ वातगुल्मपाचन।

पथ्या ससङ्गा कलशी वृषश्च महौषधं वातिविषा सुराह्वम्॥जले च निष्क्वाथ्य त्विदं हि पानं गुल्मामयानां प्रतिपाचनञ्च॥२१॥ वचायवानीत्रिकटुदशमूलीजलं स्मृतम् ॥ क्वाथश्चोष्णो हितः पाने धान्यनागरयाथवा ॥ २२ ॥ वातगुल्मेषु सर्वेषु ज्वरेषु विषमेषु च॥रास्नाद्यं पञ्चकं वापि वातगुल्मप्रपाचनम् ॥ २३॥ शटी सौवर्चलं शुण्ठी पाचनं वाथ गुल्मिते ॥ २४ ॥

हरडे, मंजीठ, पिठवन, वांसा, सोंठ, अतीश, देवदार इनका जलमें क्वाथ बना उसका पीना गुल्मरोगमें पाचन है ॥ २१ ॥ वच, अजवायन, त्रिकटु, सोंठ, मिर्च, पीपल, दशमूल इनका जलमें क्वाथ बना सुखसे सुहाता हुआ गरम २ पीना हित है अथवा धनियां, सोंठ इनका क्वाथ हित है ॥ २२ ॥ संपूर्ण वातगुल्म और विषमज्वर इनमें ये क्वाथ हित हैं अथवा रास्नाद्यपंचक रास्ना आदि पांच औषधोंका क्वाथ वातगुल्ममें पाचन है ॥ २३ ॥ अथवा कचूर, कालानमक, सोंठ इनका क्वाथ देना पाचन है॥ २४ ॥

अथ पित्तगुल्म तथा कफके गुल्मका पाचन ।

कटुका विदुला द्राक्षा निम्बपत्राणि चैव तु॥सगुडं पाचनं देयं पैत्तिके गुल्मरोगिणि॥२५॥धात्रीकल्कं सितोपेतं पाचनं पित्तगुल्मिते॥यवानी चोग्रगन्धा च तथा च कटुकत्रयम् ॥ पाचनं श्लैष्मिके गुल्मे पीतं चोष्णं निशासु च ॥ २६ ॥

सातला, दाख, कुटकी, नींबके पत्ते इन औषधोंके क्वाथमें गुड मिला पित्तके गुल्ममें पाचन देना चाहिये ॥ २५ ॥ और आंवलोंके कल्कमें मिश्री मिला खाना पित्तके गुल्ममें पाचन है और अजवायन, वच, सोंठ, मिर्च, पीपल इनका क्वाथ रात्रिमें पिया हुआ पाचन है ॥ २६ ॥

अथ वातके गुल्ममें जुलाब ।

नागरा क्रिमिजित्पथ्या त्रिवृतात्रिगुणायुता ॥ चूर्णं गुडान्वितं देयं वातगुल्मविरेचनम् ॥ २७ ॥ दन्ती च भागमेकं च द्वौ भागौ च हरीतकी ॥त्रिवृता भागत्रयं स्याच्छुठ्याश्चत्वार एव च ॥ २८ ॥ प्रक्षिप्य सर्वमेकत्र सर्वतुल्यगुडेन तु ॥ वटकं

भक्षयेत्प्रातस्तस्योपरि जलं पिबेत् ॥ २९ ॥ कथितं च विरेकाय वातगुल्मोपशान्तये ॥ ३० ॥

सोंठ, वायविडंग, हरड़े, तीन भाग निशोत इनके चूर्णमें गुड मिला वातगुलममें जुलावके वास्ते देना चाहिये ॥ २७ ॥ जमालगोटाकी जड एक भाग, हरड़ै दो भाग, निशोत तीन भाग, सोंठ चार भाग ॥ २८ ॥ इस प्रकार इनको ले चूर्ण बना उसके समान गुड मिला उस गोलीको प्रातःकाल भक्षण करे,ऊपर औटाया हुआ जल पीवे ॥२९ ॥ इस प्रकार जुलाव देनेसे वातका गुलम शांत होता है ॥ ३० ॥

अथ पित्तके गुल्ममें जुलाब ।

पिबेदेरण्डतैलं च शर्कराक्षीरसंयुतम्॥पित्तगुल्मविरेकाय श्रेष्ठमेतत्सुखावहम्॥३१॥आरग्वधप्रवालानि तथैवारग्वधानि च॥ विभाव्यैरण्डतैलेनैरण्डपत्रैस्तु वेष्टयेत् ॥ ३२॥ कर्दमेन प्रलिप्याथ अङ्गारेषु च स्थापयेत् ॥ सुस्विन्नभर्जिकां ताञ्च भक्षयेच्छर्करान्विताम् ॥ ३३ ॥ विरेकः पैत्तिके गुल्मे हितं शुद्धविरेचनम् ॥ ३४ ॥

अरंडीके तैलमें खांड और दूध मिलाके पीवे यह जुलाव पित्तके गुलममें श्रेष्ठ और सुखको देनेवाला कहा है ॥ ३१ ॥ अमलतासके पत्ते तथा अमलतास इनको अरंडीके तेलमें भावना दे फिर अरंडके पत्तोंमें लपेट ॥ ३२ ॥ गारासे लीप अंगारोंमें रख देवे जब अच्छी तरह पक जावे तव खांड मिलाके भक्षण करे ॥ ३३ ॥ पित्तसे उपजे गुल्ममें यह जुलाब हित और शुद्ध कही है ॥ ३४ ॥

अथ कफगुल्मपर विरेचन ।

त्रिफलासुरसाशुण्ठीचूर्ण कृत्वा विभावयेत्॥स्नुहीक्षीरेण वारैकं गुडेन सह मिश्रितम् ॥३५॥ विरेकः श्लेष्मके गुल्मे सर्वोदरविनाशनः ॥३६॥ शुण्ठी सौवर्चलं पथ्या विडङ्गञ्च पुनर्नवा ॥ चूर्णेऽपामार्गबीजानां स्नुहीक्षीरेण भावितम् ॥ ३७ ॥ गुडेन संयुतं खादेत्पश्चादुष्णं जलं पिबेत्॥विरेकः सर्वगुल्मेषु प्रशस्तो हितकारकः ॥ ३८ ॥

त्रिफला, तुलसी, सोंठ इनका चूर्ण बना एक वार थोहरके दूधमें भावना दे गुड़में मिला भक्षण करे ॥ ३५ ॥ यह जुलाव कफके गुलममें हित कही है और सब प्रकारके उदररोगोंका

नाश करती है ॥ ३६ ॥ सोंठ, कालानमक, हरड़े, वायविडंग, सांठी, ऊंगाके बीज इनका चूर्ण बना थोहरके दूधमें भावना दे ॥३७॥ गुडमें मिला भक्षण करे, पीछे गरम पानी पीवे । यह जुलाब सब प्रकारके गुल्मोंमें सुख करनेवाला है ॥ ३८ ॥

अथ क्षारपान ।

शुक्तिक्षारनिशाविशालकदली स्यात्सूरणं कोकिला पालाशं दहनार्जुनं शटिजयापामार्गकूष्माण्डकम् ॥ दग्ध्वा क्षारविपाचितं परिस्रुतं हिङ्गु त्रिकट्वान्वितं गुल्मानाहविबंधशूलहरणं सर्वोदराणां हितम् ॥ ३९ ॥

सीप, जवाखार, हलदी, इन्द्रायण, केला, जमीकन्द, कोलिस्ता, टेसू, चीता, अर्जुनवृक्ष, कचूर, अरणी, ऊंगा, कोहला इनको जला फिर पानीमें घोलके खार जमाके उस खारमें हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल ये मिला खानेसे गुल्म, अफारा, मलका बन्धा, शूल इनका नाश होता है और सब प्रकारके उदररोगोंमें हित है ॥ ३९ ॥

अथ अजमोदादि औषध ।

अजमोदा शटी दन्ती विडंगं कुष्ठतुम्बुरू ॥ त्रिफला चित्रकं चैव शुण्ठी कर्कटशृङ्गिका ॥ ४० ॥ त्रिवृता च सुराह्वा च पुष्करं वृद्धदारुकम् ॥ तथाम्लवेतसं चैव तिन्तिडीकञ्च चिञ्चिनी ॥ ४१ ॥ समं तु मातुलुङ्गेन विभाव्यमेकतः कृतम् ॥ त्रिभागहिङ्गुसंयुक्तं घृतेन चूर्णितं हितम् ॥ निहन्ति वातगुल्मञ्च सशूलमुदरं तथा ॥ ४२ ॥

अजमोद, कचूर, जमालगोटाकी जड, वायविडंग, कूठ, धनियां, त्रिफला, सोंठ, काकडासींगी ॥ ४० ॥ निशोत, देवदार, पोहकरमूल, भिदारा, अम्लवेत, अमली इनको ॥ ४१ ॥ समानभाग ले एक वार विजोराके रसमें भावना दे, तीन भाग हींग मिला फिर घृतके संग इस चूर्णको खावे । यह वातके गुल्मको तथा शूलसहित उदररोगको नाशता है ॥ ४२ ॥

अथ हिंग्वादिचूर्ण ।

हिंगुफलत्रिकजीरकयुग्मं चित्रकभार्ङ्गीकुष्टविडंगम् ॥ तुम्बुरुपुष्करविश्वसुराह्वं क्षारयुतं लवणानि च पञ्च ॥ ४३ ॥ वातिकगुल्मविनाशनहेतोः शूलरुजश्च निहन्ति नराणाम् ॥ ४४ ॥

हिङ्गुसौवर्चलाजाजी विश्वा कुष्ठं विडंगकम् ॥ आरनालेन पीतं च हन्ति गुल्मं सवातिकम् ॥ ४५ ॥

हींग, त्रिफला, दोनों जीरे, चीता, भारंगी, कूठ, बायविडंग, धनियां, पोहकरमूल, सोंठ, देवदार इनके चूर्णमें जवाखार और पांचों नमक मिला खानेसे वातके ॥ ४३ ॥ गुल्मका नाश होता है और मनुष्योंके शूलकी पीड़ाका नाश होता है ॥ ४४ ॥ हींग, कालानमक, जीरा, सोंठ, कूठ, बायविडंग इनको कांजीके संग पीनेसे वातके गुल्मका नाश होता है ॥ ४५ ॥

अथ पित्तगुल्मोदरचिकित्सा ।

जीरे द्वे त्रिकटु शटी तुम्बुरु चित्रकं मधु ॥ लेहः पित्तात्मके गुल्मे हितः शोफनिवारणः ॥४६॥ यष्टिकं निम्बपत्राणि तथा धात्रीफलं सिता ॥ चूर्णं मध्ववलीढं च पित्तगुल्मनिवारणम् ॥४७॥

दोनों जीरे, त्रिकटु अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपल, कचूर, धनियां, चीता, शहद इनका लेह बना खानेसे पित्तके गुल्मका नाश होता है और शोजा दूर होता है ॥ ४६ ॥ मुलहटी, नींवके, पत्ते, आंवले, मिश्री इनके चूर्णको शहदमें मिला चाटनेसे पित्तके गुल्मका नाश होता है ॥ ४७ ॥

त्रिकटुत्रिफलाचित्रवटकफलसंयुतम् ॥ चूर्णं मद्येन वा पीतं फलक्वाथेन वा हितम् ॥४८॥ श्लेष्मगुल्मविनाशाय हितं चैतत्सुखावहम् ॥ ४९ ॥

और सोंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, चीता, वडके फल, वडवंटे इनके चूर्णको मदिराके संग अथवा त्रिफलाके काथके संग पीवे ॥ ४८ ॥ तो कफके गुल्मका नाश होता है और यह हित है सुखको देनेवाला है ॥ ४९ ॥

अथ कफके गुल्मकी चिकित्सा ।

रोध्रं च कमलं विश्वा कुष्ठं चित्रकमेव च ॥ नागरं हिङ्गुसंयुक्तं चूर्णं मूत्रेण संयुतम् ॥५०॥ श्लेष्मगुल्मविनाशाय शूलोदरविनाशनम् ॥ उग्रगन्धा च मरिचं क्षारचूर्णसमन्वितम् ॥ ५१ ॥ पिबेन्मूत्रेण संयुक्तं श्लेष्मगुल्मविनाशनम् ॥ ५२ ॥

लोध, कमल, सोंठ, कूठ, चीता, नागरमोथा, हींग इनके चूर्णको गोमूत्रके संग खावे ॥ ५ ॥ तो कफकी शूल, उदररोग, कफका गुल्म इनका नाश होता है और वच, मिर्चके समान जवाखारके चूर्णको ॥ ५१ ॥ गोमूत्रके संग पीनेसे कफके गुल्मका नाश होता है ॥ ५२ ॥

अथ वातकफके गुल्मकी चिकित्सा ।

शुण्ठी सौवर्चलं भार्ङ्गी वत्सकं यावशूकम् ॥ जीरे द्वे चाटरूषं च यवानी हिङ्गु सैन्धवम् ॥ ९३ ॥ आरग्वधेन संयुक्तं चूर्णं सघृतमेव च ॥ वातश्लेष्मोद्भवे गुल्मे सुखमाशु प्रपद्यते ॥९४॥ उग्रगन्धा फलत्रिकं देवदारु पुनर्नवा॥ त्रिवृत्सौवर्चलोपेतं क्षारोदकसमन्वितम्॥पीतं वातकफे गुल्मे सुखकारि परं मतम्९५॥

सोंठ, कालानमक, भारंगी, कुडाकी छाल, जवाखार, दोनों जीरे, वांसा, अजवायन, हींग, सेंधानमक ॥ ९३ ॥ अमलतास इनके चूर्णमें घृत मिला खानेसे वातकफसे उत्पन्न हुए गुल्ममें शीघ्र ही सुख उत्पन्न होता है ॥ ९४ ॥ वच, त्रिफला, देवदार, सांठी, निशोत, कालानमक इनको जवाखारके जलके संग पीनेसे वातकफसे उपजे हुए गुल्ममें अत्यंत सुख होता है॥९५॥

अथ सन्निपातके गुल्मकी चिकित्सा ।

ग्रहणीगुल्मक्रिया या वा सा चात्र प्रशस्यते यदि॥शोफोदरेषु सर्वेषु कार्य्यश्चात्र विरेचनम्॥९६॥शोफातिसारसंयुक्तो हन्ति गुल्मोदरो नरम्॥ तस्य क्षारोदकपानं बृहद्धिंग्वादिचूर्णकम् ॥९७॥ अजमोदादिकं वापि शोफातिसारशान्तये॥वमिश्चैवातिसारश्च गुल्मरोगेषु यद्यपि ॥९८॥ तेन साध्यं विजानीयात्प्रत्याख्येया क्रिया हिता ॥ गुडदाडिमपथ्यां च मधुना सहितां पिबेत् ९९ वमिश्च वातिसारं च वारं वारं प्रयोजयेत् ॥ सर्वलक्षणसंयुक्तं गुल्मं तत्सान्निपातिकम् ॥ १०० ॥ तोदोऽरतिर्विवर्णत्वं मूर्च्छातीसारसंयुतम् ॥ वमिः क्लेदश्च तन्द्रा च तदसाध्यं त्रिदोषजम् ॥ १०१ ॥

संग्रहणी गुल्ममें कही हुई जो क्रिया हों वह यहां करनी चाहिये और सब प्रकारके उदररोगोंमें जुलाब दिवानी चाहिये ॥ ९६ ॥और शोजा, अतीसार इनसे संयुक्त गुल्मोदर मनुष्योंको मार देता है। उसको बृहत् हिंग्वादि चूर्णके संग क्षारोदक पान कराना चाहिये ॥ ९७ ॥ अथवा अजमोदआदिक चूर्णको शोजाकी शांतिके वास्ते देवे,गुल्मोदर रोगोंमें वमन हो और अतीसार हो ॥ ९८ ॥ तो साध्य जानना । उसकी संपूर्ण क्रिया करनी हित कही हैं ओर गुड, अनारदाना, हरडै, इनको शहदके संग पीवे ॥ ९९ ॥ वमन,अतीसार इनको वारंवार करवावे और जो सब

लक्षणोंसे युक्त हो वह सन्निपातसे उपजा गुल्म जानना ॥ ६० ॥ व्यथा हो, ग्लानि हो, विवर्ण हो, मूर्च्छा हो, अतीसार हो, वमन हो, गीलापन हो, आलस्य हो, वह त्रिदोषसे उपजा गुल्मरोग असाध्य जानना ॥ ६१ ॥

अथ शोथचिकित्सा ।

शृणु पुत्र महाप्राज्ञ एकाग्रमनसाधुना ॥ शोफोद्धारक्रियां नृणां वक्ष्यते च विजानता ॥ ६२ ॥ त्रिवृत्तथा चेक्षुगुडेन युक्ता अनन्तरं कोष्णजलेन पीता ॥ तस्मान्निहन्त्योदरकं सशोफं पित्तात्मकं वा विजहाति पुंसाम् ॥ ६३ ॥ हरीतकी च त्रिवृता च शुण्ठी गुडेन युक्ता त्वथ हन्ति शोफम् ॥ द्विपञ्चमूलं कथितं सुखोष्णमेरण्डतैलेन जहाति शोफम् ॥ ६४ ॥ गोमूत्रयुक्तं वरुणस्य तैलं पाने हितं नाशयते च शोफम् ॥ ६५ ॥

हे पुत्र ! अब एकाग्र मन करके सुनो, मनुष्योंके शोजाको दूर करनेवाली क्रियाको कहते हैं ॥ ६२ ॥ निशोतको ईखके गुड़के संग खावे पीछे गरम जल पीवे इससे शोजासहित उदररोगका नाश होता है और पित्तसे उपजा गुल्मरोग भी शांत होता है ॥ ६३ ॥ हरडै, निशोत, सोंठ इनको गुड़में मिला खानेसे शोजाका नाश होता है और दशमूलके गरम २ क्वाथको अरंडीके तेलके संग पीनेसे शोजाका नाश होता है ॥ ६४ ॥ और वरुणाका तैल गोमूत्रके संग पीना हित है तथा शोजाको नाशता है ॥ ६५ ॥

अथ शोथरोगमें वर्ज्य ।

ग्राम्यानूपं पिशितलवणं शुष्कशाकं नवान्नं गौडं पिष्टं सदधिकृशरं निर्जलं मद्यमन्नम् ॥ धान्यं शोफाकरणमथवा गुर्वसात्म्यं विदाहि स्वप्नं रात्रावपि च श्वयथुर्वर्जयेन्मैथुनं च ॥ ६६ ॥ लेपोऽरुष्करस्य शोफं हन्ति तिलदुग्धमधुकनवनीतैः ॥ तत्तरुतलमृद्भिर्वा सकदलैर्वापि सविरणैः ॥ ६७ ॥ शोषे विषनिमित्तं तु विषोक्ता शमनक्रिया ॥ लंघनं दीपनं स्निग्धमुष्णवातानुलालनम् ॥ ६८ ॥ बृंहणं तु भवेदन्नं तद्विषं सर्वगुल्मिनाम् ॥ वल्लूरं मूलकं मत्स्याञ्छुष्कशाकादि वैदलम् ॥ ६९ ॥ न खादेद्वालुकं गुल्मी मधुराणि समानि च ॥ ७० ॥

गाममें रहनेवाले बकरे आदि जीव, अनूपदेशके जीवोंका मांस, नमक, सूखा शाक, नवीन अन्न, गुड़का भोजन, पीठीका भोजन, दही और खिचडी, जलसे रहित सूखा अन्न, मदिरा, धान्य, शोजा करनेवाला पदार्थ, भारी, प्रकृतिसे रहित और विदाही पदार्थ, रात्रिमें भी सोना, मैथुन इनको शोजावाला पुरुष त्याग देवे ॥ ६६ ॥ भिलावा, तिल, मुलहटी इनको दूधमें पीस नोनी घृत मिला लेप करनेसे शोजाका नाश होता है अथवा भिलावाके वृक्षकी जडकी माटी, बांसाके पत्ते, नेत्रवाला इनका लेप करनेसे शोजाका नाश होता है ॥ ६७ ॥ और विषसे उपजे हुए शोजेमें विषोंको शांत करनेवाली चिकित्सा करे, लंघन, दीपन, स्निग्ध अर्थात् तेल आदि गरम वातको संचालन करना ॥ ६८ ॥ बृंहण पदार्थ, ऐसा अन्न सब गुल्मरोगवालोंको विषके समान है और सूखा मांस, मूली, मच्छी, सूखा शाक, वैदल ॥ ६९ ॥ और आलुकादि कंद, मधुर पदार्थ इनको गुल्मरोगवाला पुरुष नहीं खावे ॥ ७० ॥

अथ रक्तगुल्ममें पाचन।

सरक्तगुल्मे न तु पाचनं तु न हिङ्गुपानं कटिमर्दनं च॥ न चैव संस्वेदनमर्दनञ्च न चङ्क्रमं नोत्प्लवनं हितं च ॥ ७१ ॥ रोध्रार्जुनं खदिरमागधिकासमङ्गक्वाथोऽम्लवेतसमधुघृतसंप्रयुक्तः ॥ गुल्मं सरक्तमपि चाथ निहन्ति चाशु हृत्क्लेदनं च विनिहन्ति च कुष्ठरक्तम् ॥ ७२ ॥

रक्तसहित गुल्मरोगमें पाचन औषध नहीं देवे और हिंगुआदि औषध पान, कटि मसलना, पसीने दिवाने, मालिस करनी, ऊपरको लफना, कूदना ये हित नहीं हैं ॥ ७१ ॥ लोध, अर्जुन वृक्ष, खैर, पीपली, मंजीठ, अम्लवेत, इनका क्वाथ बना शहद और घृत मिला खानेसे रक्तसहित गुल्मका शीघ्र ही नाश होता है और हृदयकी पीडा, अत्यंत रक्तरोग इनका नाश होता है ॥ ७२ ॥

अथ रक्तगुल्ममें पथ्य।

क्षीरपानं प्रदातव्यं घृतसौवर्चलान्वितम् ॥ रक्तगुल्मविनाशाय यकृद्धिक्षतजेऽपि वा ॥७३॥ न च हिङ्गुयुतं पथ्यं न चोष्णं न विदाहि च॥रक्तजे क्षतजे गुल्मे मांसानि जाङ्गलानि च॥७४॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गुल्मचिकित्सा नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

रक्तके गुल्मके नाशके वास्ते तथा यकृत् भंगसे उपजे गुल्मके नाशके वास्ते घृत, काला नमक इनसे युक्त दूधको पीना चाहिये ॥ ७३ ॥ हिंगुसंयुक्त औषध और गरम तथा विदाही पदार्थ हित नहीं हैं और रक्तसे उपजे तथा चोटसे उपजे गुल्ममें जांगल देशके जीवोंका मांस हित नहीं है ॥७४॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने गुल्मचिकित्सानाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः २७.

अथ जलोदरका निदान तथा लक्षण ।

आत्रेय उवाच॥विषमासनोपवेशात्पीततोयादथापि वा॥श्रमाध्वश्वासनिष्क्रान्ते अतिव्यायामितेऽपि या॥पीतं तूदरमेवं च तस्माज्जातं जलोदरम्॥ १ ॥उदरं सजलं यस्य सघोषमतिवर्द्धितः॥ श्वयथुः पादयोः शोषो जलोदरस्य लक्षणम् ॥ २ ॥

विषम आसनपै बैठनेसे, ज्यादे जल पीनेसे, श्रम, मार्ग, इनकी पीड़ा होनेसे अथवा अत्यंत कसरत करनेसे पीला उदर हो जाता है इनसे जलोदरसंज्ञक रोग हो जाता है ॥ १ ॥ जिसका उदर जलसहित दीखे, शब्द हो और अत्यंत बढ जावे,पैरोंमें शोजा हो यह जलोदरका लक्षण है ॥ २ ॥

अथ जलोदररोगकी चिकित्सा ।

विरेकं वमनं कुर्य्यात्पाचनानि च कारयेत् ॥ क्षारयोगश्च वटकस्तेन तदुपशाम्यति ॥ ३ ॥ तस्मान्नाभेर्वलीभागे वर्जित्वाङ्गुलमात्रकम् ॥ जलनाडी चानुमान्य कुशमात्रेण वेधयेत् ॥ ४ ॥ एरण्डजलनालं च तत्र सञ्चारयेद्बुधः ॥ अन्तर्गतं जलं स्राव्यं ततः संधारयेद्द्रुतम् ॥५॥ यदा न धरते तच्च तदा दाहः प्रशस्यते ॥ कणकल्कं परिस्राव्य घृतं देयं चतुर्गुणम् ॥६॥ शुण्ठीविषासमं पाच्य पानमालेपनं हितम्॥शस्त्रकर्म भिषक्छ्रेष्ठो विज्ञातेनैव कारयेत् ॥ ७ ॥ दुष्करं शस्त्रकर्मैव न कुर्याद्यत्र तत्र तु ॥ अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत् ॥ ८ ॥

तस्मादवश्यं कर्त्तव्यमीश्वरं साक्षिकारिणा ॥ ९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने जलोदरचिकित्सा नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस रोगमें जुलाब, वमन, पाचन औषध इनको करावे और क्षार योग, गोलीआदिक इनसे यह रोग शान्त होता है ॥ ३ ॥ इस रोगमें नाभिके वलीभागसे एक अंगुल मात्र जगह वर्जके जलकी नाडीका अनुमान जानके कुशासे बांध देवे ॥ ४ ॥ पीछे बुद्धिमान् जन वहां अरंडीके जलकी नालीको प्रयुक्त करे, भीतरको प्राप्त हुए सब जलको झिरा देवे पीछे शीघ्र बंद कर देवे ॥ ५ ॥ और जो इस प्रकार करनेसे वहां आराम नहीं होवे तो दाह करना श्रेष्ठ कहा है । गेहुओंके कणीके चूनको छान तिसमें चौगुना घृत मिला ॥ ६ ॥ सोंठ अतीश इनको चूनके समान भाग मिला पका लेवे पीछे इसका पीना और लेप करना हित है और उत्तम वैद्यको अच्छी तरह जाने विना शस्त्रकर्म नहीं करना चाहिये ॥ ७ ॥ शस्त्रकर्म अत्यंत दुष्कर है इसवास्ते जहां तहां सब जगह नहीं करना चाहिये । अन्यथा चिकित्सा होनेमें निश्चय मृत्यु हो जाती है । यथार्थ चिकित्सा करनेमें भी सन्देह रहता है ॥ ८ ॥ इसवास्ते अवश्य ईश्वरको साक्षी करके कर्म करना चाहिये ॥ ९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां जलोदरचिकित्सानाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः २८.

अथ प्रमेहचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ विंशत्यवें प्रमेहास्तु नराणामिह लक्षणम् ॥ १ ॥ श्रमाद्व्यवायाच्च तथैव घर्मविरुद्धतीक्ष्णोष्णविभोजनेन ॥ मद्येन वा क्षीरकटुप्रसेवनान्मेहप्रसूतिः कथिता मुनीन्द्रैः ॥ २ ॥ जलप्रमेहो रुधिरप्रमेहः पूयप्रमेहो लवणप्रमेहः ॥ तक्रप्रमेहः खटिकाप्रमेहः शुक्रप्रमेहः कथितः पुरस्तात् ॥३॥ स्याच्छर्करामेहो वसाप्रमेहो रसप्रमेहोऽन्यघृतप्रमेहः ॥ पित्तप्रमेही कफमेहिनश्च मधुप्रमेहीति विभावयेच्च ॥ ४ ॥ यथा च नासानि तथैव लक्षणं बलक्षयं वापि नरस्य देहे ॥ कुर्वन्ति शीघ्रं भिषजां वरिष्ठाः कुर्यात्क्रियाश्च शमनाय हेतुम् ॥ ५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—मनुष्योंके वीस प्रकारके प्रमेह रोग होते हैं ॥ १ ॥ श्रम करनेसे, घाम, तीक्ष्ण, विरुद्ध भोजन इनसे, मदिरा, दूध, चर्चरा इन वस्तुओंके सेवनेसे मुनिजनोंने प्रमेह रोगकी उत्पत्ति कही है ॥ २ ॥ जलप्रमेह १ रुधिरप्रमेह २ पूयप्रमेह ३ लवणप्रमेह ४ तक्रप्रमेह ५ खटिकाप्रमेह ६ शुक्रप्रमेह ७ ॥ ३ ॥ शर्कराप्रमेह ८ वसाप्रमेह ९ रसप्रमेह १० घृतप्रमेह ११ पित्तप्रमेह १२ कफप्रमेह १३ मधुप्रमेह १४ इस प्रकारसे हैं ॥ ४ ॥ जैसे इनके नाम हैं वैसेही लक्षण हैं। ये प्रमेहरोग मनुष्यके देहमें वलका क्षय कर देते हैं इस वास्ते इस रोगके नाशके लिये शीघ्र ही उत्तम वैद्यको चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५ ॥

अथ प्रमेहचिकित्सा।

धवार्जुनं चन्दनशालछल्लीकाथो हितः स्याच्च जलप्रमेहे ॥ रक्तप्रमेहे शिशिरं पयश्च द्राक्षान्वितं यष्टिकचन्दनेन ॥ ६ ॥ स्त्रीसेवनं चाल्पतरञ्च पूयमेहे हितः क्काथो धवार्जुनस्य ॥ दूर्वाकसेरुकदलीनलिन्या लवणस्य मेहे च कषाय उक्तः ॥७॥ कदम्बशालार्जुनदीप्यकानां विडङ्गदार्वीधवशल्लकीनाम् ॥ सर्वे तथैते मधुना कषायाःकफप्रमेहेषु निषेवणीयाः॥८॥रोध्रार्जुनः शीरमरिष्टपत्रात्तत्रैव धात्रीफलचन्दनानि ॥ तक्रप्रमेहे खटिकाप्रमेहे देयो हितः क्काथगुडावटश्च ॥ ९ ॥ दूर्वा च मूर्वा कुशकाशमूलं दन्ती समङ्गा सह शाल्मली च ॥ शुक्रप्रमेहे कथितं जलेन पानं हितं वा रुधिरप्रमेहे ॥ १० ॥ फलत्रिकारग्वधमूलमूर्वाशोभाञ्जनारिष्टदलानि मोचा ॥ द्राक्षायुतो वा कथितः कषायः सर्पिःप्रमेहस्य निवारणाय ॥ ११ ॥ कुष्ठं तथा पर्पटकं च तिक्ता सिता प्रगाढं कथितः कषायः ॥ मूर्वारिकापाटलिकानियुक्तो दुरालभाकिंशुकटुण्टुकानाम् ॥ रसप्रमेहे च सदा हितःस्यान्न किञ्चिदत्रास्ति विचारणीयम् ॥१२॥ नीलोत्पलार्जुनकलिङ्गधवाम्लिकानां धात्रीफलानि पिचुमन्ददलानि तोये॥निष्काथ्य शर्करयुते मनुजस्य पाने पित्तप्रमेहशमनाय वदन्ति धीराः ॥ १३ ॥ विडङ्गसर्जार्जुनकट्फलानां कदम्बरोध्राशनवृक्षकाणाम्॥जलेन क्काथश्च हितो नराणां कफप्रमेहं विनिहन्ति तेषाम्

॥ १४ ॥ मुस्ता फलत्रिकनिशा सुरदारु मूर्वा इन्द्रा च रोध्रसलिलेन कृतः कषायः॥ पाने हितः सकलमेहभवे गदे च मूत्रग्रहेषु सकलेषु वियोजनीयः ॥१५॥ यच्चाभयालोहरजोनिकुम्भचूर्णं हितं शर्करया समेतम् ॥ फलत्रिकाया मधुना च लेहं सर्वप्रमेहेषु हितं वदन्ति ॥ १६ ॥ मधुमेहे प्रयोक्तव्यं घृतपानं सुधीमता ॥ क्षीरं वा शर्करायुक्तं क्वाथो वा गुटिकानि च ॥१७॥ न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षारग्वधटुण्टुकम् ॥ पियालं कुकुभं जम्बूकपित्थाम्रातकानि च ॥१८॥ मधुकं यष्टिमधुकं रोध्रं वै नारिसङ्कम् ॥ पटोलं चारिणी चैव दन्ती मेषविषाणिका १९ चित्रकं च करञ्जश्च शङ्खाह्वं त्रिफलायुतम्॥भल्लातकानाञ्च समं त्रिगन्धं कटुकत्रयम् ॥२०॥ सूक्ष्मचूर्णं प्रदातव्यं न्यग्रोधाद्यं गुणाधिकम् ॥ मधुना संयुतं लेहो हन्याच्च मधुमेहकम्॥२१॥ क्वाथो वा तैलपाको वा घृतपाकोऽथवापि च ॥ पानाभ्यङ्गप्रशस्तः स्याद्धन्ति वै मूत्रजं गदम् ॥ २२ ॥ न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं पेयं वा क्षीरसंयुतम्॥ मधुमेहे तु नान्योऽस्ति यथालाभेन योजितः ॥२३॥ माक्षीकं धातुमाक्षीकं शिलोद्भेदं शिलाजतु॥ चन्दनं रक्तधातुश्च तथा कर्पूरकं कणाः ॥२४॥ वंशरोचनकं चैव क्षीरेण सहितं पिबेत् ॥ मधुप्रमेहं हरति मूत्ररोगाद्विमुच्यते ॥ २५ ॥

धव, अर्जुन वृक्ष, चन्दन, शालवृक्ष इनकी छालका क्वाथ बना पीना जलप्रमेहमें हित है और रक्तप्रमेहमें दाख, मुलहटी, चन्दन इनसे युक्त ठंढा दूध पीना हित है ॥ ६ ॥ मैथुन स्वल्प करना, धव, अर्जुनवृक्ष इनका क्वाथ पीना पूयप्रमेहमें हित है और दूध, कसेरु, केला, कमलिनी इनका क्वाथ लवणप्रमेहमें हित है ॥ ७ ॥ कदंब, अर्जुनवृक्ष, शाल, अजमोद, वायविडंग, दारुहलदी, धव, शल्लकीवृक्ष, इनका क्वाथ शहदके संग पीना कफप्रमेहमें हित है ॥ ८ ॥ लोध, अर्जुनवृक्ष, दूध, नींबके पत्ते, आंवला, चन्दन, इनका क्वाथ अथवा गुड़में मिलाके गोली देना तक्रप्रमेह, खटिकाप्रमेह इनमें हित है ॥ ९ ॥ और दूब, मूर्वा, कुशा, कांस इनकी जड़, जमालगोटाकी जड़, मँजीठ, शालवन इनका

क्वाथ बनाके पीना शुक्रप्रमेहमें और रुधिरप्रमेहमें हित है ॥ १० ॥ त्रिफला, अमलतासकी जड़, मूर्वा, सहींजना, नींबके पत्ते, मोचरस, दाख इनका क्वाथ पीनेसे घृतप्रमेहका निवारण होता है ॥ ११ ॥ कूठ, पित्तपापडा, कुटकी, मिश्री इनका अच्छीतरह क्वाथ बना पीना अथवा मूर्वा, खैर, पाड़लवृक्ष, जवासा, टेशू, टेंटूवृक्षका क्वाथ पीना रसप्रमेहमें सदा हित है ॥ १२ ॥ नीला कमल, अर्जुनवृक्ष, इंद्रजव, धव, अमली, आंवला, नींवके पत्ते इनका क्वाथ बना उसमें खांड मिला मनुष्यको पीनेसे पित्तप्रमेह शांत होता है ऐसे वैद्यजन कहते हैं ॥ १३ ॥ वायविड़ंग, रालवृक्ष, अर्जुनवृक्ष, त्रिफला, कदंब, लोध, आसना इनका क्वाथ बना पीनेसे कफप्रमेहका नाश होता है ॥ १४ ॥ नागरमोथा, त्रिफला, हलदी, देवदार, मूर्वा, इन्द्रायण, इनका क्वाथ बना पीनेसे सब प्रकारके प्रमेहरोग और मूत्रग्रह अर्थात् मूत्र बंद होना ये दूर होते हैं ॥ १५ ॥ हरड़ै, लौहाकी रज, जमालगोटाकी जड इनका चूर्ण बना खांडके संग खानेसे अथवा त्रिफलाके चूर्णको शहदमें मिला लेह बना चाटनेसे सबप्रकारके प्रमेहरोग दूर होते है ॥ १६ ॥ वैद्यजनको मधुप्रमेहमें घृतका पान कराना चाहिये और खांडसे युक्त दूधके क्वाथका पान करावे तथा गोली देवे ॥ १७ ॥ वड़, गूलर, पीपल, पिलखन, अमलतास, टेटूवृक्ष, चिरौंजीका वृक्ष, अर्जुनवृक्ष, जामन, कैथ, अंवाडा वृक्ष ॥ १८ ॥ महुआ वृक्ष, मुलहटी, लोध, नींब, परवल, अरणी, जमालगोटाकी जड़, मेंढासींगी ॥ १९ ॥ चीता, करंज वृक्ष, देवदार, त्रिफला, भिलावें, त्रिगंध, दालचीनी, तेजपात, इलायची, सोंठ, मिर्च, पीपल ॥ २० ॥ इन सब औषधोंका चूर्ण बना शहदमें मिला लेह बना खानेसे मधुप्रमेहका नाश होता है ॥ २१ ॥ अथवा इन औषधोंका क्वाथ तथा तैलपाक अथवा घृतपाक बनाके पीनेमें और मालिस करनेमें हित कहा है और सब प्रकारके मूत्ररोगोंको नाशता है ॥ २२ ॥ वड़आदि औषधोंका यह चूर्ण दूधके संग पीना हित है। मधु प्रमेहमें इसके समान औषध नहीं है । इसमें कही हुई जितनी औषध मिलें उतनी ही मिला देवे ॥ २३ ॥ और शहद, सोनामाखी, पाषाणभेद, शिलाजीत, चंदन, गेरू, कपूर, पीपल ॥ २४ ॥ वंशलोचन इनके चूर्णको दूधके संग पीवे । मधुप्रमेहको नाशता है और संपूर्ण मूत्ररोगोंको दूर करता है ॥ २५ ॥

अथ प्रमेहपिटिकाकी चिकित्सा।

प्रमेहपिटिकानाञ्च वक्ष्यामोऽथ चिकित्सितम् ॥ धवार्जुनकदम्बानां बदरीखदिरशिंशपे ॥ पारिभद्रकमेतेषां मेहनस्य प्रधावनम् ॥ २६ ॥ अर्जुनस्य कदम्बस्य टिण्टुकी वान्तरत्वचा ॥ पाके पूयविशोधार्थं मेहनस्य प्रशस्यते ॥ २७ ॥ भृङ्गराजरसं गृह्य तथा च सुरसादलम् ॥ निष्पावकपटोलानां पत्राणि काञ्जि-

केन तु ॥२८॥ पिष्ट्वा वातपिटिकानां लेपनं मेहनस्य च ॥२९॥ यष्टीमधु तथा कुष्टं चन्दनं रक्तचन्दनम्॥ उशीरं कत्तृणं चैव रक्तधातुर्मृणालकम् ॥३०॥ क्षीरसण्डकसंयुक्तं यथालाभं भिषग्वर ॥ लेपनं पित्तरक्तानां मेहदाहः प्रशाम्यति ॥ ३१॥ धावनं शीतपयसा नवनीतेन मर्दनम् ॥ कणं कदम्बार्जुनपिण्याकपत्राणि दाडिमस्य च ॥ ३२ ॥ खदिरस्य दलानां तु तथा चामलकीदलान् ॥ उष्णेन वारिणा पिष्ट्वा सोमपाके च मेहने ॥३३॥ त्रिफलायाश्च वा चूर्णं शुष्कपूयनिवारणम्॥ धावनं काञ्जिकेनाथ तक्रेणाथ तुपाम्बुना ॥ ३४ ॥ अतिशीतेन तोयेन मेहपाके च धावनम् ॥

अब प्रमेहकी पिड़िकाओंकी चिकित्साको कहते हैं,धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब,बेर, खैर, सीसम, नींब इनकी छालके क्राथसे प्रमेहरोगकी पिड़िकाओंको धोवे ॥ २६ ॥ अर्जुनवृक्ष, कदंब, टेंटूवृक्षकी भीतरकी वक्कलके क्राथसे पकी हुई पिड़िकाओंकी रावको शोधनेके वास्ते धोवें ॥ २७ ॥ भंगरेका रस, तुलसीके पत्तोंका रस, मोठ, परवल इनके पत्ते कांजीसे ॥ २८ ॥ पीस वातसे उपजी हुई प्रमेहकी पिड़िकाओंपै लेप करे ॥ २९ ॥ मुलहटी, कूठ, चंदन, लाल चंदन, खश, रोहिसतृण, गेरू,कमलकी नाली ॥ ३० ॥ दूधमें तथा चावलोंके मांड़में पीसके लेप करनेसे शिश्नका दाह शांत होता है ॥ ३१ ॥ चावलोंके धोवनसे ठंढे पानीमें वा नोनी घृतमें पीस और गेहूंके कणका रवा, कदंबवृक्ष, तिलोंका वृक्ष इनके पत्ते और अनार ॥ ३२ ॥ खैर, आंवला इनके पत्ते गरम जलमें पीस सोमपाक प्रमेहरोगमें देवे ॥ ३३ ॥ त्रिफलाका चूर्ण शुष्कपूय प्रमेहका निवारण करता है अथवा कांजी, तक्र,शीतल जलसे इंद्रियका धोना हित है ॥ ३४ ॥ और प्रमेहपाकमें अत्यंत ठंढे जलसे इंद्रियका धोना श्रेष्ठ है ॥

अथ प्रमेहमें पथ्यापथ्य।

रक्तशालिश्च षाष्टीकश्चाढकी वा कुलत्थकः ॥ ३५ ॥ घृतं च मधुरं किञ्चिद्भोजनार्थे विधीयते ॥ क्षाराम्लकटुकं वापि दिवा स्वप्नं विशेषतः ॥ ३६ ॥ स्त्रीदर्शनं व्यवायश्च तथा चात्यशनं तथा॥ चलनं धावनं चेति तथा मूत्रविरोधनम् ॥ ३७ ॥ वस्त्रपातं रक्तवस्त्रं वर्जयेद्भिषजां वरः ॥ एकान्ते गृहमध्ये च

गानस्त्रीबालकं रसः ॥ ३८ ॥ न चाभरणताम्बूलं कोपशोषं जहाति च ॥ दूरे चैतानि वर्जेत्तु यदीच्छेत्सुखसम्पदः ॥३९॥

लाल चावल, सांठी चावल, अरहर, कुलथी ॥ ३५ ॥ घृत, किंचित् मधुर अन्न इनको भोजनके वास्ते देवे और खारा, चर्चरा पदार्थ, दिनमें सोना विशेष करके वर्ज देवे ॥ ३६ ॥ स्त्रीका दर्शन, मैथुन, ज्यादे भोजन करना, मार्गमें चलना, भाजना, मूत्रका रोकना ॥ ३७ ॥ वस्त्रसे वायु करना, रक्तवस्त्र पहिरना वैद्यजन इस रोगमें वर्ज देवे । एकांतमें, घरके मध्यमें, गाना, स्त्री बालक इनके संग प्यार करना ॥ ३८ ॥ आभूपण पहिरना, पान चबाना, क्रोध करना इनको इस रोगमें दूरसे ही त्याग देवे तब सुख होता है ॥ ३९ ॥

पीतप्रमेहपर हरिद्रादिक्काथ ।

हरिद्राद्वितयं शुण्ठी विडङ्गानि हरीतकी ॥ कफप्रमेहे विहितः क्काथोऽयं मधुना सह ॥ ४० ॥ नीलोत्पलमुशीरञ्च पथ्यामलकमुस्तकम् ॥ पिबेत्पीतप्रमेहार्तः क्काथं मधुविमिश्रितम् ॥४१॥

दोनों हलदी, सोंठ, वायविडंग, हरडे इनका क्काथ शहदके संग पीना कफप्रमेहमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ४० ॥ नीलाकमल, खश, हरडे, आंवला, नागरमोथा इनका क्काथ शहदके संग पीनेसे पीतप्रमेहका नाश होता है ॥ ४१ ॥

अथ पित्तप्रमेहपर कमलादिक्काथ ।

कमलञ्च तथा रोध्रमुशीरमर्जुनान्वितम् ॥
पित्तप्रमेहे विहितः क्काथोऽयं मधुना सह ॥ ४२ ॥

कमल, लोध, खश, अर्जुनवृक्ष इनका क्काथ शहदके संग पीना पित्तप्रमेहमें हित कहा है ॥ ४२ ॥

अथ आमलक्यादिचूर्ण ।

आमलकस्य स्वरसं मधुना च विमिश्रितम् ॥
हरीतक्याश्च चूर्णं वा सर्वमेहनिवारणम् ॥ ४३ ॥

आंवलोंके रसमें शहद मिला अथवा हरडैके चूर्णमें शहद मिला खानेसे सब प्रकारके प्रमेह रोगोंका नाश होता है ॥ ४३ ॥

अथ खादिरादि चूर्ण ।

खदिरं शर्करा दारु हरिद्रा मुस्तमेव च ॥
चूर्णितं तु पिबेत्सर्वप्रमेहगदशान्तये ॥ ४४ ॥

खैर, खांड, देवदारु, हलदी, नागरमोथा इनके चूर्णको पीनेसे सब प्रमेहरोग शांत होते हैं ॥ ४४ ॥

अथ कुष्टादि चूर्ण।

कुष्टं हरिद्राद्वयदेवदारु पाठा गुडूची त्रिफला च मुस्तम्॥एषां हि चूर्णं मधुना विमिश्रं मूत्रप्रमेहं हरते व्यथाञ्च॥४५॥इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने प्रमेहचिकित्सा नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

कूठ, दोनों हलदी, देवदार, पाठा, गिलोय, त्रिफला, नागरमोथा इनके चूर्णको शहदके संग पीनेसे सब मूत्रप्रमेहरोग और पीडा इनका नाश होता है ॥ ४५ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने प्रमेहचिकित्सानाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः २९.



अथ मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ एलाशिलाजतुयुतं मागधिकापाषाणभेदसंचूर्णम्॥तण्डुलजलेन पीतं प्रमेहरोगं हरत्येव ॥ १ ॥ एरण्डमूलपाषाणभेदगोक्षुरकास्तथा॥ एलाटरूषपिप्पल्यो यष्टीमधुसमन्विताः ॥२॥ एषां क्वाथं पिबेज्जन्तुः शिलादित्येन योजितम्॥ अश्मरीशर्करायाञ्च शर्करायाः पलद्वयम् ॥३॥ सुशीतलं जलं कर्षमात्रंस्यान्मूत्रकृच्छ्रहृत्॥दध्यम्बुना च संमिश्रमयश्चूर्णं सुखप्रदम् ॥४॥ मूत्रकृच्छ्रे यवक्षारचूर्णं हिंगुप्रयोजितम् ॥ कूष्माण्डं च समादाय शर्करासहितं पिबेत् ॥५॥ यो हि त्रिदोषसम्भूतमूत्रकृच्छ्रनिवारणः ॥ पिबेच्छतावरीमूलं शीतपानीयचूर्णितम् ॥६॥ अतः शर्करारोगार्त्ते शर्करां संप्रयोजयेत् ॥ आरग्वधफलं मूलं दुरालभा धान्यकशतावर्य्यः ॥७॥ पाषाणभेदपथ्ये क्वाथोऽयं मूत्रकृच्छ्रे स्यात् ॥ ८ ॥ पाषाणभेदस्त्रिवृता

च पथ्या दुरालभा गोक्षुरपुष्करं वा॥एला कुरण्टाप्यथकर्कटीजं बीजं कषायः सुनिरुद्धमूत्रे ॥ ९ ॥ कुलत्थयुक्तः पटोलीमूलकषायः प्रतिपाकः ॥पुष्करमूलविमिश्रः प्रमेहपाषाणरोगघ्नः स्यात् ॥ १०॥ यो मातुलुङ्गिकामूलं पिबेत्पर्य्युषिताम्बुना ॥ तस्यान्तः शर्करोद्भूतं दुःखं सद्यो विलीयते ॥११॥ गवां तक्रेण संपिष्टं क्षिप्रनामकमौषधम् ॥ पिबेच्चिरेण तक्रञ्च शर्करादोषदूषितः ॥१२॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

आत्रेयजी कहते हैं--इलायची, शिलाजीत, पीपल, पाषाणभेद इनके चूर्णको चावलोंके धोवनके जलके संग पीनेसे प्रमेहरोगका नाश होता है॥ १ ॥ अरंडकी जड़, पाषाणभेद, गोखुरू, इलायची, वांसा, पीपली, मुलहटी इनका क्वाथ बना शिलाजीत मिला पीनेसे मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ २ ॥ और पथरीरोग, शर्करारोग, इनमें ८ तोला प्रमाण खांड मिला पीना चाहिये ॥ ३ ॥ एक तोला प्रमाण ठण्ढा जल पीनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है तथा दहीके पानीसे लोहचूर्णको पान करे ॥ ४ ॥ और मूत्रकृच्छ्ररोगमें जवाखारका चूण, हींग, कोहला, खांड इनको जलके संग पीवे ॥ ५ ॥ और शीतल जलके संग शतावरीके जड़को पीनेसे त्रिदोषसे उपजा मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ ६ ॥ और शर्करारोगमें खाँड़को पीवे और अमलतास, मूली, जवांसा धनियां शतावरी ॥ ७ ॥ पाषाणभेद, हरड़ै इनका क्वाथ पीनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ ८ ॥ पाषाणभेद, निशोत, हरड़ै, जवासा, गोखरू, पोहकरमूल, इलायची, कोरंटा, काकड़ीका वीज, इनका क्वाथ मूत्रबन्धमें पीना श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ कुलथी, परवल, मूली, पोहकरमूल इनका क्वाथ बना पीनेसे प्रमेह, पथरीरोग इनका नाश होता है ॥ १० ॥जो पुरुष विजौराकी जड़को वासी जलके संग पीता है वह शर्करारोगसे छूट जाता है॥ ११ ॥ और गौकी तक्रके संग कायफलको पीस पीनेसे शर्करारोग दूर होता है ॥ १२ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने मूत्रकृच्छ्रचिकित्सानामैकोनत्रिंशोऽध्यायः २९॥

त्रिंशोऽध्यायः ३०.

अथ मूत्ररोधचिकित्सा।

आत्रेय उवाच॥ पिबेत्कर्कटिकाबीजं त्रिफलासैन्धवान्वितम्॥

उष्णांबुचूर्णितं पीतं मूत्ररोधं शमं नयेत् ॥ १ ॥यस्तिलकाण्ड-क्षारं दधिमधुसंमिश्रितं पिबेत् ॥ स नरश्च मूत्ररोधं हत्वा सद्यः सुखमायाति ॥२॥ अजाक्षीरेण संमिश्रं जातीमूलं प्रपेषितम् ॥ पिबेत्सदाहमूत्रोष्णवेदनाशमनं यतः ॥ ३ ॥ तैलेन पद्मिनी-कन्दं पक्वगोमूत्रसंमिश्रितम् ॥ पिबेन्मूत्रनिरोधे तु सतीव्रवेदना-न्विते ॥ ४ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-काकड़ीके बीज त्रिफला, सेन्धानमक, इनके साथ पीस गरम जलके संग पीनेसे मूत्ररोध दूर होता है ॥ १ ॥ तिलोंकी नालियोंका क्षार, दही, शहद इनको मिला पीनेसे मूत्ररोध रोग दूर होता है, तत्काल सुख होता है ॥ २ ॥ जायफलको बकरीके दूधमें पीस पीनेसे दाह, गरम, मूत्रकी पीड़ाकी शांति होती है ॥ ३ ॥कमलकंदको तेलमें पीस गोमूत्रमें मिला पीनेसे तीव्र पीड़ासे युक्त मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ ४ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रका कारण ।

पित्तप्रकोपनैर्द्रव्यैः कट्वाम्ललवणैस्तथा ॥ गौरास्त्रीसेवनेनापि रक्तं वापि प्रवर्त्तते ॥५॥ मद्यपानेन चोष्णेन श्रमव्यायामपी-डितैः ॥ पित्तं प्रकोपयेच्छीघ्रं करोति मूत्रकृच्छ्रकम् ॥ ६॥ तेन मूत्रयते कृच्छ्रं चोष्णधारा प्रवर्त्तते ॥ मूत्रस्रोतश्च हरति रक्तं चापि प्रवर्तते॥तस्य वक्ष्यामि भैषज्यं येन संपद्यतेसुखम्॥७॥

पित्तको कोप करनेवाले द्रव्य, चर्चरा,खट्टा,नमक इनके खानेसे और गौरस्त्रीके सेवनेसे इन्द्रि-यमें रक्त प्रवृत्त होजाता है ॥ ५ ॥ गरम मदिरा पीनेसे, श्रम, कसरत, इनकी पीड़ा होनेसे शीघ्र ही पित्त कुपित हो जाता है, वह मूत्रकृच्छ्र रोगको कर देता है ॥ ६॥ उससे कष्टसे मूत्र उतरे । गरम गरम धार जावे और मूत्रका वेग बंद हो जावे तथा रक्त गिरने लगे ॥ ७ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रपर उपाय ।

यष्टीमधुकमृद्वीकाचन्दनं रक्तचन्दनम् ॥रक्ततण्डुलतोयेन मूत्र-कृच्छ्ररुजापहम् ॥८॥ वटप्ररोहमालासु द्राक्षाशर्करयान्वितः॥ लेहोऽयं मूत्रकृच्छ्रस्य नाशनो भिषजां वर ॥९॥ देहोपशमनः प्रोक्तः शीतगाहनकोपतः ॥ मूत्रकृच्छ्रे तु तत्प्रोक्तं भोजनं मधुरं हितम् ॥ १० ॥ उत्तानस्य रतौ भङ्गाद्दाहव्यायामजातके ॥

मूत्ररोधे वचा वर्य्यां दद्यात्तत्रानिरोधकान् ॥११॥ अव्यायामे शुभं भोज्ये शीतावगाहिता नरे ॥ एतैस्तु कुपितो वायुर्मूत्रद्वारं प्ररुन्धति ॥ १२ ॥ श्लेष्मसहितः पापिष्ठ उक्तः कष्टतमो गदः ॥ शृणु तस्य प्रतीकारं कषायं वानुवासनम् ॥ १३ ॥ बस्ति-निरूहक्काथं च मूत्ररोधे हितो विधिः॥सर्वसंस्वेदनं चैव स्थानं वक्रमणाविव ॥१४॥ तुरङ्गशकटारोहधावनं च हितं मतम् ॥ फलत्रिकं समगुडं क्वाथः क्षीररसेन तु ॥१५॥ पानं मूत्रनिरो-धेषु पित्ताढ्या लवणाम्लिकम् ॥ पाटला टुण्टका चैव निम्बगो-क्षुरकं तथा॥१६॥एलात्वक् च तथा पत्रं क्वाथस्त्रिफलयान्वितः॥ गुडेन संयुतं पीतं हन्ति मूत्रनिरोधकम् ॥ १७ ॥ दाडिमाम्ल-युतं चैव हितं मूत्ररुजां नृणाम् ॥ त्रिफलेक्षुसिताक्वाथगुडेन सह सैन्धवम् ॥१८॥ मूत्ररोधं वारयति पथ्या वा गुडसंयुता ॥ अथवा तोदनन्नारीमैथुनं च विधेयकम् ॥ १९ ॥ तेन सौख्यं भवेच्छीघ्रं स्त्रीणाञ्च योनिमर्दनम्॥२०॥इत्यात्रेयभाषितेहारीतो त्तरे तृतीयस्थाने मूत्ररोधचिकित्सानाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

अब तिसकी औषधोंको कहते हैं जिससे सुख होवे है-मुलहटी, महुआ,मुनक्का,दाख, चन्दन, लाल चन्दन ॥ ८ ॥ इनको लाल चावलोंके धोवनके जलमें पीस पीनेसे मूत्रकृच्छ्रकी पीड़ा दूर होती है। और वड़के पत्तोंके अंकुर, दाख, खांड, ये मिला लेह बना खानेसे मूत्रकृच्छ्ररोगका नाश होता है ॥ ९ ॥ और यह लेह देहको शांत करनेवाला है और शीतल जलमें गोता मारनेसे उपजे हुए मूत्रकृच्छ्ररोगमें मधुर भोजन हित कहा है ॥ १० ॥ मोघा सोवनेसे मैथुनके भंग होनेसे, दाह और कसरतके परिश्रमसे उपजे हुए मूत्ररोधमें वच, शतावरी इनको देवे ॥ ११ ॥ कसरत नहीं करना, सुन्दर तथा ज्यादे भोजन करना,शीतल जलमें गोता मारना, इनसे कुपित हुआ वायु मूत्रद्वारको रोकलेता है ॥ १२ ॥ और अत्यंत कष्टवाला पापवाला यह रोग कफ सहित होता है। अब इसरोगका इलाज कह-ते हैं,अनुवासन बस्तिमें क्राथ वरतना चाहिये ॥ १३ ॥ मूत्ररोधमें निरूह बस्तिद्वारा क्राथ देना चाहिये और सब शरीरमें पसीना दिलाना हित है जैसे टेढी मणिमें स्थान दीखता है ऐसे ही मूत्ररोग जानना ॥ १४ ॥ घोड़ा, गाड़ी इनकी सवारीपर चढ़के भागना हित कहा है और त्रिफला, गुड़ इनको समान भागले गुड़में क्राथ बनादेना हित है ॥ १५ ॥

क्वाथ धवार्जुनकदम्बकम् ॥ धावनं सर्पिणे शस्तं सुरासौवीरकेण वा ॥ ८ ॥ धावनञ्च हितं तस्य सन्निपाते विसर्पिणे ॥ यवाग्निमन्थैश्च शटीन्यग्रोधैश्च ससर्षपैः ॥९॥ क्वाथः स्यात्सन्निपातोत्थविसर्पधावने हितः॥पञ्चजीरकपित्थांश्च काञ्जिकेन तु पेषयेत्॥मातुलुङ्गरसेनापि लेपनं वातसर्पिणे॥१०॥ धवारोध्रतिलाश्चैलविदारीकण्टकं तथा ॥ लेपः पित्तविसर्पे वा गुञ्जापत्रैस्तु लेपनम् ॥११॥ सैन्धवारिष्टतुम्बीकापटोलपत्रकैर्घृतम्॥पाचितं लेपने शस्तं विसर्पाणां निवारणम् ॥ १२ ॥ रक्तजेषु विसर्पेषु कुर्य्याद्रक्तावसेचनम् ॥ पश्चाद्धवकदम्बानां सर्वदा गृहधूमकम् ॥१३॥लेपने हितकृत्प्रोक्तं धावनं काञ्जिकेन तु ॥ कुठेरकाश्च सुरसा चक्रमर्दो निशायुगम् ॥ १४ ॥ सर्षपाः काञ्जिकेनापि पिष्ट्वा च लेपनं हितम्॥१५॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने विसर्पचिकित्सा नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-नमक, खट्टा, खारा, चर्चरा, गरम, ऐसा पदार्थ सेवनेसे और पसीनेके दोषसे रक्तपित्त कुपित हो जाता है वह विसर्परोग कहाता है ॥ १ ॥ वह जुदे जुदे दोषों करके और द्वंद्वज दोषों करके सात प्रकारका होता है और केवल रक्तसे उपजा हुआ सन्निपातसे युक्त सातवां होता है ॥ २ ॥ अन्य कईक जन जुदे २ नामोंवाले इन रोगोंको कहते हैं । आक्षेपनामवाला, ग्रंथिकनामवाला, घोरनामवाला और कर्दमनामवाला ऐसे तीन प्रकारसे होता है ॥३॥ आक्षेप विसर्परोग वातपित्तसे होता है और ग्रंथिक पित्तकफसे होता है, कर्दमनामवाला विसर्प वातकफसे होता है और घोरनामक सन्निपातसे होता है ॥४॥ रक्तकांति, त्वचा, मांस इनसे दूषित हुए तीनों दोष और सात धातु ये विसर्प रोगोंकी उत्पत्तिमें हेतु कहे हैं ॥ ५ ॥ और बड़,बेलगिरी, खैर इनके क्वाथसे शरीरका धोवना हित है और कांजीका खटाईके झागोंसे अथवा सौवीर संज्ञक कांजीके रससे ॥ ६ ॥ अथवा बिजौराके रससे धोवना वातसे उपजे विसर्परोगमें हित है और पित्तके विसर्पमें दूध और शीतल जलकरके धोवना हित है ॥७॥कफके विसर्परोगमें धव, अर्जुनवृक्ष,इनके क्वाथसे अथवा मदिरा सौवीर संज्ञक कांजी इनसे धोवना हित है ॥ ८ ॥ सन्निपातके विसर्पमें भी मदिरा, सौवीर संज्ञक कांजी इनसे धोवना हित है और अजवायन,अरणी,कचूर,बड़,सरसों॥९॥इनके क्वाथसे सन्निपातसे उपजे विसर्पको

धोना हित है और पांच प्रकारके जीरे,कैथ,इनको कांजीमें पीस बिजौराके रसके संग वातके विसर्पमें लेप करना हित है ॥१०॥ यव, लोध, तिल, एलवालुक, विदारीकंद,गोखरूको पीस लेप करना अथवा चिरमटीके पत्तोंका लेप करना हित है ॥ ११ ॥ सैंधानमक, नींब, तुंबी, परवलके पत्ते इनको घृतमें पका लेप करनेसे सब प्रकारके विसर्पोंका नाश होता है ॥ १२ ॥ रक्तसे उपजे हुए विसर्परोगमें फस्तखुलानी चाहिये पीछे यव, कदंब, वरका धूवां ॥ १३ ॥ इनका लेप करना हित है और कांजीसे धोवना हित है और आजवला, तुलसी, पुआड़, दोनों प्रकारकी हलदी ॥ १४ ॥ सरसों इनको कांजीमें पीस लप करना हित है ॥ १५ ॥

इति बेरीनिवासिसुवशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने विसर्पचिकित्सानाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४.

अथोपसर्गचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ चतुर्विधो भवेद्दोषो वातरक्तसमुद्भवः ॥ गन्धदोषेण जायन्ते नामान्येषां पृथक् पृथक् ॥१॥ क्षुद्रकश्चान्तको घोरोऽथवा चान्यमसूरिका ॥ वसन्तः सर्पपाकारा पिटका यस्य दृश्यते ॥ २ ॥ सोऽपि क्षुद्रतरः प्रोक्तः पित्तरक्तप्रदोषतः ॥ अग्निदग्धवत्तस्य दाहः पिटिका यस्य दृश्यते ॥ ३ ॥ सोऽप्यतीव विसर्पी स्यादसुखी च निरन्तरम् ॥ ४ ॥ सवनाः पीडका यस्य पाकयति सस्रः कफः ॥ दाहोऽरतिर्विवर्णत्वं तस्य सद्यः प्रजायते ॥५॥ वर्त्तुलमसूरिकावत् पिटका यस्य दृश्यते ॥ शाम्यति शीघ्रं पाकेन सा विज्ञेया मसूरिका॥तस्य वक्ष्यामि भैषज्यं यथाविधि महामते ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं--वातरक्तसे उपजाहुआ चारप्रकारका दोष होता है सो गंधके दोषसे उत्पन्न होते हैं उनके जुदे २ नामोंको कहते हैं ॥ १ ॥ क्षुद्रक, अंतक, घोर, मसूरिका ये हैं और जिसके गौर सरसोंके आकार फुनसी दीखैं ॥ २ ॥ वह क्षुद्ररोग, पित्तरक्तके दोषसे होता है और जिसमें अग्निके दग्ध होनेके समान दाह हो ॥ ३ ॥ निरंतर सुखी नहीं हो वह अति घोर विसर्परोग होता है ॥ ४ ॥ कड़ी तथा पकीहुईके समान पिड़िका हो, दाह हो,

ग्लानि हो, विवर्ण हो वह तात्काल अंतक रोग होता है ॥ ५ ॥ जिसके मसूरिकाके समान गोल पिडिका हो जल्दी ही पकके शांत होजावे वह मसूरिका कहाती है। हे महामते! इसकी यथार्थ विधिको कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ मसूरिकामें चिकित्सा ।

गुप्ताकारं सुरक्षेच्च रक्षायोगविधानतः ॥ न स्त्रीणां नाधमानाञ्च संसर्गं वा प्रसङ्गकम् ॥ ७ ॥ सुशीतं शीतलं स्थानं कारयेत्सुप्रयत्नतः ॥ क्षुद्रकस्योपसर्गस्य लेपनं चात्र कारयेत् ॥ ८ ॥ कुष्ठं सोशीरन्यग्रोधस्तथोदुम्बरिकत्वचः ॥ प्रलेपनं प्रशस्तं स्यात्क्षुद्रोपसर्गवारणम् ॥ ९ ॥ मधुशर्करया युक्तं क्षीरपानं सुखावहम् ॥ जम्ब्वाम्रपल्लवानाञ्च पिष्टं दधिमधुयुतम् ॥१०॥ पाययेत् क्षुद्रकस्यास्य अतिसाराग्निनाशनम् ॥ गोक्षुरश्चातिविषा च कर्कटाद्यं सपर्पटम् ॥ ११ ॥ कल्कमेतत्प्रयोक्तव्यं मधुशर्करया युतम् ॥ हरीतकीमातुलुङ्गस्वरसं शर्करायुतम् ॥१२॥ क्षुद्रकस्योपसर्गस्य वमिशोषनिवारणम् ॥ अग्निकोऽप्युपसर्गे च योज्यं चैतत्प्रलेपनम् ॥ १३ ॥ रक्तचन्दनमञ्जिष्ठानिम्बपत्राणि चार्जुनम् ॥ क्षीरेण नवनीतेन हितं स्याल्लेपनं तथा ॥१४॥

गुप्त आकारसे रक्षायोगके विधानसे उस रोगीको रक्खे और स्त्री तथा नीच जन इनका मेल नहीं होनेदेवे ॥ ७ ॥ अत्यंत यत्नसे शीतल स्थान रक्खे और क्षुद्रक उपसर्गमें लेप करना चाहिये ॥ ८ ॥ कूठ, खश, बड़, गूलरकी छाल इनका लेप करनेसे क्षुद्र उपसर्गरोगका निवारण होता है ॥ ९ ॥ शहद, खांड इनसे युक्त दूधका पीना सुखदायक है और जामन, आंब इनके पत्तोंको पीस दही और शहद मिला॥ १० ॥पीनेसे क्षुद्रकरोग अतीसारकी अग्नि इनका नाश होता है। और गोखरू, अतीश, काकडासींगी, पित्तपापड़ा ॥ ११॥ इनका कल्क वना शहद और खांड मिला ॥ १२ ॥ खानेसे क्षुद्र रोगवाले पुरुषका वमन,शोष, इनका निवारण होता है और अग्निसरीखे दाहवाले उपसर्गरोगमें॥ १३ ॥लाल चंदन, मँजीठ, नींब पत्ते, अर्जुनवृक्षकी छाल इनको दूध, नौनीघृतमें पीस लेप करना हित है ॥ १४ ॥

घोरं चोपद्रवं दृष्ट्वा न स्वेदं न च मर्दनम्॥प्रलेपनं न कुर्वन्ति यथायोगेन पण्डिताः ॥१५॥ अरण्यगोमयक्षारतैलेन चालनं हितम् ॥ न तैलेनापि चाभ्यङ्गं लेपेनैव च कारयेत् ॥ १६ ॥

चन्दनं मधुकं लोध्रं न्यग्रोधोत्पलसारिवा ॥ मधुना संयुतः कल्कः पानेन चोपसर्गहृत् ॥१७॥ उपसर्गे ज्वरस्तीव्रो रक्तमूत्रं प्रजायते ॥ तस्य वक्ष्याम्युपचारं येन संपद्यते सुखम् ॥ १८ ॥ पटोलं पर्पटं शुण्ठी मुस्ता च खदिरं समम् ॥ कल्को मधुयुतः पाने हितः स्याज्ज्वरनाशनः ॥१९॥ चन्दनोशीरमञ्जिष्ठा पुष्करं दन्तधावनम् ॥ क्काथपानं मधुयुतमुपसर्गज्वरापहम् ॥२०॥ वमने चातिसारे च दाडिमं कुटजस्तथा॥ मधुदध्यान्वितं पानमतिसारनिवारणम् ॥ २१ ॥ शेषाश्च क्षुद्रिकाः प्रोक्ताः क्रिया चात्र विधेयका ॥ एका क्रिया मसूरिके कर्त्तव्या सुविधानतः ॥ २२ ॥ वातलानि च सर्वाणि तथा रूक्षाणि कोविदः ॥ स्त्रीसङ्गं रूक्षशोकञ्च दूरतः परिवर्जयेत् ॥ २३ ॥ ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रदापयेत्॥ एवं त्रिसप्तरात्रेण सुखं सम्पद्यते नरः ॥ २४ ॥ ततोऽभिषेकः कर्त्तव्यः कृत्वा मङ्गलवाचनम् ॥ नूतनानि च सूक्ष्माणि वस्त्राणि च सितानि च ॥२५॥ परिधाप्य होमकार्य्यं मिष्टभोज्यं विधेयकम् ॥२६॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने उपसर्गचिकित्सानाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

उपसर्गरोगमें घोर उपद्रवको देखिके पसीना नहीं दे,मर्दन नहीं करे और लेप भी नहीं करे पंडित जनोंने ऐसे जानना ॥ १५ ॥वनके आरनोंकी राख और तेल करके चालन कर्म करना हित है, तेलसेभी मालिस और लेप नहीं करवावे ॥ १६ ॥ चंदन, महुआ,लोध, वड़, कमल, अनंतमूल, इनका कल्क बना शहदके संग पीनेसे उपसर्गरोगका नाश होता है ॥१७॥ उपसर्गरोगमें तीव्रज्वरहो लालमूत्र उतरै उसकी चिकित्सा कहते हैं जिससे सुख उत्पन्न होवे ॥१८॥ परवल, पित्तपापड़ा,सोंठ,नागरमोथा,खैर इनको समान भाग ले कल्क बना शहद मिला पीनेसे ज्वरका नाश होता है और यह हित है॥ १९ ॥ चंदन, खश, मँजीठ, पोहकरमूल इनके काथसे दातोंका धोवना और इसमें शहद मिला पीनेसे उपसर्गरोगमें उपजे ज्वरका नाश होता है॥ २० ॥वमन, अतीसार इनमें अनारदाना इंद्रजौ इनका काथ और शहद,दही इनके पीनेसे अतीसारका नाश होता है॥ २१ ॥और बाकीके रहे सब क्षुद्ररोगमें यही क्रिया करनी । यह क्रिया

उत्तम विधानसे मसूरिका रोगमें करनीचाहिये॥२२॥और सब वातवाले पदार्थ तथा रूखे पदार्थ स्त्रीसंग, शोक इनको वैद्यजन दूरसेही वर्ज देवे ॥ २३ ॥ ज्वरमें कहेहुए जो पथ्य हैं उनको यहां करवावे इसप्रकार करनेसे तीन रात्रिमें अथवा सात रात्रिमें सुख उत्पन्न होता है ॥ २४ ॥पीछे स्वास्तिवाचन करवाके अभिषेक अर्थात् स्नान करवावे नवीन तथा बारीक सफेद वस्त्रोंको ॥ २५ ॥ धारण कर होम करवा इच्छा पूर्वक भोजन करे ॥ २६ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने उपसर्गचिकित्सानाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ३५.



व्रणचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच॥अथातः संप्रवक्ष्यामि व्रणानां तु चिकित्सितम्॥ व्रणाश्चानेकधा प्रोक्ता नानाधातुविकारिणः ॥१॥ दुष्टाम्बुपानाशनसेवनाच्च क्रोधातिभाराद्व्यसनेन वापि ॥ संजायते दुष्टव्रणोऽपि घोरश्चान्येन रक्तस्य हि दूषणेन ॥ २ ॥ वातेन पित्तेन कफेन वापि द्वन्द्वेन वा दोषसमुच्चयेन ॥ मांसं प्रदूष्य रुधिरं विकीर्य्य संजायते दुष्टव्रणोऽपि घोरः॥३॥त्वग्रक्तानि समेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रितः ॥ दोषाः शोफं शनैर्घोरं जनयन्त्युद्धता भृशम्॥४॥सरक्तश्च सशूलश्च रुजावच्च सवेपथुः॥रूक्षं वा वातसम्भूतं विज्ञेयं सरुजं व्रणम् ॥ ५ ॥ तप्तदाहज्वरः सृष्टः स्पर्शनं सहते तु यः ॥ शीतः सौख्यं लघुपाकी पित्तात्संजायते व्रणः ॥ ॥६ ॥ कठिनो वर्तुलाकारो घोरः पीतोऽल्पवेदनः॥ उष्णसहः स्निग्धतरश्चिरपाकी कफव्रणः ॥ ७॥ सर्वैर्लिङ्गैर्विजानीयात्सन्निपातसमुद्भवम् ॥ द्वन्द्वजे द्वयदोषस्तु दोषे चापि प्रदृश्यते ॥८॥ अभिघातसमुद्भूता विज्ञेयास्ते चतुर्विधाः ॥ अन्ये नाडीव्रणा ये स्युः सवाताश्च सवेदनाः ॥९॥ अन्ये तु स्रोतसां मध्ये तेषां शृणु चिकित्सितम् ॥ प्रथमं मण्डविस्रावो द्वितीयं स्वेदनं स्मृ-

तम् ॥१०॥ तृतीयं पाचनं प्रोक्तं पाचिते पाटनं तथा ॥ शोधनञ्च प्रयोक्तव्यं तथा रोहणमेव च ॥ ११ ॥ पश्चात्क्रमस्तथैव स्याद्व्रणानां हितकारकः॥ रास्ना वचा तथा शुण्ठी मातुलुङ्गरसस्तथा ॥ १२ ॥ काञ्जिकेन समसेकधावनं वातिके व्रणे ॥ यष्टीमधुकमञ्जिष्ठापटोलनिम्बपत्रकैः ॥ १३ ॥ दुग्धेन क्वथितं शीतं धावनं पैत्तिके व्रणे ॥ १४ ॥ त्रिफला च कदम्बश्च तथा जम्बु कपित्थकम् ॥ क्वाथः सोष्णकफोद्भूते व्रणे धावनमुत्तमम् ॥ १५॥ मातुलुङ्गाग्निमन्थौ च मूलं वा काञ्जिकेन च ॥ सुरदारु तथा शुण्ठीलेपो वातव्रणे हितः ॥ १६ ॥ नलमूर्वा च मधुकं चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ पिष्टं तण्डुलतोयेन पित्तव्रणविनाशनम् ॥ १७ ॥ अंकोलकश्च रोध्रश्च कदम्बार्जुनवेतसाः ॥ पारिभद्रदलानां तु पिष्ट्वा व्रणविलेपनम् ॥ १८ ॥ पाकं गते व्रणे वापि गम्भीरे सरुजेऽथवा ॥ सरन्ध्रे शोधनं कार्य्य धावनं तु भिषग्वरैः ॥ १९ ॥ करञ्जधवनिम्बानां कदम्बार्जुनवेतसैः ॥ पादावशेषे क्वाथेन गम्भीरव्रणधावनम् ॥ २० ॥ मञ्जिष्ठा च तथा लाक्षारसश्चैव मनःशिला ॥ निशायुगे समायुक्तं पिष्ट्वा वस्त्रपरिस्रुतम् ॥ २१ ॥ मधुयुक्तं शोधनञ्च व्रणानां हितकारकम् ॥ निम्बपत्राणि संक्षिप्य मधुना व्रणशोधनम् ॥ २२ ॥ निम्बपत्रतिलक्षौद्रं दार्वीमधुकसंयुतम् ॥ तथा तिलानां कल्कश्च शोधनश्च व्रणेषु च ॥ ॥ २३ ॥ तिलका निम्बसीतस्य पत्राणि सुममासु च ॥ कषायश्च हितश्चैव व्रणानां शोधनेषु च ॥ २४ ॥ विशुद्धश्च व्रणं ज्ञात्वा भक्षयेच्च व्रणं च तत् ॥ नवनीतेन वा श्रेष्ठं न तेन दह्यते व्रणः ॥ २५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अब व्रणोंकी चिकित्साको कहेंगे--अनेक प्रकारकी धातुओंके विकारवाले अनेक प्रकारके व्रण कहे हैं ॥ १ ॥ दूषित जल और अन्नके सेवनेसे, क्रोधसे,

अत्यंत बोझाके उठानेसे, किसीबातके व्यसनसे मनुष्योंके घोर दुष्ट व्रण हो जाता है अथवा दूषित रक्तसे घोर व्रण होता है ॥ २ ॥ वातसे, पित्तसे, कफसे अथवा दोषोंसे तथा सब दोषोंके मिलापसे मांसमें प्रहर्ष होके रुधिर बिखरके घोर दुष्ट व्रण हो जाता है ॥ ३ ॥ और त्वचा, रक्त, मेद इनको दूषित कर अस्थियोंके आश्रय होके उठेहुए दोष शनैः शनैः अत्यंत शोजाको उत्पन्न कर देते हैं ॥ ४ ॥ वहां रक्तसहित शूलसहित पीड़ा होती है और कंपना होती है तहां रूखाव्रण हो वह वातसे उपजा जानना ॥ ५॥ और जो तप्तदाहज्वर इसे युक्त हो और स्पर्शको सहे और जिसमें शीतसे सुख हो,शीघ्र पाक हो वह पित्तसे उपजा व्रण होता है॥ ॥ ६ ॥ कठिन हो, गोल आकार हो, घोर हो, शीतल हो, थोडी पीडा हो, गरम वस्तुको सहै, अति चिकना हो, बहुत कालमें पके वह कफसे उपजा व्रण जानना ॥ ७ ॥ जो सब लक्षण मिलते हों तो वह सन्निपातसे उपजा व्रण जानना और दो दोषोंसे उपजे व्रणमें दो दोषोंके लक्षण मिलते हैं ॥ ८ ॥ चोट आदिसे उपजे हुए चार प्रकारके व्रण होते हैं और अन्य जो नाडीव्रण होते हैं वे पीडासहित और वातसहित होते हैं ॥ ९ ॥ अन्य व्रण स्रोतोंमें होते हैं उनकी चिकित्साको सुनो । पहले तो उठते ही मांडका तरडा दे जिसे शायद बैठ ही जावे पीछे पसीना दिवावे अर्थात् अग्नि या गरम पदार्थसे सेंके ॥ १० ॥ फिर तीसरे पकावे पक जावे तब व्रणके फाडनेकी विधि कही है,पीछे शोधन करे, पीछे व्रणको भरे ॥ ११ ॥ पीछे व्रणको हित करनेवाला क्रम करना चाहिये । रास्ना, वच, सूंठ बिजौरेका रस ॥ १२ ॥ कांजी इनसे धोवना वातके व्रणमें हित है और मुलहटी, महुआ, मजीठ, परवल, नींबके पत्ते ॥ १३ ॥ इनको दूधमें मिला काथ बना, शीतलकर पित्तका व्रण धोबना चाहिये ॥ १४ ॥ त्रिफला, कदंब, जामन, कैथा इनका काथ बना गरम २ से कफसे उपजा व्रण धोवना चाहिये ॥ १५ ॥ और बिजौरा, अरणी, मूली, कांजी, देवदार,सूंठ इनका लेप करना वातव्रणमें हित हैं ॥ १६ ॥ नड, मूर्वा, मुलहटी, चन्दन, लाल चन्दन, इनको चांवलोंके धोवनके जलमें पीस लेप करनेसे पित्तके व्रणका नाश होता है ॥ ॥ १७ ॥ और अंकोल, लोध, कदंब, अर्जुन वृक्ष, वेत, नींबके पत्ते इनको पीस व्रणपै लेप करे ॥ १८ ॥ और व्रण पकजावे अथवा गंभीर हो जावे,पीडासहित हो अथवा छेक हो रहा हो वहां वैद्यजनोंको शोधन और धावन करना चाहिये ॥ १९ ॥ करंजुआ, धव, नींब, कदंब, अर्जुन और वेत इनका चतुर्थांश काथ रहे तब उससे गंभीर व्रणको शोधन करे ॥ २० ॥ मँजीठ, लाखका रस, मनसिल रस, मनसिल, दोनों प्रकारकी हलदी इनको समान भागले बकरेके मूत्रमें पीस शहद मिला लेप करनेसे व्रणोंका शोधन होता है यह हित है और नींबके पत्तोंको पीस शहद मिला लेप करनेसे व्रणोंका शोधन होता है ॥ २१ ॥ २२ ॥ और नींबके पत्ते, तिल, शहद, दारुहलदी, तिलोंका कल्क इनके लेप करनेसे व्रणोंका शोधन होता हैं ॥ २३ ॥ तिल, नींब, बहेडा इनके पत्ते और पुष्पोंका

क्वाथ बना सेक करनेसे व्रणोंका शोधन होता है ॥ २४ ॥ पीछे शुद्धहुए व्रणको जानके व्रणको नौनी घृतसे धोलेवे अर्थात् नौनी घृत धोके लगावे, नौनी घृत श्रेष्ट है इससे व्रण भरजाता है और दाह नहीं होता ॥ २५ ॥

अथ जात्यादि घृत ।

जातीकरञ्जपिचुमन्दपटोलमत्र यष्टीमधुश्च रजनी कटुरोहिणी च ॥ मञ्जिष्ठकोत्पलमुशीरकरञ्जबीजं स्यात्सारिवा त्रिवृन्मागधिका समांशा ॥२६॥ पक्वं घृते विहितमस्ति व्रणे प्रशस्तं नाडी गते च सरुजे च सशोणिते च॥लूताविसर्पमपि हन्ति गभीरयेन व्रणाः सदाहकठिना अपिरोहयन्ति॥२७॥ इति जात्यादि घृतम्॥इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने व्रणचिकित्सा नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

जावित्री, करंजुवा, नींब, परवल, मुलहटी, हलदी, कुटकी, हर्र, मँजीठ, कमल, खश, करंजुवाके बीज, अनंतमूल, निशोत, पीपल, इनको समान भाग ले ॥ २६ ॥ इनको घृतमें पकालेवे यह घृत व्रणमें हित है और पीडा सहित तथा रक्तसहित नाडीव्रण, लूत, विसर्परोग इनको नाश करता है और इससे दाहसहित तथा कठिन ऐसा व्रण भरजाता है ॥ २७ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने व्रणचिकित्सानाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः ३६.

अथ श्लीपदरोगका निदान तथा लक्षण ।

आत्रेय उवाच॥व्रणोक्तहृपचारैश्च जायते श्लीपदं तथा ॥ वातेन स्फुटितं रूक्षं श्यामञ्चापि प्रदृश्यते ॥ १ ॥ सदाहपाकं पित्तेन सज्वरश्चैव दृश्यते॥श्लेष्मणा जायते स्निग्धं घनं शोफसमन्वितम् ॥२॥ सन्निपातेन सर्वाणि जायन्ते भिषजांवर ॥ मेदाश्रितं तु वाल्मीकं वल्मीकवत् प्रदृश्यते॥३॥ सदृश्यानि च चिह्नानि वातिकोत्थानि लक्षयेत्॥क्रियास्तस्य व्रणोक्ताश्च कारयेद्विधिपूर्विकाः ॥ ४ ॥ जात्यादि च घृतं शस्तं तथैवालेपनानि च ॥

पुनः प्रलेपनं कार्य्यं धवार्जुनकदम्बकैः ॥५॥ गिरिकर्णिकामूलञ्च तथा वृक्षादनीमपि ॥ पिष्ट्वा प्रलेपनं कार्य्यं वाल्मीकश्लीपदस्य च ॥ ६ ॥ सूरणकन्दकं पिष्ट्वा मधुना च घृतेन च ॥ लेपनं च हितं तस्य वाल्मीकश्लीपदापहम् ॥७॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने श्लीपदचिकित्सा नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

व्रणमें कहेहुए उपचारोंकरके श्लीपदसंज्ञकरोग हो जाता है, वातसे उपजा श्लीपद स्फुटित हो,रूखा हो, श्याम वर्णवालाहो ॥ १ ॥ पित्तसे उपजे श्लीपद रोगमें दाहहो, पाकहो और ज्वर होता है और कफसे उपजा श्लीपदरोग चिकनाहो करडाहो शोजासे युक्त होता है ॥ २ ॥ सन्निपातसे उपजें श्लीपद रोगमें सब लक्षण मिलते हैं और मेदके आश्रय हुआ यह रोग सर्पकी बँबईके समान लक्षणोंवाला होता है ॥ ३ ॥ और वातसे उपजे इस रोगमें समान लक्षण होते हैं उसकी क्रिया व्रणमें कहीहुई करनी चाहिये ॥ ४ ॥ और पहले कहाहुआ जात्यादिघृत लेप करनेमें हित है और धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब, ॥ ५ ॥ गिरिकर्णिकाकी मूल, अमरबेल, इनको पीस लेप करनेसे वल्मीकसंज्ञक श्लीपदरोगका नाश होता है ॥ ६ ॥ जमीकंदको पीस शहद और घृतमें मिला लेप करनेसे वल्मीकसंज्ञक श्लीपदरोगका नाश होता है ॥ ७ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने श्लीपदचिकित्सानाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः ३७.

अथ अर्बुदरोगकी चिकित्सा ।

वाताभिघातपवनाद्व्रणाद्वापि तथा पुनः ॥ रक्तनाड्यः प्ररोहन्ति रुन्धन्ति च तथा पुनः ॥१॥ तेन रक्तस्य मार्गस्तु रुध्यते तेन जायते ॥ अर्बुदश्च महास्थूलं मार्गरोधाच्च जायते ॥२॥ वातान्मृदु च परुषं कफाच्च घनशीतलम् ॥ पित्तेन दाहपाकाद्यं विजानीयं विचक्षणैः ॥३॥ सन्निपातेन कठिनं घनं पाषाणसन्निभम् ॥ वृद्धिमच्च गडुकं स्यादसाध्यं तद्भिषग्वर ॥४॥ तस्यादौ पाटनं

कार्य्यं मर्मस्थानञ्च वर्जयेत् ॥ सैन्धवेन घृतेनापि कुर्य्यात्तस्यानुलेपनम् ॥ ५ ॥ सूरणं कन्दकं दग्ध्वा घृतेन च गुडेन च ॥ लेपनं चार्बुदानाञ्च नाशनञ्च भिषग्वर ॥ ६ ॥ शेषा व्रणक्रिया प्रोक्ता शस्ता वार्बुदशान्तये ॥ वातघ्नानि च पथ्यानि हितानि मधुराणि च ॥७॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अर्बुदचिकित्सानाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–चोटके अभिघातसे और वायुसे तथा व्रणसे रक्तकी नाड़ी भरजाती और रुकजाती है ॥ १ ॥ उससे रक्तका मार्ग रुकजाता है सो मार्गके रुकनेसे महास्थूल अर्बुदरोग हो जाता है ॥ २ ॥ वातसे उपजा अर्बुद रोग कोमल हो और खरदरा हो और कफसे कडा और शीतल होता है और पित्तसे उपजेमें दाह और पाक होता है ऐसा वैद्यजनोंको जानना चाहिये ॥ ३ ॥ सन्निपातसे उपजा कठिन और पत्थरके समान कड़ा होता है हे वैद्यजन! बढनेवाला और गोलीसरीखा यह अर्बुदरोग असाध्य होता है॥ ४॥ उस रोगकी आदिमें मर्मस्थानको वर्जके फाडनेकी विधि करनी चाहिये पीछे सैंधानमक घृत इनका लेप करना चाहिये ॥ ५ ॥ जमीकंदको दग्ध कर घृत और गुड़में मिला लेप करनेसे अर्बुदरोगोंका नाश होता है ॥ ६ ॥ बाकीकी व्रणमें कही हुई क्रिया करनी यह श्रेष्ठ है और वातको नाश करनेवाले मधुर पदार्थ हित कहे हैं और पथ्य हैं ॥ ७ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने अर्बुदचिकित्सानाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ३८.

अथ लूत तथा गंडमाला रोगका निदान और लक्षण।

आत्रेय उवाच ॥ इति व्रणक्रिया प्रोक्ता समासेन भिषग्वर ॥ यथायोगं चोपचारं ज्ञात्वा सम्यगुपाचरेत् ॥१ ॥ दुष्टाम्बुपानक कदन्ननिषेवणाच्च संजायते चक्रिमिसम्भवगण्डमाला॥सामारुते च कफपित्तभवे विकारे संसर्पते क्रिमिजदोषगणश्च गण्डात्॥२॥ वातेन वातसदृशानि च लक्षणानि पित्तेन दाहसरुजव्रणशोष-

तापाः ॥ शैत्यं कफेन परुषत्वमनेकयोगात्सा सन्निपातविहिता च समस्तलिङ्गैः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे उत्तमवैद्य ! इस प्रकारके संक्षेपमात्रसे व्रणकी चिकित्सा कहदी है इसके यथार्थ उपचारको जानकेअच्छी तरहसे चिकित्सा करनी चाहिये॥ १॥दूषित जलके पीनेसे और कुत्सित अन्नके सेवनेसे क्रिमिरोगसे उपजीहुई गंडमाला जाननी।वात पित्त कफ इन दोषोंसे उपजेहुए इस विकारमें क्रिमियोंसे उपजाहुआ दोष गंड अर्थात् कपोल स्थानसे चलता है॥ २ ॥ वातसे उपजे हुए इसरोगमें वातके समान लक्षण होते हैं और पित्तसे उपजेमें दाह,पीड़ा,व्रण, शोष, ताप, ये होते हैं और कफसे उपजेमें शीतलता, कठोरता ये उपचार होते हैं और जिसमें सब लक्षण मिलते हों वह सन्निपातसे उपजा जानना ॥ ३ ॥

अथ लूता गंडमाला चिकित्सा ।

तस्य चेमं प्रतीकारं वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ॥ रोहिणी विशदा चैव विजया च विभेदिनी ॥ ४ ॥ कान्तारी वज्रपुष्पा च तथा चैन्द्रायुधापरा॥इति सप्तविधा लूताः शृणु पश्चात्पृथक्पृथक्॥५॥ रक्तमुण्डा भवेद्रक्ता रक्तस्थाने च रोहिणी ॥ विशदा मांसलस्थाने श्वेतवर्णा च दीर्घिका ॥ ६॥ विजया च शिरोमध्ये पीतवर्णा यवप्रभा ॥७॥ भेदिनी मेदसंस्थाने श्वेता च नीलरेखिका ॥ ८॥ कान्तारी बस्तिमध्ये च श्वेताङ्गा रक्तमुण्डिका ॥ वज्रपुष्पा चास्थिमध्ये श्वेता कृष्णा शिरा मता ॥९॥ इंद्रायुधा शिरान्ते च धूम्रा कृष्णा शिरा मता ॥१०॥ रोहिण्यङ्गुलिमात्रेण सूत्रेण विशदा समा॥विजया च यवाकारा वर्तुला विजया तथा॥११॥ अन्या नृणां च विज्ञेया तण्डुलीकण्टकानिभा॥ रोहिणी विजया विंशा मांसस्थाने समाश्रिता॥ १२॥ गुल्फे वा चास्थिसन्धौ च दृश्यते भेदिनी नरे ॥ कुक्षौ कर्णान्तरेऽपाङ्गे कान्तारी विद्धि पुत्रक॥ १३ ॥ वज्रपुष्पा शिरसि च शिरान्ते चेन्द्रायुधा मता॥ अतो वक्ष्यामि भैषज्यं शृणु पुत्र प्रयत्नतः ॥१४॥ सान्द्रपूयविस्रावञ्च गम्भीरञ्च व्रणं विदुः॥अन्यं च सरुजं चैव पक्वजम्बूसमप्रभम् ॥१५॥ लूताव्रणानां चैतानि अपक्वं यावद्दृश्यते ॥

त्यक्त्वा सन्धिस्थसर्वस्थां लूतां चैवहि तद्रूपम्॥तदा तत्तेन तैलेन दाहश्चाशु विधीयते ॥ १६ ॥ अङ्कोलश्चैव मद्यानि पारिभद्र-दलानि च ॥ मृहधूमं कृष्णजीरं गोमूत्रेण तु पेषितम् ॥ लेपनं च प्रशस्तं च लूतानां मारण परम् ॥ १७ ॥ पिण्डीतकं विड-ङ्गानि तथा चेङ्गुदिमूलकम् ॥ बीजपूरकमूलानि पेषितानि वि-लेपयेत् ॥ गण्डमालां तथा घोरां हन्ति शीघ्रं प्रकण्टकान् ॥ १८ ॥ स्नुहीक्षीरं चार्कक्षीरं लूतारन्ध्रे नियोजयत् ॥ तेन की-टस्तु तन्मध्ये म्रियते नात्र संशयः ॥ १९ ॥ आस्यतो गिरिक-र्णीश्च चन्दनश्च समांशकम् ॥ पिष्ट्वा लेपः प्रयोक्तव्यो लूतां हन्ति सुदारुणाम् ॥ २० ॥ करवीरं चार्कदुग्धं तथा च कटु-तुम्बिकाम् ॥ निशाद्वयं जाङ्गलिकां तिलतैले विपाचयेत् ॥ २१ ॥ लूतामभ्यञ्जने हन्ति गण्डमालाञ्च दारुणाम् ॥ घृतं जात्यादिकं नाम तथा चात्र प्रयोजयेत् ॥ २२ ॥ अन्यान्यपि व्रणे यानि प्रोक्तानि च यथाविधि ॥ २३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने लूतागण्डमालाचिकित्सा नामाष्ट-त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

हे पुत्र! उसके इलाजको कहते हैं सुनो, रोहिणी, विशदा, विजया, विभेदिनी ॥ ४ ॥ कान्तारी, वज्र-पुष्पा, इन्द्रायुवा, ऐसे सात प्रकारकी लूत होती हैं सो हे पुत्र ! जुदी जुदी सुनो॥ ५ ॥ रक्तमुखवाली, रक्तवर्णवाली, रक्तके स्थानमें होनेवाली ऐसी रोहिणी नामक लूत होती है और सफेद वर्णवाली तथा दीर्घ ऐसी विशदानामवाली लूत मांसस्थानमें होती है ॥ ६ ॥ विजयानामवाली लूत पीलेवर्णवाली और शिरके मध्यमें होती है और जवसरीखी होती है ॥ ७ ॥ सफेदवर्णवाली नीलीरेखावाली ऐसी लूत मेदके स्थानमें भेदिनीनामवाली होती है ॥ ८ ॥ सफेदवर्णवाली रक्तमुखवाली ऐसी कांतारीनामवाली लूत बस्तिस्थानमें होतीहै और वज्रपुष्पा नामक लूत अस्थि-स्थानमें होती है और सफेदवर्णवाली तथा काले मुखवाली होती है ॥ ९ ॥ इंद्रायुवा लूत नसोंके मध्यमें होती है धूम्रवर्णवाली और काले शिरवाली होती है ॥ १० ॥ रोहिणी-नामवाली लूत अंगुल प्रमाणमें होती है विशदालूत सूतके समान होती है, विजया लूत जवके आकारवाली अथवा गोल आकारवाली होती है ॥ ११ ॥ अन्य लूत मनुष्योंके चौलाईके कांटेके समान जाननी और रोहिणी विजया विशदा लूत मांसस्थानके

आश्रय रहती है ॥ १२ ॥ टांकनेकी गुल्फ अस्थि संधि इनमें विभेदिनी लूत होती है और कोखी कानके समीपस्थान, नेत्रोंके समीप यह कांतारीनामक लूत होती है ॥ १३ ॥ वज्रपुष्पा शिरमें होती है और नसोंके मध्यमें इंद्रायुधा लूत होती है हे पुत्र ! अब इनकी औषध कहते हैं यत्नसे सुनो ॥ १४ ॥ कढ़ीराध झिरती हो तहां गंभीर व्रण कहते हैं और अन्य पीडा सहित और पकेहुए जामनके फलके समान व्रण होता है ॥ १५ ॥ लूतके व्रण जबतक पके नहीं उससे पहले मर्मसंधियोंको त्यागके लूतको और व्रणको गरम २ तैलसे दग्ध करना चाहिये ॥ १६ ॥ अकोल मदिरा, नींबके पत्ते, घरका धूम, कालाजीरा इनको गोमूत्रमें पीस लेप करनेसे लूतका नाश होता है ॥ १७ ॥ तगर,वायबिडंग, इंगुदीवृक्षकी जड़, त्रिजोराकी जड़ इनको पीस लेप करनेसे घोर गंडमाला कंटकरोग इनका शीघ्र ही नाश होताहै ॥ १८ ॥और थोहरका दूध, आकका दूध, इनको लूतके छिद्रोंमें युक्त करनेसे उसके मध्यके कीडे मरजाते हैं, ॥ १९ ॥ सफेद गोकर्णी, चंदन, इनको समान भाग ले पीसके लेप करनेसे दारुण लूतका नाश होता है ॥ २० ॥ कनेर, आकका दूध, कडुई तुंबी, दोनों हलदी कपूर, कचरी, इनको तिलोंके तैलमें पका ॥ २१ ॥ मालिस करनेसे लूत, गंडमाला, इनका नाश होता है और जात्यादिक नामवाला घृत यहां युक्त करना श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ और अन्य जो व्रणमें कहीहुई औषध हैं वे यहां करनी श्रेष्ठ हैं ॥ २३ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादित हारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थानेलूतागंडमालाचिकित्सानानाम अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोध्यायः ३९.

अथ कुष्ठचिकित्सा ।

आत्रेयउवाच॥ विरुद्धपानानि गुरूणि चाम्लपापोदक सेवनकेन वापि ॥निद्रा दिवासुप्रतिजागराच्चपित्तं प्रकुप्येद्रुधिराश्रितं तत् ॥ १ ॥ त्वचागतः सर्पति रोगदोषः कुष्ठेति संज्ञां प्रवदन्ति धीराः ॥ पापोद्भवास्ते प्रभवन्ति देहे नृणां भृशं कोपयतां विधिज्ञ ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—विरुद्धपान और गरिष्ठ भोजन, खट्टे तथा दूषित जलके सेवनसे, दिनमें सोने और रातमें जागरण करनेसे रक्तके आश्रय हुआ पित्त कुपित होता है ॥ १ ॥ त्वचामें प्राप्त हुआ रोगरूपदोष फैलता है,तब कुष्ठ ऐसी संज्ञा होती है । पापसे उत्पन्न होनेवाले वे रोग मनुष्योंके शरीरमें कोपसे प्राप्त होजाते हैं अब तिनके जुदे जुदे लक्षणोंको कहेंगे ॥२॥

कुष्ठोंके सामान्यभेद और लक्षण ।

कुष्ठानि चाष्टादशधा वदन्ति तेषां पृथक्त्वेन वदामि चिह्नम् ॥ असाध्यसाध्यानि च कर्मजानि दोषोद्भवानि सहजानि तानि ॥३॥कारुण्यपारुष्यमथैव कण्डू रोमप्रहर्षःस्तिमितं तथैषाम्॥ तोदस्तथा संव्यथनं च देहे त्वचि स्थिते कुष्ठभवस्य चिह्नम्॥४॥

कुष्ठोंको अठारहप्रकारके कहते हैं वहां कर्मसे उपजे कुष्ठ साध्य हैं और वातआदि दोषों-से तथा स्वभावसे उपजे असाध्य हैं ॥ ३ ॥ दीनता, कठोरपना,खाज,रोमहर्ष, गीलापन,शरीरमें चुभनेकीसी पीड़ा ये लक्षण कुष्टकी आदिमें होते हैं ॥ ४ ॥

अथ कुष्ठोंके नाम ।

कपालकं चैवमुदुम्बरञ्च तथैव दद्रूणि च मण्डलानि॥ विसर्पकं हस्तिवलं किणञ्च गोजिह्वकं लोहितमण्डला वा॥५॥वैपादिकं चर्मदलं तथान्यं विस्फोटकान्यथ बहुव्रणञ्च ॥कण्डूर्विचर्चीं कथितं तथान्यद्धातुप्रभेदास्त्वचि रोगसिद्धाः ॥ ६

कपालकुष्ट, उदुम्बरकुष्ट, दुद्रुमण्डल कुष्ठ,विसर्पकुष्ट, हस्तिवलकुष्ट, किणकुष्ठ, गोजिह्वक कुष्ठ, लोहितमंडला॥ ५ ॥ वैपादिक, चर्मदल, विस्फोटक, बहुव्रण, कंडु, विचर्चिका ऐसे इसप्रकारसे धातुओंके भेदसे उपजे हुए रोग त्वचामें प्रतीत होते हैं ॥ ६ ॥

कपाल व उदुंबरकुष्ठलक्षण ।

कपालकाभं सितवर्णकञ्च कपालकं तद्गदितं विधिज्ञैः ॥ स्निग्धञ्च सर्वाङ्गगतं च कण्डूमुदुम्बरं तं प्रवदन्ति सन्तः॥ ७ ॥

कपालसरीखा सफेद वर्णवाला हो वह वैद्यजनोंने कपालककुष्ट कहा है और चिकना हो सब अंगमें प्राप्त हो, खाजी हो वह उदुंबरकुष्ट कहाता है ॥ ७ ॥

अथ मंडलकुष्ठ तथा गजचर्मकुष्ठका लक्षण ।

दद्रूपमं यद्भवते च दद्रूर्दद्रूपमं मण्डलकं तमाहुः ॥ विसर्पकं सर्पति तद्विसर्पे तथान्यमान्तं गजचर्मतुल्यम्॥८॥

जो दादके समान हो दादसरीखे मंडलहो वह दद्रुमंडल कुष्ठ कहाता है और जो विसर्परोगकी तरह शरीरमें फैले उसको विसर्पकुष्ठ कहते हैं,जिसकी हस्ती सरीखी त्वचा होजावे उसको गज-चर्मककुष्ठ कहते हैं ॥ ३८ ॥

अथ गोजिह्वक कुष्ठ लक्षण ।

यद्रूक्ष्यपारुष्यसकर्कशञ्च गोजिह्वकं स्यात्खलु भेदयोग्यम् ॥
सवासरक्तानि च मण्डलानि सकण्डुकानि व्रणसंयुतानि॥ ९ ॥

जो रूखा हो कठोर हो कड़ा हो गौकी जिह्वाके समान वर्णवालाहो वह गोजिह्वककुष्ठ कहाता है और रक्त मंडलहो कुंडलसरीखेहों व्रणसे संयुक्तहो वह लोहित मंडल कुष्ठ जानना ॥ ९ ॥

अथ विपादिका कुष्ठ लक्षण ।

ज्ञेयं तु तल्लोहितमण्डलञ्च रक्तोद्भवं तद्रुधिराश्रितञ्च ॥
सवेदनार्त्तस्य परिस्फुटञ्च विपादिका सा कथिता विधेया १०॥

जो रक्तसे उत्पन्न हो रक्तके आश्रय हो पीड़ायुक्त हो प्रकटहो वह विपादिका कुष्ठ कहाता है॥ १०॥

कोपेन रक्तानिलयोश्च जाता तथैव विस्फोटकसन्निभा वा॥तथापरं नाम बहुव्रणं च सूक्ष्मा च सा वै विदिता नरस्य॥११॥ कण्डू-र्विचर्चीभुवने प्रतीता श्वेतानि सूक्ष्माणि च पाटलानि॥विसर्पते यस्य नरस्य रक्तं युवा न केनापि भवेच्च सिद्धः ॥ १२ ॥

जो रक्तवातके कुपित होनेसे उत्पन्न हो और विस्फोटकके समान हो और बहुतसे व्रण हों वह सूक्ष्मा विपादिका नामक कुष्ठ जानना ॥ ११ ॥ कंडू विचर्चिका ये संसारमें प्रसिद्ध हैं और जिसके सूक्ष्मवर्णवाले तथा सफेदवर्णवाले और पीले वर्णवाले ऐसे चिह्न दीखें,रक्त दुष्ट होके फैलाता है ऐसा तरुणरोग किसी प्रकारसेभी सिद्ध नहीं होता है ॥ १२ ॥

अथ वातादिजन्य कुष्ठका लक्षण ।

शिरीषपुष्पाणि शिरीषकाणि सन्त्यक्तभावः पुरुषश्च सूक्ष्मः॥
तोदस्तथा वेपथुवातलिङ्गं पित्तेन शोषभ्रमदाहतृष्णाः ॥१३॥
श्लेष्मोद्भवे कठिनशीतलपाण्डुरश्च नेत्रे नखेषु च वपुष्यभिलाषता च॥ मिश्रेण संभृतभवानि भवन्ति यस्य स्यात्सान्निपातिकभवं बहुभिश्च लिङ्गैः ॥ १४ ॥

शिरसके पुष्पोंके समान और शिरसके समान वर्ण हो, कठोर हो, सूक्ष्म हो, व्यथा हो कंपना हो ये वातसे उपजे कुष्ठके लक्षण हैं और पित्तसे उपजे कुष्ठमें शोषहो, भ्रम हो दाह हो तृषाहो ॥ १३ ॥ कफसे उपजा कुष्ठ कठिन, शीतल होता है और नेत्र, नख, शरीर ये पीले होजाते हैं इसमें खाज करनेकी इच्छा रहे और सब मिलेहुए दोषोंसे मिलेहुए लक्षण होते हैं, सन्निपातसे उपजे कुष्ठमें बहुतसे लक्षण मिलते हैं ॥ १४ ॥

पथ्य है, पित्तसे उपजेमें शीतल उपचार करना श्रेष्ठ है ॥ २० ॥ यह कुष्ठरोग कष्टसाध्य कहा है और सन्निपातसे उपजा असाध्य होता है, पहले रोगके कारणको जानके पीछे कर्म करनेका आचरण करे ॥ २१ ॥

पक्षात्पक्षाच्छोधनं पाचनञ्च मासान्मासान्कारयेद्रेचनञ्च ॥ मासान्कुष्ठे शोधनाय प्रकर्षात्षष्ठे षष्ठे मास्यसृग्मोक्षणञ्च ॥ २२ ॥ वासापटोलफलिनीलवणं वचाञ्च निम्बत्वचं कथितमाशु पिबेत्कषायम् ॥ कुष्ठे करोति वमनं मदनान्विते च पथ्याकषायवमने मदनान्वितेषु ॥ २३ ॥ फलत्रिकं त्रिवृद्दन्ती भिषग्वर विरेचकम् ॥ क्वाथो वचोष्णतोयेन पाने स्याद्भिषगुत्तम॥२४॥ श्वासप्रश्वासयोर्वेध्या शिरा शिरसि चेद्बहिः ॥ ततः प्रयोजनीयञ्च क्वाथस्नेहस्य भोजनम् ॥ २५ ॥

पक्षपक्षको प्रति शोधन और पाचनकर्म करे । महीना २ को प्रति जुलाव दिलानी चाहिये और कुष्ठरोगमें छठे २ महीनेके प्रति रक्तको निकसावे ॥ २२ ॥ वांसा, परवल, मालकांगनी, नमक, वच, नींबकी त्वचा, इनका काथ बना मैनफल मिला कुष्ठमें पीनेसे वमन होता है और पंचवृक्षोंका काथ बना मैनफल मिला वमनके वास्ते देना चाहिये ॥ २३ ॥ हे वैद्य ! त्रिफला, निशोत, इनसे जुलाब दिलानी श्रेष्ठ है और वचका काथ बना गरम २ जलके संग पीना श्रेष्ठ है ॥ २४ ॥ कुष्ठमें जो ज्यादे श्वास होवे तो शिरमें रहनेवाली बाहिरकी नस वींधनी चाहिये, पीछे क्वाथ और स्नेह अर्थात् घृत आदिक भोजन करवाना चाहिये ॥ २५ ॥

अथ शुण्ठ्यादिक्वाथ।

शुण्ठीकणाखदिरपाटलिकापटोलीमञ्जिष्ठकंटविषबिल्वयवानिकानाम्॥वासाफलत्रिकजलेन कषायसिद्धःपानान्निहन्ति मनुजस्य च कुष्ठदोषम् ॥२६॥ वासाविडङ्गपिचुमन्दपटोलपाठाशुण्ठीसुदारुतरुपञ्चकमूलपथ्याः ॥ क्वाथो निहन्ति च मरुत्प्रभवं सुकुष्ठं निःसतकेऽहनि महौषधमेव योज्यम् ॥ २७ ॥

सूंठ, पीपल, खैर, पाडलवृक्ष, परवल, मँजीठ, लघुगोखरू, अतीश, वेलगिरी, अजवायन, वांसा, त्रिफला, इनका काथ बना पीनेसे मनुष्यका कुष्ठरोग दूर होता है ॥ २६ ॥ वांसा, वायविडंग, नींब, परवल, पाठा, सूंठ, देवदार, वड आदि पंचवृक्ष, लाख, मूली,

हरडे इनके काथसे वातसे उपजा कुष्ठका नाश होता है, इक्कीस दिनतक यह महान् औषध पीना चाहिये ॥ २७ ॥

गुडूच्यादि काथ ।

नित्यं छिन्नोद्भवाचूर्णं तस्याः काथसमन्वितम् ॥ पीतं जीर्णे सघृतञ्च पीतञ्च षाष्टिकं पयः ॥ २८ ॥ हन्ति कुष्ठानि सर्वाणि सप्तधातुगतानि च ॥ २९ ॥

गिलोयके काथके संग गिलोयके चूर्णको नित्य पीवे । जर जावे तब घृत सहित सांठि चावलोंके मांडको पीवे ॥ २८ ॥ यह सातों धातुओंमें प्राप्त हुए सब कुष्ठोंको नाशता है ॥ २९ ॥

अथ कुष्ठरोगमें लेपविधि ।

रसेन्द्रकाश्मर्यघनञ्च कुष्ठं निशाद्वयं काञ्जिककुष्ठमेतत् ॥ लेपे प्रशस्तं विनिहन्ति कुष्ठं विचर्चिकां चापि विसर्पदोषम् ॥ ३० ॥ पिष्टानि तत्र मधुकाञ्जिकमूत्रपिष्टलेपेन कुष्ठमपि दुष्टविचर्चिकाञ्च ॥ ३१ ॥ विसर्पदोषे प्रोक्तानि धावनानि च कारयेत् ॥ सौवीरकरसेनापि धावनं त्रिफलाम्बुना ॥ ३२ ॥ वातिके चैव कुष्ठे च प्रशस्तं कथितं बुधैः ॥ निम्बपत्रकषाये च यष्टीमधुककल्कितम् ॥ ३३ ॥ दुग्धेन शीतलेनापि विदार्य्याः काथकेन वा ॥ हन्ति कुष्ठं महाघोरं धावनं न प्रशस्यते ॥ ३४ ॥ अग्निमन्थपटोलानि मातुलुङ्गदलानि च ॥ शटीपर्पटकः काथो धावनं श्लेष्मरोगिणाम् ॥ ३५ ॥ विपादिकां नवनीतेन क्षालयित्वा विदांवर ॥ स्वेदयित्वार्कदुग्धैश्च मधुतैलेन लेपनम् ॥ ३६ ॥

खंभारी, सिंगरफ, नागरमोथा, कूठ, दोनों हलदी, कांजीमें शोधा हुआ लोहा, इनको पीस कुष्ठपै लेप करना श्रेष्ठ कहा है और विचार्चिका, विसर्पदोष, इनका नाश होता है ॥ ३० ॥ सीसाकी रजको शहद, कांजी, गोमूत्र इनमें पीस लेप करनेसे कुष्ठ, दुष्ट विचार्चिका इनका नाश होता है ॥ ३१ ॥ विसर्प दोषमें कहेहुए धोवनेके कर्म यहां करने चाहिये और कांजी, त्रिफलाका रस इनसे धोना श्रेष्ठ है ॥ ३२ ॥ यह इलाज वैद्यजनोंने वातसे उपजे कुष्ठमें श्रेष्ठ कहा है और नींबके पत्तोंके काथमें मुलहटीका कल्क बना ॥ ३३ ॥ शीतल दूधमें मिला अथवा विदारीकंदके काथमें मिला उससे धोवनेसे महाघोर कुष्ठका नाश होता है ॥ ३४ ॥ अरणी, पर-

चल, विजौराके पत्ते, कचूर, पित्तपापडा इनका काथ बना कफसे उपजे कुष्ठको धोना श्रेष्ठ है ॥ ३५ ॥ विपादिका कुष्ठको नौनी घृतसे संयुक्त कर तहां आकके दूधसे पसीना दिवा शहद और तैलका लेप करे ॥ ३६ ॥

अथ खदिरआदि काथ ।

खदिरनिम्बकदम्बकमर्जुनमथ च पाटलिका च शिरीषकम् ॥ कुटजकिंशुकवासुसमोरटो वटकुटं नटपिप्पलिपीलुकम् ॥३७॥ धवमुदुम्बरवेतसमेकतः क्वथितपानविधानघृतेन तु ॥ सकलकुष्ठविनाशनकारकं भवति चेन्दुसमानवपुर्नरः ॥ ३८ ॥

खेर, नींब, कदंब, अर्जुनवृक्ष, पाडलवृक्ष, शिरस, कूडाकी छाल, टेशू, वांसा, मोर अर्थात् खैरका भेद, वड, टेंटूवृक्ष, पीलवृक्ष ॥ ३७ ॥ धव, गूलर, वैत, इनको एक जगहकर काथ बना घृत मिला पीनेसे संपूर्ण कुष्ठोंका नाश होता है और चंद्रमाके समान सुन्दर शरीर होजाता है ॥ ३८ ॥

अथ आरग्वधआदिकाथ ।

आरग्वधाधातकिकर्णिकारधवार्जुनैः सज्जककिंशुकानाम् ॥ कदम्बनिम्बाकुटजाटरूषा मूर्वा च युक्ता खदिरेण चैषा ॥ ॥३९॥मूलानि चैषामुपहृत्य सम्यगष्टावशेषे क्वथितःकषायः॥ घृतेन तुल्यं प्रतिमानवस्य निहन्ति सर्वाणि शरीरजानि ॥ ॥ ४० ॥ कुष्ठानि सर्वाणि विसर्पदद्रुविचर्चिका हन्ति नरस्य शीघ्रम् ॥ ४१ ॥

अमलतास, धाय, कनेर, धववृक्ष, अर्जुनवृक्ष,रालवृक्ष, टेशू, कदंब, नींव, कूडाकी छाल, वांसा, खैर, मूर्वा ॥ ३९ ॥ इनकी जडको ले काथ बना लेवे पीछे अष्टमांश बाकी रहे तब उतार उसमें समान भाग घृत मिला खानेसे मनुष्यके शरीरके सब प्रकारके कुष्ठोंका नाश होता है ॥ ४० ॥ सबप्रकारके कुष्ठ, विसर्परोग, दाद, विचर्चिका इनका शीघ्र ही नाश होता है ॥ ४१ ॥

अथ खदिरादिघृतपानक ।

खदिरकदरमूर्वावालकं कर्णिकारः कुटजसपरिभद्रारग्वधाभिश्च पिष्टाः॥क्वथितमिति समांशं पीतमाज्येन युक्तं जयति सकलकुष्ठान् वै विसर्पस्य दोषान् ॥ ४२ ॥

पयोदलाक्षारससमेव वासा त्रायन्तिका बिल्वककुष्ठयष्टिः ॥४८॥ संचूर्णितं क्षीरदधिसमेतं घृतं विपक्कं परिषेचने च ॥ हितञ्च कुष्ठक्षतदद्रुरक्तं पामाविचर्चीविनिहन्ति कण्डूम् ॥ ४९ ॥

नींब, परवल, चिरायता, जावित्री, इंद्रायण, सांठी, नागरमोथा, लाखका रस, वांसा, त्रायमाण, बिल्व, कूठ, मुलहठी ॥ ४८ ॥ इनका चूर्ण बना दही और दूध मिलावे उसमें घृत मिला सिद्ध करे पीछे इस घृतसे सेक करनेसे कुष्टक्षत, दद्रुरक्त, पामा, विचर्चिका कंडू इनका नाश होता है ॥ ४९ ॥

अथ पांडुरकुष्ठकी चिकित्सा ।

पित्तश्चैव गदं भूत्वा वातेनैव समीरितम् ॥ सरक्तञ्च प्रकुपितं कुरुते पाण्डुरच्छविम् ॥ ५० ॥ स्तब्धचित्तं विरूपञ्च शृणु तस्य च लक्षणम् ॥ असाध्यं कुष्ठं साध्यं वा विज्ञेयं तद्भिषग्वरैः ॥५१॥ ईषद्रक्तं भवेत् पाण्डु सन्निपातेन जायते ॥ असाध्यं तच्च सर्वाङ्गचित्रं स्निग्धं तदेव तु ॥ ५२ ॥ पीतच्छविं पाण्डुररूक्षमेव उपागतं साध्यतमं प्रतीतम् ॥ संपाचनं शोधनमेव शस्तं विरेचनं रक्तविमोक्षणञ्च ॥ ५३ ॥ वासागुडूचित्रिफलाकरञ्जपटोलनिम्बार्जुनवेतसानाम् ॥ कृष्णासमङ्गासहितं च कल्कं पाने हितं चित्रकमण्डले च ॥५४॥ खदिरवासकनिम्बपटोलकैर्धवययवासकमेव फलत्रिकैः ॥ सकलकुष्ठविसर्पमण्डलं विजयते मनुजस्य च पांडुरम् ॥५५॥ पाठाविडङ्गमगधासुरदारुचित्रं दद्रुघ्नरात्रियुगलं च तथा समङ्गा॥ कुष्ठं वचामधुकसैन्धवकाञ्जिकेन मूत्रेण पिष्टमथ रक्तरसेन वापि ॥५६॥ प्रलेपने चित्रमथैव सिद्धं विनाशमायाति च कण्डुकुष्टम् ॥ विचर्चिकां नाशयते च कण्डूं विस्फोटमाशु प्रतिसर्पणानि ॥५७॥ भृङ्गराजो हरिद्रा च दूर्वा जाती विडङ्गकाः॥कृष्णास्तिलाश्चित्रकाणि तथैव हरिचन्दनम् ॥५८॥ मूत्रेण पेषितं तत्तु लेपनं चित्रकुष्ठिनि ॥ हन्ति दद्रूणि सर्वाणि कुष्ठं दद्रूविचर्चिकाः ॥ ५९ ॥ न विदाहीनि चाम्लानि

वातलानि तथैव च ॥ ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥ व्रणेषु कुष्ठराजीषु हितमेवोपचारिणाम् ॥ ६०॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने कुष्ठचिकित्सानामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ इति कायतन्त्रं समाप्तम् ॥

वातसे प्रेरा हुआ पित्त रोगरूप होके रक्तके संग कुपित हो शरीरको पांडुर अर्थात् कुछ पीला सहित सफेद वर्णवाला करदेता है ॥ ९० ॥ चित्त दुखी रहे विरूप होजावे ऐसे लक्षणोंको सुनो, वह कुष्ट असाध्य और साध्य दो प्रकारका होता है ॥ ९१ ॥ जो कुछ लाल वर्णसे युक्त पीला वर्णवाला कुष्ट हो वह सन्निपातसे उपजा जानना वह असाध्य होता है उसमें सब अंगमें चिकने और चितले होते हैं ॥ ९२ ॥ जो रूखा तथा पीला वर्णवाला पांडुरकुष्ट हो वह साध्य होता है उसमें पाचन और शोधन करना तथा जुलाब दिलानी और फस्त खुलानी श्रेष्ट है ॥ ९३ ॥ वांसा, गिलोय, त्रिफला, करंजुवा, परवल, नींब, अर्जुनवृक्ष, बेत, पीपल, मँजीठ, इनोंका कल्क बना चित्रकमंडल कुष्टमें पीना हित है ॥ ९४ ॥ खैर, वांसा, नींब, परवल, वच, जवांसा, त्रिफला, इनका कल्क बना पीनेसे सवप्रकारके कुष्ट, विसर्प, मंडल, पांडुरकुष्ट, इनका नाश होता है ॥ ९५ ॥ पाठा, वायविडंग, पीपल, देवदार, चीता, पुआड, दोनों हलदी, मँजीठ, कूठ, वच, मुलहटी, सेंधानमक, इनको कांजीमें अथवा गोमूत्रमें अथवा रुधिरके रसमें पीसि ॥ ९६ ॥ लेप करनेसे चित्रकुष्टका नाश होता है और खाजिवाला कुष्ट, विचर्चिका, कंडू, विस्फोटक, विसर्प इनका नाश होता है ॥ ९७ ॥ भंगरा, हलदी, दूब, जीरा, वायविडंग, काले तिल, चीता, लाल चंदन ॥ ९८ ॥ इनको गोमूत्रमें पीस लेप करनेसे चित्रकुष्टका नाश होता है और सवप्रकारके दाद, दद्रुकुष्ट, विचर्चिका, विस्फोटक और विसर्प इनका नाश होता है ॥ ९९ ॥ कुष्टरोगमें विदाही, खट्टा, वातवाला ऐसा भोजन नहीं करना चाहिये, और ज्वरमें कहेहुए जो पथ्य हैं वे यहाँ करने चाहिये और व्रणोंमें कुष्टोंमें, यही उपचार करना श्रेष्ट है ६० ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने कुष्टचिकित्सानाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः ४०.

अथ शालाक्य तंत्र।

अथ शिरोरोगचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ अतिभारातियोगेन अतितीक्ष्णोष्णभावतः॥

विनाभ्यङ्गेन वा शैत्यात्पित्तेनातिविशेषतः ॥१॥ क्रिमिदोषेण वा पुंसां जायते च शिरोगदः॥वातरक्तकफात्पित्तात्पित्तेनापि विशेषतः॥२॥सन्निपातेन विज्ञेयाः क्रिमिजाश्च तथापरे॥अर्द्ध-शीर्षविकारश्च दिनवृद्धिकरस्तथा ॥ ३ ॥ वातेन रात्रौ भवते व्यथा च अथातुरस्य व्यथते शिरश्च ॥ सौख्यं लभेत्स्वेदन-मर्द्दनेन वातेन सा विड्वृषणे रुजा वा॥४॥यस्योष्णमङ्गं भवते शिरस्यं घर्मे सतापे च दिने च रात्रौ ॥ स धूमतो वा कटुको बलाशे शीतात्सुखं वा निशि स्वास्थ्यमेति ॥५॥ शीतात्सुखं वा प्रथमश्च तृष्णा सतीव्रपित्ताद्भवते रुजा च ॥ सूर्य्योदये वा भवते दिनान्ते भ्रमश्च तृष्णा भवते सुतीव्रा॥६॥सजाड्य-मुण्डं भवते च शीतं स्वेदेन युक्तं युगलञ्च नूनम् ॥ सुदृश्यनेत्रं नयते च तद्वा कफे यदीषः शिरसो विकारः॥७॥रक्तेन नासा-पुटकेऽपि जालं निरेति शेषा वदने च तृष्णा ॥ रक्ताक्षमन्या जठरे च यस्य तमाहू रक्तोद्भवशीर्षरोगम् ॥८॥ मध्यं प्रदूष्य प्रतनोति पीता नासापरिस्रावि सविड्जलञ्च॥सजाड्यमोहश्व-सनं च यस्य त्रिदोषरोधाद्भवते शिरोऽर्त्तिः॥९ ॥ यस्यातिमात्रं शिरसि प्रतोदो विभज्यमानेऽपि च मस्तकान्ते ॥घ्राणे परि-स्रावि सरक्तपूयं क्रिमिप्रसूता च शिरोव्यथा च ॥१०॥क्रोधा-च्छोकाद्भवेच्चान्या व्यायामेऽतिश्रमेषु च ॥ सा वातेन शिरः-पीडा सरुजे च नृणामपि ॥ ११ ॥ अतिलेखनपाठेन तथा सूक्ष्मान्निरीक्षणात्॥ दूरदृष्टेक्षणेनापि वेदना वातरक्तजा ॥१२॥ नासिकार्द्धे व्यथा तस्य व्यथाभ्रूयुगले भवेत् ॥ नीलं कृष्णञ्च पश्येत वेदना मस्तके भवेत् ॥ १३ ॥ न रक्तेन विना पित्तं रक्तं पित्तेन चाल्यते ॥ न पित्तेन शिरोऽर्तिः स्यात्पित्तं वातेन चाल्यते ॥ १४ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–अतिमारके अत्यन्त योगसे अतितीक्ष्ण भावसे तैलादिकी मालिस करे विना शीतलता लगनेसे अत्यंत पित्तसे ॥ १ ॥ अथवा क्रिमि दोषसे पुरुषोंके शिरोरोग होता है और वातरक्त, कफपित्त, पित्त ॥ २ ॥ अथवा सन्निपात, इनसे उत्पन्न होनेवाले शिरोरोग क्रिमिज शिरोरोग ऐसे होते हैं, और अधशिरका विकार तथा दिनके चढ़नेके समय शिरोरोग होता है ॥ ३ ॥ वातदोषसे उपजे शिरोरोगमें रात्रिमें पीडा हो, और पीड़ित हुएका शिर दुखे और पसीना दिलाने तथा मर्दन करनेसे सुख होवे । विष्ठा उतरनेके समय अथवा व्रणस्थानमें दुःखहो वह वातसे उपजी पीडा जाननी ॥ ४ ॥ जिसका शिर गर्म रहे और घामसे संतापमें दिनमें अथवा रात्रिमें धुवांसे शिरमें पीड़ाहो, कड़ु कफ गिरे वह पित्तसे उपजा शिरोरोग जानना जिसमें रात्रिमें सुख होता है ॥ ५ ॥ और शीतलतासे सुख हो, तृषा लगे, तीव्र पीडाहो, वह पित्तसे उपजी पीडा जाननी और जो सूर्योदयमें अथवा दिनके अंतमें भ्रमहो तृषाहो पीडाहो ॥६॥ शिरमें जड़ताहो शीतलहो पसीनेसे युक्त दोनों नेत्रहों और सुंदर नेत्रहों वह कफसे उपजा शिरोविकार जानना ॥ ७ ॥ और रक्तसे उपजे शिरके विकारसे नासिकासे रक्त झिरे, मुखमें तृषा रहे, और जिसके कंधा, कंधाके समीप मन्यास्थान, पैर, ये लाल हों उसको कफसे उपजा शिरोरोग कहते हैं ॥ ८ ॥ मध्यमें दूषित हो, पीली नासिका होजावे, दुर्गंधि सहित जल झिरे, जडता हो, मोहहो, श्वासहो वह त्रिदोषसे उपजी शिरकी पीड़ा जाननी ॥ ९ ॥ जिसके शिरमें अत्यंत व्यथा हो और मस्तक फटाजावे नासिकासे रक्त और राध झिरे वह क्रिमियोंसे उपजी शिरकी पीड़ा जाननी ॥ १० ॥ और क्रोध, शोक, कसरत, अत्यंत परिश्रम इनसे उपजी हुई पीड़ा वातके कोपसे होती है वहां व्यथा होती है ॥ ११ ॥ अत्यंत लिखना, पढना, सूक्ष्म देखना, दूरसे दृष्टिदेके देखना इनसे उपजी पीडा वात रक्तके कोपसे जाननी ॥ १२ ॥ उसकी आधी नासिकामें और दोनों भ्रुकुटियोंके आधे भागमें पीडा हो, नीला और काला वर्ण सरीखा दीखे, मस्तकमें पीडाहो ॥ १३ ॥ रक्तके विना पित्त नहीं होती है और रक्त, पित्तसे चलायमान होता है और पित्तसे विना शिरमें पीडा नहीं होती है, पित्त वातसे चलायामान होता है ॥ १४ ॥

तस्माद्वक्ष्याम्युपचारं शृणु भेषजलक्षणम् ॥ स्वेदःप्रलेपनं नस्यं पानाभ्यङ्गश्च मर्दनम् ॥ १५ ॥ स्वेदनं वातकफजे चाभिघाते तथा पुनः॥ पित्तजे रक्तजे वापि न कुर्य्यात्स्वेदनं तयोः॥१६॥ रक्तजे च शिरा वेध्या पित्तजे वापि कुत्रचित्॥ कोकिलाख्या च तर्कारि कटुका निम्बपत्रकैः ॥ १७ ॥ शोभाञ्जनकपत्रैस्तु क्वाथं वा तेन स्वेदयेत् ॥ अमीषाञ्च प्रलेपेन सौख्यं चास्य प्रजायते ॥१८॥ संशीतपरिषेकैश्च यष्टीमधुकचन्दनैः ॥ केसरै-

सातुलुङ्गैश्च पित्तजे शीतलेपनम् ॥ १९ ॥ कदम्बार्जुनसिन्धुश्च लेपनार्थे भिषग्वर ॥ गुडेन नागरा वापि पथ्यां वापि गुडेन वा ॥२०॥ गुडशोभाञ्जनरसैर्नस्ययोगात्पृथक्पृथक् ॥ नस्येन बस्तमूत्रेण शिरोऽर्तिश्चोपशाम्यति ॥२१॥ मरिचं पथ्या कट्फलं मूत्रेणोष्णोदकेन वा ॥ नस्यं कफोद्भवे घोरे शिरोरोगे भिषग्वर ॥२२॥ वचामधुकसारं वा मूलं वा गिरिकर्णिका ॥ नस्यप्रयोगे विहितं सन्निपाते शिरोगदे ॥ २३ ॥ वन्ध्याकर्कटकीमूलं पिष्टमूष्णेन वारिणा ॥ मितं नस्ये प्रयुञ्जीत क्रिमिजे च शिरोगदे ॥ २४ ॥

इसवास्ते इसके उपचारको कहते हैं औषधोंको सुनो—पसीना दिवाना, लेप करना, नस्य दिवानी, पान कराना, मालिस मर्दन कराना ॥ १५ ॥ वात कफसे उपजे तथा चोट आदिसे उपजे शिरोरोगमें पसीना दिवावे और पित्तसे तथा रक्तसे उपजेमें पसीना नहीं दिवावे ॥ १६ ॥ रक्तसे उपजे शिरोरोगमें फस्त खुलावे और कहींक पित्तसे उपजेमेंभी शिरावेध श्रेष्ठ है और कंकोल, अरणी, कुटकी, नींबके पत्ते ॥ १७ ॥ सहिंजनाके पत्तेका काथ वना उससे पसीना दिवावे अथवा इनके लेप करनेसे सुख होता है ॥ १८ ॥ पित्तके शिरोरोगमें मुलहटी, महुआवृक्ष, चंदन, इनके शीतल काथसे परिषेक करे और विजौरेकी केशरसे शीतल २ लेप करे ॥ १९ ॥ और हे उत्तमवैद्य ! कदंब, अर्जुनवृक्ष, सेंधानमक, इनका लेप करना श्रेष्ठ है और गुडके संग सोंठ, तथा हरडैका लेप श्रेष्ठ है ॥ २० ॥ और गुड सहिंजनेका रस इनकी पृथक् २ नस्य देनी श्रेष्ठ है और बकरेके मूत्रकी नस्य देनेसे शिरकी पीडाका नाश होता है ॥ २१ ॥ और कफसे उपजे घोर शिरोरोगमें मिर्च, हरडै, कायफल, इनको पीस गरम २ गोमूत्रके संग नस्य देना श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ वच, महुआ, मूली, अमलतास, इनको नस्यमें देनेसे सन्निपातसे उपजा शिरोरोग नाश होता है ॥ २३ ॥ वांझ ककोडीकी जडको पीस गरम जलके संग नस्य देनेसे कृमिसे उपजा शिरोरोग नाश होता है ॥ २४ ॥

अथ षड्बिन्दुनामक तैल ।

भृङ्गराजरसं चैकं द्विभागं काञ्जिकेन च ॥ शोभाञ्जनं भागत्रयं सर्वं तत्र विनिक्षिपेत् ॥२५॥ सौवीरकरसं पञ्च षड्भागं तुम्बिकारसम् ॥ शुण्ठी सैन्धवमम्लीका पटोलं वासकं शिवा ॥२६॥ अभया सुरसा चैव तैलञ्च चतुरंशकम् ॥ पाचितं तत्तु नस्येन

योजयेच्च षड्विन्दुकम्॥२७॥ तथैव मस्तकाभ्यङ्गे हितं स्यात् कर्णपूरके॥हितं वातादिजे रोगे शिरोऽर्त्तौ क्रिमिजे तथा ॥२८॥

भांगरेका रस एक भाग, कांजीदो भाग, हिसजना २भाग॥२५॥वेरोंका रस पांच भाग तुम्बीका रस ६ भाग इनको एक जगह मिला सोंठ, सेंधानमक, अमली, परवल, वांसा, हलदी ॥२६॥ हरडै, तुलसी इनको मिला पीछे इन सब रसोंसे चतुर्थांश तैल मिला उसको पकाके उस तैलकी छह बूंद नस्यमें देनेसे ॥ २७ ॥ तथा मस्तकपर लेप करनेसे अथवा कानमें पूरनेसे वातादिक शिरोरोग तथा क्रिमियोंसे उपजा शिरके रोगका नाश होता है ॥ २८ ॥

अथ विन्दुत्रयतैल।

करञ्जबीजस्य विभीतकानां पुटेन तैलं परिस्रुत्य धीमन् ॥ विन्दुत्रयं नस्यविधौ प्रयोज्यं जघान कुष्ठं क्रिमिजं विकारम्॥२९

करंजुवाके वीज, वहेडा,इनको पुटपाकमें धर तैल निकास उसकी तीन बूँद नस्यमें देवे यह तैल कुष्ट, क्रिमिसे उपजा विकार इनका नाश करता है ॥ २९ ॥

अथ कुष्ठादिघृत।

कुष्ठं च यष्टीमधुकं च नीत्वा पटोलजातीसुरसारसञ्च॥ विपाचितं तन्नवनीतकञ्च घृतेन नूनं च सरक्तपित्ते ॥३०॥ सशर्करायुक्तमिदं दिवा च गव्यं प्रवृद्धप्रभवे च दोषे॥ ३१ ॥

कूठ, मुलहटी,परवल,जावित्री,तुलसी रस,नौनी घृत इन्होंको पकालेवे पीछे इस घृतकी नस्य रक्तपित्तसे उपजे शिरके रोगमें देवे ॥३०॥ और दिनके बढ़नेके समय जो दर्द बढ़ाता है ऐसे रोगमें इस घृतमें खांड मिलाके नस्य देना हित है॥ ३१ ॥

अथ लाक्षादितैल।

लाक्षारसं चन्दनयष्टिकानां पटोलधात्रीफलशर्कराणाम् ॥दधि सदुग्धं नवनीतकञ्च विपाचिते नस्यविधौ प्रयुज्यते॥ ३२ ॥ भ्रूदोषशङ्खक्षतजक्षये वा दिनादिवृद्ध्या प्रभवेऽपि दोषे ॥३३॥

लाखका रस, चंदन, मुलहटी, परवल, आंवला, खांड,दही, दूध, नौनीघृत इनको पका नस्य देनेसे ॥३२॥ भ्रूदोष कनपटीस्थानका दर्द चोटसे तथा क्षयरोगसे उपजा तथा दिनवृद्धिके अनुसार शिरोरोग इनका नाश होता है॥ ३३ ॥

अथ कुंकुमादिघृत।

कुङ्कुमं यष्टिमधुकं कुष्ठं च शर्करासमम्॥पक्वञ्च नवनीतेन घृतं

नस्ये प्रयोजयेत् ॥३४॥ नश्यन्ति पित्तजा रोगा दिनवृद्धयोपवर्जनात् ॥ अर्द्धशीर्षविकारश्च प्रशमं याति सत्वरम् ॥३५॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने शिरोरोगचिकित्सा नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

केशर, मुलहटी, कूट, खांड, नौनीघृत इनको समान भाग ले पकाके नस्य देनेसे ॥ ३४ ॥ पित्तसे उपजे तथा दिनवृद्धि,शिरोरोग, अधसिरा इनका शीघ्र ही नाश होता है ॥३५॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने शिरोरोगचिकित्सानाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः ४१.



अथ भ्रूदोषलक्षण ।

आत्रेय उवाच॥अतिपठनशीलस्य सूक्ष्मवस्त्रेक्षणेन वा॥दूरालोकेन चोष्णेन भ्रूदोषश्चोपजायते ॥ १ ॥ रक्तवाताश्रितो दोषः पित्तेन सह मूर्च्छितः ॥ अन्यथा च प्रभवति नासावंशोद्भवा शिरा ॥ २ ॥ व्यथते चोष्णवेलासु शीतेन स्याद्विशेषतः ॥ नेत्रमध्ये नीलपीतमण्डालानि च पश्यति ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अत्यंत पढ़नेसे सूक्ष्म वस्त्र आदिके देखनेसे दूरसे देखनेसे गरम वस्तुके सेवनेसे भ्रूदोष रोग होजाता है ॥१॥ रक्त वातके आश्रयहुआ दोष पित्तके संग मूर्च्छित भ्रकुटियोंमें पीड़ाकर देता है और नासिकाकी डंडीपर होनेवाली नस ॥ २ ॥ पीड़ित होती है गरमीके समय पीड़ा होती है और ठंढकमें ज्यादे पीड़ा होती है और नेत्रोंके मध्यमें नीले और पीले मंडल दीखे ॥ ३ ॥

भ्रूदोषकी चिकित्सा ।

तस्यादौ च क्रियां कुर्य्याच्छिरा वेध्या प्रयत्नतः॥पूर्वोक्तं स्वेदनं कार्य्यं नस्ये षड्बिन्दुकादिकम् ॥ ४ ॥ देवदारु रजनी घनं शटी पुष्करं कुटजबीजमागधी ॥ कुष्ठरोध्रचविकायवासकं क्वाथितं च पुनरेव विस्रुतम् ॥ ५ ॥ तत्र गुग्गुलमपि क्षिपेत्पुनः

शुण्ठिसैन्धवफलत्रिकं हितम् ॥ चूर्णितं दधिपयोविमिश्रितं पाचितं च नवनीतकं च तत् ॥६॥ सिद्धमेव विदधीत शीतलं शर्करायुतमिदं च नस्यदम् ॥ नस्यकर्म शिरसो रुजापहं भ्रूललाटभुजशंखमूलकम् ॥ ७ ॥ शीर्षरोगमपि चार्द्धशीर्षकं तोदने च विहिते न केवलम् ॥ कर्णरोगमपि वारयत्यपि तैलमाशु किल साधितं सुत ॥८॥ ताम्बूलपत्रस्य रसं विडङ्गं सिन्धूद्भवं हिङ्गुगुडेन युक्तम् ॥ जलेन पिष्टं विहितं च नस्यं भ्रूशंखदोषांश्च क्रिमीन्निहन्ति ॥९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भ्रूदोषचिकित्सानामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इस रोगकी आदिमें यत्नसे सिरोवेध कर्म करे और पहले कहाहुआ पसीनेका कर्म करवावे और नस्यमें षड्बिंदुक आदि तैलको देवे ॥ ४ ॥ और देवदार, हलदी, नागरमोथा, कचूर, पोहकरमूल, कूडाका बीज, पीपल, कूठ, लोध, चव्य, जवासा इनका क्वाथ बना उसको छान ॥ ५॥ पीछे उसमें गूगल, सूंठ, सेंधानमक, त्रिफला इनका चूर्ण मिला दही दूध ये मिला और नौनीघृत मिला ॥ ६ ॥ पीछे इसको पकावे । सिद्ध होजावे तब शीतल कर खांड मिला इसकी नस्य देनेसे शिरके रोगका नाश और भ्रुकुटि, मस्तक, भुजा, कनपटीका स्थान ॥ ७ ॥ शिरोरोग, अधशिरेका रोग इन और सब रोगोंकी पीडाका नाश होता है और इसीप्रकारसे सिद्ध किये हुए तेलसे कानके रोगकी पीड़ा दूर होती है और शिरके रोग हरनेमें अति श्रेष्ठ है ॥ ८ ॥ नागर पानका रस, वायविडंग, सेंधानमक, हींग, गुड़ इनको जलमें पीस नस्य देनेसे भ्रुकुटी, कनपटी इनकी पीड़ा, क्रिमियोंसे उपजी शिरकी पीडा, इनका नाश होता है ॥ ९ ॥ इति वेरीनिवासि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां भ्रदोषचिकित्सानाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ४२.

अथ नासारोग लक्षण ।

आत्रेय उवाच ॥ नासारोगो भवद्धीमन् क्रिमिजो दोषजः पुनः ॥ रक्तजश्च भिषक्छ्रेष्ठ लक्षणञ्च शृणुष्व मे ॥१॥ वाताच्छिरोऽर्तिः

शोफश्च सदोषे वातपैत्तिकम्॥कफजे सघनं शीतं क्रिमिजेऽसृगुपवाहनम् ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं--हे बुद्धिमान् वैद्य ! नासिकाका रोग क्रिमिज और दोषज तथा रक्तज होता है उनके लक्षणोंको सुनो ॥ १ ॥ वातसे उपजेमें शिरमें पीड़ा होती है और वातपित्तसे उपजेमें शोजा होता है, कफके नासा रोगमें कड़ाई और ठंढकपना होती है, क्रिमिसे उपजे नासारोगमें रुधिर बहता है ॥ २ ॥

अथ नासारोगचिकित्सा।

नासापाके गुडशुण्ठया वातिके नस्यमेव च ॥शर्कराघृतयष्ट्या च पैत्तिके नस्यमेव च॥ ३॥श्लैष्मिके सुरसावासारसेन विहितश्च तत्॥विडङ्गहिङ्गुमगधाः क्रिमिदोषे हिता मताः ॥ ४ ॥ रक्तजेऽसृग्विरेकश्च शिरोरोगस्योपक्रमे ॥ ५ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने नासारोगचिकित्सानाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

वातके नासापाक रोगमें गुड, सूंठ इनकी नस्य देवे, पित्तके रोगमें खांड़, घृत, मुलहटी, इनकी नस्य देनी श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ कफके नासारोगमें तुलसी, वांसा, इनके रसकी नस्य देनी श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ क्रिमिदोषके रोगमें वायविंडग, हींग पीपली, इनकी नस्य देनी श्रेष्ठ है, रक्तसे उपजे नासारोगमें रुधिरकी फस्त खुलावे, शिरोरोगके अनुसार कर्म करे ॥ ५ ॥ इति वेरीनिवा० हारीतसंहिताभाषाटीकायां नासारोगचिकित्सानाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ४३.

अथ इन्द्रलुप्तरोगका लक्षण।

आत्रेय उवाच ॥ केशघ्नस्य चिकित्सां तु शृणु हारीत साम्प्रतम् ॥ रूक्षं सपाण्डुरं वातात्पित्ताद्रक्तं सदाहकम् ॥१ ॥ कफान्वितं भवेत् स्निग्धं रक्तात् पाकं व्रजन्ति तत्॥सन्निपातेन सदृशं जायते सर्वलक्षणम् ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे हारीत ! अब इंद्रलुप्त अर्थात् बालोंका नाश होता है उसकी चिकित्सा कहते हैं, वातदोषसे रूखा और पांडुवर्ण होजाता है पित्तसे रक्तवर्ण और दाह होती है ॥ १ ॥ कफसे चिकना वर्ण होता है और रक्तदोषसे स्थान पकजाता है सन्निपातके इंद्रलुप्तमें सब लक्षण मिलते हैं ॥ २ ॥

इंद्रलुप्तरोगकी चिकित्सा ।

गुडेन सुरसाशुण्ठीमातुलुङ्गरसेन तु ॥ केशघ्ने वातसम्भूते धावनञ्च प्रशस्यते ॥३॥ त्रिफलावचारोहीतं गुडेनापि प्रपेषितम्॥ धावनं कफसम्भूते चैन्द्रलुप्ते प्रशस्यते ॥ ४ ॥ पैत्तिके च हितं दुग्धं नवनीतान्वितं तथा॥शिताशिवाफलं यष्टी पैत्तिके धावनं मतम् ॥५॥ भृङ्गराजरसं ग्राह्यं शृंगवेररसं तथा ॥ सौवीरकरसेनापि तिलान् पिष्ट्वा प्रलेपनम् ॥ पश्चात्कार्य्यं पुरुषेण स्नानमुष्णेन वारिणा ॥६॥ धवार्जुनकदम्बस्य शिरीषमपि रोहितम् ॥ क्वाथमेषां शिरोदद्रूं शमयेदिन्द्रलुप्तकम् ॥ ७ ॥ कुरबकस्य पुष्पेण जपायाःकुसुमेन च॥घृष्टस्य चेन्द्रलुप्तस्य कृतमेव निवारणम् ॥८॥ पैत्तिकानि च लिङ्गानि दृष्ट्वा दुग्धेन धावनम् ॥ शीतलानि प्रदेयानि पैत्तिकेन विधीयते ॥९॥ धत्तूरपत्राणि च मागधीनां निशाविशालागृहधूमकुष्ठम् ॥ घृतेन युक्तञ्च जलेन पिष्टं शिरःप्रलेपे क्षतवारणं स्यात् ॥१०॥पित्तैःकृते दोषयुते च रोगे पटोलपत्रं पिचुमन्दकं वा ॥ तथामलक्याः फलमेव पिष्ट्वा घृतेन खण्डेन प्रलेपनञ्च ॥ ११ ॥ निवार्य्यते मस्तकजं क्षतञ्च शिरोऽर्त्तिसंघान्विनिहन्ति चैतत् ॥ गजेन्द्रदन्तस्य मषीं गृहीत्वा प्रलेपनं वा नवनीतकेन ॥ १२ ॥ तिलार्कभल्लातकदुग्धमाषक्षारस्य लेपो नवनीतकेन ॥ सर्पस्य क्षारस्य तथा प्रयोगः खल्लाटके केशचयं करोति ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने इन्द्रलुप्तचिकित्सा नाम त्रिचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४३ ॥

वातसे उपजे इन्द्रलुप्त रोगमें गुड, तुलसी, सूंठ, विजौराका रस, इनका लेप करना चाहिये ॥ ३ ॥ त्रिफला, वच, बहेडा, गुड, इनको पीस कफसे उपजे इंद्रलुप्तको धोवना श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ पित्तके इंद्रलुप्तमें दूध, नौंनीघृत, मिसरी, आंवला, मुलहटीको पीस धोना श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥ भंगराका रस, अदरखका रस, कांजीका रस, इन्होंमें तिलोंको पीस लेप कर पीछे गरम जलसे स्नान करे ॥ ६ ॥ धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब, शिरस, बहेडा, इनका क्वाथ बना धोनेसे शिरके दाद, इन्द्रलुप्त इनकी शांति होती है ॥ ७ ॥ रक्तकोरंटा, जासवंद, इनके पुष्पोंको घिस लेप करनेसे इन्द्रलुप्तका नाश होता है॥८॥ पित्तसे उपजे इंद्रलुप्तमें दूधसे धोवना श्रेष्ठ है और शीतल वस्तु देवे पित्तको करनेवाले इलाज नहीं करे ॥ ९ ॥ धतूराके पत्ते, पीपल, हलदी, इंद्रायण, वरका धूवां, कूठ इनको जलमें पीस घृतमें मिला शिरपे लेप करनेसे इन्द्रलुप्तका नाश होता है ॥ १० ॥ पित्त दोषसे उपजे इंद्रलुप्त रोगमें परवलके पत्ते, नींब, आँवलाका फल, इनको पीस घृत और खांड मिला लेप करनेसे ॥ ११ ॥ मस्तकपै उपजा केशनाशरोग दूर होता है और यह लेप शिरकी पीडाओंके समूहोंका नाश करता है और हस्ती दांतको फूंकि उसकी स्याहीको नौंनीघृतमें मिला लेप करनेसे ॥ १२ ॥ अथवा तिल, आक, भिलावा, उड़द इनको दग्ध करि इनके खारको नौनीघृतमें मिला लेप करनेसे तथा विधिसे निकासा हुआ सर्पके खारका लेप करनेसे गंजे शिरपे केशोंके समूह वढ जाते हैं ॥ १३ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्त० हारीतसंहिताभाषाटीकायां इन्द्रलुप्तचिकित्सानाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४४.

अथ कर्णरोगलक्षण ।

आत्रेय उवाच ॥ शोषेण वा तोयभृतेन वापि मलेन वा चाति भवेद्रुजा च ॥ उच्छ्वासरोधाद्भवते तथापि वातादिकैर्वा कुपितैस्थापि ॥ १ ॥ संसर्गदोषैरपि सर्वदोषैः क्रिमिव्रणेनापि तथैव चान्या ॥ संजायते कर्णरुजा नरस्य शृणोति तेनापि बहुस्वनांश्च ॥२॥ निःस्वानमेघध्वनिदन्तशब्दान् शूलं सदाहं च शिरोव्यथा च ॥ वेणुस्वनं वत्स शृणोति सर्वं पित्तेन तं विद्धि भिषग्वरिष्ठ ॥ ३ ॥ तथा च मूर्च्छां प्रतनोति शब्दं मेघस्वनं वा कफजे शृणोति ॥ ४ ॥ क्रिमिदोषे स्रवेत्पूयं सरक्तं वाति

सत्तम ॥ तथाचैवाभिघातेन जायते तीव्रवेदना ॥ ५ ॥ क्षतेन पूयं स्रवते बाल्याद्भवति चापरः ॥ तच्चापि क्षतिदोषेण जायते कर्णजा रुजा ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं--कानमें शोर हो, जल शेष रहजावे और मैल हो उससे अति पीडा होनेसे ऊंचे श्वासके रोकनेसे तथा वातादिक दोषोंके कुपित होनेसे संसर्गदोषोंसे, सन्निपातसे अथवा क्रिमियोंसे उपजे व्रण होनेसे मनुष्यके कानमें अत्यंत पीडा हो जाती है उससे बहुतसे शब्दोंको सुनता है ॥ २ ॥ शब्दोंको मेघके गर्जनके समान और दांतोंके चावनेके शब्दके समान सुनै शूल हो दाह हो शिरमें पीडा हो वह सब कुछ बीनके शब्दके समान सुनता है हे उत्तम वैद्य! उसरोगको पित्तसे उपजा जानो ॥ ३ ॥ शब्द सुननेसे मूर्छासीहो और मेघके गर्जनेसरीखा शब्द सुनै ये कफसे उपजे कर्णरोगके लक्षण हैं ॥ ४ ॥ क्रिमिदोषसे उपजे कर्णरोगमें रक्त सहित पीव गिरे और चोटसे उपजेमें तीव्र पीडा होती है ॥ ५ ॥ क्षतसे उपजेमें पीव गिरे और बालअवस्थामें क्षतिरोगसे उपजे कर्णरोगमें पीडा उत्पन्न होती है ॥ ६ ॥

अथ कर्णरोगकी चिकित्सा ।

न कर्णरोगे जलपूरणञ्च न चूर्णमेतत्कथितं विधिज्ञैः ॥ तैलं हितं स्वेदनमेव कर्णे सबाष्पबिन्दुश्च हितो मतश्च ॥ ७ ॥ सैन्धवं सहुग्रफेनञ्च सूक्ष्मचूर्णं च कारयेत् ॥ सौवीरकरसेनापि वातिके कर्णपूरणम् ॥ ८ ॥ आर्द्रसौवीररसं शुण्ठीसैन्धवगुग्गुलम् ॥ माषकुलमापरसेन तैलं पक्वातिचोष्णकम् ॥ ९ ॥ कटुतुम्बेन-धार्येत कर्णरोगे प्रशस्यते ॥ १० ॥ यष्टीमधूकुष्ठयरिष्टपत्रं निशा विशालासुमनःप्रवालाः ॥ विपाचितं कर्णभवे च शूले सपैत्तिके वा घृतमेव शस्तम् ॥ ११ ॥ ब्राह्मीरसं सैन्धवकं विडङ्गसभृङ्गराजस्य घृतेन युक्तम् ॥ तथैव सौवीररसञ्च पथ्या सुतं च वस्त्रं परिपूर्ण-मेतत् ॥ १२ ॥ हितं भवेत्तच्छुतिपूरणाय पूयं सरक्तं क्रिमिजं निहन्ति ॥ १३ ॥ सर्वे प्रोक्ताः शिरोरोगास्तैलानि च घृतानि च ॥ जात्यादिकान्वा युञ्जीत शिरोरोगविदांवरः ॥ १४ ॥ वात-

---

१ 'सौवीरं काञ्जिके स्रोतोऽञ्जने च बदरीफले' इति मेदिनी ।

हारीणि पथ्यानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ १५ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने कर्णरोगचिकित्सानाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

कानके रोगमें जल पूरना और चूर्ण पूरना हित नहीं कहा है। कानरोगमें तैल पूरना और पसीना दिवाना हित है और भाफ दिवानेका कर्म हित कहा है ॥ ७ ॥ सैंधानमक, समुद्रफेन, इनका बारीक चूर्ण बना कांजीके रसमें मिला वातसे उपजे कानके रोगमें हित है ॥ ८ ॥ ओदेवेरोंका रस, सोंठ, सैन्धानमक, गूगल, उड़दोंके वाकले इनमें तेलको पका गरम गरम ॥ ९ ॥ उस तेलके पुरानेसे कानका रोग दूर होता है इस तेलको कडुई तुंबीमें वालके धरे ॥ १० ॥ मुलहटी, कूठ, नींबके पत्ते, हलदी, इन्द्रायणके पुष्प तथा कोमल २ पत्ते, इनमें घृतको पका पित्तसे उपजे कर्णशूलमें पूरण करना श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥ ब्राह्मीका रस सेंधानमक, वायविडंग, भंगरेका रस, घृत, कांजीका रस, हरडै, इनको पका पीछे वस्त्रमें छान कानमें पूरनेसे ॥ १२ ॥ क्रिमियोंसे उपजी कानमें रक्तसहित पीवका नाश होता है और कानमें पूरन करनेमें यह हित कहा है ॥ १३ ॥ जितने शिरके रोग कहे हैं उनमें तैल और घृतमें सिद्ध किये हुए औषधोंको वरते ॥ १४ ॥ वातको हरनेवाले विदाही तथा भारी ऐसे भोजन पथ्य कहे हैं ॥ १५ ॥

इति वेरीनिवासिबुधाशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने कर्णरोगचिकित्सानाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ४५.



अथ नेत्ररोगकी चिकित्सा।

आत्रेय उवाच॥ उष्णातिक्षारकटुकैरभिघातेन वा पुनः॥ सूक्ष्मवस्त्रेक्षणेनापि दोषाःकुप्यन्ति नेत्रजाः॥१॥ सहजा य पराजेया वक्ष्यामि शृणु लक्षणम्॥ रूक्षःकण्डुश्च तोदश्च शुष्कशीतास्रसन्ततिः ॥ २ ॥ वातिकं तं विजानीयात्पैत्तिकं शृण्वतःपरम् ॥ ॥३॥ सरक्ते सदाहे नेत्र उष्णस्रावश्च पैत्तिके॥ शोफकण्डू सन्निपाते शीतजाड्ये कफात्मके ॥४॥ द्वन्द्वजो मिश्रलिङ्गैश्च सर्वैस्तैः सान्निपातिके॥ एतद्धि लक्षणं ज्ञात्वा चोपचारं शृणुष्व मे ॥५॥

आत्रेयजी कहते हैं—गरम, अतिखारा, चर्चरा ऐसे भोजनोंसे तथा अभिघातसे और सूक्ष्म वस्तु देखनेसे नेत्रमें रहनेवाले दोष कुपित हो जाते हैं ॥ १ ॥ जो स्वभावसे ही उत्पन्न होते हैं वे कष्टसाध्य होते हैं। अब उनके लक्षणोंको सुनो। नेत्र रूखा हो, खाज हो, पीडा हो, शुष्क हो और शीतल रुधिर झिरे ॥ २ ॥ वह वातका नेत्ररोग जानना। अब पित्तके लक्षणोंको सुन ॥ ३ ॥ पित्तसे उपजे नेत्ररोगमें गरम २ जल गिरे और लाल तथा दाह सहित नेत्र हों, कफके नेत्ररोगमें शीतल और जडता हो, सन्निपातके नेत्ररोगमें शोजा और खाज होती है॥४॥दो दोषोंसे उपजे नेत्ररोगमें मिले हुए लक्षण होते हैं और सन्निपातके नेत्ररोगमें सब लक्षण मिलते हैं, ऐसे विलक्षण रोगको जानके उसकी चिकित्साको मुझसे सुनो ॥ ५ ॥

अथ नेत्ररोगकी चिकित्सा।

शुण्ठीसुराह्वसुरसाः सह काञ्जिकेन चोष्णेन धावनमिदं सह पैत्तिके च॥श्लेष्मोद्भवे त्रिफलकल्कमिदं समूत्रं शस्तं जनैश्च कथितं न विचिन्तनीयम् ॥ ६ ॥ शुण्ठी शटी च रजनी त्रिफला सनिम्बा पत्राणि सैन्धवयुतानि तुषाम्लकेन ॥ शस्तं वदन्ति नयनेषु ससन्निपाते रक्तोद्भवे च सरुजे च तथा च शस्तम् ॥७॥ फलत्रिकं चारुनिशासु धूसो वचासु वर्षाभवसैन्धवेन ॥ प्रलेपनं श्लेष्मभवे विकारे सवातिके वा हितमेव शस्तम् ॥ ८ ॥ शुण्ठीसैन्धवतक्रेण ताम्रभाण्डे विघर्षितम् ॥ अपामार्गस्य मूलं वा मूलं धत्तूरकस्य वा ॥ ९ ॥ अञ्जनञ्च हितं तेषां वातनेत्रामयापहम् ॥ १० ॥ दुग्धोत्पन्नं नवनीतं यष्टी निम्बस्तिलाश्च संयोज्याः ॥ त्रिफला गुडसंयुक्ता लेपनं कफनेत्रजरोगघ्नम् ॥ ११ ॥ शुण्ठी सैन्धवतुत्थं मागधिका,ताम्रभाजने घृष्टम् ॥ दध्ना घृतेनाञ्जनकं निहन्ति सर्वांश्च नेत्ररोगान्वै ॥ १२ ॥ वातपित्तकफदोषसम्भवान्नेत्रयोर्बहुव्यथाविनाशकः ॥ एक एव हरति प्रयोजितः शिग्रुपल्लवरसः समाक्षिकः ॥ १३ ॥

सोंठ, देवदार, तुलसी इनको कांजीमें क्वाथ बना गरम २ से पित्तके उपजे नेत्ररोगमें नेत्रोंका धोवना श्रेष्ठ है और कफसे उपजे नेत्ररोगमें त्रिफलाके कल्कको गोमूत्रमें पका धोवना श्रेष्ठ है ऐसे अन्य वैद्योंने भी कहा है ॥ ६ ॥ सोंठ, कचूर, हलदी, त्रिफला, नींबके पत्ते, सेंधानमक, इनको जवोंकी कांजीमें सिद्ध कर सन्निपातसे उपजे नेत्ररोग तथा रक्तसे उपजे हुए पीडासहित

रोगमें खोवना श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥ त्रिफला, दारुहलदी, घरका धूंवा, वच, सांठी, सेंधानमक इनका लेप करनेसे कफसे उपजा अथवा वातसे उपजा नेत्ररोग दूर होता है ॥ ८ ॥ सोंठ, सेंधानमक इनको तांबेके पात्रमें तक्रके संग घिस अंजन घाले अथवा ऊंगाकी जड तथा धतूरेकी जडको घिस ॥ ९ ॥ अंजन घालनेसे सब प्रकारके नेत्ररोगोंका नाश होता है ॥ १० ॥ दूधसे उत्पन्न हुआ नौंनीघृत,मुलहटी, नींब, तिल, त्रिफला, गुड, इन सबोंको मिला पीसि लेप करनेसे कफसे उपजा नेत्ररोग नाश होता है ॥ ११ ॥ सोंठ, सेंधानमक, नीलाथोता, पीपली इनको तांबाके पात्रमें घिस, दही और घृतके संग नेत्रमें आंजनेसे नेत्रके सब रोगोंका नाश होता है ॥ १२ ॥ वात, पित्त,कफ इन दोषोंसे उपजे हुए नेत्ररोगकी बहुतसी पीडाका नाश शीघ्रही होता है और एक सहिंजनेके पत्तोंके रसमें ही शहद मिला नेत्रोंमें आंजनेसे सब नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ १३ ॥

अथ नेत्रके फूलेकी चिकित्सा।

मिथ्याहारविहारैस्तु नेत्रे पुष्पञ्च जायते ॥ प्रथमं सुखसाध्यं स्याद्द्वितीयं कष्टसाध्यकम् ॥ १४ ॥ तृतीयं शस्त्रसाध्यं तु चतुर्थं तदसाध्यकम् ॥ १५ ॥ शङ्खपुष्पं तथा रोध्रं शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥ काञ्जिकेन तु संपिष्य छायाशुष्का भिषग्वर ॥ १६ ॥ वातिके काञ्जिकेनापि पैत्तिके पयसा हिता ॥ श्लेष्मले मूत्रसंयुक्ता पुष्पस्याञ्जनके हिता ॥ १७ ॥ भृङ्गराजरसेनापि त्रिदोषशमने हिता ॥ हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च ॥ १८ ॥ बिभीतकस्य मज्जा वा शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥ एतानि समभागानि अजाक्षीरेण पेषयेत् ॥ १९ ॥ नाशयेत्तिमिरं कण्डूपाटलान्यर्बुदानि च ॥ हन्ति पुष्पं सपटलं रात्र्यन्ध्यञ्च नियच्छति ॥ २० ॥ क्षताभिघाति शोकेन अग्निदग्धं च वा पुनः ॥ काचञ्च नीलिका चैव सिद्धिमिच्छन्ति नेत्रयोः ॥ २१ ॥

अपथ्य आहारविहार करनेसे नेत्रमें फूला होजाता है। एक तो सुखसाध्य होता है और दूसरा कष्टसाध्य होता है ॥ १४ ॥ और तीसरा शस्त्रसाध्य होता है, चौथा असाध्य होता है ॥ १५ ॥ हे उत्तमवैद्य ! शंखपुष्पी, लोध, शंखकी नाभि इनको कांजीमें पीस छायामें सुखा ॥ १६ ॥ उस अंजनको वातके फुलेमें कांजीके संग और पित्तमें दूधके संग कफकेमें गोमूत्रमें घिस नेत्रमें घालना हित है ॥ १७ ॥ त्रिदोषसे उपजे फूलेमें भंगरेके रसके संग घालै और हरडै, वच, कूठ, पीपल, मिर्च ॥ १८ ॥ बहेडेकी मज्जा, शंखकी नाभि,

मनशिल, इनको समान भाग ले बकरीके दूधमें पीस ॥ १९ ॥ अंजन घालनेसे तिमिररोग, नेत्रकी खाज, नेत्रके पटलदोष, अर्बुद रोग, नेत्रका फूला, पटलमें प्राप्त हुआ फूला, रतौंधा, इनका नाश होता है ॥ २० ॥ चोटआदिके अभिघातसे, शोकसे, तथा अग्निसे दग्ध हुआ काचपटल और नीलिका इन नेत्ररोगोंकी भी सिद्धि होजाती है ॥ २१ ॥

अथ नेत्रपटलका लक्षण ।

बाल्याद्दोषबलाद्वेव दुष्टाहारादिसेवणात् ॥ वार्द्धक्याच्च पटलं स्यात्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २२ ॥ वातात्सकश्मलं रूक्षं पित्तान्नीलं च पीतकम् ॥ कफेन शुभ्रं सघनं रक्तेनारक्तकं विदुः ॥२३॥ सन्निपातादिलिङ्गश्च अतो वक्ष्यामि भेषजम् ॥२४ ॥

बालक अवस्थासे दोषके बलसे और दूषित भोजन खानेसे वृद्ध अवस्थामें नेत्रमें पटल होजाता है तिनके लक्षणको कहते हैं ॥ २२ ॥ वातसे उपजा मैला हो और पित्तसे नीलावर्णवाला हो अथवा पीला हो और कफसे करडा हो, सफेद हो और रक्तके दोषसे लाल पटल होजाता है ॥ २३ ॥ और सन्निपातसे उपजे हुएमें मिले हुए लक्षण होते हैं अब इन्होंकी औषधको कहते हैं ॥ २४ ॥

अथ नेत्रपटलचिकित्सा ।

शुण्ठीवचारजनितुत्थमनःशिला चशोभाञ्जनाञ्जनविशालजटा च शंखम् ॥ वास्तूकमूलमधुसैन्धवकट्फलानां सौवीरकेण परिमर्दनवर्तिरेषा ॥२५॥ छायाविशुष्कनयनाञ्जनके प्रशस्तं नाशं नयेत्पटलनेत्रजरोगसङ्घात् ॥२६॥साञ्जना कट्फला चैव हरीतकि मनःशिला॥गुडेन कट्फलश्चापि निहन्ति नेत्रप्रच्छदम् ॥ २७ ॥ महाविभीतकफलस्य च शङ्खनाभि वृष्टं ससैन्धवयुतं पयसाम्लकेन॥वर्तिर्गुडेन नयनाञ्जनके हिता च पित्तप्रसूतपटलस्य निवारणञ्च ॥ २८ ॥

सोंठ, वच, हलदी, नीलाथोथा, मनसिल, सहिंजना, काला सुरमा, इंद्रायण, जटामांसी, शंख, बथुवाकी जड, शहद, सेंधानमक, कायफल इनको कांजीमें खरल करि बत्ती बना ॥ २५ ॥ छायामें सुखा नेत्रोंमें आंजनी श्रेष्ठ कही है. पटलरोग, अन्य नेत्र रोगोंका समूह इनको नाश करती है ॥ २६ ॥ और काला सुरमा, कायफल, हरडै, मनसिल इनको

पीस आंजनेसे अथवा गुडके संग कायफलको पीस नेत्ररोगोंका नाश होता है ॥ २७ ॥ बडा बहेड़ा, शंखकी नाभी, सेंधामक इनको दूधमें तथा कांजीमें पिस पीछे गुड़ मिला बत्ती बना नेत्रमें आंजनेसे नेत्रके पटल रोगका नाशहोता है ॥ २८ ॥

नेत्ररोगमें वर्ज्य।

सधूमञ्च सवातञ्च रूक्षमुष्णादिकं तथा ॥ कट्वम्लं व्यवायञ्च वर्जयेन्नेत्ररोगिणाम् ॥ २९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने नेत्ररोगचिकित्सानाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः४५

नेत्ररोगवालेको धुवांसहित वायु रूखा और गर्म भोजन कडुआ तथा खट्टा भोजन और मैथुन करना ये वर्ज देने चाहिये ॥ २९ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने नेत्ररोगचिकित्सानाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४६.



अथ मुखरोगकी चिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ ओष्ठौ च स्फुटितौ यस्य वातिवाहेन वातिकात् ॥ तस्य सर्पिर्भक्षणञ्च ओष्ठदारणवारणे ॥१॥ सदाहञ्च भवेत्सौख्यं पैत्तिकं तं विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं--जिससे ओष्ठ फटे रहे वायु बहै वह वातसे उपजा मुखरोग जानना वहां मुख फटे हुएको निवारणकेवास्ते घृतकी मालिस करे ॥ १ ॥ दाहहो कभी शीतता उठे तहां पित्तसे उपजा रोग जानना ॥ २ ॥

ओष्ठरोगकी चिकित्सा।

मधुना नवनीतेन ओष्ठयोर्म्रक्षणं मतम् ॥ लेपनं चोष्ठरोगेषु शर्करासहितं दधि॥३॥ सरक्तमोष्ठरोगञ्च दृष्ट्वा रक्तावसेचनम्॥ धवार्जुनकदम्बानां प्रलेपः स्यात्सुखावहः ॥ ४ ॥

यहां नैनीघृत शहद इनकी मालिस करना श्रेष्ठ है और इन पित्तके ओष्ठरोगोंमें खांड, दही, इनकी मालिस करना श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ रक्तसहित ओष्ठरोग जानके रक्त निकलाना श्रेष्ठ है और धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब इनका लेप करना श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

अथ दंतरोगलक्षण ।

कृष्णा दन्तावलिर्यस्य दन्तमूलं च वातिकात् ॥ चलनं वा प्रदृश्येत वातिकश्च विनिर्दिशेत् ॥ ५ ॥ पैत्तिकात्पित्तवाहश्च दंतमांसं विनिर्दिशेत् ॥ श्लैष्मिके दन्तपाके च शोफः स्याच्छ्वेतता भृशम् ॥ ६॥ रक्तजे जायते कण्डू रक्तस्रावश्च दृश्यते ॥ शूयते दन्तमांसश्च सरक्ते दंतपुटे तथा ॥७ ॥ सच्छिद्रं दन्तमूलञ्च सबलं शूलमेव च ॥ दन्तमांसं विशीर्य्येत क्रिमिजा दन्तरुग्भवेत् ॥ ८ ॥

जिसके दांत और दांतोंकी जड काली होजावे और दांत हिलने लगजावें वह वातसे उपजा रोग जानना ॥ ५ ॥ पित्तसे उपजेमें पित्त वहै, दातोंमें मांस बढ जावे और कफसे उपजे दंतपाकरोगमें शोजा हो और बहुतसे सफेद होजावे ॥ ६ ॥ रक्तसे उपजेमें खाजहो रक्तस्रावहो और दांतोंके मांससे शोजाहो और दांतोंके पुट रक्त हो ॥ ७ ॥ दांतोंकी मूल छिद्रसहित दीखै और अत्यंत शूल हो और दांतोंका मांस विखर जावे वह क्रिमिज दंतरोग जानना ॥ ८ ॥

अथ दंतरोगचिकित्सा ।

वचायवानीसहचित्रकेण सिन्धूत्थविश्वासहसिन्धुवारम् ॥कल्कं तथोष्णश्च सदन्तरोगे मुखे च गण्डूषशतानि पञ्च ॥९॥ सर्वेषु मुखरोगेषु हितमेतत्प्रशस्यते ॥ वचासैन्धवशुण्ठ्या च घर्षणं दन्तमूलके॥१०॥यवानीं च वचां रात्रौ दन्तमूले च धारयेत्॥ पित्तजदन्तरोगेषु नवनीतं सशर्करम् ॥११॥धात्रीफलेन संघृष्टं दन्तरोगनिवारणम्॥ श्लैष्मिकदन्तरोगेषु हरीतक्या गुडेन वा ॥१२॥ घर्षणं च प्रशस्तं च त्रिफलाक्वाथसंयुतम् ॥ अहिमारकमूलस्य क्वाथो गण्डूषधारणात् ॥ १३॥ खदिरस्य तथा क्वाथो यवानीक्वाथ एव च॥क्वाथश्च निम्बमूलस्य दन्तरोगनिवारणः ॥ १४ ॥ रक्तजे च विकारे च घर्षो लवणसर्षपैः ॥ रक्तश्च स्रावयेत्तस्य इष्टमोष्ठपुटे च तत् ॥ १५ ॥ विडङ्गं हिङ्गु

सिन्धुश्च वचाचूर्णेन घर्षयेत् ॥ क्रिमिजदन्तरोगेषु हितमेतत्प्रशस्यते ॥ १६ ॥

वच, अजमान, चीता, सेंधानमक, सूंठ, संभालू, इनका कल्क बना गरम २ दंत रोगमें लेपित करे और मुखमें पांचसौ कुल्ले करे ॥ ९ ॥ सब मुखरोगोंमें यही विधि करनी श्रेष्ठ है और वच, सेंधानमक, सूंठ, इनको दांतोंकी जडमें घिसे ॥ १० ॥ अजमान, वचको रात्रीमें दांतोंकी जड़में धारण करे और पित्तसे उपजे दंतरोगोंमें नौनीघृत खांड इनको लगावे ॥ ११ ॥ आंवलाके फलको घिसके लगानेसे दंतरोगोंका निवारण होता है और कफसे उपजे दंतरोगमें हड़ैं, गुड इनको घिस ॥ १२ ॥ त्रिफलाके क्काथमें मिला दांतोंके लगानेसे दंतरोग दूर होता है और रियांकी जड़का क्काथ बना कुल्ले करे ॥ १३ ॥ तथा खैरका क्काथ, अजमानका क्वाथ, नींबकी जड़का क्वाथ इनसे दंतरोगका निवारण होता है ॥ १४ ॥ रक्तसे उपजे दंतरोगमें नमक, सेंधानमकसे दांतोंको घिसै और ओष्टपुटमांससे रक्तको गिरवावे ॥ १५ ॥ वायविड़ंग, हिंग, सेंधानमक, वच, इनके चूर्णको दांतोंमें घिसे और क्रिमिज दंतरोगमें भी यही विधि करनी हित है ॥ १६ ॥

अथ जिह्वारोग लक्षण ।

जिह्वायां पिटिका यस्य जिह्वापाकं विनिर्दिशेत् ॥ वातिके सरुजा कृष्णा पित्तेन दाहसंयुता ॥ १७ ॥ श्लेष्मणा सघना श्वेता सर्वे वै सान्निपातिके ॥ १८ ॥

जिसकी जिह्वापै पिड़िका हों वह जिह्वापाक जानना । वातसे उपजी पिड़िका पीडासहित होती है और काली होती है पित्तसे दाह करके युक्त हों ॥ १७ ॥ कफसे कड़ी हो सफेद वर्णवाली हो और सन्निपातसे उपजी पिड़िकाओंमें सब लक्षण मिलते हैं ॥ १८ ॥

अथ जिह्वारोगचिकित्सा ।

वचाभयाविडङ्गानि शुण्ठी सौवर्चलं कणा ॥ घृतेन युक्तं जिह्वायां घर्षणं वातिके गदे ॥ १९ ॥ काञ्जिकेन तु तक्रेण सोष्णगण्डूषधारणम् ॥ यष्टीकं चन्दनं मुस्ता मागधी मधुसंयुतम् ॥ २० ॥ लेपनं पैत्तिके दोषे जिह्वास्फोटकवारणम् ॥ दुग्धेन च शीतेनापि हन्ति गण्डूषधारणम् ॥ २१ ॥ दन्तरोगे तथा जिह्वापाके तच्च हितं विदुः ॥ रोध्रार्जुनकदम्बानां क्काथश्चोष्णः सुखावहः ॥

॥२२॥ श्लेष्मोद्भवे मुखपाके हितं गण्डूषधारणम् ॥ रक्तजेषु विकारेषु रक्तस्रावं च कारयेत् ॥२३॥ कण्टकेनापि जिह्वायाश्चीरयित्वा च लेपनम् ॥ मूर्वामुस्ताभयाशुण्ठीमागधीरजनीद्वयम् ॥२४॥ गुडेन मधुना युक्तं लेपनं रक्तजिह्वके ॥ मरिचञ्च वचा कुष्ठं हरीतक्याश्च चूर्णितम् ॥ घर्षणं श्लेष्मजे जाते जिह्वापाके हितं विदुः ॥ २५ ॥

वच, हरडै, वायविडंग, सोंठ,कालानमक, पीपली इनको घृतमें युक्त कर जिह्वापै घिसलेसे वातसे उपजा जिह्वारोग दूर होता है ॥ १९ ॥ कांजी, तक्रको गरम २ कर कुल्ले करे और मुलहटी, चन्दन, नागरमोथा, पीपलीको पीस शहदमें मिला ॥ २० ॥ लेप करनेसे पित्तदोषसे उपजा जिह्वास्फोटक रोग दूर होता है और ठंढे २ दूधके कुल्ले धारण करना ॥ २१ ॥ दंतरोग, जिह्वापाकमें हित है और लोध, अर्जुनवृक्ष, कदंबका क्वाथ सुखसे सुहाता हुआ गरम २ मुखमें धारण करना ॥ २२ ॥ कफसे उपजे मुखपाक रोगमें हित है और रक्तसे उपजे विकारोंमें रक्त निकलाना श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥ कांटेसे जिह्वाको चीरके वहां मूर, नागरमोथा, हरडै, सूंठ, पीपली, दोनों हलदी ॥ २४ ॥ गुड, शहद, इनको मिला रक्तसे उपजे जिह्वारोगपै लेप करे और मिरच, वच, कूठका चूर्ण बना कफसे उपजे जिह्वारोगमें मसलना हित है ॥ २५ ॥

अथ गलगडूरोगके लक्षण ।

तिलपिच्छिलगौल्यादिसेवनातिद्रवादपि ॥ नवोदकेन कफजो जायते घण्टिकागदः ॥ २६ ॥ जिह्वामूले कण्ठसन्धौ श्लेष्मरक्तसमुद्भवः ॥ तेनास्यशोषो जडता ज्वरो मन्दश्च जायते ॥२७॥ शिरोव्यथारुचिस्तन्द्रा तथास्य जडता भवेत् ॥

तिल और झागोंवाला तथा गुली बंधनेवाला और पतला ऐसे भोजनके सेवनेसे और नवीन जलसे कफसे उपजा हुआ घण्टिका संज्ञक रोग हो जाता है ॥ २६ ॥ जिह्वाकी मूलमें कंठकी सन्धिमें कफरक्तसे उपजा हुआ यह रोग होता है उससे मुखमें शोष हो,जडता हो,मन्दज्वर हो ॥ २७ ॥ शिरमें पीडा हो, अरुचि हो, तंद्रा हो, मुखमें जडता हो ॥

अथ गलगडू रोगकी चिकित्सा ।

तर्जन्या कण्ठमध्ये तु संपीड्य रक्तग्रन्थिका ॥ २८ ॥ परिस्रुतं तथा रक्तं तदा विम्लापनं हितम् ॥ वचाञ्च मरिचं कृष्णाचूर्णं

तत्र निधापयेत् ॥२९॥ मर्दनं स्यात्कण्ठदेशे तेन ग्रन्थिर्विलीयते ॥ धान्यनागरजीमूतवचा ह्येताः समांशकाः॥३०॥क्वाथस्वेदो घण्टिकाया मुखे गण्डूषधारणम्॥दिवारात्रौ वचाग्रन्थिं मुखे संधारयेद्भिषक् ॥ ३१॥ तेन सौख्यं भवेत्तस्य मुखरोगाद्विमुच्यते ॥ ३२ ॥

तर्जनी अंगुलीसे कंठके मध्यमें रक्तकी ग्रंथीको पीडित करे ॥ २८ ॥ जब रक्त निकल जावे तब विम्लापन कर्म करना हित हैं । वहां वच, मिर्च, पीपल इनके चूर्णको बुरकावे ॥ २९ ॥ कंठके मध्यमें मर्दन करे इससे वह ग्रंथि शांत हो जाती है और धनियां, सूंठ, नागरमोथा, वच इन औषधोंको समान भाग ले ॥ ३० ॥ काथ बना पसीना दिवावे और गडुरोगवाले पुरुषके मुखमें इस काथके कुल्ले करवावे ॥ ३१ ॥ दिनराति मुखमें वचको धारण करावे ऐसे करवानेसे रोगीको सुख उत्पन्न होता है और मुखरोगसे छुट जाता है ॥ ३२ ॥

अथ गलशुंडिका रोगके लक्षण ।

गले घण्टिकामार्गे च रक्तश्लेष्मविकारजा॥लम्बिका वर्धते नृणां विज्ञेया गलशुण्डिका ॥३३॥ रुन्धते चास्य मार्गश्च नेत्रस्रावः प्रदृश्यते ॥ शिरोऽर्त्तिः श्वासकासश्च ज्वरेणैव प्रपच्यते ॥३४॥

मनुष्योंके गलमें घाटीके मार्गमें रक्तकफके विकारसे उपजी हुई लंबी ग्रंथि हो जाती है वह गलशुंडिका रोग कहाता है ॥ ३३ ॥ वह रोग मुखके मार्गको रोक लेता है और नेत्रोंमें स्राव होता है, शिरमें पीडा हो, श्वांस हो, खांसी हो, ज्वरकी तरह बाधा हो ऐसा यह रोग होता है ॥ ३४ ॥

अथ गलशुंडिकारोगकी चिकित्सा ।

आशुकारी महाप्राज्ञःशीघ्रं कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम्॥शस्त्रेण शुण्डिकां छित्त्वा कुर्य्याद्विम्लापनं हितम्॥३५॥मागधी मरिचं पथ्या वचाधान्ययवानिकाः ॥ क्वाथः सोष्णः स्वेदमायाद्गलशुण्डोपशान्तये ॥३६॥ दिवा रात्रौ यवान्याश्च मुखे संधारणं हितम् ॥ मर्दनं कण्ठदेशे तु तेन संपद्यते सुखम् ॥ ३७॥ सिद्धार्थकं वचा कुष्ठं रजनी पारिभद्रकम् ॥गृहधूमं सलवणं कण्ठे वा लेपनं हि-

तम् ॥ ३८ ॥ ज्वरे शोक्तानि पथ्यानि यानि तानि सहामते ॥ न गौल्यं पिच्छिलं सेव्यं तैलं नैव गलामये ॥ ३९ ॥ इति गलशुण्डिकाचिकित्सा ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीय-स्थाने मुखरोगचिकित्सानाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

शीघ्रकार्य करनेवाला महान् वैद्य इस रोगका इलाज शीघ्रही करे, शस्त्रसे गलशुंडिकाको छेदन कर विम्लापन कर्म करना हित है ॥ ३५ ॥ पीपली, मिर्च, हरडे, वच, धनियां, अजमान इनका क्वाथ बना इससे पसीना दिवानेसे गलशुंडिकारोगकी शांति होती है ॥ ३६ ॥ दिनराति अजमानको मुखमें धारण रखना हित है और कण्ठकी जगह मर्दन करना हित है इससे रोगीको सुख उत्पन्न होता है ॥ ३७ ॥ सरसों, वच, कूठ, हलदी, नींब, घरका धुआं, नमकका लेप कंठपै करना हित है ॥ ३८ ॥ और हे सहामते ! ज्वरमें कहे हुए जो पथ्य हैं उनको करे और गलरोगमें गुल्ली बंधनेवाला तथा पिच्छल भोजन और तैलको नहीं सेवे ॥ ३९ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने मुखरोगचिकित्सानाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४७.

अथ वृद्धक्षीणानां वाजीकरण ।

आत्रेय उवाच ॥ क्लैब्यं पञ्चविधं प्रोक्तं समासेन शृणुष्व मे ॥ ॥ १ ॥ निरोधातिव्यवायेन वयःश्रान्तेऽपि मानवे ॥ जायते रेतसो हानिः क्लीबत्वश्चापि जायते ॥२॥ त्रिविधं जायते क्लैब्यं मानसं रेतसः क्षयात् ॥ सहजं शुष्कसंस्वेदाज्जायते क्लीबता नरे ॥३॥ यस्य वै ममता चित्ते दृष्ट्वा स्त्रीणां विरागिताम् ॥ स्पर्शने स्वेदकं पञ्च तत्साध्यं मानसं स्मृतम् ॥४॥ यस्य विद्वेषतः स्त्रीणां व्यवायेन मनःक्षितिः ॥ ध्वजभङ्गो भवेच्छीघ्रं तत्क्लैब्यं रेतसःक्षयात् ॥ ५ ॥ समप्रकृतिर्यस्यान्यः सोऽप्यसाध्यतमः स्मृतः ॥ मनःक्षये मनोद्रेको मुग्धस्त्रीसहसङ्गमः ॥ ६ ॥

सरागविभ्रमकथालापैः संवर्द्धते मनः ॥ शुक्रक्षये शुक्रवृद्धिं कथयिष्यामि साम्प्रतम् ॥ ७ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—नपुंसकपना पांचप्रकारका होता है सो संक्षेपमात्रसे कहते हैं सुनो ॥ १ ॥ मैथुनके रोकनेसे अथवा ज्यादे मैथुन करनेसे अवस्थाकी हार होनेसे मनुष्योंके वीर्यकी हानि हो नपुंसकपना होजाता है ॥ २ ॥ मनुष्योंके तीनप्रकारका नपुंसकपना होता है मानस, वीर्यक्षय, और शुष्क पसीनासे उपजा सहज ॥ ३ ॥ ऐसे होता है जिस पुरुषके स्त्रियोंके विरागभाव देखिके मनमें ममता हो, स्पर्श करनेमें पसीना आजावे यह मानस कहाता है सो सुखसाध्य होता है ॥ ४ ॥ और जिसके द्वेषयुक्त स्त्रियोंके संग मैथुन करनेसे मनकी हानि होजाती हैं और जिसके शीघ्रही लिंगका भंग होजाय वह वीर्यक्षय होनेसे नपुंसकपना होता है उसे ध्वजभंग कहते हैं ॥ ५ ॥ और जिसकी सदा समान प्रकृति रहे अर्थात् कभी चैतन्यता हो ही नहीं वह असाध्यरोग कहाता है। मनके क्षय होनेमें मनको वढावे और सुन्दर भोली स्त्रीके संग विषय करवावे ॥ ६ ॥ और स्नेहसहित विभ्रमके वचन, स्त्रियोंकी कथाके आलाप इनसे मनको वढावे और वीर्यक्षयके नपुंसकपनेमें वीर्यवर्द्धक औषधोंको कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ शुक्रवृद्धिके उपाय ।

विदारिकागोक्षुरमूषकानां धात्रीफलं स्यात्सहसैन्धवानाम् ॥ समानि चैतानि च मागधीनां शुक्तं सिताढ्यं पयसा पिबेच्च॥८॥ विषं बृहत्यौ मगधात्रिकण्टास्तथात्मगुप्ता सशतावरी च॥सशर्करं गोपयसो घृतेन पानं नराणां प्रकरोति बीजम् ॥९॥ यवगोधूममाषाणां निस्तुषाणाञ्च चूर्णकम् ॥ दुग्धेनेक्षुरसेनापि संस्कृत्य तु घृतेन तु ॥१०॥ पाचितं वटकश्रेष्ठं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ तस्योपरि पयःपानं पिप्पलीशर्करान्वितम् ॥११॥ यवक्षारविदारीञ्च माषचूर्ण तथा यवान्॥मरिचानां सिताढ्यञ्च घृतानाञ्च प्रपोलिकाम् ॥१२॥ पाचयेद्भक्षयेत्प्रातः पयःपानं तथोपरि ॥ वीर्य्यञ्च कुरुते पुंसां वनिता रमते भृशम् ॥१३॥ गुडूची शतमूली च स्वयंगुप्ता बला तथा ॥ १४॥ शाल्मली मुसलीमूलं चूर्णं गोपयसान्वितम् ॥ पानं नराणां श्रेष्ठं तु बीजमिन्द्रियकारकम् ॥ १५ ॥

विदारीकंद, गोखरू, मूसपर्णी, आंवला, सेंधानमक, पीपली इनको समान भाग ले मिश्री मिला गौके दूधके संग पीवे ॥ ८ ॥ अतीश, दोनों कटेहली, पीपली, गोखरू, और कौंचके बीज, शतावरी, इनका चूर्ण बना खांड मिला पीछे गौके दूध घृतके संग पीनेसे मनुष्योंके वीर्यवृद्धि होती है ॥ ९ ॥ जव, गेहूँ, उड़द इनके तुष उतारि चूर्ण बना पीछे दूधमें और ईखके रससें मिला घृतमें ॥ १० ॥ पका उनको प्रातःकाल उठके खाये और उसके ऊपरि पीपली, खांड इनसे युक्त दूधको पीवे ॥ ११ ॥ जवाखार, विदारीकंद, उडदोंका चूर्ण, जव, मिर्च, इनका चूर्ण बना मिश्री मिला पीछे पोली बना घृतमें सिद्ध करलेवे इन पोलियोंको ॥ १२ ॥ प्रातःकाल भक्षण करे और ऊपरसे दूध पीवे ऐसे करनेसे पुरुषोंका वीर्य वढता है और स्त्रीके संग बहुतसा रमण करता है ॥ १३ ॥ गिलोय, शतावरी, कौंचके बीज, खरेहटी ॥ १४ ॥ सेमर, मुसलीकी जड़ इनका चूर्ण बना गौके दूधके संग पीना श्रेष्ठ है और मनुष्योंकी इंद्रियमें वीर्यको वढानेवाला है ॥ १५ ॥

अथ विदार्यादि औषध।

विदारिकन्दांशुमती बृहत्यौ काकोलिका भीरु पुनर्नवे द्वे ॥
शृङ्गाटकं मागधिका बला च चूर्णं सिताढ्यं सितया प्रयोज्यम् ॥
॥ १६ ॥ जीर्णे पयः पायसमेव योज्यं करोति पुंसां बलमेवमो-
जः ॥ स्त्रीणां सहस्रं भजतेऽपि षण्ढो मासद्वये प्रस्तुतमेव शस्तम् ॥ १७ ॥

विदारीकंद, शालवन, दोनों कटेहली, काकोली, शतावरी, दोनों प्रकारकी सांठी, सिंघाड़ा, पीपली, खरेहटी इनका चूर्ण बना मिश्री मिला ॥ १६ ॥ दूधके संग पीनेसे पुरुषोंके बल और वीर्य वढता है और हीजडा हो वह भी हजारों स्त्रियोंके संग रमणकर सकता है, दो महीनेतक इस औषधका सेवन श्रेष्ठ है ॥ १७ ॥

अथ शुक्रवृद्धिमें वर्ज्य।

वर्जयेत्कटुकं चाम्लं तीक्ष्णं चोष्णं विदाहि च ॥ रूक्षं वापि च सौवीरं प्रोक्तानि चेन्द्रियक्षतौ ॥ १८ ॥ पलाण्डुयवनं कन्दांस्तिलान्माषान्यथाबलम् ॥ तथौदनं विशालीनां दुग्धं चेक्षुरसं तथा ॥ १९ ॥ वास्तुकं चिल्लकानाञ्च पथ्ये शुक्रक्षयादपि ॥ वर्जित्वा सूरणं शुण्ठीं योगयुक्तो न योजयेत् ॥ २० ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने वाजीकरणं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

चर्चरा, खट्टा, तीक्ष्ण ऐसे भोजनको वर्ज दे और गरम, विदाही, रूखा ऐसा भोजन, कांजी इनको वीर्यक्षयमें वर्ज देवे ॥ १८ ॥ प्याज, तथा अन्यकंद, उड़द, और शालीसंज्ञक चावलोंका भात, दूध, ईखका रस ॥ १९ ॥ वथुआका शाक और चिल्लक अर्थात् अन्य वथुवाका भेद इनको अग्नि बलके अनुसार खावे ये वीर्यक्षयमें पथ्य हैं और जमीकंद, सोंठ, इनको नहीं देवे ॥ २० ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने वाजीकरणं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ४८.

अथ वंध्यारोगके लक्षण।

आत्रेय उवाच॥ वन्ध्या स्यात्षट्प्रकारेण बाल्येनाप्यथवा पुनः॥ गर्भकोशस्य भङ्गाद्वा तथा धातुक्षयादपि॥ १॥ जायते न च गर्भस्य सम्भूतिश्च कदाचन॥ काकवन्ध्या भवेच्चैका अनपत्या द्वितीयका ॥२॥ गर्भस्रावी तृतीयाऽथ कथिता मुनिसत्तमैः ॥ मृतवत्सा चतुर्थी स्यात्पञ्चमी च बलक्षयात् ॥३॥ तस्योपक्रमणं वक्ष्ये येन सा लभते सुतम् ॥ ४ ॥ अजातरजसां स्त्रीणां क्रियते यदि मैथुनम्॥ तेनैव गर्भसंकोचं भगत्वमुपगच्छति ॥ ॥५॥ तेन स्त्री भवते वन्ध्या गर्भं गृह्णाति नो भृशम्॥ सा च कष्टेन भवति रामा गर्भवती भिषक् ॥६॥ औषधैश्चोपचारैश्च सिद्धिश्चापि न संशयः॥ अनपत्यबलेनापि जायते भिषजां वर ॥७॥ न भवेत्काकवन्ध्या च अनपत्यापि सिध्यति॥ सिध्यन्ती क्षीणधातुत्वाज्जायते सा भिषग्वर ॥ ८ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—वंध्या रोग छह प्रकारका होता है, बालक अवस्थामें गर्भकोशके भंग होजानेसे अथवा धातुके क्षय होनेसे ॥ १ ॥ गर्भ कदाचित्भी नहीं ठहरता है और एक तो काकवंध्या होती है दूसरी अनपत्या होती है॥ २ ॥ तीसरी गर्भस्रावी होती है, चौथी मृतवत्सा होती है और पांचवीं बलके क्षय होनेसे होती है ॥३॥ अब इनकी चिकित्सा कहते हैं जिसकरके सुख उत्पन्न होता है॥ ४ ॥ जो यदि रजस्वला नहीं हुई हो ऐसी स्त्रीके संग मैथुन कर लेवे तो गर्भस्थान भगमें संकोचको प्राप्त हो जाता है ॥ ५ ॥ उसकरके स्त्री वंध्या हो जाती है विशेषकरिके गर्भको धारण नहीं करती है हे वैद्य! वह स्त्री

कष्टसे गर्भवती होती है ॥ ६ ॥ हे उत्तम वैद्य ! जो अनपत्या वंध्या होती है वह औषधोंसे गर्भवती होती है ॥ ७ ॥ फिर वह काकवंध्या भी नहीं होती और अनपत्या भी नहीं होती है और जो क्षीणधातु होनेसे वंध्या हो वह भी औषधोंसे गर्भवती हो जाती है ॥ ८ ॥

अथ वंध्यारोगको दूर करनेवाले औषध।

चन्दनोशीरमञ्जिष्ठापटोलं घनवालकम् ॥ मधुकं मधुयष्टी च तथा लोहितचन्दनम् ॥ ९ ॥ सारिवा जीरकं मुस्तं पद्मकञ्च पुनर्नवा ॥ क्षीरेण शर्करायुक्तं पानं पित्तोद्भवे गदे ॥ १० ॥ ज्ञात्वा योनिविशुद्धिञ्च तत्र दद्यान्महौषधम् ॥ चन्दनोशीरमञ्जिष्ठा गिरिकर्णी सिता तथा ॥ ११ ॥ क्षीरेणालोडिता पित्ते पुष्पसिद्धिं करिष्यति ॥ १२ ॥

चंदन, खश, मँजीठ, परवल, नागरमोथा, नेत्रवाला, महुआवृक्ष, मुलहटी, लालचंदन ॥ ९ ॥ अनंतमूल, जीरा, नागरमोथा, पद्माख, इनको दूधमें मिला खांड मिला पान करना पित्तसे उपजे वंध्यारोगमें हित है ॥ १० ॥ योनिकी शुद्धिको जानके पीछे ये महान् उत्तम औषध देनी चाहिये। चंदन, खश, मंजीठ,सफेद गोकर्णी, मिश्री ॥ ११ ॥ इनको दूधमें मिला घोटि पीनेसे पित्तसे उपजे रोगमें स्त्रीके पुष्प होते हैं ॥ १२ ॥

त्रिदोषदूषितरजकी चिकित्सा।

रजोरक्तं परीक्षेत वातपित्तकफात्मकम् ॥ सरुजञ्च सकृष्णञ्च पक्वजम्बूनिभं च यत् ॥ वातेन बाधितं पुष्पं तच्च संलक्षयेद्बुधः ॥ १३ ॥ तस्य नागरपिप्पल्यौ मुस्ताधन्वयवासकम् ॥ बृहत्यौ पाटला चैव क्वाथः सगुडको दधि ॥ १४ ॥ सप्ताहं पाययेद्धीमान्यावत्स्रवति शोणितम्॥विशुद्धे च तथा रक्ते पाययेत्पयसान्वितम् ॥ १५ ॥ श्वेता च गिरिकर्णी च श्वेता गुञ्जा पुनर्नवा ॥ तेन सा लभते गर्भं मासमेकं प्रयोगतः ॥ १६ ॥

वात, कफ, पित्त इनसे दूषित रजस्वलाके रक्तको जाने। पीडासहित और कृष्णवर्णवाला पकेहुए जामनके फलके समान वर्णवाला ऐसे रक्तको वातके कोपसे उपजा हुआ जाने ॥ १३ ॥ सोंठ, पीपली, नागरमोथा, धमासा, दोनों कटेहली, पाड़लवृक्ष, इनका क्वाथ बना गुड़ और दही मिला ॥ १४ ॥ रजस्वलाकालमें सात दिनतक पिलावे और रक्त शुद्ध होजावे तब इस

क्काथको दूधके संग पीवे ॥ १५ ॥ सफेद गोकर्णी, सफेद चिरभठी, सफेद सांठी इनको एक महीना तक पीवे तो वंध्या स्त्री गर्भको प्राप्त हो जाती है ॥ १६ ॥

अथ पित्तदूषितरजकी चिकित्सा।

जपाकुसुमसङ्काशं कुसुम्भरससन्निभम्॥ दाहशोषमूत्रकृच्छ्रयुक्तं तत् पित्तदूषितम्॥ १७॥ चन्दनोशीरमञ्जिष्ठापटोलं घनवालकम् ॥ मधुकं यष्टिमधुकं तथा लोहितचन्दनम्॥ १८ ॥ पद्मकं पुनर्नवे द्वे शारिवा जीरकं घनम् ॥ क्षीरेण शर्करायुक्तं पानं पित्तकृते गदे ॥ १९ ॥ ज्ञात्वा योनिविशुद्धिञ्च तत्र दद्यान्महौषधम् ॥ श्वेतार्कमूलं पयसा श्वेता च गिरिकर्णिका ॥ २० ॥ श्वेताद्रिकर्णीमूलञ्च पानं गोक्षीरसंयुतम् ॥ वन्ध्यानां गर्भजननं भवेत्तल्लक्षणान्वितम् ॥ २१ ॥

पुष्पके समान तथा कसुंभाके रंगके समान वर्णवाला रजका रक्त हो, दाह हो, शोष हो, मूत्रकृच्छ्र हो, वह पित्तदूषित रक्त जानना ॥ १७ ॥ चंदन, खश, मँजीठ, परवल, नागरमोथा, नेत्रवाला, महुआ, मुलहटी, लाल चन्दन ॥ १८ ॥ पद्माक, दोनों सांठी, अनंतमूल, भद्रमोथा इनको दूधमें मिला खांड मिला पित्तसे उपजे रोगमें पीना हित है ॥ १९ ॥ पीछे योनिकी शुद्धिको जानके आगे कही हुई ये महान् औषध देनी चाहिये। सफेद आककी जड़, दूधी, सफेद गोकर्णी ॥ २ ॥ सफेद गोकर्णीकी जड इनको गौके दूधके संग पीवे और सफेद कटेहलीकी जड़को दूधके संग पीनेसे वन्ध्या स्त्रीको गर्भ रहता है ॥ २१ ॥

अथ कफदुष्टरजकी चिकित्सा।

सघनं पिच्छलं चापि जाड्यं स्यान्मूत्ररोधनम् ॥ आलस्यतन्द्रा निद्रा च कफदुष्टं रजो विदुः ॥ २२ ॥ त्रिफला गिरिकर्णी च तथाश्वगन्धवत्सकौ ॥ पयसा पयसा पानं स्त्रीणां च गर्भकारणम् ॥ २३ ॥ पलाद्यं चन्दनाद्यं च द्राक्षाद्यं चूर्णमेव च ॥ दापयेद् गर्भजननं नारीणां भिषगुत्तमः ॥ २४ ॥ खण्डकाद्यञ्च चूर्णं च नारीणां भिषगुत्तमः ॥पुनर्नवाद्यं देयं वा स्त्रीणां गर्भप्रदायकम् ॥ २५ ॥

करडा २ झागोंवाला, जड़रूप, मूत्रको रोकनेवाला, ऐसा रक्त गिरे और आलस्य हो निद्रा हो

तंद्रा हो वह कफसे दूषित हुआ रक्त जानना ॥ २२ ॥ त्रिफला, गोकर्णी, अमलतास,कूडाकी छाल, दूर्वा, इनको दूधके संग पीनेसे स्त्रियोंके गर्भस्थिति होती है ॥ २३ ॥ पहले कहा-हुआ बलआदिक चन्दनादिक और द्राक्षादिक चूर्णके देनेसे हे उत्तमवैद्य ! गर्भस्थिति होती है ॥ २४ ॥ हे उत्तमवैद्य ! खण्डकाद्य चूर्ण अथवा पुनर्नवाद्य चूर्ण देनेसे स्त्रियोंको गर्भस्थिति होती है ॥ २५ ॥

अथ स्त्रियोंके गर्भार्थ पथ्य ।

अथ पथ्यं प्रवक्ष्यामि स्त्रीणां च शृणु पुत्रक ॥ कच्चरं सूरणं चैव तथा चाम्लं च काञ्जिकाम् ॥ २६ ॥ विदाहिकं च तीव्रं च स्त्रीणां दूरे परित्यजेत् ॥ वन्ध्याकर्कटकीमूलं लांगली कटुतुम्बिका ॥ २७ ॥ देवदाली द्विबृहती सूर्य्यवल्ली च भीरुका ॥ निर्माल्यं माल्यवस्त्रञ्च तथा स्यादृतुसङ्गमः ॥ २८ ॥ अन्यस्त्रीस्नातमुदकं स्त्रीणां पथ्यमुपक्रमः ॥ २९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने वन्ध्योपक्रमो नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

और हे पुत्र ! अब स्त्रियोंके वास्ते पथ्य कहते हैं । कचरी,जमीकन्द, चूकाका शाख,कांजी, ॥ २६ ॥ विदाही और तीक्ष्ण ऐसे भोजन स्त्रियोंको दूरसे ही त्याग देने चाहिये और बांझ ककोड़ीकी जड़, कलहारी, कडुई तुंबी ॥ २७ ॥ देवदाली, दोनों कटेहली, सूर्यमुखी, शतावरी, ये वस्तु वन्ध्यास्त्रीको पथ्य हैं और जिस स्त्रीके बालक होते हों उसका जूठा भोजन आदिक और उसका वस्त्र और उसका रजस्वला अवस्थामें स्पर्श ॥ २८ ॥ उसका ऋतुसमयमें स्नान किया हुआ जल, ऋतुसमयमें अपने पतिके संग भोग ये पथ्य हैं ॥ २९ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने वन्ध्योपक्रमो नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ४९.



अथ गर्भोपचारविधि ।

आत्रेय उवाच ॥ प्रथमे मासि यष्टीमधुपरूषकं मधुपुष्पाणि यथा लाभम् ॥ नवनीतेन पयो मधु मधुरं पाययेच्च ॥ १ ॥

द्वितीये मासि काकोली मधुरं पाययेत्तथा ॥ तृतीये कृशरा श्रेष्ठा चतुर्थे च कृतौदनम् ॥ २ ॥ पञ्चमे पायसं दद्यात् षष्ठे च मधुरं दधि ॥ सप्तमे घृतखण्डेन चाष्टमे घृतपूकरम् ॥ ॥ ३ ॥ नवमे विविधान्नानि दशमे दोहदं तथा ॥ मासे तृतीये सम्प्राप्ते दोहदं भवति स्त्रियः ॥ ४ ॥ यद्यत् कामयते सा च तत्तद्दद्याद्भिषग्वरः ॥५॥ वर्जयेद्द्विदलान्नानि विदाहीनि गुरूणिच ॥ अम्लानि सोष्णक्षीराणि गुर्विणीनां विवर्जयेत् ॥ ॥६॥मृत्तिका भक्षणीया न न च सूरणकन्दकाः ॥ रसोनश्च पलाण्डुश्च संत्याज्यो गुर्विणीस्त्रिया ॥ ७ ॥ सूरणानि प्रदेयानि गौल्यानि सरसानि च ॥ पथ्ये हितानि चैतानि गुर्विणीनां सदा भिषक् ॥८॥ व्यायामं मैथुनं रोषं शोषं चंक्रमणं तथा॥ वर्जयेद्गुर्विणीनाञ्च जायन्ते सुखसम्पदः ॥ ९ ॥ अथोपपन्नं विहितमपि स्वकीयाचारेण पंचमासिकमष्टमासिकं वा ॥ ब्राह्मणमङ्गलादिभिर्गोत्रभोजनमपि कर्त्तव्यम्॥दोहदादिषु परिपूर्णेषु रूपवान् शूरः पंडितः शीलवान्पुत्रो जायते ॥ १० ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गर्भोपचारो नाम एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पहले महीनेमें मुलहटी, फालसा, महुवृक्ष, इनसे जितने मिलें उतनेहीको नौनी घृत, दूध, इनेके संग खांड मिलाके मीठा २ प्यावे ॥ १ ॥ दूसरे महीनेमें काकोली, शहद, इनको प्यावे, तीसरे महीनेमें श्रेष्ठ कृशरा अर्थात् खिचड़ी और चौथे महीनेमें चावलोंके भातका भोजन करे ॥ २ ॥ और पांचवें महीनेमें दूध और छठे महीनेमें मीठा दही देना चाहिये और सातवें महीनेमें घृत, खांड, आठवें महीनेमें घेवर ॥ ३ ॥ और नवमे महीनेमें अनेक प्रकारके भोजन, दशवें महीनेमें गर्भवती स्त्रीके इच्छापूर्वक भोजन देने चाहिये. और जब तीसरा महीना प्राप्त होता है तब स्त्रियोंकी इच्छा अनेक वस्तुओंमें होती है ॥ ४ ॥ तब स्त्री जिस २ वस्तुकी इच्छा करे वही २ भोजन देना चाहिये ॥ ५ ॥ और द्विदल धान्य, विदाही तथा भारी भोजन, खट्टे भोजन, गरम दूध, इन वस्तुओंको गर्भवती स्त्री वर्ज देवे॥६॥ और मृत्तिका नहीं भक्षण करनी चाहिये और जमीकंदको भक्षण नहीं करे और लहसन

प्याज, ये गर्भवती स्त्रीको त्याग देने चाहिये ॥ ७ ॥ और जमींकंद आदिक तथा गुली देनेवाले अन्न इनको देवे तो रससहित देवे । हे वैद्य ! इसप्रकार कहे हुए पथ्य गर्भवती स्त्रीको सदा पथ्य कहे है ॥ ८ ॥ कसरत, मैथुन, क्रोध, शोक, जादे फिरना ये सब गर्भवतीस्त्रियोंको वर्ज देने चाहिये तब सुखकी उत्पत्ति होती है ॥ ९ ॥ कहे हुए इस विधानको करते हुए भी अपने आचरण करके पांचवें महीनेमें अथवा छठे महीनेमें मंगलादिक करवाके ब्राह्मण और गोत्री भाई इनको भोजन करवावे और गर्भवतीकी इच्छापूर्वक वस्तु मिलती रहे तो रूपवान्, शूर, वीर, पंडित, शीलवान् ऐसा पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १० ॥

इति वेरीनिवासिदुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने गर्भोपचारो नाम एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५०.



अथ चलितगर्भचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ प्रथमे मासि गर्भस्य चलनं दृश्यते यदि ॥ तदा मधुकमृद्वीकाचन्दनं रक्तचंदनम् ॥१॥ पयसालोडितं पीतं तेन गर्भःस्थिरो भवेत्॥२॥द्वितीये मासि चलिते मृणाले नागकेशरम्॥तृतीये मासि गर्भस्य चलनं दृश्यते यदा॥३॥तदा सूपकर्किहं तु शर्करापयसा पिबेत्॥चतुर्थे मासि दाहश्च पिपासा शूलमेव च॥४॥ज्वरेण स्त्रीणां यदि गर्भश्चलति तदोशीरचन्दननागकेशरधातकीकुसुमशर्कराघृतमधुदधि पाययेत् ॥ पञ्चमे मासे चलिते गर्भे दाडिमीपत्राणि चन्दनं दधि मधु च पाययेत्॥षष्ठे मासि गैरिकं कृष्णमृत्तिकागोमयभस्म उदकं परिस्रुतं शीतलं चन्दनं शर्करया सह पिबेत्॥सप्तमे मासि गोक्षुरसमङ्गापद्मकघनमुशीरनागकेशरं मधुरं पाययेत् ॥ अष्टमे मासि लोध्रं मधु मागधिकाश्च सह दुग्धेन पीतवतीनां चलिते गर्भे स्त्रीणां सुखं सम्पद्यते॥५॥इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने चलितगर्भचिकित्सानाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

आत्रेयजी कहते हैं-यदि पहिले महीनेमें गर्भ चलायमान दीखे तो मुलहटी, मुनक्का, दाख, चंदन, लाल चंदन ॥ १ ॥ इनको दूधमें घोल पीनेसे गर्भ स्थिर हो जाता है ॥ २ ॥ दूसरे महीनेमें गर्भ चलायमान होजावे तो कमलकी नाली, नागकेशर इनको देवे और तीसरे महीनेमें गर्भ चलायमान हुआ दीखे ॥ ३ ॥ तो मूसाकी बीटको, खांड और दूधके संग पीवे और चौथे महीनेमें जो दाह हो, तृषा हो, शूल हो ॥ ४ ॥ और ज्वरसे स्त्रियोंका गर्भ चलता हुआ मालूम होवे तो खश, चंदन, नागकेशर, धायके फूल, खांड, घृत, शहद, दहीको पिलावे और पांचवे महीनेमें गर्भ चलता हुआ दीखे तो अनारके पत्ते, चंदन, दही, शहद इनको पिलावे, छठे महीनेमें गेरू, काली मृत्तिका, गोबर, आरनोंकी भस्म इनको जलमें घोल छानके दालचीनी, चंदन, खांड, ये मिला पीवे और सातवें महीनेमें गोखरू, लज्जावंती, पद्माक, नागरमोथा, खश, नागकेशर, शहद, इनको पिलावे और आठवें महीनेमें लोध, शहद, पीपली इनको पीवती हुई स्त्रियोंका चलायमान गर्भ स्थिर रह जाता है और सुख होता है ॥ ९ ॥ इति वेरीनि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने चलितगर्भचिकित्सानाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५१.

अथ गर्भोपद्रवचिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ हृल्लासच्छर्दिशोषश्च ज्वरः शोफस्तथारुचिः ॥ विवर्णत्वमतीसारोऽष्टौ गर्भोपद्रवास्स्मृताः॥१॥वक्ष्यामि भेषजं तस्य यथायोगेन साम्प्रतम् ॥ वटप्ररोहं मगधामुशीरं घनमेव च ॥ २ ॥ युता खण्डगुटिकास्ये विहिता शोषवारिणी॥३ ॥ वत्सकं मगधा शुण्ठी तथा चामलकीफलम् ॥ युक्तं कोमलबिल्वेन दध्ना पिष्टं तु दापयेत्॥४॥ शर्करासंयुतं पानं स्त्रीणां गर्भे हितं सदा॥५॥ पीतो भूनिम्बकल्कश्च शर्करासमभावितः ॥ छर्दिं हरेच्च हृत्क्लेदं मधुना वा समन्वितः॥६॥ शृङ्गवेरं सकटुकं मातुलुङ्गस्य केशरम्॥मार्जनं दन्तजिह्वासु गण्डूषश्चोषणवारिणा ॥ ७ ॥ गुर्विणीनाञ्च सर्वासामरुचिं च नियच्छति ॥ वत्सकं दाडिमं पाठा बिलबिल्वबलास्तथा॥८॥ जम्ब्वाम्रपल्ल-

वाश्चैव यथा लाभेन सत्तम ॥ शर्करादधिसंयुक्तं स्त्रीणाञ्चैवातिसारके ॥ ९ ॥ हरीतकी नागरकं गुडेन वा त्रिफलाकषायः ॥ शीतः स्त्रीणां विनिहन्ति पाने विबन्धविद्रधींश्च ॥१०॥ मूत्रनिबन्धनस्य त्रपुसैर्वारिबीजानि मागधी ॥ शिलाभेदं सिताञ्चैव पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ मूत्ररोधं गुर्विणीनां वारयत्याशु निश्चितम् ॥ ११ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—थुकथुकी, छर्दि, शोष, शोजा, ज्वर, अरुचि, अतिसार, विवर्ण ये आठ गर्भके उपद्रव हैं ॥ १ ॥ अब योगसे उसकी औषधको कहेंगे। वडके अंकुर, पीपली, खश, नागरमोथाका चूर्ण ॥ २ ॥ खांड गोली बनाके मुखमें धारण करनेसे शोषका निवारण होता है ॥ ३ ॥ कूडाकी छाल, पीपली, सूंठ, आंवले, कच्ची वेलगिरीको दहीमें पीस ॥ ४ ॥ खांड मिला पीनेसे स्त्रियोंके गर्भमें सदा सुख होता है ॥ ५ ॥ चिरायतेका कल्क बना बराबरकी खांड मिला पीनेसे गर्भवती स्त्रीकी छर्दिका निवारण होता है, शहदमें मिलाके पीनेसे हृदयकी ग्लानिका नाश होता है ॥ ६ ॥ अदरख मिर्च विजौराकी केशरसे दांत जिह्वा इनको धोवे और कुल्ले धारण रक्खे ॥ ७ ॥ तो गर्भवती स्त्रियोंकी अरुचिका नाश होता है और कूडाकी छाल, अनारदाना, पाठा, वड़ी सेमफली, वेलगिरी, खरेहटी ॥ ८ ॥ जामन, आंव इनके पत्ते इनमेंसे जितनी औषधें मिलें उनको खांड दहीमें मिलादेनेसे वातसे उपजा स्त्रियोंका अतिसार रोग दूर होता है ॥ ९ ॥ हरड़े, सूंठ इनको त्रिफलाके क्वाथमें मिला और गुड मिला शीतलकर पीनेसे गर्भवती स्त्रीका मलका वंधा, विद्रधी इनका नाश होता है ॥ १० ॥ काकडीके वीज, नेत्रवाला, पीपली, पाषाणभेद, मिश्री, इनको चावलोंके धोवनके जलके संग पीवे तो स्त्रियोंका वंध हुआ मूत्र शीघ्र ही उतारता है॥ ११ ॥

मधुकादिकल्क।

मधुकविषमृणालं पद्मकिञ्जल्ककल्कं घनमतिविषमैन्द्रं बीजमौशीरनीरम् ॥ समकृतमथ कल्कं देयमाशु प्रपाने हितमपि युवतीनां गर्भचाले सिताढ्यम् ॥ १२ ॥

मुलहटी, अतीश, कमलकी नाली, कमलकेशर इनका कल्क बना अथवा नागरमोथा, अतीश, इंद्रजव, खश, नेत्रवाला इनको समान भाग ले कल्क बना शीघ्र ही गर्भवती स्त्रीको पान करावे तथा गर्भवती स्त्रियोंका गर्भ चलित होनेमें मिश्रीसे युक्त इन औषधोंका पान कराना श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

अथ गर्भोपद्रवमें उपचारकी शिक्षा ।

गर्भस्योपद्रवाः शोफाः स्वेदयेदुष्णवारिणा ॥ न दातव्यो मतिमता विरेको दारुणो महान् ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गर्भोपद्रवचिकित्सा नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

गर्भके उपद्रव जो शोजे हो जावें तो गरम जलसे पसीना दिलावे और बुद्धिमान् वैद्य गर्भवती स्त्रीको दारुण जुलाव नहीं देवे ॥ १३ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने गर्भोपद्रवचिकित्सानाम एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५२.

अथ मूढगर्भचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ विरुद्धाहारसेवाभिस्तथा गर्भव्यथासु च ॥ अतिमूर्द्धनपीडायाः पीडां प्राप्नोति चार्भकः ॥१॥ तिर्य्यग्वापि च गर्भश्च त्यक्त्वा द्वारं भगस्य च ॥ अन्यद्वा म्रियतेऽपत्यं तेन कष्टं प्रपद्यते ॥ २ ॥ अथवा लज्जया स्त्रीणां सङ्कोचात्सङ्कुचिते भगे ॥ मूढगर्भश्च जानीयात्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ३ ॥ बस्तिशूलश्च भवति योनिद्वारं निरुन्धति ॥ गर्जते जठरं यस्या आध्मानश्चैव जायते ॥४॥ तोदनं चाङ्गभङ्गश्च निद्राभङ्गश्च जायते ॥वाताद्भवति गर्भस्य संरोधो भिषगुत्तम ॥ ५ ॥ शूलं ज्वरस्त्रिदोषश्च तृष्णादोषो भ्रमस्तथा ॥ मूत्रकृच्छ्रं शिरोऽर्त्तिः स्यात्पित्ताद्रोधो भ्रूणस्य च ॥ ६ ॥ आलस्यतन्द्रानिद्रा च जाड्याध्मानं च वेपथुः ॥ कासो विरसता चास्ये श्लेष्मणा मूढगर्भके ॥७॥ द्वन्द्वैश्च द्वन्द्वजं विद्यात्सर्वं स्यात्सान्निपातिकम् ॥ ८ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–विरुद्धआहारादिक करनेसे गर्भमें बाधा होनेसे बालकके मस्तकमें पीड़ा होनेसे बालक दुःखित होजाता है ॥ १ ॥ वह तिरछा हो भगके द्वारको त्याग देता है

और कहीं मरजाता है इससे स्त्रीको कष्ट होता है ॥ २ ॥ अथवा लज्जासे स्त्रीकी मगका संकोच होनेसे मूढगर्भ होजाता है उसके लक्षणको कहते हैं ॥ ३ ॥ वस्तिमें शूल, योनिद्वार रुकजावे और जिसका उदर गर्जे और अफारा हो ॥ ४ ॥ पीड़ाहो, अंगभंगहो, निद्राभंगहो, हे उत्तम वैद्य ! उसे वातसे उपजा गर्भका निरोध जानना ॥ ॥ ५ ॥ शूलहो त्रिदोषसहित ज्वरहो, तृषाहो, दोषका भ्रमहो, मूत्रकृच्छ्रहो, शिरमें पीडाहो वह पित्तसे उपजा गर्भनिरोध जानना ॥ ६ ॥ आलस्यहो, तंद्राहो, निद्राहो, जड़पनाहो, अफाराहो, कंपनाहो, खाँसीहो, मुखमें विरसताहो, ये लक्षण कफसे उपजे मूढगर्भके हैं ॥ ७ ॥ दोदोषोंसे मिलेहुए लक्षण जानने जिसमें सब लक्षण मिलें वह सन्निपातका मूढगर्भ जानना ॥ ८ ॥

अथ मृतगर्भका लक्षण।

भ्रमसूर्च्छातृपाध्मानं वातरोधश्च विह्वलम् ॥ मूर्च्छावमिं सपारुष्यं दीनत्वमुपगच्छति ॥ ९ ॥ मृतगर्भं विजानीयादाशुकारी क्रियामपि ॥ अतो वक्ष्यामि भैषज्यं महामोहे विशारद ॥ १० ॥

भ्रमहो, मूर्च्छाहो, तृषाहो, अफाराहो,वातका रोधहो, विह्वलहो, मूर्छाहो, वमनहो, कठोरताहो, गरीबपनाहो ॥ ९ ॥ वहां स्त्रीके मराहुआ गर्भ जानना इसका इलाज शीघ्र ही करे, हे वैद्य ! इस महामोहको अब औषधोंको कहेंगे ॥ १० ॥

अथ वातिकमूढगर्भचिकित्सा।

वातिके मर्दनाभ्यङ्गं स्वेदनं चाल्पमेव च ॥
यवागूं पञ्चकोलञ्च पाययेद्भिषगुत्तमः ॥ ११ ॥

वातके मृतगर्भमें मर्दन करै मालिस करे अल्प २ पसीना दिलावै और पंचकोल, अर्थात् सूंठ, पीपली, पीपलामूल, चव्य, चीता, इनकी यवागू पिलावे ॥ ११ ॥

अथ पैत्तिकमूढचिकित्सा।

पैत्तिके शीतलं पानं शीतान्नसहितानि च ॥
व्यञ्जनानि तथा तस्य यष्टिकं पयसा पिबेत् ॥ १२ ॥

पित्तके मृतगर्भमें शीतल पान, शीतल अन्न और शाक आदिक देवे और मुलहठीको दूधके संग पीवे ॥ १२ ॥

अथ कफजमूढगर्भचिकित्सा।

त्रिकटु त्रिफला कुष्ठं रोध्रं वत्सकधातुकी ॥
सगुडं क्वथितं पाने श्लेष्मणा मूढगर्भके ॥ १३ ॥

कफके मूढगर्भमें सोंठ, मिरच, पीपली, त्रिफला, कूठ, लोध, कूडाकी छाल, धायके फूल, गुड इनका काथ बना पान कराना हित है ॥ १३ ॥

अथ रक्तपित्तज मूढगर्भचिकित्सा ।

मूर्वाचिञ्चावास्तुकर्णीमञ्जिष्ठारोध्रनीलिकाः ॥ कर्कन्धुमूलं सौराष्ट्री काथश्च सगुडो हितः ॥ १४ ॥ रक्तपित्तविकारेषु कुक्षिशुद्धिश्च जायते॥मृतगर्भस्य वक्ष्यामि भेषजं भिषजांवर॥१५॥ मर्दयित्वा मानुषीञ्च ततश्चापि प्रयत्नतः ॥ निराहाराच्च म्रियते यदिगर्भोऽन्तरे स्त्रियः ॥ १६ ॥

मरोडफली, अमली, वास्तुकर्णी, मंजीठ, लोध, नील, वेरीकी जड, फिटकिरी इनका काथ बना गुड मिला ॥ १४ ॥ रक्तपित्तके विकारोंमें कुक्षिकी शुद्धिकेवास्ते देना श्रेष्ठ है और हे उत्तम वैद्य ! अब मृतगर्भकी औषधको कहते हैं ॥ १५ ॥ यदि निराहार लंघन करनेसे स्त्रीके उदरमें गर्भ मरजावे तो यत्नसे स्त्रीको मर्दन कारि पीछे शस्त्रक्रिया करैं उसको मुझसे सुनो ॥ १६ ॥

अथ मूढगर्भमें शस्त्रचिकित्सा ।

तदा शस्त्रप्रतीकारं भेषजानि शृणुष्व मे ॥ नाभिबिलशयाच्च सुकुण्डलिकां कृत्वातुतस्योपरि मूढगर्भासुपवेश्य जानुनी प्रसार्य्य किञ्चित्पृष्ठभागे साधारणमवष्टभ्य उदरादधोऽवतारयेत् योनिद्वारे प्रगलति तिलतैलेन वारिणा परिभ्यज्य हस्तो याति योनिद्वारञ्च तस्मात्तर्जन्याङ्गुष्ठेन गलप्रदेशेधृत्वा निःसारयेत् ॥ अथवार्द्धचन्द्रेण शस्त्रेणैव मृतगर्भस्यबाहुयुगलं संछिद्य बाहू- निःसारयेत् ॥ १७ ॥

नाभिके विलके समान गोल और ढूंधी कुंडलिका अर्थात् ईंढवीसी बनाके उसके ऊपर, मूढगर्भवाली स्त्रीको बैठाके उसके गोडे पसराके पीठकी ओरसे साधारण कछुक दवाव और उदरसे नीचेको गर्भको उतारे। जब योनिके द्वारपै गर्भ आजावे तव तिलोंका तेल जल इनकी मालिस करे पीछे योनिद्वारसे बालकका हाथ निकसे तब तर्जनी अंगुली और अंगूठको योनिके भीतर कर उस बालकके गलेको पकडि बाहिरको खींच लेवे अथवा अर्द्धचंद्र नामवाले शस्त्रसे उस मरेहुए बालककी दोनों बाहुओंको काटि बाहिरको निकास देवे ॥ १७ ॥

अथ उत्पत्तिके उपायके वास्ते मंत्र और औषध ।

लाङ्गल्या मूलेन उष्णेन वारिणा योषितां नाभिलेपेन शीघ्रं गर्भो जायते प्रसूयते च ॥ बलामूलं सूर्यकान्तिसोमवल्लीकानि कज्जलेन पिष्ट्वा लेपनं करोतु ॥ १८ ॥

कलहारीकी जड़को गरम जलमें पीस गर्भवती स्त्रियोंको नाभिपे लेप करनेसे शीघ्रही बालक उत्पन्न होता है और खरेहटीकी जड,सूर्यमुखी,चांदवेल इनको कज्जलके संग लेप करना हित है१८.

अथ सुखसे बालकहोनेका यत्न ।

भीरुभूनिम्बवार्त्ताकी मूलञ्च पिप्पलीयकम्॥यवान्यग्रवचाःपिष्ट्वा तथा चोष्णेन वारिणा ॥ १९ ॥ नाभिदेशादधस्ताच्च प्रलेपेन प्रसूयते॥मूलञ्च लाङ्गलिक्याश्च देवदाल्याश्च तुम्बिका ॥२०॥ कोशातक्यादिकं सर्वं लेपने परिकल्पितम् ॥ सूतिलेपाःस्त्रियो ह्युते सुखेन सा प्रसूयते ॥ २१ ॥

शतावरी, चिरायता, वार्त्ताकी, कटेहलीका भेद, उसकी जड़, पीपली, अजवायन, वच, इनको गरम जलके संग पीस ॥ १९ ॥ नाभिस्थानसे नीचेको लेप करनेसे बालक उत्पन्न होता है और कलहारीकी जड़, देवताडकी जड, तुंबी ॥ २० ॥ कडवी तोरी, इनको पीस लेप करना श्रेष्ट है । कहे हुए ये सब लेप करनेसे स्त्री सुखसे बालकको जनती है ॥ २१ ॥

अथ मन्त्रः ।

हिमवदुत्तरे कूले सुरसा नाम राक्षसी ॥ तस्या नूपुरशब्देन विशल्या गुर्विणी भवेत् ॥२२॥ ऐं ह्रीं भगवति!भगमालिनि ! चल चल भ्रामय पुष्पं विकाशय विकाशय स्वाहा ॥ॐनमो भगवते मकरकेतवे पुष्पधन्विने प्रतिचालितसकलसुरासुरचित्ताय युवतिभगवासिने ह्रीं गर्भं चालय चालय स्वाहा ॥ एभिर्मन्त्रितं पयः पाययेत्तेन सुखप्रसवः ॥ २३ ॥

हिमवान् पर्वतकी दाहिनी तर्फको किनारेपे सुरसा नामवाली राक्षसी रहती है उसके नूपुर बिछुवोंके शब्दसे मूढ़गर्भवाली स्त्री बालकको जनती है ॥ २२ ॥ ऐं ह्रीं भगवति भगमालिनि चलचल,भ्रामय पुष्पं विकाशय विकाशय स्वाहा। ॐनमो भगवते मकरकेतवे पुष्पधन्विने प्रतिचालितसकलसुरासुरचित्ताय युवतिभगवासिने ह्रीं गर्भं चालय चालय स्वाहा,इन मंत्रोंसे पढ़ाहुआ दूध पिलावे इससे सुखसे बालक होता है ॥ २३ ॥

अथ यन्त्र।

ऐं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रौं ह्रः ॥२४॥ इदं यन्त्रं भूर्जपत्रस्योर्ध्वभागे लिखित्वा मूढगर्भायै दर्शयेच्छय्यातले च स्थापयेत्तेन सुखेन प्रसवः ॥ २५ ॥

ऐं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रौं ह्रः ॥ २४ ॥ इस यंत्रको भोजपत्रके ऊपर लिखके मूढ़गर्भवाली को दिखावे उसकी शय्याके नीचे स्थापित करदेवे इससे सुखसे बालक उत्पन्न होता हैं॥ २५॥

अथ मन्त्र।

गङ्गातीरे वसेत्काकी चरते च हिमालये॥ तस्याः पक्षच्युतं तोयं पाययेच्च ततः क्षणात् ॥ २६ ॥ततःप्रसूयते नारी काकरुद्रवचो यथा ॥ अनेन दूतो व्याकुलो भवेत्तावच्च पाययेत्॥२७॥ तेन प्रसूयते नारी गृहे काकसुखेन च ॥ २८ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मूढगर्भचिकित्सानाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

"गंगातीरे वसेत्काकी चरते च हिमालये। तस्याः पक्षच्युतं तोयं पाययेच्च ततः क्षणात् ॥ ततः प्रसूयते नारी काकरुद्रवचो यथा"॥अर्थ–गंगाके तीरपर हिमालयपर्वतमें एक काकी विचरती है. उसके पंखसे गिराहुआ पानी स्त्रीको पिलावे, इससे स्त्री प्रसवती है ऐसा काकरुद्रका वचन है ॥ २६ ॥ इसमंत्रको कहता हुआ दूत एक श्वाससे थकजावे तब गर्भवती स्त्रीको उस जलको पिलादेवे ॥२७॥ फिर वह स्त्री सुखसे बालकको जनतीहै जैसे काकी अंडेको॥ २८॥इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने मूढगर्भचिकित्सानाम द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५३.

अथ सूतिकारोगकी चिकित्सा।

आत्रेय उवाच॥प्रसूत्यनन्तरं रोध्रार्जुनकदम्बदेवदारुबीजकाह्व कर्कन्धूश्च यथालाभं लौहितविशुद्धं दापयेत्॥प्रसूतिजातायोनिः संशोध्यते ॥ तैलेनापूर्य्याभ्यज्य चोष्णेन वारिणा स्वेदयेत्॥ उपवासमेवं कृत्वा द्वितीयदिवसे गुडानागरहरीतकीश्च दापयेत्

कथयामोर्ध्वं कुलत्थयूषं च सोष्णं पाययेत् ॥ तृतीयदिवसे पञ्चकोलयवागूर्दापयेत् ॥ चतुर्जातकसिद्धा यवागूर्दापयेत् ॥ पञ्चमेऽहनि शालिषष्टिकौदनं भोजयेत् ॥ अनेन क्रमेण दशपञ्चदशाहं चोपचारयेत् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—बालक जननेके पीछे लोध, अर्जुनवृक्ष, कदंब, देवदार, बिजौरा, वेरी इनमें जितनी चीजें मिलें उतनी ही लहूकी शुद्धिके वास्ते क्वाथ बनाके देवे इससे प्रसूति स्त्रीकी योनी शुद्ध हो जाती है और तेलकी मालिस कर गरम जलसे पसीना दिलावे। पहले दिन स्त्रीको लंघन करवावे और दूसरे दिन गुड, सोंठ, हरडे इनको देवे फिर दोपहर पीछे कुलथीका यूप गरम २ देवे और तीसरे दिन पञ्चकोल अर्थात् पीपली, पीपलामूल, सोंठ, चव्य, चीता इनकी यवागू बनाके देवे और चौथे दिन इस यवागूमें चातुर्जातक अर्थात् दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, ये मिलाके देवे और पांचवे दिन शालिसंज्ञक चावलोंके भातका भोजन करे इसी क्रमके अनुसार पन्द्रह दिन पथ्य भोजनका उपचार करना चाहिये ॥ १ ॥

अथ स्त्रीके दूध बढानेके उपाय।

पिप्पली पिप्पलीमूलं नागरं घनवालुकम् ॥ कुस्तुम्बुरूणि मञ्जिष्ठां सह क्षीरेण कल्कयेत् ॥२॥ पानं क्षीरविशुद्ध्यर्थं कल्कमश्नात्यनन्तरम् ॥ मरीचं पिप्पलीमूलं क्षीरं क्षीरविवृद्धये ॥ ॥ ३ ॥ मागधी नागरी पथ्या गुडेन सघृतं पयः ॥ पानं जनयते क्षीरं स्त्रीणाञ्च क्षीरपादपि ॥ ४ ॥ एवं कृत्वा च नारीणां द्वादशाहे भिषग्वरः ॥ माङ्गल्यं वाचनं कृत्वा योषार्थञ्च प्रदर्शयेत् ॥ ५ ॥ जातके सुतमोक्षञ्च द्वादशाहं तथा पुनः ॥ नामकर्मकृतौ सत्यां कर्णवेधनमेव च ॥ ६ ॥ वस्त्रबन्धं विवाहञ्च कारयेद्बालकस्य च ॥ ७ ॥ इत्यात्रेय भाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने सूतिकोपचारो नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

पीपल, पीपलामूल, सोंठ, नागरमोथा, नेत्रवाला, धनियां, मँजीठ इनको दूधमें पीस कल्क बना ॥ २ ॥ इस कल्कको खावे और दूध पीवे ऐसे करनेसे स्त्रीके दूधकी शुद्धि हो जाती है और मिरच, पीपलामूल, इनसे युक्त दूधके पीनेसे स्त्रियोंके दूधकी शुद्धि होती है ॥ ३ ॥ पीपली, सोंठ, हरडै, इनको गुड घृतसहित दूधमें मिला पीनेसे स्त्रियोंके दूध बढता है ॥ ४ ॥ इस प्रकारके

बारहसें दिन मंगलाचरण करवाके पीछे स्त्रियोंका (अर्थात् मंगलादिकके) दर्शन करवावे ॥ ५ ॥ जातककर्ममें सुतकी उत्पत्ति होनेका मंगल करवावे पीछे बारहमें दिन मंगल करवाके नामकर्म करवावे पीछे कर्णवेधकर्म करवावे ॥६॥ फिर वस्त्रबन्ध,तागड़ी आदि बांधनेका कर्म और विवाह-कर्म ये सब कर्म बालकके करवाने चाहिये ॥ ७ ॥ इति वेरीनि० दितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने सूतिकोपचारो नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५४.

अथ बालरोगनिदानलक्षणम् ।

आत्रेय उवाच ॥ पञ्चैव क्षीरदोषाश्च स्त्रीणाञ्च कथिता बुधैः॥ घनक्षीरोष्णक्षीराम्लक्षीरा चैव तथा परा ॥ १ ॥ अल्पक्षीरा क्षारक्षीरा मृदुक्षीरा तथा परा ॥ मृदुक्षीरा भवेत्सौख्या पञ्चान्या दोषकारकाः ॥ २ ॥ घनाध्मानविरोधत्वं श्वासकासादिसम्भवः ॥ उत्फुल्लकुक्षितैवं हि घनक्षीरस्य सेवनात् ॥ ३ ॥ अल्पसत्त्वः कृशो दीनः श्वासातीसारपीडितः ॥ अल्पक्षीरस्य दोषेण सम्भवेद्धतवाक्सुतः ॥ ४ ॥ ज्वरः शोषस्तथाल्पत्व-मुष्णक्षीरेण बालके ॥ तथैव चोष्णक्षीरेण ज्वरातीसार एव च ॥ ॥ ५ ॥ सुसत्त्वं बलमाप्नोति चारोग्यं लभते शिशुः ॥ मृदुक्षीरेण नियतं जायते रूपवानपि ॥ ६ ॥ चक्षूरोगश्च कण्डूश्च क्षतश्लेष्मा-वस्राविताः॥ संक्लेदयुक्तं नासास्यं जायते क्षारदुग्धके ॥ ७ ॥

पंडितजनोंने स्त्रियोंके दूधके दोष पांच कहे हैं गाढा दूध, गरम दूध, खट्टा दूध, ॥ १ ॥ थोड़ा दूध, खारा दूध, ये पांच दोष हैं और कोमल, स्वच्छ दूधवाली स्त्री सुखसे युक्त कही और ये अन्य सब दूषित दूधवाली हैं ॥ २ ॥ जो बालक गाढा दूध पीवे तो करड़ा अफारा हो,श्वास रोग हो, खांसी हो और कूखि, जांघोंकी संधि ये फूली हुई रहे ॥ ३ ॥ और अल्प दूधके पीनेसे थोड़ा बल हो, कृश हो, दीन हो, श्वास, अतिसार, इन्होंसे पिड़ित हो और वाणी नष्ट हो जावे ॥ ४ ॥ ज्वर हो अल्पशोष हो अतिसार हो ये स्त्रीका गरम दूध पीनेवाले बालकके रोग हो जाते हैं ॥५॥ और कोमल स्वच्छ दूध पीनेसे बालक मोटा होता है और बल वढता है, निरन्तर आरोग्य सुखमें प्राप्त रहता है और रूपवान् होता है ॥ ६ ॥ आंखोंमें रोग हो, खाजि हो, गुमड़े, फुंसी

अधिक हो, कफ गिरे, जलने युक्त नासिका और मुख रहे ये व्यारा दूध पीनेवाले बालकके रोग हैं ॥ ७ ॥

अतो वक्ष्यामि भैषज्यं शृणु हारीत मे मतम् ॥ ८ ॥

हे हारीत ! अब इनकी औषधोंको कहेंगे तू सुन यह मेरा मत है ॥ ८ ॥

अथ उत्फुल्लरोगकी चिकित्सा।

आध्मानात्फुल्लकुक्षिश्च श्वासदोषादिपीडितः ॥ उत्फुल्लिका च विज्ञेया बालानां दुःखकारिणी ॥ ९ ॥ उदरे च जलौकादि-रक्तं चादौ विमोक्षयेत्॥उत्फुल्लिदोषे दातव्यं क्षीरदोषनिवार-णम् ॥ १० ॥ अग्निना प्रबलः स्वेदो दहेच्चापि शलाकया ॥ जठरे बिन्दुकाकारा जायन्ते भिषगुत्तम ॥११॥ बिल्वमूलफलं पाठा त्रिकटु बृहतीद्वयम् ॥ क्वाथश्च गुडयुक्तश्च बालानाञ्च ज्वरे हितः ॥ १२ ॥ स्त्रीणां स्यात्पानमेतेषां बालानां ज्वरनाशनम् ॥ १३ ॥

अफारासे कुक्षि फूली रहे, श्वासआदि दोषोंसे पीडित हो वह उत्फुल्लिकासंज्ञकरोग होता है बालकोंको दुःख करनेवाला है ॥ ९ ॥ कुक्षि उत्फुल्लित रोगमें पहले जो दोष आदिकोंसे रुधिरको निकलावे पीछे दूधके दोषको निवारण करे ॥ १० ॥ अग्निसे अति प्रबल पसीना दिलावे, शलाकासे दग्ध करे, उदरमें बिंदुवोंसरीखे आकार होजावे ऐसा दग्ध करे ॥ ११ ॥ बेलगिरीकी जड और फल, पाठा, त्रिकटु अर्थात् सूंठ, मिरच, पीपल, दोनों कटेहली, इनका क्वाथ बना गुड मिला देना बालकोंको हितदायक कहा है ॥ १२ ॥ इस क्वाथको बालककी माता स्त्रीको पिलावे तो बालकोंके ज्वरका नाश होता है ॥ १३ ॥

अथ बालरोगचिकित्साके अन्य उपाय।

हितः पर्पटकक्वाथः शर्करामधुयोजितः॥बालानां ज्वरनाशाय कैरातं मधुसंयुतम् ॥१४॥रास्नाकर्कटकं भार्ङ्गीचूर्णं च मधुसं-युतम् ॥ लेहो वा बालकस्यापि श्वासकासनिवारणः ॥१५॥ पथ्यावचानागरकं घनं कर्कटमेव च ॥ चूर्णं सगुडमेवं हि बालानां कासनाशनम् ॥ १६ ॥पलाशभेदं त्रिफलात्रपुसीवरी-मागधीः॥ पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन सिताढ्यं मूत्ररोधजित् ॥१७॥

नागरीसभयादन्तीगुडचूर्णं प्रदापयेत् ॥ बालानां विद्रधिश्चैव नाशयेच्च न संशयः ॥ १८ ॥ पाठाबिल्वशिलादीनि वत्सकं शाल्मलीत्वचम्॥दुग्धेन पानं बालानामतिसारनिवारणम् १९ अर्जुनश्च कदम्बश्च कुष्ठं गैरिकमेव च ॥ लेपनं त्वचि दोषाणां वारणं बालकस्य च॥२०॥ रोध्रं रसाञ्जनं धात्री गैरिकं मधुना युतम् ॥ अञ्जनं चैव बालानां नेत्ररोगनिवारणम् ॥ २१ ॥

पित्तपापडाके क्वाथमें खांड और शहद मिलाके देना हित है और बालकोंके ज्वरके नाशकेवास्ते चिरायता, शहद इनका पिलाना हित है ॥ १४ ॥ और भारंगी, रास्ना, काकड़ासींगी इनके चूर्णमें शहद मिला लेह बना चटानेसे बालकका श्वास, खांसी इनका नाश होता है ॥ १५ ॥ हरड़े, वच, सूंठ, नागरमोथा, काकड़ासींगी, इनका चूर्ण बना बराबरका गुड़ मिला देनेसे बालकोंकी खांसीका नाश होता है ॥ १६ ॥ टेसू, त्रिफला, खीर, शतावरी, पीपली, इनको चावलोंके धोवनके जलमें पीस प्यानेसे बालमूत्र-रोध दूर होता है ॥ १७ ॥ सूंठ, हरडै, जमालगोटेकी जड़, इनके चूर्णमें गुड़ मिलाके देनेसे बालकोंके विद्रधीरोगका नाश होता है॥ १८ ॥ पाठा, वेलगिरी, शिलाजीत, कुड़ाकी छाल, सेमलकी छाल इनको पीसि दूधके संग प्यानेसे बालकोंके अतिसारका नाश होता है ॥ १९ ॥ अर्जुनवृक्ष, कदंब, कूठ, गेरू, इनको शहदमें मिला अंजन करनेसे बालकोंके नेत्ररोगका नाश होता होता है ॥ २० ॥ लोध, रसांजन, आमला, गेरू इनको शहदके संग पीसकर अंजन करनेसे बालकोंके नेत्रका रोग नष्ट होता है ॥ २१ ॥

अथ बालकोंकी बुद्धिको बढानेवाले औषध ।

वचा ब्राह्मी च मण्डूकी घनकुष्ठं सनागरम् ॥ घृतेन प्रातर्देयश्च बालानां पुष्टिकारकम् ॥ २२ ॥ गुडूचिकापामार्गश्च विडङ्गं शंखपुष्पिका॥विष्णुक्रान्ता वचा पथ्या नागरञ्च शतावरी ॥ ॥२३॥चूर्णं घृतेन संमिश्रं लिहतो धीः प्रवर्त्तते ॥ त्रिभिर्दिनैः सहस्रकं श्लोकानामवधारयेत् ॥ २४ ॥

वच, ब्राह्मी, सूर्यफूलवेल, नागरमोथा, कूठ, इनको घृतमें मिला प्रातःकाल देनेसे बालकोंकी पुष्टि होती है ॥ २२ ॥ गिलोय, ऊंगा, वायविडंग, शंखपुष्पी, विष्णुक्रांता, वच, हरड़े, सूंठ, शतावरी ॥ २३ ॥ इनके चूर्णको घृतमें मिला चटानेसे बालककी बुद्धि बढती है । तीन दिनमें हजार श्लोकोंको धारण कर सकता है ॥ २४ ॥

ऊर्ध्वकेशी तथा सेना ह्यष्टौ चैताः प्रकीर्तिताः ॥३३॥ तथान्या-
श्च मतास्त्वं नामानि शृणु साम्प्रतम् ॥ रोहिणी विजया
काली कृत्तिका डाकिनी निशा॥३४॥ भूतकेशी कृशाङ्गी च
अष्टौ चैताः प्रकीर्तिताः । लक्षणञ्च प्रवक्ष्यामि शृणु पूजाबलि-
क्रमम् ॥३५॥ जातमात्रस्य बालस्य लोहिता नाम पूतना ॥
विस्रगन्धा लोहितश्च स रोदिति मुहुर्मुहुः॥३६॥ बलिं तस्याः
प्रवक्ष्यामि येन सौख्यं प्रजायते ॥ द्वितीये दिवसे बालं रेवती
नाम पूतना॥३७॥गृह्णाति लक्षणं तस्य रोदति कम्पते भृशम्॥
कृष्णमृन्मयीं प्रतिमां कृत्वा गन्धानुलेपनैः॥३८॥कृशरारालचू-
र्णं च दीपधूपैस्तथाक्षतैः॥ताम्बूलैः कृष्णसूत्रैश्च रात्रौ नैर्ऋतिके
क्षिपेत् ॥३९॥ तृतीये दिवसे प्राप्ते वायसी नाम पूतना ॥ तया
गृहीतमात्रेण रोदिति न पिबेत्स्तनम् ॥४०॥ ज्वरश्चैवातिसा-
रश्च काकवद्रुदति भृशम्॥ तस्या दध्योदनं पात्रे यवकृशरपो-
लिकाः ॥४१॥ ध्वजाभिः सगुडश्चैव कृष्णगन्धानुलेपनम् ॥
धूपदीपाक्षतैश्चैव मध्याह्ने बलिमाहरेत् ॥ ४२ ॥ चतुर्थे दिवसे
बालं कुमारी नाम पूतना ॥ गृह्णाति बालकस्तेन ज्वरेण परि-
तप्यते ॥ ४३ ॥ शून्यं विगाहते बालस्तन्मुखं परिशुष्यति ॥
भृशं स रोदिति तस्याः शृणु पूजाबलिक्रमम् ॥४४॥ पायसं
सघृतं खण्डं घृतस्य दीपकत्रयम् ॥ ४५ ॥ मृन्मयीं प्रतिमां
कृत्वा पुष्पधूपाक्षतैरपि ॥ कृतान्तदिशि मध्याह्ने बलिं दत्त्वा
सुखी भवेत् ॥४६॥ पञ्चमे दिवसे बालं शाकुनी नाम पूतना॥
गृह्णाति स तयाक्रान्तः स्तन्यं नाकर्षते शिशुः ॥४७॥ सज्वरो
वमति रौति कासमानोऽथ वेपते ॥४८॥ तस्याः शोभनिका
पूजा क्रियते तिललड्डुकैः ॥श्वेतगन्धाक्षतैर्धूपैः पूजयेन्मृ-
ण्मयाकृतिम् ॥४९॥ उत्तराशां समाश्रित्य पूर्वाह्णे बलिमाह-

रेत् ॥ षष्ठे च दिवसे मासे शिवा नाम कुमारिका ॥५०॥ रौति निःश्वसिति तेन वमति कम्पते तथा ॥ स्तन्यञ्च नाहरेद्वालो ज्वरातीसारपीडितः ॥५१ ॥ तस्यै बलिः प्रदेयश्च सतव्रीहिम- यश्चरुः॥पायसैर्दधिदीपैश्च पूज्या सा तिलचूर्णकैः॥५२॥ गन्ध- पुष्पाक्षतैर्धूपैःपूजयेन्मृण्मयाकृतिम्॥ऐशानीं दिशमाश्रित्याप- राह्णे बलिमाहरेत् ॥५३॥ सप्तमेऽह्नि पूतनाख्या ऊर्ध्वकेश्याःशि- शौ तथा॥पूर्ववद्दृश्यते चिह्नं तथैव बलिमाहरेत् ॥५४॥ अष्टमे दिवसे मासे सेना नाम च पूतना ॥ तया गृहीतः श्वसिति हस्तौ कम्पयते भृशम् ॥५५॥ तस्य दध्योदनं दद्यात्तिलचूर्ण- ञ्च पोलिकाम् ॥ धूपदीपगन्धपुष्पताम्बूलान्यक्षतानि च ॥ ॥ ५६ ॥ आग्नेयीं दिशमाश्रित्य प्रदोषे बलिमाहरेत् ॥ एवं क्रमेण मासस्य वर्षस्य बलिकर्म च ॥ ५७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने बालचिकित्सानाम चतुःपञ्चाशत्तमो- ऽध्यायः ॥ ५४ ॥ इति कौमारतन्त्रम् ॥

शून्य मकानमें और देवताओंके मंदिरमें तथा देवताओंकी मूर्त्तिके समीपमें, चौराहामें तथा नदीके संगममें भयसे क्षुभित बालक होजावे ॥ ३१ ॥ तत्र हे उत्तम वैद्य ! उस बालकको पूतना ग्रहण करलेती है ॥ ३२ ॥ और लोहिता, रेवती, ध्वांक्षी, कुमारी, शाकुनी, शिवा, ऊर्ध्वकेशी, सेना, ऐसे आठ प्रकारकी पूतना होती हैं ॥ ३३ ॥ और अन्य पूतनाओंके नाम तू अब मुझसे सुनो। रोहिणी, विजया, काली, कृत्तिका, डाकिनी, विशा ॥ ३४ ॥ भूत- केशी, कृशांगी, ये आठ कही हैं इनके लक्षण और पूजा, बलिके क्रमको कहते हैं सुनो ॥ ३५ ॥ जन्ममात्र लियेहुए बालकके लोहिता पूतना लगती है उससे बालकमें बुरी गंध आवे वारंवार रोवै ॥ ३६ ॥ उसकी बलिको कहेंगे इससे सुख होता है और जन्मसे दूसरेदिन बालकको रेवती नामवाली पूतना ग्रहण करती हैं ॥ ३७ ॥ इससे रोवे और वारं- वार कांपे तहां काली मृत्तिकाकी मूर्त्ति बनाके गंध चंदन ॥ ३८ ॥ खीचडी, रालका चूर्ण, दीप, धूप, अक्षत, नागरपान, काला सूत इनसे पूजन कर इनको नैर्ऋत दिशामें गेर देवे ॥ ३९ ॥ और जन्मसे तीसरे दिन बालकको वायसी नामवाली पूतना ग्रहण करती है इससे ग्रहण होनेसे बालक रोवे चूंची नहीं पीवे ॥ ४० ॥ ज्वर हो, अतिसार हो, वारंवार काककी तरह पुकारे उस पूतनाके वास्ते दही, चावल, जवोंकी कृशरा, पोलिका ॥ ४१ ॥

इनको पात्रमें थाल ध्वजाढांक उसमें गुड, काले पुष्प, काला चंदनआदि अनुलेप गेर, धूप, दीप, अक्षत इनसे युक्त कारि मध्याह्न समयमें इस बलिको देवे ॥ ४२ ॥ और चौथेदिन बालकको कुमारी नामकी पूतना ग्रहण करती है इससे बालकको अति ताप होती है ॥ ४३ ॥ और शून्य रहजावे तब पीडित हो और उसका मुख सूख जावे वारंवार रोवे ऐसी इसपूतनाकी पूजा और बलिको सुनो ॥ ४४ ॥ खीर, घृत, खांड, घृतके तीन दीप कर ॥ ४५ ॥ माटीकी मूर्त्ति, पुष्प, धूप, अक्षत, इन सबोंको मध्याह्न समयमें दक्षिणकी दिशामें स्थापित कर देवै ऐसे करनेसे बालक सुखी होता है ॥ ४६ ॥ और पाचवें दिन बालकको शाकुनी नामवाली पूतना ग्रहण करती है इससे ग्रसितहुआ बालक चूंचीको नहीं लेता है ॥ ४७॥ ज्वरसे युक्त हो वमन करे, रोवे खांसताहुआ कांपे ॥ ४८ ॥ इस पूतनाकी सुन्दर पूजा तिललड्डुओंसे करे और सफेदगंध, अक्षत, धूप इनसे मृत्तिकाकी मूर्त्ति बनाके उसका पूजन करे ॥ ४९ ॥ उत्तरकी दिशामें मध्याह्न समयसे पहिले इस बलिको देवे और छठे दिन शिवानामवाली पूतना बालकको ग्रहण करती है ॥ ५० ॥ इससे बालक रोवे अत्यंत श्वास लेवे वमन करे कभी कांपे और चूंची नहीं पीवे, ज्वर, अतिसार इनसे पीडीत होजावे ॥ ५१ ॥ इसकेवास्ते सातव्रीही धान्य और खीर, दही, दीपक, इनकी बलि देवे और तिलोंके चूर्णसे उसका पूजन करे ॥ ५२ ॥ और माटीकी मूर्त्तिका गंध पुष्प धूप अक्षत इनसे पूजन करे, ऐशान्यदिशामें तीसरे पहरमें इस बलिको देवे ॥ ५३ ॥ सातवेंदिन बालकको उर्ध्वकेशी नामवाली पूतना ग्रहण करती है जिसके लक्षण पहिली कही पूतनाके समान होते हैं और पहली कहीहुई बलि देवे ॥ ५४ ॥ और आठवें दिन सेनानामवाली पूतना ग्रहण करती है इससे ग्रसित हुआ बालक अत्यत श्वास लेवे, वारंवार हाथ कांपे ॥ ५५ ॥ इसकेवास्ते दही, चावल, तिलोंका चूर्ण, पोलिका, इनकी बलि देवे और धूप, दीप, अक्षत, गंध, पुष्प, नागरपान, इनसे पूजन कर ॥ ५६ ॥ अग्नि कोण दिशामें प्रदोष समयमें इस बलिको देवे इसीप्रकारके क्रमसे महीनोंकी और वर्षोंकी भी देवे ॥ ५७ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषटीकायां तृतीयस्थाने बालचिकित्सानाम चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५५.

अथ भूतविद्या।

आत्रेय उवाच ॥ शून्ये देवकुले श्मशानभुवि वा वीथीप्रतोलीतले रथ्याकारविहारशून्यनगरे चारामके चत्वरे ॥ जायन्ते क्षुभिते बलानि हृदये क्षुद्रग्रहाणां नरे ते चापि प्रथिता ग्रहा दश-

पिता वक्ष्याम्यतः साम्प्रतम् ॥ १ ॥ दश प्रोक्ता महाचार्य्यैः केश्चिदष्टविंशतिः ॥ दशग्रहाणां वक्ष्यामि चिकित्सां शृणु पुत्रक ॥ २ ॥ ऐन्द्राग्नेयौ यमश्चान्यो नैर्ऋतो वरुणो ग्रहः ॥ मरुतोऽपि कुवेरश्च ऐशान्यो ग्रहको ग्रहः ॥ ३ ॥ पैशाचिको ग्रहश्चान्यो दशैते ग्रहनायकाः ॥ आरामे च विहारे च देवस्थाने च यो भवेत् ॥ ४ ॥ ऐन्द्रग्रहं विजानीयात्तेन हर्षति गायति ॥ सकम्पश्चातिदर्पश्च उन्मादग्रस्त एव च ॥ ५ ॥ श्मशाने चत्वरे चैव गृह्णात्याग्नेयकुग्रहः ॥ तेनैव रोदित्यत्यर्थं पश्यति सर्वतो भयम् ॥ ६ ॥ युद्धभूमौ श्मशाने च यमश्चापि उदीर्य्यते ॥ तेन विह्वलो दीनश्च प्रेतवच्चष्टते नरः ॥ ७ ॥ वाल्मीकचत्वरे चत्ये गृह्णाति नैर्ऋतो ग्रहः ॥ तेनासौ वर्त्तते क्रोधे धावति मारयत्यपि ॥ ८ ॥ दृतनेत्रो विवर्णास्यो बलिष्ठो दुष्टचेतनः ॥ नदीतडागतीरे च चलति वारुणग्रहः ॥ ९ ॥ तेनास्यात्स्रवति लाला भृशं सूत्रयति नरः ॥ नेत्रस्रावश्च दृश्येत सूक्ष्मत्वमविलोक्यते ॥१०॥ वातमण्डलीमध्ये च गृह्णाति मारुतग्रहः ॥ तेनास्यं शोषयेद्दीनः रोदित्यथ च कम्पते ॥ ११ ॥ विह्वलः श्रान्तनेत्रश्च निषीदति क्षुधातुरः ॥ हर्षगर्वाभिमाने च गृह्णाति यक्षराड् ग्रहः॥१२॥तेन गर्वोद्धतश्चैव तथालंकारसुप्रियः ॥ १३ ॥ देवस्थाने च रम्ये च शिवग्रहश्छलप्रदः ॥ भस्माङ्गरागं कुरुते भ्रमते च दिगम्बरः ॥१४॥ शिवध्यानरतो नित्यं गीतवाद्यप्रियस्तु सः ॥ १५ ॥ शून्यागारे शून्यकूपे ग्रहको ग्रहनामकः ॥ क्षुधार्त्तो न तृषार्त्तश्च कथयन्न शृणोति च ॥ १६ ॥ उच्छिष्टे वाशुचौ यस्य छलति पिशाचग्रहः ॥ तेन नृत्यति रौति वा गायति जल्पति तथा ॥ १७ ॥ मत्तवद्भ्रमते नग्नो लालास्रावः क्षुधादिकः॥एवं दशग्रहाणाञ्च लक्षणं कथितं

स्या ॥१८॥ वक्ष्याम्यतः प्रतीकारं शृणु पुत्र समासतः॥जलस्नानं सातिशयं तथा च बलिकर्म च॥१९॥पूजां यथावाच्यमानां तेन संलभते सुखम् ॥२०॥ एलाजातिफलं मधूकयुगलं रास्ना तथा खादिरःकर्पूरामलकी जटा बहुसुता घोण्टाम्लसारास्तथा ॥ सीसं पारदसारदाडिमफलं मद्यैश्च संमीलितं प्रत्येकं दधिदुग्धलाङ्गलरसैर्युक्तं समं कल्कितम् ॥२१॥ रसेन भावितं तस्य गुटिका च प्रकल्पिता॥जयेच्चन्द्रप्रभा नाम तीव्रान्मोहादिकान्गदान् ॥२२॥शुण्ठी मधुकसारञ्च चव्यं किंशुकमेव च॥ वचाहिंगुसमायुक्तं बस्तमूत्रेण संयुतम्॥देयं ग्रहविकारघ्नं ग्रहाणां नाशनं परम् ॥ २३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-देवताके शून्य मंदिरमें, स्मशानभूमिमें, मार्गमें और उजड़े पड़े हुवे शहर ग्राम आदिककी गलियों बगीचेमें चौराहेमें ॥ १ ॥ मनमें त्रास होनेसे बलवंत ग्रह लगजाते हैं,वे बलवंत ग्रह दश प्रकारके होते हैं उनको अब कहते हैं ॥ २ ॥ बड़े अचार्योंने दश ग्रह कहे हैं और छ इक्कीस कहते हैं हे पुत्र ! उन दश ग्रहोंकी चिकित्साको कहते हैं सुनो ॥ ३ ॥ ऐंद्र, आग्नेय, धर्मराज, राक्षस, वरुण, वायु, कुबेर, ऐशान्य ग्रहक ॥ ४ ॥ पैशाचिक ऐसे ये दश ग्रहनायक हैं जो बगीचेमें तथा क्रीडास्थानमें देवताके मंदिरमें मालुम हुआ हो ॥ ५ ॥ वह ऐंद्रग्रह जानलेना उससे हर्ष हो, कभी गावे, कभी अभिमानहो, कभी नहींहो और उन्मादसे ग्रस्तहुआ रहे ॥ ६ ॥ और आग्नेयग्रह स्मशान, चूराहा, इनस्थानोंमें ग्रहण करता है इससे अत्यंत रोवे चारों ओर भय सहित देखे ॥ ७ ॥ और युद्धकी भूमि, स्मशान, इनमें यमग्रह लगता है इससे विह्वल होजावे दीन हो और प्रेत सरीखी चेष्टा करै ॥ ८ ॥ बँबई चौराहा यज्ञस्थान इनमें राक्षसग्रह लगता है इससे सबसे वैर करता हुआ रहे भाजै किसीको मारदेवै ॥ ९ ॥ और वरुणग्रहसे ग्रसित हुआ मनुष्यके गर्वित नेत्र रहें वर्ण और मुख बिगडा हुआ रहे, बलवान् हो, दुष्टचित्त हो, नदी तालावके तीरपै चलता हुआ रहे ॥ १० ॥ लाल गिरे, बहुत ज्यादै मूते और नेत्रोंमें जल भरा रहै गूंगासरीखा दीखै ॥ ११ ॥ और जो वायुके भंभूलेमें पीड़ित होवे मरुतग्रहसे पीडित जानना उससे मुखमें शोषहो दीनहो कांपे और रोवे ॥ १२ ॥ और विह्वल हो नेत्रोंमें हारसी रहै, पीड़ाहो क्षुधासे पीडितहो और कुबेर ग्रहसे ग्रसित वह होता है ॥ १३ ॥ जोकि हर्ष गर्व अभिमान इनसे युक्त रहै उस पुरुषके गर्भ उठारहे और गहिने पहरनेमें प्रियरहे ॥ १४ ॥ देबताके रमणीक स्थानमें शिवग्रहकी पीड़ा होती है इससे शरीरपे

भस्म लगावे और नक्षत्रोंको नमता रहे ॥ १५ ॥ नित्य शिवजीके स्थानमें रत रहे, गीत-बाजा इन्होंमें रत रहै ॥ १६ ॥ और शून्य मकान, शून्य कूवा इनमें ग्रहकनाम ग्रह पीडा करता है और क्षुधातृषासे युक्त नहीं हो और कुटिलता करे सुने नहीं ॥ १७ ॥ और झूठाहो अथवा अशुद्धहो तब पिशाच ग्रह पीडा करता है इससे नाचे और गावे और रोवे और शब्द करे ॥ १८ ॥ और नक्षत्रोंके मदोन्मत्तकी तरह भ्रमें लाल गिरे क्षुधा आदि-कोंसे पीडित हो इस प्रकारसे मैंने दश ग्रहोंके लक्षण कह दिये ॥ १९ ॥ अब इनकी चिकित्साको मेंउन नामसे सुनो। अत्यन्त जलमें स्नान और बलि देनेका कर्म कही हुई पूजा ऐसे करनेसे सुख होता है ॥ २० ॥ और इलायची, जायफल, मुलहटी, महुआ, रास्ना, खैर, कपूर, आंवला, जटामांसी, महाशतावरी, सुपारी, बिजौरा, सीसा, पारा, चिरौंजी, अनारदाना, मदिरा इनको समान भागले कल्क बना ॥२१॥ पीछे दही, दूध, कलहारीका रस इनमें भावनादे तिसकी गोली बना लेवे यह चंद्रप्रभा नामवाली गोली मोह अज्ञान आदिक तीक्ष्णरोगोंको नाशती हैं ॥ २२ ॥ सूंठ, मधुकसार, चव्य, केश, वच, हींग इनको बकराके मूत्रके साथ देना इससे ग्रहोंका नाश होताहै यह ग्रहविकारनाशक उपाय है ॥ २३ ॥

अथ ग्रहदोषनाशक धूप।

विडालविष्ठाहिममोचनिम्बमयूरपिच्छं समराजिका च॥निर्मो-कपिण्डीतकसर्जमोचधूपं घृताक्तं ग्रहदोषशान्त्यै॥२४॥ चेतना नाम गुटिका तथा ब्राह्मीघृतं स्मृतम् ॥ अपस्मारे प्रयुक्तानि तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥ २५ ॥

बिलावकी विष्ठा, कपूर, मोचरस, नींब, मोरका चन्दा इन सबोंके समान राई और सांपकी कांचली, मैनफल, राल, मोखावृक्ष इनकी धूप बना उसमें घृत मिला धूप देनेसे ग्रहदोषकी शांति होती है ॥ २४ ॥ पहली कही हुई चेतना नामवाली गुटिका और ब्राह्मीघृत और अपस्मार रोगमें कहे हुए अन्य औषध इन सबोंको यहां ग्रहदोषमें देवे ॥ २५॥

अथ भूतेश्वरमन्त्र।

गुग्गुलुं समधुघृतं तेन धूपेन धूपयेत् ॥ मन्त्रेण तेन हारीत तर्जयेद्ग्रहपीडितम् ॥२६॥ओं नमो भगवते भूतेश्वराय कलि-कलिनखाय रौद्रदंष्ट्राकरालवक्त्राय त्रिनयनधगधगितपिशङ्ग-ललाटनेत्राय तीव्रकोपानलामिततेजसे पाशशूलखट्वाङ्गडम-रुकधनुर्बाणमुद्गराभयदण्डत्रासमुद्राव्ययदसंयदार्द्रदण्डमण्डि-

ताय कपिलजटाजूटार्द्धचन्द्रधारिणे भस्मरागरञ्जितविग्रहाय उग्रफणिकालकूटाटोपमण्डितकण्ठदेशाय जय जय भूतनाथामरात्मने रूपं दर्शय दर्शय नृत्य नृत्य चल चल पाशेन बन्ध बन्ध हुङ्कारेण त्रासय त्रासय वज्रदण्डेन हन हन निशितखड्गेन छिन्धि छिन्धि शूलाग्रेण भिन्धि भिन्धि मुद्गरेण चूर्णय चूर्णय सर्वग्रहाणामावेशयावेशय स्वाहा ॥ २७ ॥

गूगल, शहद, घृत इन्होंकी धूप बनाके धूपित करे और हे हारीत ! ग्रहपीडित पुरुषको इस मन्त्रसे ताडना दे ॥ २६ ॥ ओं नमो भगवते भूतेश्वराय कलिकलिनखाय रौद्रदंष्ट्राकरालवक्त्राय त्रिनयनधगधगितपिशंगललाटनेत्राय तीव्रकोपानलामिततेजसे पाशशूलखड्गाय डमरुकधनुर्बाणमुद्गराभयदण्डत्रासमुद्राव्ययदसंयदार्द्रदंडमंडिताय कपिलजटाजूटार्द्धचन्द्रधारिणे भस्मरागरंजितविग्रहाय उग्रफणि कालकूटाटोपमंडितकंठदेशाय जय जय भूतनाथामरात्मने रूपं दर्शय दर्शय नृत्य नृत्य चल चल पाशेन बन्ध बन्ध हुंकारेण त्रासय त्रासय वज्रदण्डेन हन हन, निशितखड्गेन छिन्धि छिन्धि शूलाग्रेण भिन्धि भिन्धि मुद्गरेण चूर्णय चूर्णय सर्वग्रहाणामावेशयावेशय स्वाहा ॥ २७ ॥

अथ आवेशमन्त्र ।

ग्रहाविष्टेन चेत्तस्मै दीयते बलिरुत्तमः ॥ मुक्तो भवति तस्माच्च संशयो नास्ति तत्र च ॥ २८ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भूतविद्यानाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

जिस पुरुषमें ग्रह प्रवेश होरहाहो उसके इस मंत्रको पढ़ ताड़ना दे जो ग्रह प्रवेश मालूम होता हो उसी ग्रहके वास्ते बलिदान देनेसे वह पुरुष ग्रहसे छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ २८ ॥

इति बेरीनिवा० वैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारी० भाषाटीकायां तृतीयस्थाने भूतविद्यानाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५६.

अथ विषतन्त्र ।

आत्रेय उवाच ॥ द्विविधं विषमुद्दिष्टं स्थावरं जङ्गमं भिषक् ॥ शृङ्गिको वत्सनाभश्च तथा च शार्ङ्गवैरिकः ॥ १ ॥ दारकः कालकूटश्च शंखः स्यात्सत्सुकन्दुकः ॥ हालाहलश्चाष्टभिश्चतथा-

ष्टौ विषजातयः॥२॥ शृङ्गिकः कृष्णवर्णश्च वत्सनाभश्च पीतकः ॥ शुण्ठीसमानवर्णश्च शार्ङ्गवेरः स उच्यते ॥३॥ दारको हरिवर्णश्च कालकूटो मधुप्रभः ॥शंखश्चातिविषाभासः पीताभः सत्तुकन्दुकः ॥४॥ हालाहलः कृष्णवर्णश्चाष्टौ चापि विजातयः ॥ पीतं विषं नरं दृष्ट्वा सद्यो वमनमुत्तमम्॥५ ॥ यावत्पीतातिविषश्च तावत्तु वमयेत्सदा ॥ सिञ्चेच्छीताम्भसा वक्त्रं मन्त्रपूतेन सत्वरम् ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं–हे वैद्य ! स्थावर और जंगम दो प्रकारका विष कहा है । शृंगिक, वत्सनाभ, शृंगवेरक ॥ १ ॥ दारक, कालकूट, शंख, सत्तुकंदुक, हालाहल ऐसे आठ प्रकारके विष कहे हैं ॥ २ ॥ शृंगिक विष काला वर्णवाला, वत्सनाभ विष पीला होता है और जो सोंठके समान आकार वर्णवालाहो वह शृंगवेरक विष होता है॥३ ॥ दारक विष हरावर्णवाला और कालकूट विष शहद समान वर्णवाला होता है और शंख विष अतीसके समान होता है और सत्तुकन्दुक विष पीला होता है॥ ४ ॥हालाहल विष कालावर्णवाला होता है ऐसे आठ प्रकारकी विष जाति कही हैं जहर पीये हुए मनुष्यको देखि शीघ्र ही वमन करावे ॥ ५ ॥ जबतक पिये हुए जहरको गेरे तबतक वमन कराता ही रहे और मन्त्रसे पवित्र हुआ शीतल जलसे उसके मुखको सींचे ॥ ६ ॥

अथ मुखसिंचन मन्त्र ।

ॐ हर हर नीलकंठ ! अमृतं प्लावय प्लावय हुंकारेण विषं ग्रस ग्रस क्लींकारेण हर हर ह्रौंकारेण अमृतं प्लावय प्लावय हर हर नास्ति विष उच्छिरे उच्छिरे ॥ ७ ॥

ॐ हर हर नीलकंठ अमृतं प्लावय प्लावय हुंकारेण विषं ग्रस ग्रस क्लींकारेण हर हर ह्रौंकारेण अमृतं प्लावय प्लावय नास्ति विष उच्छिरे उच्छिरे ॥ ७ ॥

अथ कानमें जपनेके वास्ते मंत्र ।

ॐ नमो हर हर नीलग्रीव श्वेताङ्गसङ्गजटाग्रमण्डितखण्डेन्दुस्फूर्तमन्त्ररूपाय विषमुपसंहर उपसंहर हर २ नास्ति विष २ उच्छिरे २ इति कर्णजपमन्त्रेण वारंवारं तालुमुखं सिञ्चेच्छीतवारिणा ॥ ८ ॥

ॐ नमो हर हर नीलग्रीव श्वेतांगसंगजटाग्रमंडितखंडेन्दुस्फूर्तमंत्ररूपाय विषमुपसंहर उपसं- हर हर ३ नास्तिविष ३ उच्छिरे ३ इस कर्णेजपमंत्रसे वारंवार तालुवाको और मुखको शीतल जलसे सींचे ॥ ८ ॥

अथ विषशमन औषध।

ताण्डुलीयकमूलानि पिष्ट्वा चोष्णेन वारिणा॥ पीतं पीतविषं हन्ति वमने लाघवं भवेत् ॥ ९ ॥ काकजङ्घा सहचरीमूलं चैड- गजस्य च ॥ कदरं कार्मुकञ्चापि त्वचं पीतोष्णवारिणा ॥ पीतं तच्च विषं घोरं नाशयत्याश्वसंशयः ॥ १० ॥ खदिरस्य च मूलञ्च तथा निम्बफलानि च ॥ उष्णोदकेन पीतानि जयेयुस्तत्क्षणाद्वि- षम् ॥ ११ ॥ वत्साह्वश्चाश्वगन्धाश्च पीत्वा चोष्णेन वारिणा ॥ प्रपीतञ्च विषं पाति चाशु नरस्य वेदवाक् ॥ १२ ॥ अथ प्रधान- रक्तस्य क्षते रक्तं विषस्य च ॥ तस्य वक्ष्यामि भैषज्यं येन सम्पद्यते सुखम् ॥ १३ ॥ मर्मस्थाने मर्मगतं तदसाध्यं भवेन्म- तम् ॥ साध्यञ्च तत्त्वग्रक्तस्थं मांसस्थं कष्टसाध्यकम् ॥ १४ ॥ असाध्यं धातुसंप्राप्तं सखे वक्ष्यामि भेषजम् ॥ विषलिप्तं नरं ज्ञात्वा ततः कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ १५ ॥ रजनीयुग्माम्लकेन काञ्जिकेन तु पेषितम् ॥ लेपेन च विषं हन्ति प्रलिप्तं नात्र संशयः ॥ १६ ॥ मातुलुङ्गरसेनापि धावनं काञ्जिकेन वा ॥ अतिशीतेन तोयेन प्रलिप्तं नात्र संशयः ॥ १७ ॥

चौलाईकी जड़को गरम जलके संग पीसि पीनेसे पीया हुआ विषका नाश होता है और वमन होके हलका होता है ॥ ९ ॥ कावली, पीला, कोरंटा, पुवाड़की जड़, सफेद खैरकी छाल इनको गरम जलके संग पीनेसे घोर विषका नाश होता है ॥ १० ॥ खैरकी जड, नींबके फल, निंबोली, इनको गरम जलके संग पीनेसे शीघ्र ही विषका नाश होता है ॥ ११ ॥ कूडाकी छाल, असगंध इनको गरम जलके संग पीनेसे पीया हुआ विष दूर होता है ॥ १२ ॥ इससे अनंतर जो रक्तमें प्रधान उस विषके वास्ते उसकी औषधोंको कहेंगे उससे सुख होता है ॥ १३ ॥ जो मर्मस्थानमें विष प्राप्त हो जावे तब असाध्य जानना और त्वचा रक्त इनमें स्थित हुआ विष कष्टसाध्य होता है ॥ १४ ॥ और धातुमें प्राप्त हुआ विष असाध्य होता है, हे प्रिय ! उनको

औषधोंको कहते हैं विषसे लिये हुए मनुष्यको जानके पीछे उसकी चिकित्सा करे ॥ १५ ॥ दोनों हलदियोंको बिजौराके रसमें और कांजीमें पीस लेप करनेसे शरीरके लिपा हुआ विषका नाश होता है ॥ १६ ॥ बिजौराके रससे अथवा कांजीसे तथा शीतल जलसे धोवनेसे शरीरके लिपा हुआ विषका नाश होता है ॥ १७ ॥

अथ जंगमविषकी चिकित्सा।

विषं जङ्गममित्युक्तमष्टधा भिषगुत्तम। दर्वीकरा मण्डलिनो राजिमन्तश्च गुण्डसाः ॥ १८ ॥ वृश्चिको गोरकश्चापि तथा च खण्डबिन्दुकः ॥ अलर्कमूषमार्जारविषं प्रोक्तमनेकधा ॥ १९ ॥ दर्वीकराणां सर्वेषामुक्तं वातात्मकं विषम् ॥ मण्डलीनाञ्च सर्वेषां पैत्तिकं विषमुच्यते ॥ २० ॥ राजिमन्तश्च ये प्रोक्तास्तेऽपि कफात्मका विषाः ॥ विचित्रगमनं मूर्ध्नः पीडनं चातिदुर्भरम् ॥ ॥ २१ ॥ हृदये व्यथनं यस्य तमसाध्यं वदन्ति च ॥ नासारक्तस्रुतिर्यस्य नेत्रे स्रावश्च दृश्यते ॥ २२ ॥ जडा च जायते जिह्वा तमसाध्यं विदुर्बुधाः ॥ यस्य लोमानि शीर्य्यन्ते पीताभं शरीरं भवेत् ॥ २३ ॥ न स्थिरं मस्तकं यस्य तमसाध्यं भिषग्वर ॥ एभिर्विरहितं दृष्ट्वा कुर्य्यात्तस्य प्रतिक्रियाम् ॥ २४ ॥

हे उत्तम वैद्य ! जंगम विष आठ प्रकारका होता है। दर्वीकर सर्प, मंडलि, राजिमंत सर्प, गुंडस ॥ १८ ॥ वृश्चिक, गोरक, खंडबिंदुक, ऐसे इन सर्पाके विष कहे हैं और कुत्ता, मूसा, बिलाव इत्यादिकोंके अनेक विष कहे हैं ॥ १९ ॥ दर्वीकर अर्थात् करछी सरीखे फणवाले सब सर्पोंका वातवाला विष होता है, मंडलवाले सर्पोंका पित्तवाला विष होता है ॥ २० ॥ और जो राजिमंत अर्थात् रेखावाले सर्प कहे हैं उनका कफवाला विष होता है और जिस पुरुषका विचित्र गमन हो और मस्तकमें अत्यंत दुर्भर पीडा हो ॥ २१ ॥ जिसके हृदामें पीड़ाहो विषवाले उस मनुष्यको असाध्य जाने और जिसकी नासिकासे रक्त झिरे नेत्रोंमें पानी भरा रहे ॥ २२ ॥ जिह्वा जड होजावे उसको वैद्यजन असाध्य कहते हैं और जिसके रोम विखर जावें और शरीर पीला होजावे ॥ २३ ॥ मस्तक स्थिर नहीं हो हे उत्तमवैद्य ! उसको असाध्य जाने और जो पुरुष इन लक्षणोंसे रहित हो उसका इलाज करे ॥ २४ ॥

अथ विषबंधनमंत्रः।

ॐ नमो भगवते सुग्रीवाय सकलविषोपद्रवशमनाय उग्रकाल-

कूटविषकवलिने विषं बन्ध बन्ध हर हर भगवतोनीलकण्ठस्याज्ञा ॥ ॐ नमो हर हर विषं संहर संहर अमृतं प्लावय प्लावय नासि अरेरे विष नीलपर्वतं गच्छ गच्छ नास्ति विषम् ॐ हाहा ऊचिरे ३॥ अनेन मंत्रेण मुखमुदकेन त्रासयेत् ॥ ॐ नमोऽरेरे हंस अमृतं पश्य पश्य ॥ २५ ॥

ॐ नमो भगवते सुग्रीवाय सकलविषोपद्रवशमनाय उग्रकालकूटविषकवलिने विषं बंध २ हर २ भगवतो नीलकंठस्याज्ञा । ॐ नमो हरहर विषं संहर संहर अमृतं प्लावय प्लावय नासि अरेरे विष ! नीलपर्वतं गच्छ गच्छ नास्ति विषम् ॐ हाहा ऊचिरे ३ ॥ इस मंत्रको तीनवार पढ मुखपे जलके छिड़के मारे ॐ नमो अरेरे हंस ! अमृतं पश्य पश्य ॥ २५ ॥ इति मंत्रः ॥

अथ लेप ।

जयकूटं वचाकुष्ठं सैन्धवं मगधा निशा ॥ लेपो दष्टव्रणे प्रोक्तो विषं हन्ति सुदारुणम् ॥ २६ ॥ सुरसा रजनी व्योषं यवानी पारिभद्रकम् ॥ सर्पदष्टव्रणे प्रोक्तं लेपनं विषशान्तये ॥ २७ ॥ कुष्ठं मुस्ता अजाजी च विडङ्गं मधुयष्टिका ॥ गुञ्जामूलं शीततोयैर्लेपो मण्डलिना हितः ॥२८॥ राजिमन्तो विषा यस्य गृहधूमं वचा घनम् ॥ सर्षपाश्च यवानी च पिचुमन्दफलत्रयम् ॥ लेपनं राजिमताञ्चैव व्रणतैलेन संयुतम् ॥ २९ ॥

इति राजिमतां लेपः।

लोहाका चूर्ण, वच, कूठ, सैंधानमक, पीपल, हलदी, इनका लेप दष्टव्रणमें कहा है यह दारुण विषको नाशता है ॥ २६॥ और ब्राह्मी, हलदी, सोंठ, मिरच, पीपली, अजवायन, नींब इनका लेप सर्पसे उपजा दष्टव्रणपे करना हित कहा है विषकी शांति होती है ॥ २७ ॥ कूठ, नागरमोथा, जीरा, वायविडंग, मुलहटी, चिरमटीकी जड इनको शीतल जलमें पीसि लेप करनेसे मंडलवाले सर्पोंके विषका नाश होता है ॥ २८ ॥ रेखावाले सर्पोंके विषके नाशकेवास्ते घरका धूँवा, वच, नागरमोथा, शिरसम, अजवायन, नींब, त्रिफला इनको व्रणमें कहेहुए तेलमें पीसि लेप करे ॥ २९ ॥

सटीकिरातं सकटुत्रयं च वचाविशालापिचुमन्दकञ्च॥पथ्यायवानीरजनीद्वयञ्च दष्टव्रणे लेपनमेव शस्तम् ॥ ३० ॥ स्थावरं

जङ्गमं वापि विषं जग्धं भिषग्वर ॥ शीघ्रं दद्याद्व्यथां गुर्वीं प्रोक्तञ्च नरसत्तमैः ॥ ३१ ॥

कचूर, चिरायता, सोंठ, मिरच, पीपली, वच, इंद्रायण, नींब, हरडै, अजवायन, दोनों हलदी इनका लेप दुष्टव्रणमें करना श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥ हे उत्तम वैद्य ! स्थावर अथवा जंगम भक्षण कियाहुआ विष शीघ्रही अत्यंत पीड़ा करता है ऐसा श्रेष्ठ मनुष्योंने कहा है ॥ ३१ ॥

अथ मंत्र।

ॐ नमो भगवते शिरसिशिखराय अमृतधाराधौतसकलविग्रहाय अमृतकुम्भपरितोऽमृतं प्लावय प्लावय स्वाहा ॥ ३२ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने विषतन्त्रं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

ॐ नमो भगवते शिरसिशिखराय अमृतधाराधौतसकलविग्रहाय अमृतकुंभपरितोमृतं प्लावय प्लावय स्वाहा ॥ ३२ ॥ इति वेरीनिवासिवुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने विषतंत्रनाम षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५७.

अथ भिन्न अर्थात् शस्त्रआदिसे टूटेहुएकी चिकित्सा।

आत्रेय उवाच ॥ छिन्नं भिन्नं तथा भग्नं घृष्टं पिष्टं तथैव च ॥ आस्फालितं सम्प्रहारः संघातः कथ्यते बुधैः ॥१॥ शस्त्रभिन्नं नरं दृष्ट्वा कर्त्तव्या च प्रतिक्रिया ॥ २ ॥ अस्थिस्थं विद्यते मांसमस्थि संच्छिद्यते यदि॥ शाखाप्रशाखयोर्वापि छिन्नं तच्च निगद्यते॥३॥असन्धौ परिसंच्छिन्नं तदसाध्यं विनिर्दिशेत् ॥ खड्गार्द्धचन्द्रपरशुच्छिन्नं तु कथितं सदा॥४॥तस्यादौ चारणालेपधावनं परिकीर्त्तितम् ॥ पिचुना तिलतैलेन शीघ्रं संस्वेदनान्वितम् ॥५॥यावद्धै स्रवती रक्तं तावत्तैलेन चाभ्यञ्जेत्॥रक्ते वै विकृतिं प्राप्ते तैलेनाभ्यञ्जनं मतम् ॥६॥शोफाद्याश्च प्रजायन्ते

बहुलोपद्रवा व्रणे ॥ सन्धौ छिन्नं नरं दृष्ट्वा सेचयेत्तप्तवारिणा ॥ ७ ॥ सञ्चितस्य व्रणस्यापि प्रशस्तं पिचुतैलकम्॥पूये वापि विनिर्याति निम्बारग्वधपत्रकम् ॥८॥ गुडेन पथ्यां पिष्ट्वा च लेपनं पूयशोधनम् ॥ दिनत्रये विशुद्धेऽपि तत्रैव लेपनं हितम् ॥९॥ धवार्जुनकदम्बस्य वृक्षोदुम्बरयोस्त्वचम् ॥ जलेन पिष्ट्वा लेपश्च तेन संरोहते व्रणः ॥ १० ॥

आत्रेयजी कहते हैं—छिन्न कटाहुआ, भिन्न टूटाहुआ, भग्न फूटाहुआ, घृष्ट घिसाहुआ, पिष्ट पिसाहुआ, आस्फालित फटा हुआ, संप्रहार, संघात, लाठी आदिकी चोट ऐसे ये हाड आदिके टूटनेके रोग होते हैं ॥ १ ॥ शस्त्रसे कटे हुए मनुष्यको देखि उसकी क्रिया करे ॥ ॥ २ ॥ अस्थिमें स्थित हुआ मांसभेदन होजावे अथवा शाखा प्रशाखाओंकी अस्थि छेदन होजावे वह छिन्न कहाता है ॥ ३ ॥ जो संधिके विना अन्य जगहकी हड्डी टूट जावे वह असाध्य कहाती है,खड्ग अर्धचंद्रमाके समान शस्त्र फरशा इनसे छिन्न अस्थि कही है ॥४॥ उसकी आदिमें चारण, लेप, धोवना, ये कर्म करे फिर नींब और तिलोंके तेलसे रुईके फोहे करके चोपरिके पसीना दिवावे॥५॥जबतक रुधिर गिरे तबतक तेलसे चोपरता रहै और जब रक्त विकारको प्राप्त होजाता है तब तेलसे मालिस करना हित कहा है ॥ ६ ॥ और व्रणपै शोजा आदिक बहुतसे उपद्रव होजाते हैं, संधिमें छिन्न हुए मनुष्यको देखिके गरम जलसे सेक करे ॥ ७ ॥ फिर गरम जलसे सेक करलेवे तब फ़ोहेसे तेल लगाना श्रेष्ठ है और जो पीव निकलती हो तो नींब, अमलतास इनके पत्ते बांधने श्रेष्ठ है ॥ ८ ॥ और हरडोंको पीस गुडके संग लेप करनेसे पीवकी शुद्धि होती है । तीन दिनतक शुद्ध होजावे तब इन आगे कही औषधोंका लेप करना हित है ॥ ९ ॥ धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब, पिलखनवृक्ष, गूलर इनकी छालको जलमें पीस लेप करनेसे घाव भरता है ॥ १० ॥

अथ भिन्नअस्थिकी चिकित्सा ।

शक्तिशूलैश्च बाणैश्च भल्लैर्वा खड्गतोमरैः॥ क्षुरिकामुखधाराभिर्भिन्नं तत्कथ्यते भिषक् ॥ ११ ॥ साध्यममर्मजं प्रोक्तं मर्मस्थं तन्न सिध्यति॥अपामार्गरसेनापि तथा कूष्माण्डकस्य च॥१२॥ धावनं काञ्जिकेनापि प्रशस्तं कथ्यते बुधैः ॥ तिलतैलेन चाभ्यङ्गो हितः स्यात्स्वस्थभिन्नके ॥ लेपनञ्च प्रयोक्तव्यं पूर्वोक्तञ्च हितावहम् ॥ १३ ॥

हे वैद्य ! शक्ति, शूल, बाण, भाला, तलवार, तोमर शस्त्र, छुरी, खांडा, जिनके नोकहों उनसे भेदन हुआ हाड भिन्न कहा है ॥ ११ ॥ जो मर्ममें नहीं लगा हो वह साध्य कहा है और मर्मस्थानमें लगा हुआ वह असाध्य कहा है वहां ऊंगाके रससे अथवा कोहलाके रससे तथा कांजीसे धोवना श्रेष्ठ कहा है ॥ १२ ॥ और वैद्योंने कांजीसे धोना श्रेष्ठ कहा है और भिन्न हुए हाडमें तिलोंके तेलकी मालिस करनी हित कही है और पहले कहा हुआ लेप करना हित कहा है ॥ १३ ॥

अथ शल्योद्धारचिकित्सा।

उरसि शिरसि शंखे कक्षयोः पादयोर्वा त्रिकजठरमुखाग्रे नेत्रयोः कर्णयोर्वा ॥ भवति हि यदि शल्यं कष्टसाध्यञ्च शस्त्रैर्भवति यदि न गूढं भेषजैस्तैर्विधिज्ञ ॥ १४ ॥ शाखाप्रशाखयोर्यच्च मर्मस्थं तन्न सिध्यति॥यन्त्रशस्त्रप्रतीकारैः शल्यं प्राज्ञः समुद्धरेत् ॥१५॥ द्वादशैव तु यन्त्राणि शस्त्राणि द्वादशैव तु ॥ चत्वारि च प्रबन्धानां शल्योद्धारे विनिर्दिशेत् ॥१६ ॥गोधामुखं वज्रमुखं च नाम संदंशचक्राकृति कंकपादम् ॥ अथानकं शृङ्गकुण्डलञ्च श्रीवत्ससौवत्तिकपञ्चवक्रम्॥ १७ ॥ द्वादशैतानि यन्त्राणि कथितानि भिषग्वरैः॥ अथ शस्त्राणि प्रोक्तानि नामानि च पृथक्पृथक्॥ १८ ॥ अर्द्धचन्द्रं व्रीहिमुखं कंकपत्रं कुठारिका ॥ करवीरकपत्रञ्च शलाकाकारपत्रकम् ॥१९॥ बडिशं गृध्रपादञ्च शूली च घनमुद्गरम् ॥ शस्त्राण्येतानि प्रोक्तानि शल्योद्धारे पृथक्पृथक् ॥२०॥ अतिगुप्तं च शल्यञ्च संदंशेन समुद्धरेत् ॥ भिन्नेन तत्प्रतीकारः कर्त्तव्यश्च सुधीमता ॥ २१ ॥ गम्भीरशल्यं ज्ञात्वा च प्रतीकारञ्च कारयेत् ॥ पाटनं कुशपत्रेण चोद्धरेत्कुङ्कुमेन च ॥ २२ ॥ भिन्नवत्प्रतीकारश्च कर्त्तव्यश्च सुधीमता ॥ २३ ॥ यत्र शोफो भवेत्तीव्रस्तत्र शल्यं विनश्यति ॥ सशल्यं सघनं चैव रुजावन्तं निरूप्य च ॥ २४ ॥ तत्र योग्यं च यंत्रं च यन्त्रशस्त्रञ्च योग्यकम् ॥ तत्तत्र योजनीयञ्च ऊहापोह-

विशारदैः ॥ २९ ॥ या वेदना शल्यनिपातजाता तीव्रा शरीरे प्रतनोति जन्तोः ॥ घृतेन संशान्तिमुपैति तिक्ता कोष्णेन यष्टीमधुनान्वितेन ॥ २६ ॥ सर्जार्जुनोदुम्बरमर्कटीनां रोध्रं समङ्गासुरसासमेतम् ॥ जलेन पिष्ट्वा प्रतिलेपनाय शल्योद्धृतौ सौख्यमिदं करोति ॥ २७ ॥ शेषा क्रिया च पूर्वोक्ता छिन्ने भिन्ने हिता तु या ॥ कर्त्तव्यो वालुकास्वेदो घटीस्वेदश्च तत्र च ॥ २८ ॥

छाती, शिर, कनपटी, दोनों कांख, दोनों पैर, कटिस्थान, उदर, मुख इनके आगे नेत्र कानमें यदि बाण आदि शल्य हो तो शस्त्रोंसेभी कष्टसाध्य कही है, जो अधिक भीतर नहीं होवे तो औषधोंसे निकल जाती है ॥ १४ ॥ शाखा प्रशाखा हाथ पैर अंगुली आदिस्थान मर्मस्थान, इनमें लगी हुई शल्य नहीं निकलती है और यंत्र शस्त्रोंके प्रकार इनसे बुद्धिमान् पुरुष शल्यको निकासे ॥ १५ ॥ बारह यंत्र हैं और बारह प्रकारके शस्त्र कहे हैं और शल्योद्धारमें चार प्रबंध अर्थात् बंधन आदिक पट्टी कही है ॥ १६ ॥ गोधामुख, वज्रमुख, संदंश, चक्राकृति, कंकपाद, आनक, शृंगक, कुंडल, श्रीवत्स, सौवस्तिक, पंचवक्र ॥ १७ ॥ ऐसे ये बारह प्रकारके यंत्र, वैद्यजनोंने कहे हैं और जुदे २ नामोंवाले बारह प्रकारके शस्त्र कहे हैं ॥ १८ ॥ अर्धचंद्रमाके समान, व्रीहिमुख, कंकपत्र, कुठारिका, करवीरकपत्र, कुशपत्र, शलाकाकारपत्र ॥ १९ ॥ बडिशशस्त्र, गृध्रपाद, शूली, घनमुद्गर, ऐसे ये जुदे २ शस्त्र शल्योद्धारमें कहे हैं ॥ २० ॥ जो अतिगुप्त शल्य हो वह संदंश अर्थात् चिमटासरीखे यंत्रसे निकालना चाहिये और भिन्न हुई अस्थिके समान उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २१ ॥ गंभीर शस्त्रको जानले उसको कुशपत्र शस्त्रसे फाडना चाहिये, कुंकुमशस्त्रसे निकासे और ॥ २२ ॥ उस शल्यकी चिकित्सा भिन्नहुए अस्थिके समान करे ॥ २३ ॥ जहां अत्यंत शोजा हो गया हो वहां शल्य नहीं दीखता है वहां शल्य सहित और कडा पीड़ावाला ऐसा शोजा जानके ॥ २४ ॥ वहां जैसा योग्य हो वैसाही यंत्र और शस्त्रको बुद्धिमान वैद्य अपनी बुद्धिसे विचारके प्रयुक्त करे ॥ २५ ॥ जो बाणआदि शल्यके लगनेसे पीड़ा हुई हो वह मनुष्यके शरीरमें ज्यादे बढजावे वहां कुटकी, मुलहटी, शहद, इनसे संयुक्त किये हुए, कछुक गरम २ घृतसे सेकनेसे वह पीड़ा शांत होती है ॥ २६ ॥ और रालका वृक्ष, अर्जुनवृक्ष, गूलर, कौंच, लोध, मँजीठ, तुलसी, इनको जलमें पीस शल्य निकासी हुई जगहपे लेप करनेसे सुख होता है ॥ २७ ॥ बाकी जो पहले वालुकास्वेद, घटीस्वेद, इत्यादिक क्रिया कही है वे और अस्थिच्छिन्न, भिन्नअस्थि इनमें जो क्रिया हित कही हैं वे सब करनी चाहिये ॥ २८ ॥

अथ अस्थिभग्नकी चिकित्सा ।

भग्नास्थिश्च नरं दृष्ट्वा तस्य वक्ष्यामि भेषजम् ॥ मणिबन्धे

कूर्परे च जानौ भग्ने कटौ तथा ॥ २९ ॥ पृष्ठवंशे विभग्ने च साध्यान्येतानि सप्त ॥ ग्रीवादेशे चेन्द्रवस्तौ रोहिण्यां कूर्परादधः ॥ ३० ॥ स्कन्धकूर्परमध्ये च तथा च त्रिकमध्यतः ॥ उरसि चैव क्रोडे च विभग्नं तदसाध्यकम् ॥ ३१ ॥ विभग्नं च नरं दृष्ट्वा वेणुखण्डेन बन्धयेत् ॥ म्रक्षयेन्नवनीतेनैरण्डपत्रैश्च वेष्टयेत् ॥ ३२ ॥ उष्णाम्भसा सेचयेच्च वस्त्रेण मृदु बन्धयेत् ॥ ३३ ॥ धवार्जुनकदम्बानां वल्कलं काञ्जिकेन तु ॥ पिष्ट्वा हितः प्रलेपश्च तेन सौख्यं प्रजायते ॥ ३४ ॥ स्वेदयेत्तानि चोष्णेन आवासं कारयेत्पुनः ॥ एवं क्रियासमाप्तौ ततो बन्धं विमोचयेत् ॥ ३५ ॥ एकाहान्तरितेनापि पूर्ववत्तत्प्रबन्धयेत् ॥ यावद्ग्रन्थिं न बध्नाति तावन्न स्नापयेन्नरम् ॥ ३६ ॥

भग्न अस्थिवाले मनुष्यकेवास्ते औषध कहते हैं, पौंहचा कोहनी, गोडे कटी ॥ २९ ॥ पीठका वांस, ये जो भग्न हो जावें तो साध्य कहे हैं और ग्रीवाके समीप, वस्तिस्थान कोहनीके नीचेकी जगह ॥ ३० ॥ कांधा, कोहनीके वीचका स्थान, कटि, कलेजा, छाती, इनमें भग्न हुई अस्थि असाध्य कही है ॥ ३१ ॥ भग्न अस्थि हुए मनुष्यको देखिके वांसकी फाटकोंसे वांध देवे और नौनीघृतका लेप कर अरंडके पत्तोंसे वांध देवे ॥ ३२ ॥ और गरम जलसे सेंक करे वस्त्रसे कोमल वांध देवे ॥ ३३ ॥ धव, अर्जुनवृक्ष, कदंव, इनकी छालको कांजीमें पीस लेप करनेसे सुख होजाता है ॥ ३४ ॥ पीछे गरम २ वस्त्र होजावे तवतक पसीना दिवावे वस्त्रको वहां वांधा रक्खे ऐसी क्रिया हो लेवे तव वंधनको खोल देवे ॥ ३५ ॥ एकदिन खुला रक्खे और एकदिन वांधा रक्खे और जवतक टूटे हुए हाड़की जगह ग्रंथि नहीं वंधै तवतक स्नान नहीं करवावे ॥ ३६ ॥

अथ घृष्ट हाडकी चिकित्सा ।

घृष्टश्चैव नरं दृष्ट्वा धावनं काञ्जिकेन च ॥ मूत्रेण शीततोयेन धावनञ्च हितं मतम् ॥ ३७ ॥ यावद्वै स्रवति रक्तं तावत्तैलेन सेचयेत् ॥ अल्पानि चौषधान्यत्र कारयेद्विविधानि च ॥ ३८ ॥

घृष्ट अर्थात् किसी वस्तुसे घिसके दब जावे वह घृष्ट हाड़ कहाता है,उसको कांजीसे धोवै अथवा गोमूत्रसे तथा शीतल जलसे धोवना हित है ॥ ३७ ॥ जबतक रुधिर गिरे तवतक तेलसे सेकता रहे और वैद्यजनको यहां स्वल्प औषध करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

अथ आस्फालित हाडकी चिकित्सा।

विपाके रक्तस्रावश्च स्वेदनश्च विधीयते ॥ भग्नवत्प्रतीकारश्च का-र्येद्विधिपूर्वकम् ॥ ३९ ॥ आस्फालिते प्रतीकारे ज्ञातव्यश्च भिषग्वर ॥ ऊहापोहैश्च कर्त्तव्यस्तेन सम्पद्यते सुखम् ॥ ४० ॥

पकेहुए हाड़में रुधिर गिरता हो तो पसीना दिवाना हित है और भग्न हुए हाड़के समान इसका इलाज करे ॥ ३९ ॥ ऐसे वैद्यजनोंको जानना चाहिये और अपनी बुद्धिके बलके अनुसार चिकित्सा करे, इससे रोगीको सुख होता है ॥ ४० ॥

अथ अभिघात अर्थात् चोट लगी हुईकी चिकित्सा।

शिरोऽभिघातजो दोषः शिरोरोगः प्रकीर्त्तितः ॥ उरसा चाभि-घातेन यकृद्गुल्मश्च जायते ॥ ४१ ॥ इत्येवञ्च प्रतीकारं कुर्य्या-द्रक्तावसेचनम् ॥ स्वेदनञ्च प्रयोक्तव्यं भिषजा कर्मसिद्धये ॥ ४२ ॥ न च तैलञ्च भोक्तव्यं नात्युष्णकटुकं तथा ॥ मत्स्यानि न च मांसानि घनानि च गुरूणि च ॥ ४३ ॥ श्वेतशालिसमुद्भूतं यूषं चैवाढकीषु च ॥ शशलावकवार्त्ताककक्कोलं तण्डुलीयकम् ॥ ॥ ४४ ॥ शतपुष्पाद्यमन्यच्च न च हिङ्गुसमन्वितम् ॥ लवणं नाति-भोक्तव्यं यदीच्छेदात्मनः सुखम् ॥ ४५ ॥ व्यायामञ्च व्यवायञ्च दिवानिद्रां तथा क्रमम् ॥ वर्जयेत्सुखसम्पत्तिर्नरश्च प्रतिपद्यते ॥ ॥ ४६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भग्नचिकित्सा-नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

शिरमें चोट लगनेसे कुपित हुए दोषको शिरोरोग कहते हैं और छातीमें चोट लगनेसे यकृत् रोग गुल्म ये रोग होते हैं ॥ ४१ ॥ इनको दूर करनेके वास्ते रक्तको निकसावे और पसीना दिवावे ॥ ४२ ॥ और तेलका भोजन नहीं करे और अत्यंत गरम चर्चरा ऐसा भोजन नहीं करे और मछलियोंका मांस, कड़े तथा भारी पदार्थ इनको नहीं खावे ॥ ४३ ॥ शालिसंज्ञक सफेद चावलोंका यूष, तूरीधान्य, शशा, लावापक्षी, बत्तक इनका मांस, कंकोला, चौलाईका शाक ॥ ४४ ॥ सौंफ, हींग आदि और नमक, इनको इच्छापूर्वक कम खावे इनसे सुख होता है ॥ ४५ ॥ और कसरत, स्त्रीसंग, दिनमें सोना, टहल, कदमी करना इन्होंको वर्जदेवे तब सुख उत्पन्न होता है ॥ ४६ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने भग्नचिकित्सानाम सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५८.

अथाग्निदग्धचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ अग्निदग्धं नरं दृष्ट्वा तच्च दग्धं चतुर्विधम् ॥ ईषद्दग्धं मध्यदग्धमतिदग्धञ्च वेदभाक् ॥ १ ॥ सम्यग्दग्धं भिषक्छ्रेष्ठ लक्षणं शृणु पुत्रक ॥ २ ॥ अतिदग्धं मांसगं स्याद्वातपित्तकफाश्रितम् ॥ सम्यग्दग्धञ्च निर्दोषं विज्ञेयं च चतुर्विधम् ॥ ३ ॥ त्वचा विशीर्य्यते येन स दाहः पित्तजो भवेत् ॥ सरक्तश्च सपित्तश्च पित्तकोपात्प्रदृश्यते ॥ ४ ॥ कृष्णवर्णश्च तत्पित्तं मांसगं तीव्रवेदनम् ॥ तस्य वक्ष्यामि संसिद्ध्यै भेषजं भिषजां वर ॥ ५ ॥ ईषद्दग्धे काञ्जिकस्य लेपनं सुखहेतवे ॥ निम्बपत्राणि सुरसा कुष्ठं धात्रीफलानि च ॥ ६ ॥ ईषद्दग्धे यथालाभे लेपनं भिषगुत्तम ॥ मध्यदग्धे पयस्या या लेपनी सुखकारिणी ॥ ७ ॥ मधुकुष्ठकमञ्जिष्ठाघृतं पक्वं हितं मतम् ॥ कुष्ठञ्च यष्टीमधुकं चन्दनैरण्डपत्रकम् ॥ ८ ॥ मध्यदग्धे हितो लेपो दुग्धेन परिपेषितः ॥ ९ ॥ घृतकर्पूरचूर्णञ्च गैरिकं रोध्रमेव च ॥ शुष्कचूर्णं पूयहरं दग्धं संरोहयत्यपि ॥१०॥ आम्रलक्या तिलं कुष्ठं लेपनं वाग्निदग्धके ॥ रोध्रोशीरं समङ्गा च लेपनं शीतवारिणा ॥ ११ ॥ अतसीस्नेहमभ्यङ्गमधुयष्टीघृतेन तु ॥ लेपाभ्यङ्गे हितं दग्धरोहणं दाहवारणम् ॥१२॥

आत्रेयजी कहते हैं—अग्निसे दग्ध हुए मनुष्यको देखै, चारप्रकारका अग्निदग्ध होता है कुछेक दग्ध, मध्यदग्ध, अतिदग्ध ॥ १ ॥ सम्यक्दग्ध, ऐसे चारप्रकारका होता है । हे पुत्र ! अब इनके लक्षणोंको सुनो ॥२॥ जो अत्यंत दग्ध हो वह मांसमें प्राप्त होता है और वात,पित्त, कफ इनके आश्रय होता है, जो सम्यक् अर्थात् सारा दग्ध होजावे वह दोषोंसे रहित दग्ध होता है वह चार प्रकारका दग्ध होता है ॥ ३ ॥ जिसमें त्वचा बिखर जावे और दाह हो और रक्त तथा पित्त दीखे वहां दग्ध हुएमें पित्तका कोप जानना ॥ ४ ॥ और

जहां काला वर्ण हो जावे वह मांसमें प्राप्त हुआ पित्त जानना उसमें तीव्र पीड़ा होती है। हे उत्तम वैद्य! इसकी सिद्धिके वास्ते औषधको कहेंगे ॥ ५ ॥ कुछ दग्ध हुए पुरुषके सुखके वास्ते कांजीका लेप करना हित है और हे उत्तम वैद्य! नींबके पत्ते, सफेद संभाळू, कूठ, आँवलाके फल ॥ ६ ॥ इनमेंसे जौनसी मिले उसीका लेप करना कछुक दग्ध हुए पुरुषको हित है और मध्यम दग्ध हुए पुरुषके दूधीका लेप करनेसे सुख होता है ॥७ ॥ शहद कूठ मंजीठ इनमें घृतको पका लेप करना हित है और कूठ, मुलहटी, चंदन, अरंडके पत्ते ॥ ८ ॥ इनको दूधमें पीस मध्यमदग्धहुए पुरुषके लेप करना हित है ॥ ९ ॥ और घृत, कपूरका चूर्ण, गेरू, लोध इनके सूखे चूर्णको बुरकानेसे रावका नाश होता है और दग्ध हुएका व्रण भर जाता है॥१०॥ आंवला,तिल, कूठ इनका लेप करनेसे अग्निसे दग्ध हुआ अच्छा होता है और लोध,खश, मंजीठ इनको शीतल जलमें पीस लेप करना ॥११॥ अथवा अलसीका तेल, मुलहटी, घृत इनका लेप करना हित है । दग्ध हुएका घाव भरता है और दाहका नाश होता है ॥ १२ ॥

अथ धूमपानचिकित्सा।

धूमोपघाते वमनं क्षीरपानं तथोपरि ॥ जले च तरणं श्रेष्ठं धूमदाहोपशान्तये ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चिकित्सास्थानं नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

इति तृतीयस्थानं समाप्तम् ॥ ३ ॥

धूवाँसे व्याकुल हुए पुरुषको दूध पिलाना हित है और जलमें तैरना श्रेष्ठ है और धूवाँके दाहकी निवृत्ति होती है ॥ १३ ॥

इति वेरीनिवासि०हारीतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सास्थाने अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

इति तृतीयस्थानं समाप्तम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः १.

अथ तुलामानविधि ।

आत्रेय उवाच ॥ सर्षपस्य चतुर्थांशोऽणुः ॥ चतुःसर्षपैर्माषः ॥ चतुर्माषैर्वल्लः ॥ चतुर्वल्लैः सुवर्णः कर्षः ॥ चतुष्कर्षैः पलम् ॥ चतुष्पलैः कुडवः ॥ चतुष्कुडवैः प्रस्थः ॥ चतुष्प्रस्थैराढकः ॥ चतुर्भिराढकैर्द्रोणः ॥ १ ॥ शुष्काणामौषधानाञ्च मानञ्च द्विगुणं भवेत् ॥ आर्द्राणामथ सर्वेषां विज्ञातव्यस्तुलाविधिः ॥ २ ॥

सरसोंके चौथे हिस्सेको अणु कहते हैं, चार सरसोंका एक माष, चार माषोंका एक वल्ल और वल्ल प्रमाणको सुवर्णनामक भी कहते हैं और चार वल्लोंका अर्थात् चार सुवर्णोंका एक कर्ष होता है, चार कर्षोंका एक पल और चार पलोंका एक कुडव, चार कुडवोंका एक प्रस्थ, चार प्रस्थोंका एक आढक, चार आढकोंका एक द्रोण होता है ॥ १ ॥ सूखी हुई औषधोंका दूना प्रमाण लेवे और गीली औषधोंको कहे हुए प्रमाणके अनुसार लेवे ॥ २ ॥

अथ अन्यमत ।

सप्तभिर्यवशतैः साष्टषष्टिभिः पलं भवति ॥ चतुर्भिः पलैः कुडवः ॥ चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः ॥ प्रस्थैश्चतुर्भिराढकः ॥ चतुर्भिराढकैः कंसः ॥ द्वे पले प्रसृतिर्भवेत् ॥ ३ ॥ मस्तुतैलारनालानां क्षीरमंडगुडं सिता ॥ मधु मद्यं तथा द्राक्षा खर्जूरं गुग्गुलुस्तथा ॥ ४ ॥ रसोनलवणानाञ्च प्रोक्तावर्द्धार्धमानकौ ॥ बिडालपदिकामात्रं कर्षशब्दोऽभिधीयते ॥ ५ ॥ वटोदुम्बरमात्रेण पलमौदुम्बरं विदुः ॥ चतुष्पलं बिल्वमानं पले द्वेऽञ्जलिरुच्यते ॥ ६ ॥ कुडवं चाञ्जलिर्द्वे च वक्ष्यमाणं महामते ॥ ७ ॥ चतुरंगुलविस्तारं चतुरंगुलमुन्नतम् ॥ काष्ठजं मृन्मयं वापि कुडवं तं विनिर्दिशेत्

॥८॥ चतुष्कुडवैः प्रस्थः स्याच्चतुष्प्रस्थैस्तथाढकः॥ चतुराढकः स्याद्द्रोणो मानसंख्या प्रकीर्त्तिता ॥ ९ ॥ वमनं च विरेकञ्च प्रदद्यात्कर्षमात्रकम् ॥ सन्तर्पणं पलमात्रं चूर्णं कर्षकमात्रकम् ॥ १० ॥ क्षारमेव पलार्द्धं च कर्षं चैव हरीतकीम् ॥ पलं रसोनकल्कञ्च पलं गुग्गुलुमेव च ॥११॥ पलञ्च सूरणं कल्कं दापयेञ्च सुपण्डितः॥अन्यानि चूर्णलोहानि कर्षमात्राणि दापयेत्॥१२॥ज्ञात्वा देहबलं सम्यगुत्तमाधममध्यमम् ॥ लेहं चूर्णं कषायं च दापयेद्विधिवत्सुधीः ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने तुलामानविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

सातसौ अरसठ ७६८ जवोंका एक पल, चार पलोंका एक कुडव, चार कुडवोंका एक प्रस्थ, चार प्रस्थोंका एक आढक होता है, चार आढकोंका एक कंस होता है और दो पलोंकी एक प्रसृति होती है ॥ ३ ॥ दहीका मस्तु, तेल, कांजी, दूध, मंड अर्थात् छाहकी कूही, गुड़, मिसरी और शहद, मदिरा, दाख, खिजूर, गूगल ॥ ४ ॥ लस्सन, नमक इनका गीला प्रमाण अर्थात् सूखी औषधोंसे दूना प्रमाण कहा है और बिडालपदिका यह शब्द कर्ष प्रमाणका वाचक है ॥ ५ ॥ वट, उदुम्बर अर्थात् गूलरका फल इन शब्दोंसे पल अर्थात् चार तोला प्रमाणका ग्रहण जानना और चार पलोंका बिल्वसंज्ञक प्रमाण होता है और दो पलोंको अञ्जलि कहते हैं ॥ ६ ॥ दो अञ्जलियोंका एक कुडव होता है । हे महामते ! ऐसे प्रमाण कहा है ॥ ७ ॥ चार अंगुल प्रमाणका और चार अंगुल ऊंचा ऐसा काष्ठका पात्र अथवा मृत्तिकाका पात्र उसको कुडव कहते हैं ॥ ८ ॥ और चार कुडवोंका प्रस्थ होता है और चार प्रस्थोंका आढक होता है,चार आढकोंका द्रोण होता है, ऐसे प्रमाणकी संख्या कही है ॥ ९ ॥ वमन और जुलाबमें कर्षप्रमाण मात्रा देनी और संतर्पण औषध पलप्रमाण देनी और चूर्ण कर्षप्रमाण देना चाहिये ॥ १० ॥ क्षार औषधका आधा पल प्रमाण है हरड़ेका कर्षप्रमाण देना है और लहसुनका कल्क,गूगल,इनका पलप्रमाण है ॥ ११ ॥ उत्तम वैद्य जमीकन्दके कल्कको भी पलप्रमाण देवे और अन्य लोहआदिकोंके चूर्णको कर्षप्रमाण देवे ॥ १२ ॥ सम्यक् प्रकारसे देहके बलाबलको विचारि उत्तम, मध्यम, अधम ऐसे तीन प्रकारकी मात्रा देनी चाहिये ॥ १३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहाय० हारीतसंहिताभाषाटीकायां सूत्रस्थाने तुलामानविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अथ तैलपाकविधि ।

आत्रेय उवाच ॥ पाकश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तैलानां शृणु पुत्रक ॥ खरचिक्कणमध्यस्तु विशोषी चापरो मतः ॥ १ ॥ दुग्धारनालक्वाथश्च दधि वा शोषयत्यपि ॥ नचार्द्रता चौषधानां निष्फेनो विमलस्तु यः ॥२॥ मञ्जिष्ठारससङ्काशो भवेत्स खरपाकगः ॥ वातघ्नः सोऽपि विज्ञेयो मर्दनाभ्यञ्जने हितः ॥३॥ सफेनो मध्यपाकी च द्रवो भवति पिण्डितः॥नातिफेनमफेनं वा मध्यपाकं विनिर्दिशेत् ॥४॥ बस्तौ पाने च शस्तश्च त्रिदोषघ्नं भिषग्वर ॥ सफेनश्चन्द्रभो यस्य भवेत्स्वस्थसमो द्रवः ॥५ ॥ स च चिक्कणकः पाको नस्ये प्रोक्तो हितः सदा ॥ ६ ॥ सधूमश्चातिदग्धश्च दग्धगन्धरसस्तथा ॥विज्ञेयो वातशोषी च वर्जितः सर्वकर्मसु ॥ ७ ॥ मर्दने खरपाकश्च बस्तौ चिक्कणपाकितः॥बस्तौ पाने मध्यपाको विशोषी वर्जितस्तथा ॥८॥ पक्षे सिध्यति तैलञ्च सप्ताहे घृतमेव च॥कषायः प्रहरेणापि यत्नेनैव प्रसाधयेत् ॥ ९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने तैलपाकविधिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

हे पुत्र ! तैलोंका पाक चार प्रकारका कहा है सो सुनो । खर, चिक्कण, मध्य, विशोषी ऐसे हैं ॥ १ ॥ जहां दूध, कांजी इत्यादिकोंके क्वाथको सुखा केवल तैलमात्र बाकी रह जावे और औषधोंका आलापन नहींहो, झाग नहीं हो, निर्मल हो ॥ २ ॥ मँजीठके रंगके समान वर्णवाला हो वह खरपाक अर्थात् तीक्ष्ण पाकवाला तैल जानना । वह वातको नाशता है, मर्दन मालिस इनमें हित है ॥ ३ ॥ झागोंसहित हो, मध्यम पाकवाला हो और जिसके द्रवमें चलनेमें बूंदसी बंधजावे, अत्यंत झाग नहीं हों अथवा झाग हों वह मध्यमपाकी तैल कहाता है ॥४॥ हे उत्तम वैद्य ! वह तैल ब्रस्तिकर्ममें,पीनेमें श्रेष्ठ है, त्रिदोषको नाशता है और जिसमें चंद्रमाके समान सफेद २ झाग हों और विना पका हुआ, स्वच्छ तैलके समान पतला हो ॥ ५ ॥ वह चिक्कणपाकवाला तैल कहाता है, नस्य देनेमें हित है ॥ ६ ॥ जिसमें

धूवाँ हो,अत्यन्त दग्ध हो गया हो और जिसका रस गंध दग्ध हो गया हो वह विशोषी पाकवाला तेल कहाता है वह सब कर्मोंमें वर्जित है ॥ ७ ॥ मर्दन करनेमें खरपाक अर्थात् तीक्ष्ण पाकवाला तेल हित है और बस्तिकर्ममें चिक्कणपाकवाला तेल हित है और मध्यपाकी तेल बस्तिमें तथा पीनेमें श्रेष्ठ है, विशोषी तेल सब कर्मोंमें वर्जित है ॥ ८ ॥ तेल पंद्रह दिनमें सिद्ध होता है अर्थात् वरतनेलायक होता है, घृत सात दिनमें सिद्ध होता है,क्वाथ एक पहरमें सिद्ध होता है ऐसे यत्नकरके सिद्ध करे ॥ ९ ॥ इति वेरीनिवासि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां सूत्रस्थाने तेलपाकविधिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अथ निरूहबस्तिकर्मविधिः ।

आत्रेय उवाच ॥ चतुरङ्गुलां वेणुमयीं नाडीं प्रतिलक्षणं कृत्वा तया बस्तिप्रतिकर्म कुर्य्यात् ॥ १ ॥ नातिचोष्णे च काले च न शीते न च भोजिते ॥ न च निद्रालौ मूत्रार्त्ते विष्ठार्त्ते न च वेदभाक् ॥२॥ निरूहं बस्तिकर्म च कारयेत्तं नरस्य च ॥ ३ ॥ आदौ मूत्रविष्ठोत्सर्गं कृत्वा गुदं प्रक्षाल्य नातिशिथिलशय्यायां शाययित्वा वामाङ्गे वामपादं दक्षिणाङ्गे दक्षिणपादं च संकोच्य जंघोपरि संस्थाप्य गुदाभ्यन्तरे द्व्यङ्गुलमात्रां नाडीं सञ्चारयेत्सुधीः॥ततः शनैःशनैर्बस्तिं निष्पीड्य द्विपलपरिमिततैलेन निरूहं कुर्य्यात्॥निरूहानन्तरं शनैःशनैरुत्तानं शाययित्वा ऊर्ध्वीकृत्वा च पश्चात्संकोच्य पाणिभिःपञ्चवारान्स्फिक्पिण्डांस्त्रोटयेत्॥ततः स्वस्थं कृत्वा क्षणेनापि आमाशयं मलस्थानं बोधयति॥ बस्त्युदरवातान्दोषान्निवारयति॥पण्डितास्तं बस्तिनिरूहं तद्बस्तिकर्म च विदुः॥४॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने निरूहबस्तिकर्मविधिर्नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—चार अंगुल प्रमाण बाँसकी नलिका बना उसके चर्मकी वस्ति बांध भीतर प्रवेश करनेको पिचकारी बना उससे वस्तिकर्म अर्थात् पिचकारी चढ़ानेका कर्म करे ॥ १ ॥ अत्यंत गरमीका समय न हो और अत्यंत ठंढकका समय नहो, भोजन नहीं किया होता नींद नहीं आवती हो, मूत्र तथा विष्ठाकी हाजितसे पीड़ित नहीं हो ॥ २ ॥ ऐसे पुरुषको देखि उसके वस्तिकर्म करे ॥ ३ ॥ पहिले मूत्र और विष्ठाका विसर्जन करवा गुदाको धुवाके पीछे अत्यंत शिथिल न हो ऐसी शय्यापै सुला फिर बाँये अंगकी ओर बाँये पैरको और दाहिने अंगकी ओर दहने पैरको समेटके दबा जंघाके उपरि स्थापित करि उस नलिकाको दो अंगुल प्रमाण गुदाके भीतर चढ़ा देवे पीछे बुद्धिमान् वैद्य शनैः शनैः वस्तिको पीडित कर दो पल अर्थात् ८ तोला प्रमाण तेलसे निरूहवस्तिकर्म करे, पीछे निरूहवस्तिकर्म अर्थात् पिचकारी चढानेका कर लेवे, तब शनैः शनैः सूधा सुलाके ऊपरको करवाके संकोच करवा वैद्यजन अपने हाथसे पांच वार स्फिक् अर्थात् कूलाको मसले उससे पीछे स्वस्थ बिठाकर आमाशय और मलाशयको जरा मले इससे वस्तिदोष, उदरवातरोग इनका निवारण होता है पंडितजन इसको निरूहवस्ति कहते हैं और इसीको वस्तिकर्मभी कहते हैं ॥ ४ ॥ इति वैरानिवासि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां सूत्रस्थाने निरूहवस्तिकर्मविधिर्नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अथ स्वेदनविधि ।

स्वेदः सप्तविधिः प्रोक्तो लोष्टस्वेदो बाष्पस्वेदोऽग्निज्वालास्वेदः घटीस्वेदो जलस्वेदः फलस्वेदो वालुकास्वेदश्च ॥ न तैलेन विना स्वेदं कदाचिदपि कारयेत्॥ तैलेनाभ्यञ्जयेत्स्वेदं स स्वेद्गुणकारकः ॥ १ ॥ तीव्रज्वरे दाहशोषे तथातीसारपीडिते ॥ मूर्च्छाभ्रमदाहार्ते च विषे स्वेदं न कारयेत् ॥२॥ शूलशोफातुरे वाते शीतश्लेष्मातुरेषु च ॥ एतेषां शस्यते स्वेदो नराणां सुखदायकः ॥३॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने स्वेदनविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

स्वेद अर्थात् पसीना सात प्रकारका होता है । लोष्टस्वेद, अर्थात् मृत्तिकाके पिंडआदिका स्वेद १ बाष्पस्वेद भांफोंका स्वेद २ अग्निज्वालास्वेद ३ घटीस्वेद ४ जलस्वेद, ५ फलस्वेद ६ वालुकास्वेद ७ ऐसे सात प्रकारका है ॥ तेलके चोपरे विना किसी समयमें भी पसीना नहीं

दिवाना चाहिये, तेल चोपरिके जो पसीना दिवाया जाता है वह गुण करनेवाला है ॥ १ ॥ तीव्रज्वर, दाहशोष, अतिसारसे पीडित, मूर्च्छा, भ्रम, दाह इनसे पीड़ित विषसे युक्त इन पुरुषोंके पसीना नहीं दिवावे ॥ २ ॥ शूल, शोजा इनसे पीड़ित, वातसे युक्त, शीत, कफ इनसे पीड़ित इन पुरुषोंको पसीना दिवाना श्रेष्ठ कहा है । सुख देनेवाला है ॥ ३ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां सूत्रस्थाने स्वेदविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

अथ रक्तावसेचन फस्त खुलानेकी विधि ।

रक्तावसेचनं चतुर्भिः प्रकारैर्भवति ॥ शिराविरेचनेनापि अलाबुभिस्तथैव च ॥ श्लक्ष्णशृङ्गजलौकाभी रक्तञ्च स्रावयेद्बुधः ॥१॥ पूर्वाह्णे चापराह्णे च नात्युष्णे नातिशीतले ॥ यवागूपरिपीतस्य शोणितं मोक्षयेद्भिषक् ॥२॥ शिरोरोगेषु सर्वेषु नासामध्यपुटे तथा ॥ असृजं रेचयेद्यत्नात्सर्वदा भिषगुत्तमः ॥ ३ ॥ ललाटमध्ये भ्रुवोरुपरिष्टादङ्गुलद्वयं त्यक्त्वा शिरां रेचयेत् ॥ बाह्वोः कूर्परमध्ये शिरां बन्धयेत् ॥ मणिबन्धसन्धौ अङ्गुष्ठमूलचतुष्टयमङ्गुलञ्च विहाय शिरां बन्धयेत् ॥ नातिपार्श्वे चतुरंगुलं विहाय शिरां बन्धयेत् ॥ घुण्टिकां शिरां पादे बन्धयेत् ॥ अपरमपि ग्रंथविस्तारभयान्नोक्तम् ॥ अलाबुशृङ्गैः रक्तावसेचनं सर्वैरपि ज्ञातव्यम् ॥ ४ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-बुद्धिमान् मनुष्य चारप्रकारसे रक्तकी फस्त खुलावे । नसोंपे फस्त खुलाना, तूंबियोंसे फस्त खुलाना, बारीक सींगियोंसे फस्त खुलाना, जोकोंसे रुधिर निकसाना ऐसे चारप्रकारसे रक्तावसेचन होता है ॥ १ ॥ दुपहरे पहिले अथवा तीसरे पहरमें अत्यंत गरमी नहीं हो और अत्यंत ठंढक नहींहो तब यवागू अर्थात् गुड़ियानी पिलाये हुए मनुष्यका रुधिर निकसावे ॥ २ ॥ और उत्तम वैद्यको सम्पूर्ण शिरके रोगोंमें नासिकाके मध्य पुटमें फस्त खुलानी चाहिये ॥ ३ ॥ मस्तकमें भ्रुकुटियोंसे ऊपरि दो अंगुल जगहको त्याग नाड़ीको वींधे और बाहुओंकी नाड़ीको कोहनीके मध्यमें वींधे और पोहचेकी सन्धिमें अंगुठेकी जड़में

चार अंगुल जगहको त्यागके नाड़ीको वींधे, चार अंगुल जगहको त्याग अतिसमीपकी नसको नहीं वींधे और पैरमें टांकनेकी नसोंको वींधे और अन्य प्रकरण ग्रन्थके विस्तार होनेके भयसे नहीं कहा है । इस प्रकरणमें तुम्बी सींगी इत्यादिकोंसे रुधिरका निकसाना सबको ज्ञात है और श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

अथ रक्तलक्षण ।

सकृष्णं फेनिलं श्यामं रक्तं तद्वातदोषजम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नं विज्ञेयं तत्त्रिदोषजम् ॥५॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने रक्तावसेचनविधिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जो काला तथा झागोंवाला रक्तहो वह वातके दोषका रुधिर जानना, जो सब लक्षणोंसे संयुक्त हो वह त्रिदोषसे रुधिर जानना ॥ ५ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां चतुर्थे सूत्रस्थाने रक्तावसेचनविधिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.



अथ जलौकाचारविधि ।

आत्रेय उवाच ॥ जलौकाश्चतुर्विधाः प्रोक्ता इन्द्रायुधा रोहिणी कालिका धूम्रा चेति ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—जोंख चार प्रकारकी कही हैं इंद्रायुधा १ रोहिणी २ कालिका ३ धूम्रा ४ ॥ १ ॥

अथ इंद्रायुधाके लक्षण ।

नीलवर्णा पार्श्वरक्ता तीक्ष्णमुखी गम्भीरनिर्मलोदके पाषाणसन्धौ च प्रविशति ॥ तया विद्रध्युदरदाहशोफमूर्च्छाविषाद्युपद्रवयति ॥ २ ॥

जो नीलवर्णवालीहो, पशलियोंकी ओर लालहो, तीक्ष्णमुखवाली हो यह जोंख गंभीर निर्मलजलमें और पर्वतकी संधिमें रहती है इसकरके विद्रधि, उदररोग, दाह, शोष, मूर्छा, विष इत्यादिकोंको करती है ॥ २ ॥

अथ रोहिणीके लक्षण ।

नीलवर्णा पार्श्वपीता शङ्खमुखी पद्मनाले प्रविशति ॥ तया विद्रधिविसर्पशोफाद्युपद्रवयति ॥ ३ ॥

नीलेवर्णवाली और पशलियोंकी ओर पीलेवर्णवाली शंखसरीखे मुखवाली ऐसी रोहिणी जोख होती है यह कमलकी नालीमें रहती है इसके लगानेसे विष, विद्रधि, शोजा ये उपद्रव होते हैं ॥ ३ ॥

अथ कालिका जोखके लक्षण।

कृष्णा कालिका मत्स्याशये दूरे त्याज्या ॥ ४ ॥

कालेवर्णवाली जोख मत्स्याशय अर्थात् मच्छोंके वासमें रहती है। यह दूरसे त्याग देनी चाहिये ॥ ४ ॥

अथ धुम्राजोखके लक्षण।

धूम्रा कपोतमहिषवर्णा पीतोदरी अर्द्धचन्द्रमुखी कर्दमे कलुषोदके प्रविशति ॥ सा रक्तावसेचनयोग्या निरुपद्रवा च॥५॥

धूम्रा जोख, कपोत और भैंससरीखे वर्णवाली होती है, पीले उदरवाली होती है, आध चंद्रमाके समान मुखवाली होती है। यह कीचमें और गिधलेहुए जलमें रहती है यह रुधिर निकालनेके योग्य कही है और उपद्रवोंसे रहित है ॥ ५ ॥

अथ जोख लगवानेका क्रम

अवस्थानं काञ्जिकेन प्रक्षाल्य नवनीतेन म्रक्षयित्वा उष्णोदकेन प्रक्षालयेत् ॥ पश्चात् तत्र जलौकावचारणीया ॥ ६ ॥जलौका रक्तपूर्णा पश्चात् पातिता॥ तस्या मुखं लवणेन मूत्रेण वा प्रक्षालयेत् ॥ अथवा शनैर्गोस्तनवद्दुह्यते॥पुनर्नवनीतेन मुखमालिप्यावचारणीया ॥ दुष्टरक्ते विनिर्गते दंशं काञ्जिकेन प्रक्षाल्य घृतमधुनाभ्यज्य वस्त्रेण बध्नीयात् ॥ ७ ॥ इत्यात्रेयभा०हा० चतुर्थसूत्रस्थाने जलौकावचारविधिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

इति सूत्रस्थानं समाप्तम् ॥

जोख लगवानेके योग्य जगहको कांजीसे धोके नौंनीघृत लगा पीछे गरम जलसे धोके पीछे जोख लगवानी चाहिये ॥ ६ ॥ जब जोख रक्तसे पूरण होजाये तब उसको गिरा देवे और उसके मुखको नमकसे अथवा गोमूत्रसे धो देवे अथवा शनैः शनैः गौके थनकी तरह सूत देवे पीछे मुखके नौंनीघृत लगाके फिर लगवा देवे और जब दुष्ट रुधिर निकल जावे तब जोखके डंकस्थानको कांजीसे धोके घृत और शहदसे चोपरी वस्त्रसे बांध देवे ॥ ७ ॥

इति वेरीनिवासि०हारीतसं०भा० सूत्रस्थाने जलौकाचारविधिर्नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

इति सूत्रस्थानं समाप्तम् ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमं कल्पस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः

हिमवच्छिखरे रम्ये सिद्धगन्धर्वसेविते ॥ तत्रस्थं तपस्तेजस्थ मत्रिञ्च मुनिपुङ्गवम् ॥१॥ कल्पानाञ्च प्रयत्नेन हारीतः परिपृच्छति ॥ २ ॥

सिद्ध गन्धर्व इनसे सेवित हिमवान् पर्वतके रमणीक शिखरपै बैठे हुए तप और तेजमें स्थित मुनियोंमें श्रेष्ठ ऐसे आत्रेयजीको ॥ १ ॥ हारीतमुनि कल्पोंकी विधिको यत्नसे पूछते भये ॥ २ ॥

ज्ञातं चैतन्मया तात ! समासेन चिकित्सितम् ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कल्पस्थानं तु सुव्रत ॥ ३ ॥

हारीत पूछता है—हे पिता ! मैंने चिकित्सास्थान संक्षेपमात्रसे जाना है, हे सुव्रत ! अब मैं कल्पस्थानको सुननेकी इच्छा करता हूँ ॥ ३ ॥

अथ हरीतकीका कल्प ।

अत्रिरुवाच ॥ कल्पानामभया श्रेष्ठा तस्याः शृणु गुणागुणम् ॥ ॥ ४ ॥ स्वर्गस्थामराध्यक्षस्य अमृतं पिबतस्ततः ॥ पतिता बिन्दवो भूमौ तेभ्यो जाता हरीतकी॥५॥ रसैः पञ्चभिः संयुक्ता रसेनैकेन वर्जिता ॥ कषायाम्ला च कटुका तिक्ता स्वादुरसा स्मृता ॥ लवणेन वर्जिता च शृणु तस्याः पृथक् पृथक् ॥६॥ त्वचाश्रितश्च कटुकं मेदस्तस्याः कषायकम् ॥ मेदोऽन्तरे तथा चाम्लं मधुरं चास्थिसंश्रितम् ॥ ७ ॥ तिक्तश्चान्तरे तावत् तु रसैः पञ्चभिः संयुता ॥ आम्लत्वान्मारुतं हन्ति पित्तं मधुरतिक्ततः ॥ कफं कटुकषायत्वात्रिदोषघ्नी हरीतकी ॥ ८ ॥ हरीतकी देहभृतां हिता स्यान्मातेव चैषा हितकारिणी च॥ वरं कदाचित्कुपितापि माता न कुप्यते चाचरितापि पथ्या ॥ ९ ॥ तस्या

उत्पत्तिनामानि वक्ष्यामि शृणु कोविद ॥ १० ॥ विजया रोहिणी चैव पूतना चामृता तथा ॥ चेतकी चाभया चैव जीवन्ती चैव सप्तमी ॥ ११ ॥ विन्ध्ये च विजया जाता अभया च हिमालये ॥ रोहिणी वैदिशे जाता पूतना मगधे स्मृता ॥१२॥ जीवन्तिका सुराष्ट्रायां चम्पायां चेतकी मता ॥ अमृता सरयूतीर इत्येताः सप्त जातयः ॥१३॥ अभया नेत्ररोगेषु शिरोरोगेषु कालिका ॥सर्वप्रयोगेविजया रोहिणी क्षतरोहिणी ॥ १४ ॥ पूतना लेपनार्थे च अमृता च तथा मता ॥ चेतकी सर्वतो योज्या जीवन्ती चूर्णयोगतः ॥१५॥ बालानामुपकारार्थं विजयां परिलक्षयेत् ॥ त्र्यस्रा च रोहिणी प्रोक्ता अमृता स्थूलमांसला ॥ १६ ॥ पञ्चास्रा चाभया प्रोक्ता पूतना चतुरस्रका ॥ त्र्यस्रा तु चेतकी प्रोक्ता जीवन्ती दीर्घमांसला ॥ ॥ १७ ॥ विजया नीलवर्णा च पीता स्याद्रोहिणी भिषक् ॥ अमृता कृष्णवर्णा च किञ्चिच्छुभ्राभया तथा ॥१८॥ सार्द्धद्व्यङ्गुलमानेन अमृतां लक्षयेद्बुधः ॥१९॥ पथ्या भवेत्पथ्यतमा नराणां रोगांश्च सर्वान्विनिहन्ति सद्यः ॥ आयुःप्रदा तुष्टिमतीवमेधावर्णौजतेजःस्मृतिमातनोति ॥ २० ॥ उन्मूलिनी पित्तकफानिलानां सन्मीलिनी बुद्धिबलेन्द्रियाणाम् ॥ विस्रंसिनी मूत्रशकृन्मलानां हरीतकी रोगहरा नराणाम् ॥२१॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्पस्थाने हरीतकीकल्पो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—कल्पोंमें हरड़े श्रेष्ठ हैं उसके गुण अवगुणोंको सुनो ॥ ४ ॥ स्वर्गमें स्थित हुए इंद्रके अमृत पीवते हुए पृथ्वीमें अमृतकी बिंदु गिरती भयीं उनसे हरड़ें उत्पन्न होती भयीं ॥ ५ ॥ वह पाँच रसोंसे संयुक्त है और एक रससे रहित है, कसैली, खट्टी, चर्चरी, कडुई और मधुर रसवाली कही है, नमकके रससे वर्जित है उसके जुदे २ लक्षणोंको सुनो ॥ ६ ॥ इसकी त्वचा चर्चरी है और इसका मेद कसेला है मेदके भीतर खट्टापन है, अस्थि

मधुर है और भीतरसे कडुई है ऐसे पांच रसोंसे संयुक्त है ॥ ७ ॥ यह खट्टापनसे वातको नाशती है और मीठी तथा कड़वेपनसे पित्तको नाशती है और चर्चरे तथा कसेलेपनसे कफको नाशती है ऐसे त्रिदोषको नाशनेवाली हरड़ें हैं ॥ ८ ॥ देहधारियोंको हरड़ें हित हैं और यह माताकी तरह हित करनेवाली है किसी समयमें माता तो कुपित भी हो जाती है परंतु हरडें कुपित नहीं होती है ॥ ९ ॥ हे पंडितजन ! उसकी उत्पत्ति और नामोंको कहते हैं सुनो ॥ ॥ १० ॥ विजया १ रोहिणी २ पूतना ३ अमृता ४ चेतकी ५ अभया ६ जीवंती ७ ऐसे सातप्रकारकी है ॥ ११ ॥ विजया तो विंध्याचलमें उत्पन्नहुई है और अभया हिमाचलमें हुई है रोहिणी वैदिश नगरमें उत्पन्न हुई है, पूतना मगध देशमें उत्पन्न हुई है ॥ १२ ॥ जीवंती हरड़ें सुराष्ट्रानदीपै हुई हैं, चम्पानदीपै चेतकी हुई है, अमृता हरडें सरयू नदीके तीरपै उत्पन्न भई हैं ॥ १३ ॥ नेत्ररोगमें अभया और शिरोरोगमें कालिका हरडें श्रेष्ठ हैं और संपूर्ण रोगमें विजया और क्षतरोगमें रोहिणी हरड़ें हित हैं ॥ १४ ॥ पूतना और अमृता हरडें लेपमें हित कही हैं, जीवंती हरडें सब योगोंमें युक्त करनी चाहिये । जीवंती हरड़ोंको चूर्णके योगमें प्रयुक्त करे ॥ १५ ॥ बालकोंके वास्ते विजया हरडें श्रेष्ठ कही हैं रोहिणी हरड़ें तिकूटी कही हैं और अमृता हरड़ें स्थूल मांसवाली होती हैं ॥ १६ ॥ अभया पांच कूटोंवाली और पूतना चौकूटी कही है और चेतकी तीन कूटोंवाली कही है और जीवंती दीर्घ मांसवाली कही है ॥ १७ ॥ और विजया नीलवर्णवाली कही है और हे वैद्य ! रोहिणी पीले वर्णवाली कही है, अमृता कालेवर्ण कही है और अभया किंचित् सफेदवर्णवाली कही है॥ ॥ १८ ॥ और जो अढाई अंगुल प्रमाणकी हो उसको बुद्धिमान् वैद्य अमृता जानें ॥ १९ ॥ पथ्या अर्थात् हरडें मनुष्योंको अत्यंत पथ्य हैं, सम्पूर्ण रोगोंको तत्काल नाशती हैं, आयुको देनेवाली हैं, तुष्टी, अत्यंत मेधा, वर्ण, पराक्रम, तेज, स्मृति इनको बढानेवाली हैं ॥ २० ॥ पित्त कफ वात इनको समान करनेवाली हैं, बुद्धि बल इंद्रिय इनको तुष्ट करनेवाली हैं, मूत्र, विष्ठा, मल इनको वहानेवाली हैं, हरडें मनुष्योंके रोगोंको हरनेवाली कही हैं ॥ २१ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां पञ्चमे कल्पस्थाने हरीतकीकल्पो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अथ त्रिफला क्वाथ ।

आत्रेय उवाच ॥ धात्र्या विभीतकस्यापि हरीतक्यास्तथा फलम् ॥ त्रिफलेत्युच्यते वैद्यैर्वक्ष्यामि भागनिर्णयम् ॥ १ ॥ एक भागो हरीतक्या द्वौभागौ च विभीतकम् ॥ आमलक्यास्त्रि-

भागश्च सहैकत्र प्रयोजयेत्॥२॥त्रिफला कफपित्तघ्नी महाकुष्ठ-विनाशिनी॥आयुष्या दीपनी चैव चक्षुष्या व्रणशोधिनी ॥३॥ वर्णप्रदायिनी घृष्टा विषमज्वरनाशिनी ॥ दृष्टिप्रदा कण्डु-हरा क्रमिगुल्मार्शनाशिनी ॥ ४ ॥ सर्वरोगप्रशमनी मेधा-स्मृतिकरी परा ॥ वक्ष्यामि योगयुक्तिश्च रोगेरोगे पृथक् पृथक् ॥ ५ ॥ वाते घृतगुडोपेता पित्ते समधुशर्करा ॥ श्लेष्मे त्रिकटु-कोपेता मेहे समधुवारिणा ॥ ६ ॥ कुष्ठे च घृतसंयुक्ता सैन्धवे-नाग्निमान्द्यहा ॥ चक्षुर्धावनके क्वाथो नेत्ररोगनिवारणः ॥७॥ घृतेन हरते कण्डूं मातुलुङ्गरसैर्वमिम् ॥८॥ गुल्मार्शो गुडसू-रणैः स स्यात्तु गुडकारकः ॥ क्षीरेण राजयक्ष्माणं पाण्डुरोगं गुडेन च ॥ ९ ॥ भृङ्गराजरसेनापि घृतेन सह योजितः ॥ वली-पलितहन्ता च तथा मेधाकरः स्मृतः ॥ १०॥ सक्षीरः सगुडः क्वाथो विषमज्वरनाशनः ॥ सशर्कराघृतः क्वाथः सर्वजीर्णज्व-रापहः ॥ ११ ॥ एषा नराणां हितकारिणी च सर्वप्रयोगे त्रिफला स्मृता च॥सर्वामयानां शमनी च सद्यः सतेजकान्तिं प्रतिमां करोति ॥ १२ ॥ शोफे तथा कामलपाण्डुरोगे तथोदरे मूत्रयुता हिता च ॥ हिताऽतिसारे ग्रहणीविकारे हिता च तक्रेण फलत्रिका च ॥ १३ ॥ क्षीणेन्द्रिये जीर्णज्वरे च यक्ष्मे क्षीरेण युक्ता त्रिफला हिता च ॥ स्यान्नेत्ररोगे च शिरोगदे च कुष्ठे च कण्डूव्रणपीडने च ॥ १४ ॥ मूत्रग्रहे कामलकेऽग्निमा-न्द्ये जलेन पीतास्त्रिफलादिकल्कः ॥ सशीतकाले गुडनागरेण सशर्करा क्षीरयुता तथोष्णे ॥ १५ ॥ वर्षासु शुण्ठीसहिता फलत्रिका फलत्रिका सर्वरुजाहरा स्यात् ॥ १६ ॥ इत्या-त्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्पस्थाने त्रिफलाक्वाथो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं--हरडै, आंवला, बहेड़ा इनके फलको वैद्यजन त्रिफला कहते हैं। अब इनके भागका निर्णय करते हैं ॥ १ ॥ हरडै १ भाग, बहेडा २ भाग, आंवला ३ तीन भाग इस प्रकार इनको एक जगह मिलावे ॥ २ ॥ यह त्रिफला कफपित्तको नाशता है, महाकुष्ठको नाशता है, आयुमें हित है, दीपन है, नेत्रोंमें हित है, व्रणको शोधन करनेवाला है॥ ३ ॥ विसके लगानेसे व्रणको भरनेवाला है, ज्वरको नाशता है,दृष्टिको देनेवाला है,खाजिको हरता है, वमन, गुल्म, बवासीर इनको नाशता है ॥ ४ ॥ संपूर्ण रोगोंको शांत करता है और मेधा, स्मृति इनको करनेवाला है। अब रोग २ में जुदी २ योगकी युक्तिको कहेंगे ॥ ५॥ वितमें घृत और गुडके संयुक्त त्रिफला देना चाहिये। पित्तमें शहद और खांडके संग, कफमें सूंठ, मिरच, पीपल इनके संग देना चाहिये। प्रमेह रोगमें शहद और जलके संग देवे ॥ ॥ ६ ॥ कुष्ठ रोगमें घृतके संग, मन्दाग्निमें सेंधानमकके संग देना चाहिये और इसके काथसे नेत्रोंको धोनेसे नेत्रोंके रोगोंका नाश होता है ॥ ७ ॥ और घृतके संग सेवनेसे खाजिका नाश होता है, बिजौराके रसके संग देनेसे वमनका नाश होता है ॥ ८॥ गुड और जमीकंदके संग देनेसे गुल्म, बवासीर इनका नाश होता है, दूधके संग देनेसे राजयक्ष्मा रोगका नाश होता है गुडके संग देनेसे पांडुरोगका नाश होता है ॥ ९ ॥ और भंगराके रस तथा घृतके संग देनेसे वलीपलित अर्थात् बुढापेके सफेद बालआदिरोग इनका नाश होता है और बुद्धि बढती है ॥ १० ॥ और गुड मिला दूधका काथ बना उसके संग देनेसे विषमज्वरका नाश होता है और खांड तथा घृतके संग काथ बनाके देनेसे संपूर्ण जीर्णज्वरोंका नाश होता है ॥ ११ ॥ यह त्रिफला मनुष्योंको हित करनेवाली है और सब प्रयोगोंमें त्रिफला कहाता है तत्काल सब रोगोंको शांत करनेवाला कहा है और तेज कांति सुंदर मूर्ति इनको करनेवाला कहा है ॥ १२ ॥ और शोजा, कामला, पांडुरोग, उदररोग इनमें गोमूत्रके संग त्रिफला देना हित है और अतीसार संग्रहणी इन रोगोंमें तक्रके संग त्रिफला देना हित है ॥ १३ ॥ और क्षीण इंद्रियवाला, जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा, इनमें दूधके संग त्रिफला देना हित है और नेत्ररोग, शिरोरोग, कुष्ठ, खाजी, व्रणकी पीड़ा ॥ १४ ॥ मूत्रग्रह, कामला, मंदाग्नि इन रोगोंमें जलके संग त्रिफलाका कल्क बनाके देना हित है और ठंढककी समयमें गुड सोंठके संग और गरमीके समय खांड़ दूध इनके संग देना हित है ॥ १५ ॥ और वर्षासमयमें सोंठके संग त्रिफला दीहुई हित है यह त्रिफला सबरोगोंको नाशनेवाली है ॥ १६ ॥ इति वेरीनिवासिबुध० हारीतसंहिताभाषाटीकायां पंचमे कल्पस्थाने त्रिफलाकाथो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अथ हरडोंके कल्क और वर्णोंका भेद ।

आत्रेय उवाच ॥ अभया द्व्यङ्गुला प्रोक्ता पूतना चतुरङ्गुला॥ सार्द्धाङ्गुला च जीवन्ती चेतकी स्यात्षडङ्गुला ॥ १ ॥ चेतकी द्विविधा प्रोक्ता आकारवर्णतस्तथा॥षडङ्गुलासिता प्रोक्ता शुक्ला चैकाङ्गुला स्मृता ॥ २ ॥ श्रेष्ठा कृष्णा समाख्याता रेचनार्थे जिगीषुणा ॥३॥ चेतकी वृक्षशाखायां यावत्तिष्ठति तां पुनः॥ भिन्दन्ति पशुपक्ष्याद्या नराणां कोऽत्र विस्मयः ॥ ४ ॥ चेतकीं यावद्विधृत्य हस्ते तिष्ठति मानवः ॥ तावद्भिनत्ति रोगां-स्तु प्रभावान्नात्र संशयः ॥५॥ नृपाणां सुकुमाराणां तथा भेष-जविद्विषाम् ॥ कृशानां हितमेवं स्यात्सुखोपायविरेचनम्॥६॥ हरीतकी दरिद्राणामनपायरसायनम् ॥पथ्यस्यान्तेऽथवा चादौ भक्षेच्चामयनाशिनीम् ॥ ७ ॥ तृषातुराणां हृदि कण्ठशोषे हनु-ग्रहे चापि गलग्रहे च॥ नवज्वरे क्षीणबलेन्द्रियाणां न गर्भिणी-नां कथिता प्रशस्ता ॥८ ॥ हरीतकी वा गुडनागरेण सिन्धूत्थ-युक्ता कथिता प्रयोगे ॥ आमाशयस्था जठरामयश्च जघान चेन्द्रायुधवद्भुसाणाम्॥९॥ सशारदे क्वा सितया प्रयुक्ता शुण्ठी गुडेनापि हिमे प्रयोज्या॥ससैन्धवापिप्पलिका च शैशिरे हितो वसंते त्रिकटुर्गुडेन ॥ १० ॥ग्रीष्मे सितानागरकैश्च पथ्या वर्षासु सिन्धूत्थयुता हिता च॥निहन्ति सर्वामयमेव सद्यो घृतेन पथ्या विहिता हरीतकी ॥११॥ घृतेन देयं मनुजाय कल्कमामानिलं हन्ति नरस्य कोष्ठे ॥ दुष्टान्विकारान्हरतीति सद्य एरण्डतै-लेन विपाच्य पथ्यम् ॥१२॥ खादेत्तदेवानुपिबेच्च तैलं सशूल-विष्टम्भकृतान्विकारान् ॥ सर्वाञ्जयेत्पित्तकफानिलोत्थान्मूत्रे

स्थितं सप्तदिनं सहिष्याः॥१३॥पञ्चाभया मूत्रपलानि पञ्चक्षीरेण सप्ताहसतिप्रशस्तम् ॥क्षीरोदशोपी परतस्तथान्ये एष त्रिसप्ताद परः प्रयोगः ॥१४॥वातोदरं शीघ्रमियं निहन्यात्प्लीहानमानाहमुरोग्रहञ्च॥स पाण्डुरोगं च कृमींश्च हन्ति हरीतकी धान्यतुषाम्बुसिद्धा॥ १५॥ सपिप्पलीसैन्धवयुक्तचूर्णं सोद्गारधूपं भृशमप्यजीर्णम्॥निहन्ति सद्यो जनयेत्क्षुधाञ्च कल्कञ्च तस्याः सह नागरेण॥१६ ॥ ससैन्धवेन ज्वरमाशु हन्ति दध्ना च तक्रेण हितातिसारे॥ सराजयक्ष्मे मधुनावलिह्यान्मूत्रेण शोफोदरनाशहेतोः ॥१७॥ सपाण्डुरोगे समशर्करायाः शोषे सदाहे सह मातुलुङ्ग्या॥रसेन युक्ता विहितातिपथ्या कल्कं समाप्तं कथितं मुनीन्द्रैः ॥ १८ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्पस्थाने हरीतकीकल्पवर्णनभेदो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अभया दो अंगुल प्रमाणकी होती है पूतना चार अंगुल प्रमाण की होती है जीवंती डेढ अंगुल प्रमाणकी होती है,चेतकी छह अंगुल प्रमाणकी होती है॥१॥ यहां आकारसे और वर्णसे चेतकी हरडै दो प्रकारकी कही है वहां छह अंगुल प्रमाणवाली काली कही है और एक अंगुल प्रमाणवाली सफेद कही है ॥ २ ॥जुलावके वास्ते काली चेतकी हरडै श्रेष्ट कही हैं ॥ ३ ॥ और जबतक चेतकी हरडों वृक्षके नीचे स्थित रहे तबतक पशु पक्षीआदिकको भी दस्त लग जाते हैं मनुष्योंकी तो कौन बात है ॥ ४ ॥ और मनुष्य जबतक चेतकी हरडैको हाथमें रक्खे तबतक उसके दस्त लगे रहते हैं और रोगोंका नाश हो जाता है ॥ ५ ॥ और राजे तथा सुंदर कोमल शरीरवाले जन अथवा जिनसे औषध नहीं लीजावे तथा कृश, ऐसे मनुष्योंके सुखके उपायके वास्ते यही जुलाब दिवानी कही है ॥ ६ ॥ दरिद्री पुरुषोंको द्रव्य खरच करे विनाही यह हरड रसायनरूप औषध कही है पथ्य भोजनके अंतमें अथवा आदिमें भक्षणकीहुई यह हरडैं रोगोंको नाशनेवाली कही हैं॥ ७ ॥ और तृषासे पीडित पुरुष, हृदय, कंठ इनमें शोषवाले,हनुग्रह तथा गलग्रहरोगवाले, नवीनज्वर क्षीणबल इंद्रियवाले पुरुष गर्भिणी स्त्री इनको यह हरड़ देनी पथ्य नहीं कही है ॥ ८ ॥ गुड़, सोंठ, सेंधानमक, इनके संग हरडको देवे तो आमाशयमें स्थित होनेवाले उदररोगोंका ऐसे नाश होता है कि जैसे बिजलीसे वृक्षोंका नाश हो जाता है ॥ ९ ॥ शरदऋतुमें मिश्रीके संग देनी और हिमऋतुमें गुड़, सोंठ, इनके संग देनी, शिशिरऋतुमें सेंधानमक, पीपली, इनके संग देनी और

वसंतऋतुमें सूंठ, मिरच, पीपली, गुड, इनके संग देनी हित है ॥ १० ॥ग्रीष्मऋतुमें मिसरी, सोंठ इनके संग देनी पथ्य हैं और वर्षासमयमें सेंधानमकके संग देनी हित कही हैं और घृतके संग हुई हरड़ सब रोगोंको नाशती है ॥ ११ ॥ इसका कल्क वना घृतके संग देनेसे मनुष्यके कोष्ठकी आमवातका नाश होता है और दुष्ट विकारोंको तत्काल नाशती है और अरंडीके तेलमें पकाके देना पथ्य है ॥ १२ ॥ त्रिफलाको खाके उसपै यही तेल पीवे तो शूल मलके बंधाके किये हुए विकार इनका नाश होता है और पित्त, कफ, वात, इनसे उपजे सब विकारोंके नाशके वास्ते, महिषीकेमें मूत्रमें सात दिनतक स्थापित करी हरड़ेके खानेको खावे ॥ १३ ॥ और पांच हरडे वीस तोले गोमूत्रमें और दूधमें स्थापितकर रक्खे सात दिनतक स्थापित करना श्रेष्ठ कहा है और कुछ वैद्य ऐसे कहते हैं कि सात दिनपीछे दूध और गोमूत्र सूखा जावे तबतक स्थापित रक्खे और कुछ ऐसे कहते हैं कि, इक्कीस दिन पीछेतक स्थापित रक्खे ॥१४॥ इस प्रकारसे सिद्ध की हुई यह हरड़ैं वातोदर रोग तिल्ली अफारा छातीको ग्रहण करनेवाला रोग इन रोगोंको नाशती है और धान्यकी कांजीमें सिद्ध कीहुई हरड़ पांडुरोग, क्रिमिरोग इनका नाश करती है ॥ १५ ॥ पीपली, सेंधानमक इनके चूर्णके संग दी हुई हरड़ैं अढकारका धुवाँ अत्यन्त अजीर्ण इनका नाश करती है और तत्काल क्षुधाको उत्पन्न करती हैं और सोंठके संग इसका कल्क देनेसे ॥ १६ ॥ तथा सेंधानमकके संग देनेसे ज्वरको नाशती है और दही तथा तक्रके संग देनेसे अतिसारको नाशती है राजयक्ष्मा रोगमें शहदके संग चाटे और शोजा उदररोग इनके नाशकेवास्ते गोमूत्रके संग देवे ॥ १७ ॥ पांडुरोगमें वरावरकी खांडके संग और दाह, शोष इनमें विजौराके संग देनी हित कहीहै इस प्रकारसे मुनियोंसे कहा हुआ यह हरड़को कल्क समाप्त हो चुका है ॥ १८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनु०हारीतसंहिताभाषा-टीकायां पंचमे कल्पस्थाने हरीतकीकल्पवर्णनभेदो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.



अथ रसोनकल्प ।

अमृतस्य मन्थने जातं भीष्मं जन्यं सुरासरैः॥जहार वैनतेयस्तं चञ्चुना त्रिदिवं गतः ॥१॥ संग्रामश्रमसंप्राप्ते श्रमवेगप्रधाविते॥ आहृते वैकुवं प्राप्ते च्युता ह्यमृतबिन्दवः ॥ २ ॥ सकृत्संदूषिते देहे पतितास्तत्र संस्थिताः ॥ तस्मात्कालवशाज्जातं दुर्भिक्षं द्वाद-शाब्दिकम् ॥३॥ विशुष्काः कानने सर्वा वृक्षकण्टप्रतानिकाः ॥ तस्माच्च ऋषयः सर्वे प्रकृष्टं गहनं गताः ॥ ४॥ तेषां मध्ये जरा-

ग्रस्तो गतिहीनोऽतिजर्जरः ॥ लयष्टिः सरणिक्षुण्णः शीर्णदन्ता-
वलीमुखः ॥ ५ ॥ सव्यक्तस्थैः क्षुधापन्नैर्ऋषिभिस्तत्र विश्रुतः ॥
सोऽपि क्षुधातुरः सर्वां पर्य्यटत्युर्वरां महीम् ॥ ६ ॥ कुत्रचित्
पुण्ययोगेन दृष्टवान्विटपान् शुभान् ॥ नीलशैवालसंकाशान्
शाद्वलान्बहुलान् भुवि ॥ ७ ॥ क्षुधासंपीडनेनापि भुक्तवान्
सदलानपि ॥ ८ ॥ षण्मासानन्तरं शुष्कान् विटपांस्तदनन्तरम् ॥
भुक्तवान्कन्दकान् सोऽपि मासमेकं तथा ऋषिः ॥ ९ ॥ पश्चात्
सुभिक्षे सञ्जाते सर्वे चैकत्र संस्थिताः ॥ सोऽपि वृद्धो युवा भूत्वा
गतस्तत्र च यत्र ते ॥ १० ॥ तं दृष्ट्वा विस्मयापन्नाः पप्रच्छुः किं
कृतं त्वया ॥ नोक्तवान्स तु किञ्चिच्च रुषा तैः शापितस्ततः ॥ ११ ॥
यत्त्वया खादितं द्रव्यं तदभक्ष्यं द्विजातिभिः ॥ दुर्गन्धमपि चि-
त्रञ्च तस्माज्जातं रसोनकम् ॥ १२ ॥ अथ वीर्य्यञ्च वक्ष्यामि रसो-
नस्य महामते ॥ रसैः पञ्चभिः संयुक्तो रसोनस्तेन वर्जितः ॥ १३ ॥

अमृतमथनेके समय देवताओंका और दैत्योंका महान् युद्ध होता भया तब गरुड अमृतको हरके चोंचमें ग्रहणकर स्वर्गमें जाते भये ॥ १ ॥ फिर युद्धकी हारके श्रमसे और मार्गके खेद होनेसे युक्त हो गया तब बैठ गया वहां अमृतकी विंदु गिरती भयी वे बूंद ॥ २ ॥ विष्टासे दूषित किसीके शरीरपे गिरके वहां ही स्थिति होती भई पीछे कालके वशसे उस देशमें बारह वर्षतक दुर्भिक्ष काल पड़ता भया ॥ ३ ॥ उस वनमें सब बेल वृक्ष पत्ते सूखते भये इससे सब ऋषि दूर गह्वरवनमें जाते भये ॥ ४ ॥ उन ऋषियोंमें बुढ़ापेसे ग्रसित हुआ गमन करनेमें समर्थ नहीं, जर्जर अंगवाला यष्टिकाको पकड़े हुए क्षुधासे युक्त-हुआ, दाँत हिलते हुए ऐसा एक ऋषि था ॥ ५ ॥ सो क्षुधामें युक्त हुए कहीं एकांतमें बेमालूम हुए ऐसे अन्यऋषियोंसे विछुड़ता भया पीछे वह भी क्षुधासे युक्तहुआ सब पृथ्वीपे विचरता भया ॥ ६ ॥ पीछे पुण्यके योगसे कहींक सुंदर वृक्षोंको देखता भया और नीली सिवालके समान कांतिवाले बहुतसे घासोंको पृथ्वीपे देखता भया ॥ ७ ॥ पीछे क्षुधासे पीड़ित होनेसे उन वृक्षोंके पत्तोंको खाता भया ॥ ८ ॥ फिर छह महीने पीछे सूखे वृक्षोंको खाता भया पीछे वह ऋषि एक महीनातक कंद अर्थात् लसुनकी जड़ोंको खाते भये वहां लहसन कंद भी खाया, फिर सुभिक्ष संवत् होगया ॥ ९ ॥ तब सब ऋषि एक जगह इकट्ठे हुए और वह वृद्ध ऋषि भी जहां वे थे उसी जगह जवान होके आया ॥ १० ॥ तब उसको देख आश्चर्यमें युक्त हो पूछते भये कि तैंने क्या किया ? फिर वह कुछ भी नहीं

बोला तब उन्होंने क्रोधित होके शाप दे दिया ॥ ११ ॥ कि 'जो द्रव्य तैंने खाया है वह द्विजाति ब्राह्मणआदि जातियोंको भक्षण करनेको योग्य नहीं है इसवास्ते दुर्गंधवाला और चित्र ऐसा लहसन हो गया ॥ १२ ॥ हे महामते ! अब लहसनके गुणोंको कहैंगे यह पांच रसोंसे युक्त है और एक रससे वर्जित है इसवास्ते इसको रसोन कहते हैं ॥ १३ ॥

अथ लहसनके गुण ।

कट्वम्लवीर्यो लशुनो हितश्च स्निग्धो गुरुः स्वादुरसोऽथ बल्यः॥ वृद्धस्य मेधास्वरवर्णचक्षुर्भग्नास्थिसन्धानकरःसुतीक्ष्णः॥१४॥ हृद्रोगजीर्णज्वरकुक्षिशूलप्रमेहहिक्कारुचिगुल्मशोफान् ॥दुर्नाम-कुष्ठानलश्यावजं तु समीरणं श्वासकफान् निहन्ति ॥ १५॥ तेन च रसोनकं नाम विख्यातं भुवनत्रये॥कुक्कुटाण्डनिभं ग्रीष्मे शीर्णपर्णं समुद्धरेत् ॥१६॥ बद्ध्वा पुटे सुनिर्गुप्तं धारयेत्तं महा-मते ॥ वर्षासु शिशिरे चैव कारयेन्मात्रया युतम् ॥ १७ ॥ रामठं जीरके द्वे च अजमोदा कटुत्रयम् ॥ घृतसौवर्चलोपेतं वातरोगे विशेषतः॥१८॥मातुलुङ्गरसेनापि शूलानाहे प्रकी-र्त्तितः ॥ दध्ना वातादिशमनो रसोनो विहितो बुधैः ॥ १९ ॥ जांगलादि रसान्येव भोजनार्थे प्रदापयेत् ॥ २० ॥

लहसन चर्चरा और खट्टा है, हित है, स्निग्ध है, भारी है, स्वादु रसवाला है, बलदायक हैं, वृद्ध पुरुषकी वृद्धि, स्वर, वर्ण, नेत्र, भग्नअस्थि इनको जोड़नेवाला है सुंदर तीक्ष्ण है॥१४॥ और हृदयरोग, जीर्णज्वर, कुक्षिशूल, प्रमेह, हिचकी, अरुचि, गुल्म, शोजा, बवासीर, कुष्ठ, वायुसे उपजे हुए क्रिमि, वात, श्वास, कफ इनको नाशता है ॥ १५ ॥ पांच रसोंवाला होनेसे यह रसोन नामसे प्रसिद्ध है यह ग्रीष्मऋतुमें मुरगेके अंडेके समान होता है शिथिल २ पत्ते होते हैं ॥ १६ ॥ बुद्धिमान् जन इसको पुटविधिसे बांधके गुप्त धारण रक्खे और वर्षाऋतुमें तथा ग्रीष्मऋतुमें इसको मात्रासे युक्त करे ॥१७॥ और हिंग, दोनों जीरे, अजमोद, सूंठ, मिरच, पीपल, घृत, कालानमक इनसे युक्तकर वातरोगमें देना श्रेष्ठ है ॥ १८ ॥ और बिजौराके रसके संग देनेसे शूल अफारा इनका नाश होता है और दहीके संग दिया हुआ लहसन वातआदि दोषोंको शांत करता है ॥ १९ ॥ और इसपर जांगल देशके जीवोंका रस भोजनमें हित कहा है ॥ २० ॥

अथ पेयरसोनविधि ।

निष्पीड्य च रसं तस्य गृहीत्वा मुनिसत्तम॥दुग्धेन शर्करोपेतं

पित्तरोगे पिबन्नरः ॥ २१ ॥ राजयक्ष्मक्षये पाण्डौ कामलायां हलीमके ॥ शिरोरुजासु सर्वासु रक्तपित्तभ्रमेषु च ॥२२॥ शोषमूर्च्छापस्मारे च हितं चेतद्रसायनम् ॥ २३ ॥

हे उत्तम मुनि ! लहसनके रसको निचोड़ उसमें दूध और खांड़ मिला पीनेसे पित्तरोग शांत होता है ॥ २१ ॥ और राजयक्ष्मा, क्षयरोग, पांडुरोग, हलीमक, संपूर्ण शिरके रोग और रक्तपित्तसे उपजे भ्रम ॥ २२ ॥ शोष, मूर्च्छा, मृगीरोग इनमें हित है और रसायन है ॥ २३ ॥

परिपिष्य रसोनञ्च तत्समा त्रिवृता मता ॥ गुडैनैरण्डतैलेन शीतं दत्त्वा च लेहकम् ॥ २४ ॥ भवत्येतत्समाहृत्य पाययेन्मूत्ररोगिणाम् ॥ शोफे गुल्मे वाऽऽमवाते हितमेतत्सदार्शसाम् ॥२५॥ हरिणशशकलावातित्तिराणाञ्च मांसं ह्यथ च अजशिखीनां कर्करासारसानाम् ॥ घृतमधुररसानां शालिगोधूममासां हितमिति मनुजानां गुग्गुले वा रसोने ॥२६॥ व्यायामयानातपमैथुनानि क्रोधाध्वजीर्णान्परिवर्जयेच्च ॥ विवर्जयेद्वापि तथातिसारे मेहामये पाण्डुगुदामये च ॥ २७ ॥ न गर्भिणीनां न च वालकानां भ्रमातुरे वा न मदातुरे च ॥ न रक्तपित्ते न च कुष्ठितेऽपि न रक्तवाते न विसर्पके च ॥२८॥ दत्तो रसोनो यदि मूढबुद्ध्या विरेचनं वा वमनं विधेयम् ॥ न वान्यथा कुष्ठमथापि पाण्डुं त्वग्दोषरोषं कुरुते नरस्य ॥ सुयोगयुक्त्याऽमृतवन्नराणां वीर्येन्द्रियं पुष्टिबलं तनोति ॥ २९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्पस्थाने रसोनकल्पो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४ ॥

लहसनको पीस उसके समान निशोत मिला और गुड, अरंडीका तैल, दालचिनी, इनका अवलेह बनादेनेसे ॥ २४ ॥ मूत्ररोगवाले पुरुषोंके सुख होता है और शोजा, गुल्म, आमवात, बवासीर इन रोगवालोंको हित है ॥ २५ ॥ हिरन, शशा, लावा तीतर, ककेरा, मोर, सारस, बकरा इत्यादिकोंका मांस, घृत, मधुररस, शालिसंज्ञक चावल, गेहूं इनका भोजन करना गूगल तथा लहसन खानेके पीछे हित कहा है ॥ २६ ॥ कसरत, गमन करना, घाम सेवना, मैथुन करना, क्रोध, मार्गका श्रम इनको वर्ज देवे और अतिसार, प्रमेह, पांडुरोग, गुदाके रोग इन रोगोंमें लहसन नहीं देना ॥ २७ ॥ गर्भिणी स्त्री, बालक, भ्रमातुर पुरुष, मदातुर, रक्तपित्तवाले, कुष्ठवाले, रक्तवातवाले, विसर्प रोगवाले

इन मनुष्योंको भी लहसन नहीं देवें ॥ २८ ॥ यदि मूर्खपनेसे दियाजावे तो जुलाब दिवाना अथवा वमन कराना चाहिये नहीं तो मनुष्यके शरीरमें कुष्ठ, पांडुरोग, त्वग्दोष, इनको करदेता है और सुन्दर योगयुक्तिसे दियाहुआ लहसन मनुष्योंको अमृतके समान है वीर्य, इंद्रिय-पुष्टि, बल इनको बढाताहै ॥२९॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादित हारीतसंहिताभाषाटीकायां कल्पस्थाने रसोनकल्पो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

अथ गुग्गुलकल्पः ।

हारीत उवाच ॥ भगवन् गुग्गुलो नाम योगवीर्य्यमथोगुणम् ॥ वक्तुमर्हसि रोगेषु येषु वापि प्रशस्यते ॥१॥ एवमुक्तस्तु शिष्येण प्रत्युवाच महातपाः ॥ २ ॥

हारीत पूछता है--हे भगवन् ! गुग्गुलनामक औषधके योग वीर्य और गुणको आप कहो जिन २ रोगोंमें श्रेष्ठ कहा है सो कहो ॥ १ ॥ ऐसे शिष्यसे पूछे हुए महान् तपवाले आत्रेयजी प्रतिवचन कहते हैं ॥ २ ॥

आत्रेय उवाच ॥ मरुभूमौ प्रजायन्ते प्रायशः पुरपादपाः ॥ भानोर्मयूखैः सततं ग्रीष्मे मुञ्चन्ति गुग्गुलम् ॥३॥ हिमाद्रितो वा हेमन्ते विधिवत्तं समाहरेत् ॥ जातरूपनिभं शुभ्रं पद्मराग-निभं क्वचित् ॥४॥ क्वचिन्महिषनेत्राभं यक्षदैवतवल्लभम् ॥ विधा-नं तस्य विधिवन्निबोध गदतो मम ॥५॥ त्रिदोषशमनो वृष्यः स्निग्धो बृंहणदीपनः ॥ गुग्गुलः कटुकः पाके वर्णप्रबलवर्द्धनः ॥६॥ आयुष्यः श्रीकरः पुत्रस्मृतिमेधाविवर्द्धनः ॥ पापप्रश-मनः श्रेष्ठः शुक्रार्त्तवकरः स्मृतः ॥ ७ ॥ वर्णगन्धरसोपेतो गुग्गुलो मात्रया युतः ॥ भेषजैः सह निष्क्वाथ्यो यथा व्याधिहरैः पृथक् ॥८॥ मात्रावशिष्टं तं दृष्ट्वा चालयेच्छुक्लवाससा ॥ मृन्मये हेमपात्रे च राजते स्फाटिकेऽपि वा ॥९॥ पुण्ये तिथौ शुभे भे[1] च जीर्णाहारः क्षमान्वितः ॥ हुत्वाग्निं पर्य्युपासीत देवब्राह्मण-सत्कृतः ॥१०॥ प्रविश्य कुसुमाकीर्णे मन्दिरे च समाश्रिते ॥

[1] 'भं नक्षत्र गभस्तौ स्त्री पुंसि स्याद्भृगुनन्दने' इति मेदिनी।

राम्ना गुडूची चैरण्डो दशमूलं प्रसारिणी ॥ ११ ॥ काथं तेषां यथायोग्यं यवान्या वातिके पिबेत् ॥ पृथक्कृतैर्जीवनीयैःपिबेत्पित्तालयार्दितः ॥ १२ ॥ वासाचन्दनह्रीवेरं मृद्वीका तिक्तरोहिणी ॥ खर्जूरञ्च परूषञ्च तथा जीवककर्षको ॥ सपित्तरोगे पानाय क्वाथः स्याद्गुग्गुलान्वितः ॥१३॥ त्रिफलाव्योषगोमूत्रनिम्बधान्यकपुष्करैः॥अमृता दीप्यकः क्वाथः पटोली च कफार्दितः ॥१४॥ नाडीदुष्टव्रणग्रन्थिगण्डमालार्बुदान्वितः ॥ त्रिफलाक्वाथसंयुक्तं पिबेन्मेही व्रणी तथा ॥१५॥ किरातकामृतानिम्बवृषाव्याघ्रीदुरालभाः॥ एषां क्वाथेन संयुक्तं गुग्गुलं पाययेद्भिषक् ॥१६॥ गुल्मे कासे क्षते श्वासे विद्रधावरुचौ व्रणे ॥ दार्वी पटोलक्वाथेन संयुक्तं गुग्गुलं पिबेत् ॥ १७ ॥ कण्डूपिटकशोफाढ्ये पिबेद्वातकफापहम् ॥ पथ्या पुनर्नवा दार्वी गोमूत्रममृतं तथा ॥ १८ ॥ एषां क्वाथो हितः पाण्डौ शोथोदरकिलासिनाम् ॥ भवेन्मात्रां पलं यावत्कर्षादारभ्य यत्नतः ॥ १९ ॥ जीर्णेऽश्नीयान्मुद्गयूषे रसैर्वा जाङ्गलैस्तथा ॥ पयसा षष्टिकान्नञ्च शालीनामोदनं मृदु ॥ २० ॥ दिनाः सप्त प्रथमा च मध्यमा द्विगुणाः स्मृताः ॥ त्रिगुणाः परमा मात्रा विज्ञेया योगचिन्तकैः॥२१॥ सेवते गुग्गुलं यो वै वर्षेणापि नरः क्रमात् ॥ स्थावराज्जङ्गमाच्चैव न स्यादस्य क्षतिर्विषात् ॥ २२ ॥ निर्मुक्तो वलितत्वचोपि पलितो वृद्धो युवा जायते मेधादृष्टिबलौजवीर्य्यमधिकं वृद्धत्वहीनो भवेत्॥गुल्माष्ठीलहृदामवातशमनः कुष्ठं प्रमेहाश्मरीं शूलानाहविसर्परक्तशमनो भूतोपसृष्टे हितः ॥ २३॥इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्पस्थाने गुग्गुलकल्पो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—विशेष करिके गूगलके वृक्ष मरुदेशमें होते हैं सो निरन्तर सूर्यकी किरणोंसे ग्रीष्मऋतुमें गूगलको त्यागते हैं ॥ २ ॥ और हिमाद्रिपर्वतमें गूगलवृक्षोंसे

हेमंतऋतुमें गूगल निकसता है कहीं तो चांदीके समान सफेद होता है कहीं पद्मरागके समान होता है ॥ ४ ॥ कहीं भैंसाके नेत्रोंके समान वर्णवाला होता है वह यक्षदेवता इनको प्रिय है सो इसका विधान विधिसे कहते हुए मुझसे सुनो ॥ ५ ॥ यह त्रिदोषको शांत करनेवाला है वीर्यमें हित है स्निग्ध है धातुओंको बढ़ानेवाला है अग्निको दीप्त करनेवाला है और गूगल पाकमें चर्चरा है वर्ण बल इनको बढ़ानेवाला है ॥ ६ ॥ आयुमें हित है लक्ष्मी बढ़ानेवाला है, पुत्र, स्मृति, मेधा इनको बढ़ानेवाला है पापको शांत करनेवाला है श्रेष्ठ है पुरुषके वीर्य स्त्रीके आर्तव इनको करनेवाला है ॥ ७॥ और वर्ण, गंध, रस इनसे संयुक्त गूगलमात्रसे युक्त किया हुआ और औषधोंके संग क्वाथ बनाके दिया हुआ व्याधिके अनुसार दिया हुआ सब व्याधियोंको नाशता है ॥ ८ ॥ मात्राके अनुसार उस गूगलको देखके सफेद वस्त्रसे छान लेवे पीछे मट्टीके पात्रमें अथवा सुवर्णके पात्रमें तथा चांदीके पात्रमें तथा कांचके पात्रमें ॥ ९ ॥ शुभ तिथिमें और शुभ नक्षत्रमें घाल धरे पीछे भोजन जर जावे तब क्षमासे युक्त हुआ पुरुष सुंदर पुष्पोंसे आकीर्ण हुए मंदिरमें जाके देवता ब्राह्मण इनकी भक्ति और उपासना कर ॥ १० ॥ उस गूगलको स्थापित करदेवे और वातसे उपजे रोगमें खाये हुए गूगलके ऊपर रास्ना, गिलोय, अरंड, दशमूल, खींप ॥ ११ ॥ अजवायन इनका क्वाथ यथायोग्य पीवे और पित्तरोगसे पीड़ित हुए पुरुष पृथक् २ जीवनीयगणकी औषधोंमें पकाया हुआ क्वाथ पीवे ॥ १२ ॥ वांसा, चंदन, नेत्रवाला, मुनक्का, दाख, कुटकी, खजूर, फालसा, जीवक, ऋषभक इनका क्वाथ गूगलमें युक्तकर पित्तके रोगोंमें पीना हित है ॥ १३ ॥ त्रिफला, सोंठ, मिरच, पीपली, गोमूत्र, नींब, धनियां, पोहकरमूल, गिलोय, अजवायन, परवल, इनके क्वाथके संग गूगल लेना कफके रोगोंमें हित है ॥ १४ ॥ दुष्टनाडीव्रण, ग्रंथिरोग, गंडमाला, अर्बुद, प्रमेह, व्रण, इन रोगोंवाला पुरुष त्रिफलाके क्वाथके संग पीवे ॥ १५ ॥ चिरायता, गिलोय, नींब, वांसा, कटेहली, धमासा इनके क्वाथके संग गूगलको पीवे ॥ १६ ॥ तो गुल्म, खांसी, चोट, श्वास, विद्रधि, अरुचि व्रण इनका नाश होता है और दारुहलदी, परवल इनके क्वाथके संग गूगलको पीवे ॥ १७ ॥ तो खाज, पिड़िका, शोजा आदिक वात, कफ इनका नाश होता है और हरड़ै, सांठी, दारुहलदी, गोमूत्र, दूध ॥ १८ ॥ इनके क्वाथके संग गूगल पीनेसे पांडुरोग, शोजा, उदररोग, किलासकुष्ठ इनका नाश होता है और एक तोलासे लेकर चार तोला प्रमाणतक गूगलका खाना हित है ॥ १९ ॥ जब खाया हुआ गूगल जरजावे तब मूंगोंका यूष और जांगलदेशके जीवोंके रसके संग भोजन करना हित है और दूधके संग सांठी चावल और शालीसंज्ञक चावलोंको खावे ॥ २० ॥ सातदिन गूगलका सेवन करना प्रथम मात्रा है और १४ दिनतक मध्यम मात्रा और इक्कीस दिनतक सेवन करनेको परममात्रा कहते हैं, ऐसे योग युक्तिको जाननेवालोंने कहा है ॥ २१ ॥ और जो पुरुष क्रमसे वर्ष दिनतक गूगलको सेवता है उसको स्थावर और जंगमविषोंकी मात्रा दुःख नहीं देती है

॥ २२ ॥ और जिसकी त्वचा ढीली पड़े, बाल सफेद होजावे ऐसा वृद्ध पुरुष भी इसके खानेसे जवान हो जाता है और बुद्धि, दृष्टि, बल, वीर्य इनकी वृद्धि होती है, वृद्धपनेके दुःखोंसे दूर हो जाता है और गुल्म, अष्ठीला, हृदयका रोग, आमवात इनको शांत करता है, कुष्ट, प्रमेह, पथरी, शूल, अफारा, विसर्प, रक्तदोष भूतव्याधि इनको शांत करता है ॥ २३ ॥

इति वेरीनिवासिवुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां कल्पस्थाने गुग्गुलकल्पो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति पञ्चमं कल्पस्थानं समाप्तम् ॥

अथ षष्ठं शारीरस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः १.

अथ शारीराध्यायः ।

आत्रेय उवाच ॥ पञ्चभूतात्मकं देहं पञ्चेन्द्रियसमायुतम् ॥ सप्तधातुगुणोपेतं दशवातात्मकं विदुः ॥ १ ॥ जीवो मनस्तथाकाशस्तथैव त्रिगुणात्मकः ॥ शुक्रशोणितसम्भूतं शरीरं दोषभाजनम् ॥ पञ्चभूतमयं चैतद्विज्ञेयं भिषजां वर ॥ २ ॥ चतुर्विधं शरीरं स्याद्बाल्यं प्रौढं प्रगल्भकम् ॥ स्थविरञ्च तथा प्रोक्तं बाल्यमल्पशरीरकम् ॥ षोडशवार्षिकं यावद्बाल्यं तावत् प्रवर्त्तते ॥ ३ ॥ धातूनाञ्च बलं तत्र धातुमूलं शरीरकम् ॥ धातूनां पुष्टियोगेन शरीरञ्चातिवर्द्धते ॥ ४ ॥ जीवितं धातुमूलं तु मृत्युर्धातुक्षयादपि ॥ हीनधातोश्च योगेन लभते स्वल्पजीवनम् ॥ ५ ॥ नरो धातुबलेनापि जीवितश्चात्र दृश्यते ॥ तस्माच्च मैथुनात्सम्यग्जायते गर्भसम्भवः ॥ ६ ॥ आदौ धातुबलं तस्मात्सत्त्वं तस्माद्रजो विदुः ॥ रजसा जायते कामः कामात्सुरतसङ्गमः ॥ ७ ॥ मासे मासे ऋतुः स्त्रीणां दृष्ट्वा ऋतुमतीस्त्रियः ॥ रजः सप्तदिनं यावदृतुश्च भिषजां वर ॥ ८ ॥ सप्तरात्राद्योनिशुद्धिस्तस्मादृतुमती भवेत् ॥ दृश्यते च रजः स्त्रीणां विना योगेन पुत्रक ॥ ९ ॥ दृश्यते न विना योगात्फलं स्त्रीणां तु पुत्रक ॥ संशयाद्विस्मितश्चित्ते हारीतः परिपृच्छति ॥ १० ॥

आत्रेयजी कहते हैं-पांच तत्त्वोंसे उत्पन्न होनेवाला पांच इंद्रिय और सात धातु तथा दश वायुओंसे युक्त ऐसे देहको कहते हैं ॥ १ ॥ जीव, मन, आकाश, ऐसे त्रिगुणात्मक शरीर है, वीर्य्य और शोणितसे उपजे हुए शरीरको दोषका पात्र कहते हैं। हे उत्तमवैद्य ! पांच तत्त्वोंसे उत्पन्न होनेवाला शरीर जान ॥ २ ॥ चार प्रकारका शरीर होता है, बालक१, जवान२, प्रगल्भ ३, वृद्ध ४, ऐसे चार प्रकारका कहा है, वहां बालक अल्पशरीर कहा है जबतक सोलह वर्षका हो तब तक बालक अवस्था रहती है ॥ ३ ॥ शरीरमें धातुओंका बल होता है और धातुओंकी जडवाला शरीर कहा है और धातुओंकी पुष्टिके योगसे शरीर अत्यंत बढता है ॥ ४ ॥ जीवन धातुओंकी जडसे है और धातुक्षय होनेसे मृत्यु हो जाती है और हीन धातुके योगसे थोडा जीवन होता है ॥ ५ ॥ मनुष्यका जीवन धातुकेही बलसे दीखता है इस वास्ते मैथुनसे सम्यक् प्रकारसे गर्भ स्थित होता है ॥ ६ ॥ पहले धातुका बल, उससे सत्त्वगुण, सत्त्वगुणसे रजोगुण, उससे काम व कामसे मैथुनका संगम होताहै ॥ ७ ॥ महीना२ के प्रति ऋतु अर्थात् स्त्री रजस्वला धर्ममें होती है। हे उत्तमवैद्य ! सात दिन-तक स्त्रियोंके रज रहता है तबतक ऋतुसमय कहाता है ॥ ८ ॥ और सात रात्री पीछे योनिकी शुद्धि हो जाती है तब वह ऋतुमती कहाती है हे पुत्र ! स्त्रियोंके रज विनाही योगसे होता है ॥ ९ ॥ फल अर्थात् गर्भस्थिति संयोगके विना नहीं होती है ऐसे सुनके सन्देहमें युक्त हो हारीत फिर पूछता भया ॥ १० ॥

हारीत उवाच ॥ संयोगेन विना प्राज्ञ कथं गर्भो न जायते ॥ संयोगेन विना पुष्पं फलं वा न कथं भवेत्॥ ११॥वृक्षवन्न कथं स्त्रीणां फलोत्पत्तिः प्रदृश्यते ॥ एतत्पृष्टो महाचार्य्यः प्रोवाच ऋषिपुङ्गवः ॥ १२ ॥

हारीत पूछने लगा-हे महाराज ! संगयोके विना स्त्रियोंके गर्भ क्यों नहीं ठहरता है क्योंकि संयोगके विना पुष्प तो हो गये फिर फल भी क्यों नहीं होता है ? ॥ ११ ॥ वृक्षकी तरहस्त्रियोंके भी गर्भकी उत्पत्ति क्यों नहीं होती ऐसे पूछा हुआ ऋषियोंमें उत्तम महान् आचार्य फिर बोलता भया ॥ १२ ॥

आत्रेय उवाच ॥ विरुद्धानाञ्च वल्लीनां स्थावराणाञ्च पुत्रक॥ तत्र धातुसमं बीजं सह योगेन वर्त्तते ॥ १३ ॥ न भिन्नदृष्टि-स्तस्यैव दृश्यते शृणु पुत्रक॥स्थावराणाञ्च सर्वेषां शिवशक्ति-मयं विदुः ॥ १४ ॥ निश्चलोऽपि शिवो ज्ञेयो व्याप्तिशक्तिर्महा-मते ॥ तत्र स्त्रीपुरुषगुणा वर्त्तंते समयोगतः ॥ १५ ॥ आम्र-पुष्पं फलं तद्वद्बीजं शुक्रमयं विदुः॥स्त्रीणां रजोमयं रेतो बीजा-

ह्यमिन्द्रियं नरे ॥ तस्मात्संयोगतः पुत्र जायते गर्भसम्भवः ॥ ॥ १६ ॥ प्रथमेऽहनि रेतश्च संयोगात्कललं च यत् ॥ जायते बुदबुदाकारं शोणितश्च दशाहनि ॥ १७ ॥ घनं पञ्चदशाहे स्यात्त्रिंशाहे मांसपिण्डकम् ॥ पञ्चविंशत्तमे प्राप्ते पञ्चभूतात्मसम्भवः ॥ १८ ॥ मासैकेन च पिण्डस्य पञ्चतत्त्वं प्रजायते॥ पञ्चाशद्दिनसंप्राप्ते अङ्कुराणाञ्च सम्भवः ॥ १९ ॥ मासत्रये तु संप्राप्ते हस्तपादौ प्रवर्धते ॥ सार्द्धमासत्रये प्राप्ते शिरश्च सारवद्भवेत् ॥ २० ॥ चतुर्थके च लोमानां सम्भवश्चात्र दृश्यते ॥ पञ्चमे च सुजीवः स्यात्षष्ठे प्रस्फुरणं भवेत् ॥२१॥ अष्टमे मासि जाते च अग्नियोगः प्रवर्त्तते॥मासे तु नवमे प्राप्ते जायते तस्य चेष्टितम् ॥ २२ ॥ जायते तस्य वैराग्यं गर्भवासस्य कारणात् ॥ दशमे च प्रसूयेत तथैकादशमेऽपि वा ॥२३॥ अथ दोषबलेनापि गर्भो वापि प्रसूयते ॥ वातसंप्रेरिते गर्भे अपूर्णे दिवसैर्यदि ॥२४॥ प्रसूयते वाप्यथ तद्गर्भे बालःप्रदृश्यते॥अथ वक्ष्यामि देहस्य वर्णज्ञानं महामते॥२५॥नररेतोऽधिकत्वेन तथा शुक्राधिकेन तु ॥ हीनरसेन्द्रियैर्वापि जायते पुरुषाधिकः ॥२६॥ स्त्रीरेतसोऽधिकत्वेन हीनशुक्रेन्द्रियादपि ॥ रजसोऽप्यधिकत्वेन स्त्रीसम्भूतिः प्रजायते॥२७॥ सप्तधातुबलेनापि प्रकृत्या विकृतेः समे॥ऋतुव्याप्तरजःस्त्रीणां या या भवति भावना ॥२८॥ सात्त्विकी राजसी वापि तामसी वापि सत्तम॥ तादृशं जनयेद्बालं गुणैर्वा तादृशैरपि ॥२९॥ या च भावयते चित्ते भ्रातरं पितरं नरम्॥येन वा तेन सदृशं सूयते सा भिषग्वर ॥ ३० ॥ वातेन श्यामः पुरुषो वातप्रकृतिसम्भवः ॥ पित्तेन गौरो भवति पित्तप्रकृतिवान्भवेत् ॥ ३१ ॥ श्लेष्मणा जायते स्निग्धः श्यामश्च लोमशस्तथा ॥ दीर्घशिरोरुहः स्थूलो दीर्घप्रकृतिसंयुतः ॥ ३२ ॥ वातरक्तेन कृष्णोऽपि पित्तरक्तेन

पिङ्गलः ॥ पित्तवांश्च नरो रूक्षः स्निग्धः श्यामः कफासृजः ॥३३॥ भृङ्गराजाञ्जनाकारं वातेन दृष्टिमण्डलम् ॥ सूक्ष्मलोमा च कृष्णश्च रूक्षमूर्द्धजयान्वितः॥यस्य वातेन तं विद्धि नखसूक्ष्मासितच्छविम् ॥३४॥ पित्तेन पीतश्च भवेदलोमा पिङ्गेक्षणाभासपिशङ्गकेशः॥अलोमशः पीतनखप्रभःस्यात्क्षुधातुरश्चोष्मणकेन दृप्तः ॥ ३५ ॥ सलोमशो दृढकठोरकेशः श्यामच्छविर्दृढतनुर्विशालः॥ सुस्निग्धदन्तः सितनेत्ररम्यो नखच्छविः पाण्डुसुदीर्घनासः ॥ ३६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र ! विरुद्ध जो स्थावर वृक्ष वेल आदिक हैं उनको तो धातुके संग बीज योगसहित प्रवृत्त होता है ॥ १३ ॥ हे पुत्र ! उनके भिन्न दृष्टि नहीं है सो सुनो संपूर्ण स्थावर वृक्ष आदिकोंके शिव और शक्तिको जान ॥ १४ ॥ वहां निश्चल तो शिव है और शक्ति व्याप्त हो रही है वहां स्त्री पुरुषके गुण संग ही प्रवृत्त होते हैं ॥ १५ ॥ इसवास्ते आमके पुष्प और फल संगमें ही प्रवृत्त होता है और बीजको वीर्यकी जगह जान और स्त्रियोंके रज ही वीर्य है और पुरुषके वीर्य बीजरूप है हे पुत्र ! इस वास्ते संयोगसे ही गर्भकी उत्पत्ति होती है ॥ १६ ॥ और पहले दिन वीर्यके संयोगसे बुलबुलाके आकार वीर्य स्थित होता है दिशदिनमें रुधिर होजाता है ॥ १७ ॥ पंदरह दिनमें कड़ा होजाता है और बीसमें दिनमें मांसकी पिंडी होती है, २५ दिनमें पांच तत्त्वोंका संभव होता है ॥ १८ ॥ एक महीनामें उसके पांचों तत्त्व प्रकट होजाते हैं, पंचाशदिनोंमें अंकुरोंकी उत्पत्ति होजाती है ॥१९॥ तीन महीने होजावे तब हाथ पैर बढने लग जाते हैं साढे तीन महीनोंमें शिर प्रकट होजाता है ॥ २० ॥ चौथे महीनेमें रोम होते हैं और पांचवें महीनेमें जीव प्रकट होजाता है, छठे महीनेमें फुरने लगजाता है ॥ २१ ॥ पीछे आठमें महीनेमें उसके जठराग्निका योग होजाता है, नवमें महीनेमें उसको चेष्टा होती है ॥ २२ ॥ पीछे उसको गर्भवासके कारणसे वैराग्य होता है अर्थात् संसारसे दूर होनेका ज्ञान होता है, फिर दशवें महीनेमें उत्पन्न होता है ॥ २३ ॥ वातआदिक दोषोंके बलसे गर्भ जनता है, जो दशवां महीनातक दिन पूरे नहीं हुए हों ॥ २४ ॥ तो वह वातदोषसे प्रेरित हुआ गर्भ पहले ही उत्पन्न होजाता है हे महामते ! अब देहके वर्णज्ञानको कहते हैं ॥ २५ ॥ मनुष्यका वीर्य शुक्र अधिक होवे तो पुरुष जन्मे ॥ २६ ॥ और स्त्रीका वीर्य रज अधिक होवे और शुक्र हीन होवे तो कन्या जन्मे ॥ २७ ॥ सात धातुओंके बलसे प्रकृति और विकृति जब समान होजावे और रजस्वला होनेके स्त्रीके ऋतुसमयमें स्त्रियोंकी जैसी २ भावना हो ॥ २८ ॥ सत्त्वगुणी अथवा रजोगुणी

तथा तामसी जैसी प्रकृति हो तैसेही गुणोंसे युक्त वैसे ही बालकको स्त्री जनती है ॥ २९ ॥ जो स्त्री उस समयमें चित्तमें भ्राता अथवा पिता अथवा अन्यपुरुष जिसका स्मरण करती है हे उत्तमवैद्य ! उसीके सदृश पुत्रको जनती है ॥ ३० ॥ और वात-दोषसे श्यामवर्णवाला पुरुष, वातकी प्रकृतिवाला होता है, पित्तसे गौर वर्णवाला और पित्तकी प्रकृतिवाला होता है ॥ ३१ ॥ कफसे चिकना और श्यामवर्णवाला तथा रोमोंवाला होता है और बड़े बाल हों, स्थूल हो दीर्घ प्रकृतिसे युक्त होता है ॥ ३२ ॥ वात-रक्तसे काले वर्णवाला और पित्तरक्तसे पिंगल वर्णवाला होता है और पित्तवाला मनुष्य रूखा होता है और कफरक्तसे स्निग्ध और कालेवर्णवाला होता है ॥ ३३ ॥ और वात दोषसे भौंरा तथा अंजनके आकारवाले दृष्टिमंडल होते हैं और जिसके सूक्ष्म रोम हों, काले और रूखे बाल हों और जिसके सूक्ष्म२ लाल नख हों उसकी वातकी प्रकृति जाननी ॥ ३४॥ पित्तसे पीले रोम होते हैं और पीले नेत्र तथा वांदरसरीखे केश होते हैं और रोम नख ये पीले होते हैं और क्षुधासे युक्त रहता है, मुखसे भाफ निकलती रहती है और बहुतसे रोम होते हैं गर्वीला होता है ॥३५ ॥तथा कफसे कठोर बाल होते हैं श्याम कांति हो और गर्वीला तथा सुन्दर शरीर होता है चिकने दाँतहों सुन्दर रमणीक सफेद नेत्र रहते हैं नख पीले रहते हैं और दीर्घ नासिका होती है ॥ ३६ ॥

अथ नपुंसक तथा अपत्ययुग्मका विचार।

समवीर्य्यरजस्त्वेन नरः स्त्रीप्रकृतिर्भवेत्॥ नपुंसकमिति ख्यातं न स्त्री न पुरुषो वदेत्॥३७॥दोषधातुविशेषेण सङ्गे सत्यङ्गसं-भवः ॥कृतभ्रान्ते च संभोगे द्वाभ्याञ्च द्रवते मनः ॥३८॥दृश्य-ते यमलोत्पत्तिरन्यचित्तप्रियङ्करी ॥ ३९ ॥

मैथुन करनेके समय पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रज जो समान होवे तो नपुंसक जन्मता है वह न तो पुरुष न स्त्री होता है ॥ ३७ ॥ दोष धातु इनका विशेष करिके संग होनेसे जो अंगका संभव होता है और भ्रांत चित्त होके जो भोग करते हैं वहां दोष और धातु दोनोंसे मन द्रवता है ॥ ३८ ॥ वहां यमल अर्थात् जोडेले बालक उत्पन्न होते हैं वे अन्योंके चित्तको प्रसन्न करनेवाले हैं ॥ ३९॥

अथ नपुंसकका विचार।

समदोषबलेनापि प्रकृत्या विकृतेरपि॥ शुक्रासृक्च भवेच्छ्या-मा नपुंसकसमुद्भवः ॥ ४० ॥

रज वीर्य और प्रकृति विकृति दोषधातु इनके समान होनेसे स्त्री जन्मे तो वहभी हीजडी होती है॥ ४० ॥

अथ गर्भका विवर्णन ।

अथ बीजलेहिपञ्चभूताग्निना परिपक्कं कललं क्रियते ॥ सोऽपिचान्तःस्थो वायुर्बुद्बुदाकारो बाह्यवातेन संभृतो भवति॥स च कललं भूत्वा पञ्चभूताग्निना पिण्डं जनयतिच्च तच्च पिंडं परिपाकगतं घनसंघातञ्च जातं व्यानवातेन पञ्च तत्त्वानिहस्तपादादीञ्छिरोवयवान्संजनयति अन्तःस्थो वायुरेकोऽपि नानास्थानं समाश्रित्य देहाकारं करोति॥उदानो गलहृदयसंस्थितो देहमुखद्वारं प्रकाशयति॥उदानो गलहृदयसंस्थितो देहमुखद्वारं प्रकाशयति॥अपानवायुरधःस्थोऽपानद्वारं विशोधयति॥ एते चान्तःस्थाःपृथक्पृथक् मार्गेच्छिद्रं कृत्वा निर्गच्छन्ति॥ तान्येव नवद्वाराणि मुखघ्राणकर्णनेत्रापानमेहनानि चैतानि द्वाराणि वातेन प्रभवन्ति॥तत्रान्तःस्थो वायुः प्रतानत्वेन हस्तपादाद्यानवयवान्संजनयति ॥४१॥ त्वङ्मांसकेशरोमास्थिभूभागं जनयेत्तथा ॥ रसं रक्तञ्च लालाञ्च मूत्रं शुक्रं जलानि च ॥ ४२ ॥ अग्निं पित्तञ्च नेत्रञ्च तमः क्रोधादिपञ्चकम्॥ श्रुतिः स्पर्शास्तथोच्छ्वासः स्वेदञ्चंक्रमणादि च॥४३॥वाता ह्येते परिज्ञेया अन्या प्रकृतिरेव च ॥ मनो बुद्धिस्तथा निद्रा आलस्यं मद एव च ॥ ४४ ॥ शून्यात्पञ्च प्रजायन्ते देहे देहे व्यवस्थिताः ॥ वातरक्तेन त्वग्देहे मांसं त्वगाश्रितं मतम् ॥ ४५ ॥ शुक्रश्लेष्मोद्भवो मेदो रसोऽस्थिरक्तसंभवः ॥ पित्ताश्रितं हृदयस्थं वातरक्तमयं यकृत् ॥ ४६ ॥ रक्तश्लेष्मरसाश्रित ऊरुः कफरक्तश्लेष्ममयः ॥ प्लीहाकफरक्तमय्यः पेश्यश्च ॥ ४७ ॥ पञ्चभूतमयं देहमाकाशं शून्यमेव च ॥ शून्याद्वायुः समुत्पन्नो वायोः प्राणः प्रजायते ॥ प्राणांशश्च तथा जातः सर्वसत्त्वे प्रतिष्ठितः ॥ ४८ ॥

मैथुन समयमें योनिमें प्राप्त हुए वीर्यको पंच तत्त्वोंकी अग्नि पकाके कलल कर देती है पीछे उदरमें स्थित हुआ वह कलल बाहिरकी वायुसे बुलबुलेके आकार होजाता है फिर वह कललहोके

पांच तत्त्वोंकी अग्निसे पिंड होजाता है, पीछे पका हुआ वह पिंड कडा इकट्ठा होजावे तब उदान वायु पांच तत्त्व हाथ पैर आदिक-शिरआदिक अंग इनको उत्पन्न कर देता है और अन्तर हृदयमें स्थित हुआ एक ही वायु अनेक स्थानोंके आश्रय होके उस पिंडको देहके आकार कर देता है। उदान वायु तो गल हृदय इनमें स्थित होके देहमें मुखके द्वारको प्रकाशित कर देता है और अपानवायु नीचेको स्थित हो गुदाके द्वारको शोध देता है। ये सब भीतर रहनेवाले वायु पृथक् पृथक् मार्गमें छिद्र करके निकलते हैं वे ही नव द्वारोंको करते हैं। मुख, नासिका, कर्ण, नेत्र, गुदा, लिंग ऐसे ये ९ द्वार वायुसे होते हैं। वहां भीतर रहनेवाला वायु विस्तृत होके हाथ पैरआदिक अंगोंको उत्पन्न कर देता है ॥ ४१ ॥ और त्वचा, मांस, केश, रोम, अस्थि ये पृथ्वीतत्त्वसे उत्पन्न होते है। रस, रक्त, लार, मूत्र, वीर्य ये जलतत्त्वसे उत्पन्न होते हैं ॥ ४२ ॥ पित्त, नेत्र, अंधेरा, क्रोध, मोहादिक पांच ये अग्निसे होते हैं। कान, स्पर्श, ऊंचा श्वास, पसीना, चहलकदमी आदि करना ॥ ४३ ॥ ये वातसे उत्पन्न होते हैं और मन, बुद्धि, निद्रा, आलस्य, मद ॥ ४४ ॥ ये पांच आकाश तत्त्वसे होते हैं। ऐसे सब शरीरोंमें व्यवस्था है और वातरक्तसे शरीरमें त्वचा होती है ॥ ४५ ॥ और मांस त्वचाके आश्रय कहा है और वीर्य तथा कफसे मेद उत्पन्न होता है और अस्थिरक्त इनसे रस होता है और हृदयमें पित्तका आश्रय है और वातरक्तसे युक्त यकृत् स्थान है ॥ ४६ ॥ रक्त, कफ, रस इनके आश्रय जांव है और कफरक्तके आश्रय तिल्लीस्थान है और कफरक्तके आश्रय मांसकी पेशी है ॥ ४७ ॥ यह पंच तत्त्वोंका शरीर है वहां आकाश शून्य है शून्यसे वायु उत्पन्न होता है वायुसे प्राण होते हैं फिर प्राणोंके अंशसे संपूर्ण जीवोंमें होनेवाला सत्त्वगुण होता है ॥ ४८ ॥

आकाशाज्जलमुत्पन्नं जलाज्जाता वसुन्धरा ॥ तस्यास्तेजस्तथा जातं तेजसो जायते तमः ॥४९॥ पञ्चभूतात्मके देहे पञ्चेन्द्रियसमायुते॥भूतानाञ्च प्रधानो य आकाशमिति शब्दितः॥५०॥ आकाशात्तेजस्तेजसो दर्पो दर्पात्पराक्रम स्तस्मादहङ्कारस्ततः कोपःकोपात्तमस्तमसः पापमिति॥आकाशात्सत्त्वं सत्त्वात्सत्यं सत्यात्तपस्तपसो नयो नयाद्विवेको विवेकाच्छान्तिः शान्त्या धर्म इति॥सत्त्वाद्रजो रजसः कामः कामाल्लौल्यं लौल्यादसत्यमसत्यात्पापमिति॥रसात्कामःकामादभिलाषोऽभिलाषात्प्रजा प्रजाया मैत्री मैत्र्याःस्नेहःस्नेहान्मोहो मोहान्माया ततो भ्रान्तिर्भ्रान्त्या मिथ्या ततोऽविद्या अविद्यायाः पुण्यपापानि पुण्यपापेभ्यःसम्भव इति ॥५१॥सत्त्वाच्च तम एव स्याज्जाग्रते स्वपते

प्रभुः ॥ तमसा प्रवृतो देही व्योमेन शून्यतां गतः ॥९२॥ देहं विश्रमते यस्मात्तस्मान्निद्रा प्रकीर्त्तिता ॥ नासार्द्धे च भ्रुवोर्मध्य लीयते चान्तरात्मना ॥९३॥ तस्माच्चेतो भवेत्तत्रनिद्रा व्यालीयते नृणाम्॥९४॥॥सत्त्वात्तेजःसमाख्यातं तेजसा पित्तमेव च ॥ जायते वायुर्मनसः स्वपते तमसा वृतः ॥९५॥ वायोस्तमः समायोगात्स्वभावस्थेति गीयते ॥ सत्त्वं तमस्तथा वायुर्वर्त्तते चैकयोगतः॥९६॥ आहारनिद्रा च क्षुधा च तृष्णा भयश्च मात्सर्य्यमदश्च मोहः ॥ क्रोधाभिलाषः सुखतृप्तिशान्तिर्भवन्ति वै देहभृतां शृणु त्वम् ॥ ९७ ॥ आहारस्येच्छया देहे विचरते हुताशनः ॥ तृप्तिं वापि समाप्नोति रसस्वादरजस्य च ॥९८॥ यदा यदा शोषयते मलानामग्निस्तदा तृप्तिमिवातनोति ॥ यदा च यस्यैव भवेदतृप्तिस्तदैव तृष्णां प्रतनोति चेतः ॥ ९९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे शारीरस्थाने शारीराध्यायो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ इति शारीरस्थानं समाप्तम् ॥

आकाशसे जलतत्त्व होता है उससे पृथ्वी होती है उससे अग्नितत्त्व होता है अग्निसे तमोगुण होता है ॥ ४९ ॥ पंचभूतात्मक तथा पांच इंद्रियोंसे युक्त ऐसे शरीरमें जो तत्त्वोंमें प्रधान है वह अकाश कहाता है ॥ ९० ॥ आकाशसे अग्नि होता है अग्निसे अभिमान होता है उससे पराक्रम होता है उससे अहंकार अहंकारसे क्रोध होता है उससे तमोगुण और तमोगुणसे पाप होता है और आकाशसे सत्त्वगुण उससे सत्य सत्यसे तप तपसे नीति नीतिसे विवेक विवेकसे शांति शांतिसे धर्म होता है और सत्त्वसे रजोगुण होता है रजोगुणसे कामना कामनासे चंचलपना होता है चंचलपनेसे असत्य और असत्यसे पाप होता है और रससे कामना कामसे अभिलाषा अभिलाषासे प्रजा अर्थात् संतान और प्रजासे मित्रभाव होता है उससे स्नेह स्नेहसे माया होती है उससे भ्रांति भ्रांतिसे मिथ्या उससे अविद्या और अविद्यासे पुण्य तथा पाप दोनों होते हैं फिर पुण्यपापोंसे जन्म होता है ॥ ९१ ॥ सत्त्वगुणसे तमोगुण होता है वह जाग्रत् अवस्था तथा स्वप्न अवस्थामें बलवंत है और तमोगुणसे प्रवृत्त हुआ जीव आकाशके संग शून्यभावको प्राप्त होता है ॥ ९२ ॥ तब देहको विश्राम देता है उसको निद्रा कहते हैं, नासिकाका अर्द्धभाग और भ्रुकुटिमध्य वहां अंतरात्मके संग लीन होता हैं ॥ ९३ ॥ वहां चित्त रहताहै उससे मनुष्योंकी निद्रा दूर होती है ॥९४॥ और सत्त्वगुणसे तेज तेजसे पित्त होता है और मनसे वायु उत्पन्न होता है और तमोगुणसे

शम्भुस्तथात्रेयोऽस्ति वैद्यके ॥१२॥ तस्माद्यत्नेन सद्वैद्यैः साद-रार्द्रसुमानसैः॥ अर्चनीयोऽनुमन्तव्यो दास्यति सुखसम्पदः॥ ॥ १३ ॥ इत्यात्रेय भाषिते हारीतोत्तरे परिशिष्टाध्यायः॥ १॥

इति हारीतसंहिता समाप्ता ॥

इस प्रकारसे आत्रेयजीने शरीरकी चिकित्सा विस्तारसे कह दी तब महान् तेजवाला उत्तम हारीत मुनि सुनके ॥ १ ॥ उस श्रेष्ठ गुरुको प्रणाम कर अंतःकरणमें प्रसन्न हो देव-ताओंकी नदीके तीरपै जा वहां स्नान ध्यानमें रत होता भया ॥ २ ॥ महर्षिके वचनोंसे कहे हुए इस शास्त्रको जो सुनता है वह सब पापोंसे छुटके सुखको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ पहले यह शास्त्र ब्रह्माजीने कहा, पीछे अत्रिमुनिने फिर धन्वंतरिने कहा है और अश्विनी-कुमारोंने कहा है ॥ ४ ॥ ऐसे वेदमें युक्तहुआ यह शास्त्र चला आता है, निंदित करनेके योग्य नहीं है और अनेक शास्त्रोंको जाननेवाले अन्य बहुतसे ऋषियोंने अनेकप्रकारसे कहा है ॥ ५ ॥ इन आगे कहे हुए ऋषियोंका मत है इसवास्ते सबको माननेलायक है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट इत्यादिक ॥ ६ ॥ मुख्य ऋषियोंसे यह संहिता युग २ में कही हुई है ॥ ७ ॥अत्रिमुनि सतयुगमें वैद्य होते भये और द्वापरमें सुश्रुत होते भये और कलियुगमें वाग्भ-टनामवाला महान् वैद्य दीखता है ॥ ८ ॥ वैष्णवी, आश्विनी, गार्गी, माध्याह्निका, मार्कंडेया, ये संहिता योगराजने कही है ॥ ९ ॥ आयुर्वेद संहिता ऋषियोंने अनेक प्रकारके मंत्र और औषधोंसे युक्त करदी है ॥ १० ॥ अग्निवेष, भेड, जातूकर्ण्य, पराशर, हारीत, क्षीरपाणि, ये छह ऋषि कहे हैं ॥ ११ ॥ जैसे मृगोंमें सिंह है और सर्पोंमें शेष नाग है, देवताओंमें शिवजीहैं वैसेही वैद्योंमें आत्रेयमुनि उत्तम हैं ॥ १२ ॥ इस वास्ते यत्नसे उत्तम वैद्योंकी आदरसे सुन्दर मनसे अत्रिमुनि पूजन करनेको योग्य हैं और माननेको योग्य हैं वे सुख संपत्ति इनको देवेंगे ॥ १३ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां परिशिष्टाध्यायः ॥ १ ॥

इति हारीतसंहिता संपूर्णा ।

पुस्तक मिलनेका पता-

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास, "लक्ष्मीवेङ्कटेश्वरप्रेस" कल्याण-मुम्बई.